YURVED
MAHA SA.
ATRIKA

VOL. 12
1951

G.K.U.
HARDWAR

079 ५२५

COMPILED

Diamond Book Binding H
Moh. Karachh B.H.E.L. Road Jawal

3/11/85
S No
809

7/11/85

Stock Verification-2024

दिसम्बर
१९५१

मार्गशीर्ष
२००८

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

27.12.51

079424

079424
COMPILED

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०, बी० आई० एम० एस०

महासम्मेलन सदस्यों तथा ग्राहकों को सूचना

१. संशोधित नियमावली के अनुसार मान्य सदस्यों का शुल्क १०) वार्षिक होगा और उन्हें वर्ष भर पत्रिका निःशुल्क मिलती रहेगी। जो केवल पत्रिका ही लेना चाहें, उनके लिए ५) शुल्क।

२. महासम्मेलन के मान्य सदस्यों का शुल्क १०) यदि १५ जनवरी तक प्राप्त नहीं होगा तो उन्हें १०।≈) का वी० पी० भेजा जायगा। कृपया वह वी० पी० अवश्य छुड़ा लें।

"जनरल आव आयुर्वेद" महासम्मेलन के हाथ में

महासम्मेलन ने जनवरी १९५२ से अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र "जनरल आव आयुर्वेद" को अपने नियंत्रण में ले लिया है। इसमें बहुत गवेषणापूर्ण, ज्ञानवर्धक और गम्भीर लेख रहते हैं। प्रत्येक अंक सुपाठ्य, सुरुचिपूर्ण और विचारोत्तेजक लेख से परिपूर्ण होता है। वैद्य बन्धुओं से अनुरोध है कि इसे अधिकाधिक संख्या में अपनावें। वार्षिक मूल्य ७।।), छात्रों से ५), नमूना मुफ्त। विज्ञापन-दाताओं के लिए अपनी वस्तुओं के प्रचार का सुलभ और प्रभावपूर्ण साधन।

जनरल आव आयुर्मेद कम मूल्य में

प्रचार की दृष्टि से यह निश्चय किया गया है कि महासम्मेलन के अंग्रेजी भाषा के मुख्य पत्र जनरल आव आयुर्वेद १९५१ के समस्त अंक छात्रों को २।।) में और वैद्यों को ३।।) में केवल इस वर्ष प्राप्त होंगे। इन अंकों में बहुत गवेषणापूर्ण और ज्ञानवर्धक लेख हैं। प्रत्येक अंक संग्रहणीय हैं। छात्रों और वैद्यों को इससे लाभ उठाना चाहिए। बहुत कम प्रतियाँ अवशिष्ट हैं। अवसर मत चूकें। इन अंकों का वास्तविक मूल्य ७) है।

स्मरण रखें

पत्रिका के प्रचार और प्रसार में वृद्धि करना आपका प्रमुख कर्त्तव्य है। यद्यपि ग्राहक संख्या में प्रति वर्ष वृद्धि हो रही है पर हम उससे सन्तुष्ट नहीं हैं। हम वह दिन देखना चाहते हैं जब भारत, लंका और नैपाल के प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी के हाथ में यह पत्रिका हो पर यह कैसे और कब? तभी जब प्रत्येक वैद्य स्वयं ग्राहक बने और कम से कम पाँच नये ग्राहक बनाये। यह वैद्य बन्धुओं की एक मात्र संगठित और प्राचीन संस्था महासम्मेलन, आयुर्वेद और राष्ट्र की निःस्वार्थ सेवा है।

व्यवस्थापक
९०/८ कनाट सरकस, नई दिल्ली।

० अप्रैल

।। श्री धन्वन्तरये नमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक--कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक--पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय--६०/८ कनाट सर्कस, नई देहली ।

वर्ष ३७
अंक १२

नई दिल्ली, मार्गशीर्ष २००८, दिसम्बर १९५१

मूल्य ।।)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. स्थायी समिति अधिवेशन का कार्यक्रम (एजण्डा)		५७४ (१ से २४ तक)
२. स्थायी समिति अधिवेशन का कार्यविवरण		५९१
३. आयुर्वेद जीवाणु	सोमदेव शर्मा	५९६
४. नेत्र विज्ञान	अग्रवाल, ओम्प्रकाश	६०७

आयुर्वेद महासम्मेलन पुस्तक विक्रय विभाग

पुस्तकों का सूचीपत्र

चरक (जयदेव कृत भा० टी०)	३२)
,, संहिता (भागीरथी टिप्पणी)	७)
सुश्रुत (श्री अत्रिदेव भा० टी०)	२०)
,, शारीर स्थान प्रभादर्पण	३)
,, ,, (डा० घाणेकर)	८)
भावप्रकाश विद्योतिनी भा० टी०	३०)
भावप्रकाश विद्योतिनी निघण्टु	७॥)
शार्ङ्गधर संहिता सुबोधिनी भा. टी.	६)
बाग्भट्ट अष्टांग हृदय भा० टी०	१६)
वाग्भट्ट अष्टांग हृदय (सटिप्पणी)	५)
चक्रदत्त भा० टी०	१०)
माधव निदान	४॥)
रसेन्द्रसारसंग्रह (3 Volumes) (वैद्य घनानन्द पन्त)	११)
रसेन्द्रसारसंग्रह (रसचन्द्रिका भा० टी०)	६)
रस रत्न समुच्चय (मूल)	३॥)
रस रत्न समुच्चय भा० टी०	१५)
नाडीविज्ञान	।–)
नाडी परीक्षा ,,	।–)
व्यवहारायुर्वेद (वैद्य गणेशदत्त कृत)	५)
विषतन्त्र ,, ,,	३)
सरल व्यवहारायुर्वेद व विषविज्ञान	४)
कौमार भृत्य (प्रो० रघुबीर प्रसाद)	६)
सिद्धान्त निदान (२ भाग)	१०)
प्रत्यक्ष शारीरम् (संस्कृत)	२३॥)
हिन्दी केवल प्रथम भाग)	६।)
शरीर तत्व दर्शनम् (श्री हिर्लेकर)	६)

हमारे शरीर की रचना (२ भाग)	२५॥)
पंचभूत विज्ञान (श्री उपेन्द्रनाथ कृत)	३)
त्रिदोष विज्ञान	२॥)
नव परिभाषा ,, ,,	१॥)
यन्त्रशास्त्र परिचय (आचार्य सुरेन्द्रमोहन कृत)	१॥)
प्रतिसंस्कृत निदान चिकित्सा	८)
स्वास्थ्य संहिता (नानक चन्द)	२॥)
भैषज्य रत्नावली विद्योतिनी भा. टी.	१५)
प्रारम्भिक उपचार	१)
आरोग्य विधान	६)
विद्यापीठ परीक्षा नियमावली	॥)
विद्यापीठ गतपरीक्षा प्रश्न पत्र	
मर्मविज्ञान (सचित्र)	३॥)
Ayurveda Survey	४)
शहद (श्री रामेश वेदी कृत)	३)
लहसुन प्याज ,, ,,	२।)
तुलसी ,, ,,	२)
सोंठ ,, ,,	१॥)
मिर्च ,, ,,	१)
देहाती इलाज ,, ,,	१)
काक चण्डीश्वर	१)
यकृत के रोग	२)
वैद्यक परिभाषा प्रदीप	१॥)
प्रारम्भिक भौतिकी	८)
,, रसायन सम्पूर्ण	४॥)
सौश्रुति	८॥)

उपर्युक्त पुस्तकें मंगवाते समय पुस्तकों का मूल्य तथा डाक व्यय निम्नलिखित पते पर भेजें :—

नि. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय, ९०/८ कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, नई देहली ।

महासम्मेलन कार्यकारिणी एवं स्थायी समिति तथा विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का सम्मिलिताधिवेशन ।

स्थान :—आर्यसमाज मन्दिर, बाज़ार सीताराम, देहली ।

समय—ता० ९ दिसम्बर १९५१, दिन रविवार, २ बजे अपराह्न से ।

विचार्य विषय :—

१—गताधिवेशन कार्य विवरण की स्वीकृति ।

२—नवीन सदस्यता एवं सम्बद्धता स्वीकृति ।

३—स्थानिक संघ के ता० २४-१०-५१ के अधिवेशन के कार्य-विवरण की स्वीकृति (उक्त कार्य विवरण इसी पत्रिका के पृष्ठ ३ तथा ४ पर अङ्कित है ।)

४—नियमावली में संशोधन का अधिकार स्थायी समिति को प्राप्त है अथवा नहीं, इस विषय पर विचार ।

विशेष:—महासम्मेलन की सन् १९४५ वर्षीय नियमावली में स्थायी समिति ने अपने ता० २८-१-५१ के अधिवेशन में कुछ आवश्यक संशोधन किये थे । स्थायी समिति के प्रस्तावानुसार ही संशोधित नियमावली ता० २८-३-५१ से लागू होनी थी । परन्तु इसी बीच में नियमावली संशोधन में स्थायी समिति के अधिकार पर कुछ सदस्यों द्वारा आपत्ति उठाई गई जिसके फलस्वरूप उक्त विषय स्थायी समिति के ता० २९-४-५१ के अधिवेशन में उपस्थित किया गया । श्री प्रधान जी ने आदेश (रूलिंग) दिया कि स्थायी समिति द्वारा नियमावली संशोधन की वैधानिकता अथवा अवैधानिकता पर कानूनी परामर्श लिया जाय तथा तदुपरान्त यह विषय पुनः स्थायी समिति में उपस्थित किया जाय । तदनुसार कार्यालय ने इस विषय पर दो 'बार एसोशियेशन्ज़ (Bar Associations)' तथा सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के दो एडवोकेट्स् की सम्मतियां ली हैं । सदस्य महानुभावों की जानकारी के लिए उक्त सम्मतियों का सारांश आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के सितम्बर मास के अङ्क के पृष्ठ ४३८ तथा ४३९ पर प्रकाशित किया जा चुका है । अब इन्हीं सम्मतियों के प्रकाश में स्थायी समिति ने नियमावली संशोधन के विषय पर अपने अधिकार अथवा अनधिकार का निश्चय करना है और यदि स्थायी समिति का इस विषय में अधिकार निश्चित हो जाय तो संशोधित नियमावली प्रचलित की जा सकती है ।

५—सन् १९५०-५१ के महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के संलग्न आय—व्यय तथा सन्तुलन पत्रों (Income and Expenditure Accounts and Balance Sheets) पर विचार एवं उनकी स्वीकृति ।

६—सन् १९५१-५२ के लिए महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के संलग्न प्रस्तावित आनुमानिक आय-व्यय पत्रों (Budgets) पर प्रधानमन्त्री के वक्तव्य के प्रकाश में विचार एवं उनकी स्वीकृति।

७—निखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय योजना के संचालन के लिए श्री महासम्मेलनाध्यक्ष, प्रधानमन्त्री, विद्यापीठाध्यक्ष, विद्यापीठमन्त्री, कोषाध्यक्ष, भारत के ६ प्रमुख वैद्यों तथा वैद्येतर ७ प्रतिष्ठित महानुभावों द्वारा संगठित कार्यवाहक समिति के निर्माण पर विचार। (प्रधानमन्त्री का तत्सम्बंधी वक्तव्य इसी पत्रिका के पृष्ठ ५ पर मुद्रित हैं)।

८—निखिल भारतीय आयुर्वेद औषध निर्माता संघ के विधान निर्माणार्थ एवं प्रारम्भिक कार्य सञ्चालनार्थ उक्त संघ के अभी तक बने हुए १४ सदस्यों,तथा महासम्मेलन की ओर से निर्वाचित ७ सदस्यों से संगठित उक्त संघ की प्रारम्भिक कार्य समिति के निर्माण पर विचार। (इस विषय पर प्रधानमन्त्री का वक्तव्य इसी पत्रिका में १९५०-५१ वर्षीय इतिवृत्त में देखें)।

९- वैद्य श्री भोलादत्त जी पाण्डेय (रानीखेत) के पत्र पर श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी की अनुमति सहित विचार तथा इसी सम्बन्ध में आयुर्वेदीय क्षेत्र में विशेष अनुसन्धान कार्य तथा गवेषणात्मक पुस्तक अथवा लेख लिखने पर विश्वविद्यालयों द्वारा प्रचलित पी०-एच० डी० की समकक्ष आयुर्वेदिक परीक्षा प्रारम्भ करने पर विचार।

१०—३८वें आयुर्वेद महासम्मेलन के विषय पर विचार। (उक्त विषय पर प्रधान मन्त्री का वक्तव्य इसी पत्रिका में अन्यत्र मुद्रित है)।

११—विद्यापीठ परीक्षार्थियों के लिए केन्द्र स्थापना एवं सशुल्क परीक्षा व्यवस्था के विषय पर विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के ता० १४-१०-५१ के अधिवेशन द्वारा निर्मित समितियों के कार्य विवरण पर विचार एवं उसकी स्वीकृति। (उक्त कार्य-विवरण इसी पत्रिका में अन्यत्र मुद्रित है।)

१२—मिश्रित।

विशेषः—यदि उपरिलिखित सम्पूर्ण कार्यक्रम ता० २ दिसम्बर को समाप्त न हो सका तो ता० ३ दिसम्बर को भी अधिवेशन होगा। सदस्य महानुभावों से प्रार्थना है कि सभी विषयों पर गम्भीर विचार करके निश्चित समय पर अधिवेशन में सम्मिलित होने की कृपा करें। यदि किसी कारणवश उपस्थित न हो सकें तो अपनी अमूल्य सम्मति ता० १ दिसम्बर तक इस कार्यालय में भेज कर अनुगृहीत करें।

भवदीय

रामगोपाल शास्त्री — विद्यापीठ-मन्त्री

गुरुदत्त — प्रधान-मन्त्री

आयुर्वेद महासम्मेलन

आयुर्वेद महासम्मेलन—विद्यापीठ कार्यालय,
९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली-१.

ता० १६ नवम्बर, १९५१.

विषयाङ्क ३ :—

स्थानिक संघ के ता० २४-१०-५१ के अधिवेशन का कार्यविवरण

उपस्थिति:- कविराज श्री ओंकारप्रसाद शर्मा, (सभापति) सर्वश्री शिवनाथ शर्मा, स्वामी चेतनानन्द, नानकचन्द शर्मा, आशुतोष मजुमदार, रामगोपाल शास्त्री, गुरुदत्त।

१—कर्मचारी रक्षाकोष (प्राविडेण्ट फण्ड) के नियमों पर विचार हुआ तथा निम्न लिखित नियम स्वीकार किये गये।

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन कर्मचारी रक्षाकोष (प्राविडेण्ट फण्ड) के नियम।

(क) इस कोष का नाम "निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन कर्मचारी रक्षाकोष (प्राविडेण्टफण्ड)" होगा।

(ख) प्रत्येक स्थायी कर्मचारी को इस फण्ड का सदस्य बाध्यरूप से बनना होगा।

(ग) संस्था कर्मचारी के मूल वेतन (बेसिक सैलरी) का १/१६ भाग प्रतिमास काटकर फण्ड में जमा करेगी।

(घ) जितनी धनराशि कर्मचारी के वेतन से प्रतिमास कटेगी उतनी ही धनराशि संस्था अपनी ओर से, अपने भाग के रूप में, प्रतिमास इस फण्ड में देगी।

(ङ) फण्ड १ फरवरी १९५१ से प्रारम्भ किया गया है, इसके आधीन कर्मचारी के सेवा काल की गणना उसकी स्थायी नियुक्ति की तिथि से होगी।

(च) ३ वर्ष की स्थायी सेवा से पूर्व नौकरी छोड़ देने पर कर्मचारी को केवल उसका दिया हुआ भाग वापिस मिलेगा, ३ वर्ष के स्थायी सेवा काल से ऊपर तथा ५ वर्ष के सेवा काल से कम नौकरी छोड़ने पर कर्मचारी को अपने दिये हुए भाग के अतिरिक्त संस्था के दिए हुए भाग में से आधा भाग दिया जायगा। ५ अथवा ५ वर्ष के ऊपर स्थायी सेवा काल के अनन्तर नौकरी छोड़ने पर कर्मचारी को उसके संग्रहीत धन के साथ उतना ही धन संस्था की ओर से दिया हुआ भी दिया जायेगा।

(छ) उक्त फण्ड के ३ ट्रस्टी होंगे, जिनमें से दो संस्था की ओर से—संस्था के तत्कालीन प्रधानमंत्री तथा विद्यापीठमन्त्री—तथा एक कर्मघारी मण्डल का अपने में से ३ वर्ष के लिये निर्वाचित प्रतिनिधि होगा। ये तीनों ट्रस्टी मिलकर फण्ड के हिसाब आदि खोलेंगे तथा एक साथ हस्ताक्षर करके कोई दो ट्रस्टी इन हिसाबों को चला सकेंगे, ये ही ट्रस्टी मिलकर फण्ड सम्बन्धी अन्य कार्य करेंगे।

(ज) फण्ड में से सदस्य के घर में विशेष रुग्णता, उसके किसी बच्चे के विवाह तथा मकान आदि बनाने के लिये रुपया ऋणरूप में मिल सकेगा।

(झ) किसी कर्मचारी की मृत्यु हो जाने पर उक्त फण्ड का देय धन उसी द्वारा पूर्व निश्चित उत्तराधिकारी को दिया जायेगा।

(ञ) यदि किसी कर्मचारी को किसी विशेष अपराध के कारण सेवा से पृथक् किया गया हो तो रक्षाकोष को ट्रस्ट रोक लेगा और उसके पूर्ण अथवा आंशिक भाग को देने न देने का अधिकार कार्यकारिणी को होगा।

२—निश्चय हुआ कि भीमसिंह शर्मा को विशेष रूप से १ नवम्बर १९५१ से ३) रुपये मासिक मूल वेतन में तरक्की दी जावे।

३—निश्चय हुआ कि कार्यालय कर्मचारियों के महंगाई भत्ते में वृद्धि का विषय अभी स्थगित रखा जाये।

४—निश्चय हुआ कि श्री रुद्रदत्त शर्मा को कुल १३५) रु० वेतन महंगाई भत्ता सहित तब तक दिया जावे जब तक कि उनका मूल वेतन महंगाई भत्ते सहित उपर्युक्त धनराशि तक न पहुंच जाव।

यह भी निश्चय हुआ कि जिन कर्मचारियों का मूल वेतन १००) रु० से अधिक बढ़े तो उनको पिछला वेतन ही तब तक मिलता रहे जब तक कि मूल वेतन तथा महंगाई उक्त धनराशि के बराबर न हो जाय।

५—निश्चय हुआ कि श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, श्री अशोक कौशिक तथा श्री श्रीकृष्ण प्रभाकर की स्थायी नियुक्ति ता० १-११-१९५१ से स्वीकृत की जावे।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ।

सन् १९५०-५१ वर्षीय इतिवृत्त।

माननीय सदस्यवृन्द,

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ के सन् १९५०-५१ वर्षीय आय-व्यय पत्रों की उपस्थिति के साथ साथ तत्कालीन कार्यविवरण पर प्रकाश डालना हम अपना कर्तव्य समझते हैं ताकि संस्था की गति विधि से भली प्रकार परिचित होकर आप सम्पूर्ण स्थति को ठीक दृष्टिकोण से आंक सकें।

(क) आयुर्वेद विश्वविद्यालय।

(कार्यक्रम विषयांक ७ से सम्बन्धित।)

३७ वें निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, में जो फरवरी १९५० को देहली में सम्पन्न हुआ था, विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव स्वीकार हुए थे और उनमें सब से महत्वपूर्ण प्रस्ताव था आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थापना सम्बन्धी। उक्त प्रस्ताव द्वारा निर्मित समिति का अधिवेशन वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य के सभापतित्व में मई १९५० में हुआ। उक्त अधिवेशन में धन-संग्रह, भूमि-प्राप्ति तथा जनमत-निर्माण पर विचार हुआ और निश्चय हुआ कि सर्वप्रथम निःशुल्क भूमि प्राप्त करने का यत्न किया जाय और यदि यह भूमि सरकार अथवा किन्हीं दानवीर महानुभावों से निःशुल्क प्राप्त न हो सके तो विश्वविद्यालय कोष से रुपया व्यय करके भूमि खरीद ली जाय। तदनुसार इस विषय पर देहली सरकार एवं इसकी परामर्शदातृ समिति के सदस्यों से गत जुलाई मास तक शृङ्खलावद्ध पत्र व्यवहार हुआ। अन्त में अपने ता० १२ जुलाई १९५१ के पत्र द्वारा देहली सरकार ने हमें सूचित किया कि यद्यपि उसने मैडिकल बस्ती (Medical Enclave) के लिए भूमि प्राप्त की है तो भी अयुर्वेद महासम्मेलन को दिए जाने के लिए कोई भूमि नहीं। दूसरे शब्दों में इसका यह अर्थ निकला कि भूमि केवल डाक्टरी अर्थात् "एलोपैथी" के प्रसार के लिए है और "आयुर्वेद" के, जिसे वे चिकित्सा विज्ञान मानते हुए प्रतीत नहीं होते, प्रसार के लिए सरकार के पास कोई भूमि नहीं।

इसी बीच में मौलिक प्रस्तावानुसार विश्वविद्यालय की प्रारम्भिक योजनास्वरूप देहली में एक महाविद्यालय स्थापित करने के लिए श्री बनवारी लाल आयुर्वेद विद्यालय ट्रस्ट के अधिकारियों से बात चीत प्रारम्भ हुई। उक्त विद्यालय का विषय स्थायी समिति के सम्मुख अनेक बार उपस्थित हो चुका है। स्थायी समिति द्वारा नियुक्त तदर्थ समिति के अनेक अधिवेशन हुए, अन्त में समिति का यही मत बन सका कि महासम्मेलन को गौणरूप देकर ट्रस्ट से सम्बन्ध स्थापित करने से ध्येयसिद्धि न हो सकेगी तथा यह प्रयास असफल रहा। इसी योजना के अन्तर्गत श्री मुन्नीलाल श्यामसुन्दर ट्रस्ट, श्री लेखराम आयुर्वैदिक कालेज (मेरठ) श्री मूलचन्द खैरायतीराम ट्रस्ट, तथा श्री बुन्देलखण्ड आयुर्वैदिक कालेज (झांसी) के अधिकारियों से पत्र व्यवहार एवं बातचीत हुई परन्तु अभी तक किसी अंतिम निर्णय पर नहीं पहुँच सके।

देहली सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता से निराश होकर विश्वविद्यालय भूमि-प्राप्ति-समिति ने अब यह निश्चय किया है कि निजी रुपये से सर्व प्रथम भूमि खरीदी जावे तथा यथासम्भव शीघ्र स्नातकोत्तर शिक्षण के लिये एक विद्यालय स्थापित कर दिया जाय। एतदर्थ सन् १९५१-५२ के लिये विश्वविद्यालय योजना सम्बन्धी आनु-

मानिक आय-व्यय पत्र पृथक् बनाया है। ऐसा अनुमान किया है कि वर्ष मध्ये विश्वविद्यालय कोष में १,००,००० रु० एकत्रित किया जावे जिसमें से ३०,००० रु० भूमि के लिए ८०,०० रु० स्तानकोत्तर विद्यालय के प्रारम्भिक फर्नीचर, एपेरेटस, उपकरण इत्यादि तथा १८,००० रु० वार्षिक चालू व्यय के लिए एवं ६,००० रु० विश्वविद्यालय कार्यालय के सम्पूर्ण मुद्रण, प्रकाशन, प्रचार तथा यात्रा आदि व्यय के लिए निश्चित किए जावें। हमारा दृढ़ मत है कि भूमि प्राप्ति तथा प्रारम्भिक विद्यालय की स्थापना के साथ ही विश्वविद्यालय निर्माण की ओर पक्का पग उठेगा, और एक बार यह कार्य प्रारम्भ हो गया तो यह रुकेगा नहीं।

विश्वविद्यालय सम्बन्धी उपर्युक्त योजना के संचालन के लिए २१ महानुभावों की एक कार्यवाहक समिति नियुक्त की जावे जिसका संगठन महासम्मेलन-विद्यापीठ के ५ प्रमुख पदाधिकारियों, भारत के ६ प्रमुख वैद्यों तथा वैद्येतर ७ प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा किया जाय। आशा है सदस्यगण इस पर भली प्रकार विचार करेंगे।

(ख) आयुर्वेद विद्यापीठ का शेष कार्य।

हमें यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि विद्यापीठ की परीक्षाएं अधिकाधिक लोकप्रिय हो रहा हैं। जहां १६४६ में १५५२ परीक्षार्थियों ने परीक्षा-प्रवेश के लिए आवेदन पत्र दिए वहां १६५० में २००४ और १६५१ में २११२ छात्रों की ओर से आवेदन पत्र प्राप्त हुए। गत वर्ष से आयुर्वेद भिषक् परीक्षोत्तीर्ण छात्रों के हितार्थ प्रादेशिक भाषाओं में आयुर्वेद विशारद का पाठ्यक्रम लागू करके वैद्यविशारद परीक्षा का आयोजन किया गया है जिसमें सन् १६५० में ११८ तथा १६५१ में १४५ परीक्षार्थियों ने प्रवेश पाया है। अब कार्यकरिणी समिति के ता० १४-१०-५१ के अधिवेशन के निश्चयानुसार एक और नवीन परीक्षा, वैद्याचार्य परीक्षा के नाम से, आगामी १६५२ वर्षीय परीक्षाओं से वैद्यविशारदोत्तीर्ण छात्रों की सुविधा के लिए विशेषतया तथा आयुर्वेदविशारद एवं तत्सम परीक्षोत्तीर्ण छात्रों की सुविधा के लिए साधारणतया आयुर्वेदाचार्य परीक्षा के पाठ्यक्रम से प्रादेशिक भाषाओं में चालू की जा रही है। वर्तमान परिस्थिति में वैद्यविशारद एवं वैद्याचार्य परीक्षाओं के आयोजन से आयुर्वेद पठन-पाठन में सुगमता मिलने के कारण इन परीक्षाओं को और भी प्रोत्साहन मिलेगा ऐसी हमें आशा है।

३७वें निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन से अब तक विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के ६ अधिवेशन हुए हैं। उक्त अधिवेशनों द्वारा निमित समितियों ने अपना २ कार्य पूर्णरुपेण निभाया है। उन्हीं की कार्यतत्परता से नवम्बर १६५० में विद्यापीठ की नवीन नियमावली प्रकाशित हो सकी तथा विभिन्न परीक्षाओं के लिए पाठ्यग्रंथों की कुछ आवश्यक अदला बदली भी सम्भव हुई। इस वर्ष एक और नियमावली संशोधन समिति

नियुक्त की गई है तथा वर्तमान नियमावली विचाराधीन है। आधुनिक परिवर्तित परिस्थिति में एक आदर्श आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम तैयार करने की परमावश्यकता है। साथ ही ऐसे पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्यपुस्तकें और आलोच्यग्रन्थ निर्माण कराने का कार्य भी अब आवश्यक हो गया है। एतदर्थ विद्यापीठ कार्य समिति ने एक उपसमिति का निर्माण किया है परन्तु उसका इतिवृत्त अभी तक तैयार नहीं हो सका।

(कार्य क्रम विषयांक ९ से सम्बन्धित)

आयुर्वेदीय क्षेत्र में विशेष अनुसन्धान तथा गवेषणात्मक पुस्तकों के लेखनादि कार्य को प्रोहत्साहन देने के लिए पी० एच० डी० की समकक्ष आयुर्वेदिक परीक्षा प्रारम्भ करने का विचार एजण्डे में प्रकाशित है। हमारे विचार में विद्यापीठ कोष से बिना कुछ व्यय किये आयुर्वेद अनुसन्धान कार्य को प्रोत्साहित करने का इससे अधिक आकर्षक और सरल अन्य कोई मार्ग नहीं। जहां एक ओर आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वानों एवं लेखकों का इससे समुचित आदर हो सकेगा वहां दूसरी ओर आयुर्वेद में लेखन एवं अनुसन्धान कार्य को विशेष स्फूर्ति मिलेगी। अतएव ऐसी परीक्षा की स्थापना आयुर्वेदोन्नति के एक मात्र हित में है। आशा है सदस्यगण इस पंर समुचित विचार करेंगे।

(कार्यक्रम विषयांक ११ से सम्बन्धित)

विद्यापीठ की सुव्यवस्था एवं प्रगति के लिए यह आवश्यक समझा गया है कि सम्पूर्ण परीक्षा प्रबन्ध सशुल्क हो। एतदर्थ एक उपसमिति के सुझाव इसी इतिवृत के अन्त में प्रकाशित हैं।

विद्यापीठीय उपाधियों की मान्यता

प्रायः सभी वैद्य बन्धुओं को विदित होगा कि शनैः शनैः सभी राज्यों द्वार देशी चिकित्सा बोर्डस् की स्थपना की जा रही है। सभी बोर्डस् के समक्ष विभिन्न संस्थाओं की उपाधियों की मान्यता का विषय स्वतः ही उपस्थित होता है। यद्यपि अभी तक विद्यापीठ की उपाधियों के प्रारम्भिक रजिस्ट्रेशन के लिए प्रत्येक स्थान पर मान्यता मिली है तो भी इस मान्यता को सदैव के लिए स्थिर कराने में कई प्रकार की बाधायें उपस्थित हो रही हैं। यह एक सर्वविदित सत्य है कि विद्यापीठ द्वारा अपनायी गई गुरु-शिष्य परम्परा से पठित जितने सुयोग्य वैद्य निकले हैं उतने आजकल के स्कूलों कालेजों से नहीं निकल रहे। आयुर्वेद को जीवित रखने वाले वास्तव में ये ही वैद्य गण हैं। इस अवस्था में नूतन ढंग के आयुर्वेदिक कालेजों के प्रति पक्षपात तथा विद्यापीठ के प्रति अवहेलना का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। आयुर्वेदिक महासम्मेलन के सदस्यों का विशेषतया तथा सभी वैद्यबन्धुओं का साधारणतया यह कर्तव्य है कि विद्यापीठ के मान की सदैव रक्षा करें ताकि

इसकी उपाधियों की प्रत्येक प्रान्तीय बोर्ड द्वारा रजिस्ट्रेशन के लिए मान्यता स्थिर हो सके। अब यह भी निश्चित ही जानिये कि निकट भविष्य में विद्यापीठ एक निखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय का रूप धारण करने वाला है, इसलिए इसकी उपाधियों की निरन्तर मान्यता बनी रहने में आयुर्वेद एवं वैद्यसमाज का हित निहित है।

(ग) आयुर्वेद महासम्मेलन की कार्य प्रगति

आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय की गतिविधि के विषय में हमें कुछ अधिक नहीं कहना है क्यों कि इससे सदस्यगण परिचित ही हैं। ३७ वें सम्मेलन के अनन्तर महासम्मेलन स्थायी समिति के छः अधिवेशन हुए। उक्त सम्मेलन तथा तदुपरान्त ४ स्थायी समितियों द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों पर क्या क्या कार्य हो सका है उसका क्रमबद्ध उल्लेख मई मास की आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के पृष्ठ २६४, २६५ तथा २६६ पर प्रकाशित किया जा चुका है, सदस्यगण वहीं पढ़ें। अन्य विशेष २ कार्यों पर हमारा निवेदन निम्न प्रकार है:-

१— आयुर्वेद में अनुसन्धान कार्य

आयुर्वेद में अनुसन्धान कार्य किस प्रकार हो इसकी रूपरेखा तैयार करने के लिए १२ विद्वानों की एक समिति बनाई गई थी। पत्रिका में प्रकाशित तत्सम्बन्धी लेखों के अतिरिक्त विभिन्न सदस्यों द्वारा इस विषय पर कुछ स्मृतिपत्र Memorandum एवं रिपोर्टस् तैयार की गई हैं। इन पर विचार विमर्श करके अंतिम रिपोर्ट तैयार करने के लिए समिति का अधिवेशन गत सितम्बर मास में बम्बई में करने का विचार था, परन्तु पहले तो महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य के अस्वस्थ होने के कारण तथा फिर उनके अधिक कार्य ग्रस्त होने के कारण अब इस समिति का अधिवेशन जनवरी-फरवरी १९५२ में बम्बई में करने का निश्चय किया गया है। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त आयुर्वेद के अन्य प्रौढ़ विद्वान् भी इस कार्य में सहयोग दे सकते हैं। तत्सम्बंधी सभी वक्तव्य महासम्मेलन कार्यालय, नई देहली में १५ जनवरी १९५२ तक अवश्य आ जाने चाहियें। इस कार्य के लिए पूर्व स्वीकृत ५००) रु० का समावेश आगामी वर्ष के बजट में भी कर लिया गया है।

२—आयुर्वेद शास्त्र चर्चा परिषद

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के अध्यक्ष वैद्यराज श्री पं० रामनारायण जी शर्मा के अनवरत उद्योग एवं व्यय से शास्त्रचर्चा परिषद् का एक अधिवेशन दिसम्बर १९५० में पटना में हुआ, जिसमें पंच-महाभूत तथा त्रिदोष विज्ञान पर चर्चा हुई। श्री वैद्यराज जी की ओर से दूसरी शास्त्र चर्चा परिषद के लिए भी निमन्त्रण प्राप्त है परन्तु अभी तक परिषद के समय के विषय में कोई निश्चय नहीं हो सका है। श्री पं० रामनारायण जी

आयुर्वेद के सच्चे भक्तों में से एक सिद्ध हुए हैं, आयुर्वेद शास्त्रचर्चा में उनकी इतनी अभिरुचि सर्वथा सराहनीय एवं अनुकरणीय है, वे हमारे अनेकानेक धन्यवाद के पात्र हैं।

३—आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति मैमोरेण्डम

उक्त मैमोरेण्डम तैयार करने के लिए १२ विद्वानों की एक समिति का निर्माण किया गया था परन्तु अधिकतर सदस्यों के पूर्ण सहयोग के न मिलने के कारण यह मैमोरेण्डम अभी तक तैयार नहीं हो सका। इस कार्य के लिए स्वीकृत १५००) रु० आनुमानिक व्यय का आगामी वर्ष के बजट में पुनः समावेश कर लिया गया है, क्यों कि यह कार्य अवश्य करणीय है। वैसे उक्त मैमोरेण्डम का तैयार करना इतना सुगम भी नहीं जितना कि कई महानुभावों को प्रतीत होता होगा। देश की परिवर्तनशील परिस्थितियां भी इस पर प्रभाव डाल रही हैं।

४—आयुर्वेद महासम्मेलन प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना

इस दिशा में कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। महासम्मेलन कार्यालय में बिना किसी प्रकार का व्यय उठाये एक पुस्तक बिक्री विभाग खोल दिया गया है जिससे गत ४ मास में ३३१।≡)॥ रु० की बचत महासम्मेलन को हुई है। इससे जहां महासम्मेलन कार्यालय को एक बचत का साधन मिला है वहां परीक्षार्थियों को सुविधा तथा विद्वानों, लेखकों एवं प्रकाशकों को विशेष प्रोत्साहन मिला है। उक्त महासम्मेलन प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना के लिए स्थायी समिति के आगामी अधिवेशन में इसके उद्देश्यों, नियमों तथा उपनियमों की रूपरेखा उपस्थित की जायगी ताकि इससे मैमोरेण्डम तथा आर्टीकल्ज़ आफ एसोशिएशन Memorandum and Articles of Association तैयार किये जा सकें। गत वर्ष की भांति इस कार्य के लिए आगामी बजट में १०,२००) रु० के व्यय का समावेश किया गया है।

५—संशोधित नियमावली का लागू होना

(कार्यक्रम बिषयांक ४ से सम्बन्धित)

सदस्य महानुभावों को भली प्रकार विदित है कि तदर्थ समिति के ८ मास के अनवरत कार्य एवं अधिकांश सदस्यों के सहयोग से पुरातन नियमावली संशोधित की गई है। परन्तु कुछ सदस्यों की आपत्ति के कारण यह अभी तक लागू नहीं हो सकी। हमारा निश्चित मत है कि स्थायी समिति को नियमावली संशोधन का पूर्णअधिकार है। कानूनी परामर्श भी इस मत की पुष्टि करता है। संशोधित नियमावली को लागू करने का विषय आपके समक्ष उपस्थित है। आपको ध्यान होगा कि नियमावली संशोधन की आवश्यकता वर्षों से प्रतीत हो रही थी क्योंकि परिवर्तित परिस्थिति में ये पुराने नियम आयुर्वेद की

उन्नति एवं महासम्मेलन की प्रगति में सर्वथा बाधकरूप बने हुए हैं। इन संशोधनों को लागू न करना नियम-विरुद्ध ही नहीं अपितु संस्था के लिए नितान्त अहितकर है। हम आशा रखते हैं कि सदस्यगण इस विषय पर गम्भीर विचार करेंगे।

६—प्रचार कार्य

महासम्मेलन कार्यालय ने इस बीच में न्यूनातिन्यून व्यय से अधिकाधिक प्रचार करने का यत्न किया है। तृतीय स्वास्थ्य सचिव सम्मेलन के अवसर पर २९ अगस्त १९५० को समस्त भारतवर्ष के बडे २ नगरों में बड़े समारोह के साथ आयुर्वेद दिवस मनाया गया। इस वर्ष भी इस कार्यालय के निर्देश पर २८ अक्टूबर को धन्वन्तरि त्रयोदशी के शुभावसर पर देश के विभिन्न नगरों और ग्रामों में बड़ी धूम धाम से आयुर्वेद दिवस मनाया गया है। विश्वस्वास्थ्य मंडल (World Health Organisation) की ओर से भी समय समय पर आयुर्वेद के सम्बन्ध में अब पूछ ताछ प्रारम्भ हो गई है। विदेशी औषधियों, बी० सी० जी० आदि, के झूठे प्रचार की रोक थाम के लिए भी इस कार्यालय ने यथा सम्भव यत्न किया। राजकीय एवं केन्द्रीय सरकार को भी अब आयुर्वेद महासम्मेलन के नीति वक्तव्यों की ओर ध्यान देना पड़ रहा है। यह इसी कार्यालय के अंकुश का फल है कि सौराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब, देहली, पटियाला संघ, तथा जम्मू व काश्मीर राज्यों में पृथक् २ आयुर्वैदिक बोर्डस् अथवा डायरेक्टोरेट्स् की स्थापना हुई है। यही नहीं, बहुत से विश्व विद्यालयों में भी आयुर्वेद शिक्षण विभाग खोले जा रहे हैं। परन्तु अपना प्रातिनिधित्व पूर्णतः स्थापित करने के लिए महासम्मेलन को अभी बहुत यत्न एवं अधिक परिश्रम की आवश्यकता है।

आयुर्वेद प्रचारार्थ प्रधानमंत्री के परिभ्रमण विशेष उल्लेखनीय हैं। एतदर्थ उन्होंने मध्यप्रदेश, पटियाला संघ, पंजाब, बिहार, अजमेर तथा उत्तरप्रदेश के विभिन्न स्थानों की यात्रायें कीं तथा वैद्यसम्मेलनों में भाग लिया।

७—बीमा कम्पनियों द्वारा वैद्यों की मान्यता

इस कार्यालय द्वारा भारत में जीवन बीमा का कार्य करने वाली सैकड़ों कम्पनियों को इस ध्येय से पत्र लिखे गए कि बीमा करवाने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं शारीरिक परीक्षण Medical Examination के लिए वैद्यों को भी मान्यता दी जाय। प्रायः सभी कम्पनियों ने इस सुझाव का स्वागत किया है। कुछ कम्पनियों ने यह लिखा है कि हमारे विचारों से सहानुभूति रखते हुए भी केन्द्रीय सरकार के प्रतिरोधक प्रचलित नियमों के कारण वे ऐसा करने में असमर्थ हैं, इस पर भी कई कम्पनियों ने वैद्यों को इस कार्य के लिए नियुक्त भी किया है।

८—औषधनिर्माता संघ की स्थापना

(कार्यक्रम विषयांक ८ से सम्बन्धित)

आयुर्वेद विज्ञान की समुन्नत्यर्थ साधारणतया तथा आयुर्वेद उद्योग व व्यापार की रक्षार्थ विशेषतया महासम्मेलनान्तर्गत "निखिल भारतीय आयुर्वेद औषधनिर्माता संघ" की स्थापना इसी वर्ष में की गई है। यद्यपि उक्त संघ में अभी तक केवल १४ रसायन शालायें सम्मिलित हुई हैं तो भी इसका भविष्य उज्वल प्रतीत होता है। इन्हीं १४ सदस्यों में महासम्मेलन की ओर से ७ और सदस्य निर्वाचित करके, कुल २१ सदस्यों की, एक कार्य समिति इस कार्य के प्रारम्भिक संचालन के लिए नियुक्त की जाय और उक्त संघ की नियमावली निर्माण का कार्य भी इसी समिति को सौंप दिया जाय, ऐसा हमारा सुझाव है। इस संघ के संगठन का श्रेय बहुत सीमा तक कविराज श्री आशुतोष मजुमदार को है।

९—महासम्मेलन कार्यालय में आयुर्वेदांक एवं सूचना विभाग की स्थापना

आयुर्वेद, वैद्य समाज एवं आयुर्वैदिक संस्थाओं से सम्बन्धित सभी प्रकार के आंकड़े एवं सूचनायें एकत्रित करके तथा उन्हें संकलित करके समय समय पर प्रकाशित करने के ध्येय से महासम्मेलन कार्यालय में एक आयुर्वेदांक एवं सूचना विभाग स्थापित किया गया है। इस सम्बन्ध में सभी राज्यों की सरकारों तथा महासम्मेलन की सम्बद्ध संस्थाओं द्वारा भारतवर्ष की सभी वैद्य सभाओं को पत्र भेजे गए हैं। खेद से लिखना पडता है कि जहां अधिकतर प्रदेश सरकारें तो हमें सहयोग दे रही हैं और हमारे पत्रों का उत्तर बराबर मिल रहा है वहां हमारी शाखायें नितान्त आलस्य का परिचय दे रही हैं। इस कार्यालय की भुजायें प्रान्तीय सम्मेलन एवं जिला वैद्य सभायें ही हैं, यदि उनकी ओर से समय पर ठीक सहयोग नहीं मिलेगा तो किसी कार्य में भी हमारी सफलता सम्भव नहीं। अतएव वैद्य सम्मेलन एवं जिला व नगर सभाओं को चाहिये कि महासम्मेलन कार्यालय की पूछताछ की ओर यथासमय ठीक ध्यान देकर अपने आयुर्वेद प्रेम का परिचय देती रहें।

१०—राज्यों में वैद्य संगठन

भारतवर्ष इस समय २५ शासकीय इकाईयों में विभाजित है। ठीक संगठन के लिए सभी इकाईयों में वैद्य सम्मेलन विद्यमान होने चाहिए। हमने इस दिशा में यत्न किया है तथा आसाम, उड़ीसा, अजमेर-मेरवाड़ा, सौराष्ट्र, कच्छ, हिमाचल प्रदेश, तथा जम्मू-काश्मीर में तत् तत् प्रदेशीय वैद्य सम्मेलनों का संगठन कराया है और उन्हें महासम्मेलन की प्रान्तीय शाखारूप सम्बद्ध किया है। पुरातन वैद्य सम्मेलनों का कार्य साधारणतः ठीक चल रहा है किन्तु उनमें अधिक जीवन एवं स्फूर्ति का संचार होना चाहिए ताकि आयुर्वेद विरोधियों का सफलता से सामना किया जा सके। साथ ही खेद से लिखना पड़ता है कि महाकौशल, उत्तर

प्रदेश तथा बिहार के वैद्य बन्धुओं में जो निरन्तर मतभेद चल रहा है, सद्भावना के अभाव में, उसका शमन कराने में हम भी असमर्थ रहे हैं जिसे आयुर्वेद एवं वैद्यसमाज का हम दुर्भाग्य समझते हैं। उक्त प्रदेशों के वैद्य बन्धुओं को चाहिए कि पारस्परिक शान्ति एवं सहयोग स्थापित करने के लिए तन मन से यत्न करें।

११— ३८ वां निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

उक्त सम्मेलन के लिए उत्तरप्रदेशीय वैद्य सम्मेलन की ओर से जून १९५० में निमन्त्रण प्राप्त हुआ था, जो स्थायी समिति के जुलाई १९५० के अधिवेशन में स्वीकार हुआ। परन्तु अभी तक यह निश्चय नहीं हो सका कि उत्तर प्रदेश के किस नगर में महासम्मेलन किया जाय, यद्यपि उत्तर प्रदेश की गाजियाबाद तहसील वैद्य सभा ने गत अगस्त मास में महासम्मेलन के द्वि-दिवस व्यापी विशेषाधिवेशन का भार सहन किया है, जिसके लिए हम कृतज्ञ हैं। इस अवस्था में उत्तरप्रदेश का निमन्त्रण एक प्रकार असमंजस में पड़ा हुआ है। हमें खेद से कहना पड़ता है कि उत्तरप्रदेश के वैद्यों के पारस्परिक मतभेद एवं विग्रह के कारण अब इस निमन्त्रणपत्र को स्थगित ही समझना चाहिये।

उपर्युक्त परिस्थिति में कार्यालय ने अन्यत्र स्थानों से निमंत्रण प्राप्त करने का यत्न किया है। कार्यालय की ओर से सभी प्रान्तीय शाखाओं को प्रार्थना पत्र भेजे गए कि वे महासम्मेलन को आमंत्रित करें किन्तु कहीं से सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ।

सम्बद्ध संस्थाओं से कोई आश्वासन न मिलने पर प्रांतों के कुछ प्रमुख वैद्य बंधुओं को पत्र लिखे गए। सर्व प्रथम स्वर्गीय श्री डा० परांजपे के संकेत पर मध्य प्रदेश तथा बरार के प्रमुख वैद्य बंधुओं को पत्र लिखे, परन्तु इससे भी कुछ फल न निकला। तत्पश्चात् सौराष्ट्र, जयपुर, उत्तरप्रदेश, अजमेर-मेरवाड़ा तथा कर्नाटक के कुछ प्रमुख सज्जनों को पत्र लिखे परन्तु अभी तक महासम्मेलन को आमंत्रित करने के लिए कोई भी वैद्य बंधु उद्यत नहीं हो सके।

इस प्रकार न तो कोई प्रादेशिक वैद्य सम्मेलन और न कोई प्रमुख वैद्य बन्धु इस कार्य के लिए तत्पर है। सन् १९५१ के १० मास तो बीत ही चुके हैं परंतु अभी तक ३८ वें सम्मेलन के आयोजन की कोई किरण दिखाई नहीं पड़ रही है। इसी स्थिति पर सदस्य महानुभावों के समक्ष विचार उपस्थित है।

१२-आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

पत्रिका को उत्तरोत्तर अच्छा एवं आदर्श बनाने का प्रयत्न जारी है। इसके लिए उच्च कोटि के वैज्ञानिक लेखों की कुछ कमी रहती है जिसकी पूर्ति करना विद्वान सदस्यगण का ही कार्य है। पत्रिका के लिए अधिकाधिक विज्ञापन देने और दिलाने का भार भी

सदस्य महानुभावों पर ही है। यह वैद्यबन्धुओं की सर्वथा निजी पत्रिका है, इसकी सहायता करना आयुर्वेद की सेवा है जिससे किसी को भी विमुख नहीं होना चाहिए।

पत्रिका प्रकाशन में विशेष प्रसार हुआ है और १,००० के स्थान पर अब यह १,६०० छपने लगी है। क्योंकि बहुत से सदस्यों में इसे नियमानुसार निःशुल्क वितरित करना पड़ता है इस लिए व्यापार की दृष्टि से इसमें घाटा है और केवल प्रचारार्थ इसे चलाना पड़ रहा है। कागज़ की महार्घता एवं छपाई की मंहगाई के कारण इस पर महासम्मेलन की बहुधांश आय व्यय हो रही है परन्तु आयुर्वेद की रक्षार्थ इसका प्रकाशन अनिवार्य है।

१३--जरनल आफ़ आयुर्वेद

अंग्रेज़ी भाषा में यह जरनल तीन वर्ष से आयुर्वेद की भली प्रकार सेवा कर रहा है। गत वर्ष इसे महासम्मेलन के आंशिक तत्वावधान में लेने का निश्चय किया गया था। इस जरनल का वार्षिक चन्दा ७॥) रु० है परन्तु विद्यार्थियों के लिए ५) रु० है। महासम्मेलन के अधीन अभी तक इसके ६६ ग्राहक बने हैं। यदि २५० के लगभग और ग्राहक बन सकें तो महासम्मेलन द्वारा इस पर किए जा रहे व्यय की पूर्ति हो सकती है तथा इसकी २०० के लगभग प्रतियां देश देशान्तर में आयुर्वेद प्रचारार्थ निःशुल्क वितरित की जा सकती हैं। इस लिए सदस्य महानुभावों को चाहिए कि उक्त जरनल के स्वयं ग्राहक बनें तथा अन्य आयुर्वेद-प्रेमियों को इसका ग्राहक बनाएं।

वैसे जरनल से कार्यालय को आयुर्वेद प्रचार एवं संस्था का मान बढ़ाने में बड़ी सहायता मिली है। दुर्भाग्यवश देश में अभी तक अंग्रेज़ी भाषा की प्रसिद्धि है। अंग्रेज़ी-प्रिय अपनी निजी सरकार के पास तथा विदेशों में आयुर्वेद के सफल प्रचारार्थ एवं इसके वास्तविक स्वरूप को पहुंचाने के लिए अंग्रेज़ी भाषा ही अभी तक माध्यम है। एतदर्थ हमने जरनल आफ आयुर्वेद का पूरा उपयोग किया है। उच्च सरकारी अधिकारियों, केन्द्रीय संसद के प्रमुख सदस्यों, भारत के सभी स्वास्थ्य सचिवों तथा अन्य चुने हुए प्रतिष्ठित नागरिकों में हमने यह जरनल निःशुल्क वितरित किया है जिससे प्रचार कार्य में विशेष सुविधा मिली है तथा सरकार पर भी प्रभाव पड़ा है। यही नहीं, विश्व स्वास्थ्य मण्डल (World Health Organisation) जैसी संस्थाओं से भी इसी जरनल द्वारा हमारा सम्पर्क स्थापित हुआ है। इस प्रकार जरनल को अपने तत्वावधान में रखने से महासम्मेलन की प्रतिष्ठा और भी बढ़ेगी तथा आयुर्वेद प्रचार अधिकाधिक हो सकेगा।

वैसे हमें आशा है कि आगामी वर्ष में जरनल की ग्राहक-संख्या अवश्य बढ़ेगी। सदस्य महानुभावों के लाभ के लिए जरनल की १२ मासिक प्रतियों की फ़ाईल आधे दाम पर इस कार्यालय से मिल सकती हैं। अंग्रेज़ी भाषा में [illegible] प्रकार का आयुर्वेदिक साहित्य

इस जरनलमें आपको मिलेगा, आपके पुस्तकालय में यह जरनल अवश्य विद्यमान होना चाहिए।

१४-महासम्मेलन कार्यालय

आपका कार्यालय अब शुद्ध, स्वच्छ एवं शान्त वातावरण में नई दिल्ली के कनाट सर्कस में विद्यमान है। यद्यपि कार्यालय के लिए अब तक महासम्मेलन को अपना निजी भवन बना लेना चाहिए था तो भी यह नहीं बना। हम आशा रखते हैं कि निकट भविष्य में ही महासम्मेलन कार्यालय को विश्वविद्यालय भवन में स्थान मिलेगा।

१५—कार्य विस्तार

महासम्मेलन-विद्यापीठ कार्यालय में गत दो वर्षों में कितना काम बढ़ा है इसका अनुमान बाहर जाने वाली पत्र पत्रिकाओं की निम्नांकित संख्या से लग सकेगा :—

सन् १९४९—५०:—पत्र संख्या २२६६९
सन् १९५०—५१:—पत्र संख्या ३१३४१

महासम्मेलन-विद्यापीठ स्थायी कर्मचारियों की संख्या अब ६ से ९ हो गई है। कर्मचारियों की रक्षार्थ एवं कार्यकुशलता के ध्येय से कर्मचारी रक्षाकोष भी स्थापित किया गया है जिसके नियमों की रूपरेखा आप इसी पत्रिका के पृष्ठ ३-४ पर देख सकेंगे। हम आशा रखते हैं कि कर्मचारी सेवा एवं व्यवहार सम्बन्धी पक्के नियमों, उपनियमों का निर्माण भी यथासम्भव शीघ्र किया जा सकेगा। इस प्रकार आपका कार्य सभी दिशाओं में उन्नति कर रहा है।

१६—संक्षिप्त में आर्थिक स्थिति

३१ अक्टूबर १९५१ को महासम्मेलन-विद्यापीठ की सम्पूर्ण सम्पत्ति १,३३,०७५ रु० १५ आने १ पाई की है जिसका ब्योरा निम्न प्रकार है :—

महासम्मेलनः—

१—पंजाब नेशनल बैंक (फिक्षड डिपाजिट)	१०,९५८-३-०
२—नेशनल सेविंग्स सर्टीफिकेट्स्	५८,११०-०-०
३—पोस्टल कैश सर्टीफिकेट्स्	१०,०००-०-०
४—नाथ बैंक लिमिटेड (दिवालिया)	२,००२-०-०
५—नाथ बैंक लिमिटेड (दिवालिया)	८००-१५-३
६—सैण्ट्रल बैंक आफ इण्डिया (बचत खाता)	३०७-१०-९
७—यूनाईटिड कमर्शल बैंक (चालू खाता)	२,३०३-१३-३
८—नकद रोकड़	१४६-६-३
	८४,६२९-०-६

९—फर्नीचर	१,१२१-०.०	
१०—पुस्तकें	३७२-१४-०	
११—प्राप्य व्याज	६,९०८-०-०	
१२—विभिन्न ऋणि	१,४४३-५-३	
		९,८४५-३-३
		९४,४७४-३-९

विद्यापीठः—

१—सैण्ट्रल बैंक आफ इण्डिया (बचत खाता)	८,४८०-४-३	
२—पंजाब नेशनल बैंक (बचत खाता)	३,७१३-६-१०	
३—पंजाब नेशनल बैंक (चालू खाता)	७६५-७-०	
४—रोकड़ नकद	२२२-३-०	
५—फर्नीचर	२,६६७-१०-३	
६—पुस्तकें	१,७३३-४-९	
		१७,५८२-४-१

श्री शंकरदाजी शास्त्री पदे स्मारक कोषः—

१—ट्रेज़री सेविंग्स सर्टिफिकेट्स्	१०,०००-०-०	
२—युनाईटिड कमर्शल बैंक सर्टिफिकेट्स	४,९९५-०-०	
३—पंजाब नेशनल बैंक (बचत खाता)	५९७-६-६	
		१५,५९२-६-६

विश्वविद्यालय कोषः—

१—पंजाब नेशनल बैंक (बचत खाता)	५,४२७-०-९
	३८६०१-११-४

संतुलन पत्रों से आपको विदित होगा कि नाथ बैंक, जो कि दिवालिया हो गया है, में जमा करवाए हुए २८०२-१५-३ के अतिरिक्त १,३०,२७२ रुपये १५ आने १० पाई की शेष सम्पत्ति सुरक्षित स्थानों पर रखी गई है।

१७—वार्षिक आय-व्यय

जहां तक वार्षिक आय-व्यय का प्रश्न है, यद्यपि प्रचारादि कार्य तथा तीव्र मंहगाई के कारण गत तथा इस वर्ष में व्यय विवशतया बहुत करना पड़ा है तो भी पिछले वर्षों के घाटे के स्थान में बचत होनी प्रारम्भ हो गई है और यह वर्ष प्रति वर्ष बढ़ रही है जैसा कि घाटे तथा बचत के निम्नांकित अंकों से आप को विदित होगा :—

१९४८	१४०६-१५-०	घाटा
१९४९	३०७-२-६	बचत
१९५०	४७०८-९-०	बचत
१९५१	९८४१-२-९	बचत

यह अंक अपने मुंह स्वयं बोल रहे हैं, इन पर हम कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझते।

इन शब्दों के साथ हम आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ का सन् १९५०-५१ वर्षीय तिवृत्त समाप्त करते हैं। जो कुछ सेवा हम कर सके हैं वह आपके ही अमूल्य सहयोग से सम्भव हुई है। आशा है यह सहयोग एवं सद्भावना हमें प्रचुर मात्रा में मिलती रहेगी ताकि आपकी अधिकाधिक सेवा करने में हम समर्थ हो सकें।

विनीत

गुरुदत्त

प्रधान मन्त्री

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय,
०/८, कनॉट सरकस, नई दिल्ली—१
ता० २३ नवम्बर, १९५१,

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ

विद्यापीठ केन्द्र स्थापना तथा सशुल्क परीक्षण व्यवस्था समितियों के ता० ३-११-५१ के अधिवेशन का कार्य विवरण

उपस्थिति :—सर्व श्री नानक चन्द्र, शिवनाथ शर्मा, वैद्य श्री जगदीश प्रसाद, आशुतोश मजुमदार, गुरुदत्त, रामगोपाल शास्त्री।

नानक चन्द्र जी की अध्यक्षता में कार्य प्रारम्भ हुआ।

१—निश्चय हुआ कि पुरातन केन्द्र पूर्ववत् ही रहें। किन्तु सब आवेदन पत्रों के आ जाने पर यदि किसी केन्द्र में १५ से कम छात्र बैठने वाले हों, और उस केन्द्र के १०० मील के भीतर और केन्द्र विद्यमान हो, तो उस केन्द्र को बन्द कर दिया जाए।

२—नूतन केन्द्रों की स्थापना के विषय पर निश्चय हुआ कि जिन स्थानों पर आयुर्वेद विद्यालय चल रहे हों उन्हीं स्थानों पर केन्द्र खोले जायं। तदनुसार जयपुर तथा धमदा (मध्यप्रदेश) में केन्द्र खोलने का निश्चय हुआ।

३—सशुल्क परीक्षण व्यवस्था के विषय पर निश्चय हुआ है कि तदर्थ ७००० सात हजार रुपये सन् १९५२-५३ वर्षीय आनुमानिक व्यय में स्वीकृत कराया जाए।

४—यह भी निश्चय हुआ कि सशुल्क परीक्षण व्यवस्था सन् १९५३ से प्रारम्भ की जाय तथा उस वर्ष से यदि किसी केन्द्र में ५० से कम छात्र होंगे तो वह केन्द्र बन्द कर दिया जाय, किन्तु यदि उस केन्द्र के १०० मील के भीतर कोई दूसरा केन्द्र विद्यमान न हो तो उस स्थान पर छात्रों की किसी भी संख्या पर केन्द्र रखा जाय।

रामगोपाल शास्त्री

विद्यापीठ-मंत्री

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, नई दिल्ली

३१ अक्टूबर १९५१ को समाप्त होने वाले वर्ष का आय–व्यय पत्र

महासम्मेलन कार्यालयः—	व्यय	
वेतन	१,३१३ १ ०	
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	३६४ ७ ०	
डाक तथा तार	४६६ २ ३	
यातायात	१० १२ ०	
प्रचार	२७५ ० ६	
यात्रा	४९२ १२ ०	
आडिट फ़ीस	२० ० ०	
बैंक कमीशन	१५ १४ ०	
फुटकर व्यय	२१३ ३ ३	
उपकरण पर घटती	७४ ८ ०	
कानूनी व्यय	५५ ० ०	
औषध निर्माता संघ पर व्यय	१० ८ ०	३,३११ ४ ०
जरनल आफ आयुर्वेद	२५०० ० ०	
डाक व्यय	६ ७ ०	२,५०६ ७ ०
पत्रिका मुद्रण तथा लेखन सामग्री	७३०८ ९ ०	
,, डाक व्यय	४१४ १ ३	
,, वेतन	१७०० १२ ०	
,, बैंक कमीशन व्यय	७ ८ ०	
,, यातायात	७ २ ०	
,, फुटकर	१७४ ० ६	९,६१२ ० ९
आय की व्यय से अधिकता जो सन्तुलन पत्र में गई		२,६०३ १ ०

महासम्मेलन कार्यालयः—	आय	
आश्रयदाता सदस्यता शुल्क	२०० ० ०	
आजीवन सदस्यता शुल्क	८,७५२ ० ०	
मान्य सदस्यता शुल्क	३२५० ० ०	
प्रान्ती सम्बद्धता शुल्क	१८० ० ०	
संस्था सम्बद्धता शुल्क	१४० ० ०	
प्रान्तीय सदस्यता शुल्क	३०६ ० ०	
नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन विशेषाधिवेशन का प्रतिनिधि शुल्क	१८७ ८ ०	
ब्याज	२,३१८ १३ ०	
फुटकर आय	१७६ १३ ९	१५,५११ २ ९
जरनल आफ़ आयुर्वेद—		
ग्राहक शुल्क	२३१ १४ ०	
जनरल की बिक्री	१ ० ०	२३२ १४ ०
आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका—		
विज्ञापन शुल्क	२,२४८ १४ ०	
ग्राहक शुल्क तथा पत्रिका की बिक्री	३९ १४ ०	२,२८८ १२ ०

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, नई दिल्ली

३१ अक्टूबर १९५१ को समाप्त होने वाले वर्ष का सन्तुलन-पत्र

देय	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
स्थिर कोष—						
गत वर्ष का ···	२२,२४७	१३	४			
कम किया स्वागतसमिति ३० वां आयुर्वेद महासम्मेलन लखनऊ से प्राप्य धन जो बट्टे खाते में डाल दिया गया	६१	०	०			
	२२,१८६	१३	४			
कम किया नियमावली का मूल्य जो कि निर्मूल्य दी जा रही है	४३१	०	०			
	२१,७५५	१३	४			
आय की व्यय से अधिकता को जमा किया	२,६०३	१	०	२४,३५८	१४	४
१९५२ वर्षीय सदस्यता शुल्क				६५	०	०
देय बिल				७३३	१२	९
उचन्त खाता				२	८	०
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ				६८,९३९	०	८
आयुर्वेद औषध निर्माता संघ				३७५	०	०

सम्पत्ति	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
उपकरण गत वर्ष का	७४५	८	०			
टाईपराईटर का मूल्य	४५०	०	०			
	१,१९५	८	०			
उपकरण पर घटती	७४	८	०	१,१२१	०	०
पुस्तकों का स्टाक—						
पुस्तकालय	२०४	१४	०			
विक्रीय पुस्तकें	१६८	०	०	३७२	१४	०
पुस्तक ऋण—						
विभिन्न ऋणी				१,४४३	५	३
प्राप्य ब्याज				६,९०८	०	०
निधि समिति कोष—						
पंजाब नेशनल बैंक (फिक्स्ड डिपाजिट)	१०,९५८	३	०			
नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट्स्	५८,११०	०	०			
पोस्टल कैश सर्टिफिकेट्स्	१०,०००	०	०			
नाथ बैंक लि० (दिवालिया)	२,००२	०	०	८१,०७०	३	०
सैण्ट्रल बैंक आफ़ इण्डिया लि०	३०७	१०	९			
नाथ बैंक लि० (दिवालिया)	८००	१५	३			

		यूनाइटिड कमर्शल बैंक लि०	२,३०३ १३ ३	
		नकद रोकड़	१४६ ६ ३	३,५५८ १३ ६
कुल योग	६४,४७४ ३ ६	कुल योग		६४,४७४ ३ ६

मनमोहन गुप्त	तिलकराम शर्मा	शिवनाथ शर्मा	गुरुदत्त	यादवजी त्रिकमजी आचार्य
अकाउन्टेन्ट	कार्यालय मंत्री	कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	अध्यक्ष

ऑडीटर का प्रमाणपत्र

हमने नि० भा० आयुर्वेद-महासम्मेलन के ता० ३१ अक्टूबर १९५१ को समाप्त होनेवाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन-पत्र तथा उक्त तारीख तक के साथ लगे हुए आय-व्यय-पत्र को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों के सहित जांचा और समस्त जानकारी तथा सूचनायें प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय-पत्र ठीक प्रकार बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र, हमें दी गई सूचनाओं एवं जानकारी के आधार पर और महासम्मेलन की पुस्तकों के अनुसार नि० भा० आ० महासम्मेलन की स्थिति का सच्चा और सही रिचायक है।

नई सड़क, देहली।
ता० ७-११-५१

जे० सी० माथुर ऐण्ड कम्पनी
चार्टर्ड अकाउन्टेन्टस्

आडीटर की मुद्रा

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली

३१ अक्टूबर १९५१ को समाप्त होने वाले वर्ष का सन्तुलन-पत्र

देय	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
स्थिर कोष—						
गत वर्ष का	७७,०१२	१०	३			
कम किया (रसीद संख्या ३९७८ पर प्राप्त धनराशी जो वापस की गई)	९	०	०			
	७७,००३	१०	३			
आय की व्यय से अधिकता को जमा किया	७,२३८	१	६	८४,२४१	१२	०
विभिन्न कोष—						
पुरस्कार खाता	१५२	१०	०			
विश्वविद्यालय कोष	६,७६९	१२	६			
श्री शंकर दाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष	१६,००५	६	६	२२,९२७	१३	३
देय बिल खाता				३०८	०	३
१९५२ वर्षीय परीक्षा शुल्क				२५	०	०
पुस्तक विभाग से आय				३३१	७	६
दातव्य धनराशि (पुस्तक विभाग)				१,११४	८	३
कर्मचारी रक्षाकोष				६९६	४	०

सम्पत्ति	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
उपकरण गत वर्ष का	२,१४६	०	०			
नवीन उपकरण का मूल्य	७३५	१०	३			
	२,८८१	१०	३			
उपकरण पर घटती	२१४	०	०	२,६६७	१०	३
पुस्तकों का स्टाक (विद्यापीठ प्रकाशन)				१,७३३	४	९
पुस्तक ऋणी—						
नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन	६८,९३९	०	८			
शंकर दाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष व्यय	८२१	१२	९			
विश्वविद्यालय कोष व्यय	१८२	१	०	६९,९४२	१४	५
विभिन्न ऋणी				१२५	३	३
श्री शंकर दाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष :—						
ट्रैज़री सेविंग्स सर्टिफिकेट्स्	१००००	०	०			
यूनाइटिड कमर्शल बैंक लि० कैश सर्टिफिकेट्स्	४,९९५	०	०	१४,९९५	०	०
उचन्त खाता				३५	८	०
पुस्तक विभाग में पुस्तकों का स्टाक				९३९	८	३

		बैंकों में जमा:—						
		पंजाब नेशनल बैंक लि०:-						
		श्री शंकर दाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष	५६७	६	६			
		विश्वविद्यालय कोष	५,४२७	०	६			
		चालू खाता	७६५	७	०			
		बचत खाता	३,७१३	६	१०			
		सैण्ट्रल बैंक आफ इण्डिया लि०:-						
		बचत खाता	८,४८०	४	३	१८,९८३	९	४
		नकद रोकड़				२२२	३	०
कुल योग	१,०६,६४४ १३ ३	कुल योग				१,०६,६४४	१३	३

मनमोहन गुप्त
अकाउन्टेंट

तिलकराम शर्मा
कार्यालय मंत्री

शिवनाथ शर्मा
कोषाध्यक्ष

गुरुदत्त
प्रधान मंत्री

मणिराम शर्मा
अध्यक्ष

आडिटर का प्रमाणपत्र

हमने नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के ता० ३१ अक्तूबर १९५१ को समाप्त होने वाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन पत्र तथा उक्त तारीख तक के साथ लगे हुए आय-व्यय-पत्र को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों सहित जांचा और समस्त आवश्यक जानकारी तथा सूचनायें प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय-पत्र ठीक बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र हमें प्राप्त हुई सूचनाओं एवं जानकारी के आधार पर तथा विद्यापीठ की पुस्तकों के अनुसार नि० भा० आ० विद्यापीठ की स्थिति का सच्चा और सही परिचायक है।

नई सड़क, देहली
तारीख ७-११-५१

जे० सी० माथुर ऐण्ड कम्पनी
चारटर्ड अकाउंटेन्टस

(आडीटर की मुद्रा)

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली

३१ अक्टूबर १९५१ को समाप्त होने वाले वर्ष का आय-व्यय पत्र

व्यय	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
वेतन खाता	११,१३२	१	०			
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	१,७२०	८	६			
डाक तथा तार	१,१६०	३	०			
केन्द्र तथा परीक्षण	१,०८४	४	३			
रेलवे पार्सल	११७	८	०			
बिजली	५६	०	०			
यातायात	१०३	१	६			
यात्रा	२८	१०	०			
बैंक कमीशन	६	०	०			
विविध व्यय	१११	१०	३			
आडिट फीस	८०	०	०			
उपकरण पर घटती	२१४	०	०			
कर्मचारी रक्षाकोष	३४८	२	०	१६,१६२	०	६
आय की व्यय से अधिकता जो सन्तुलन पत्र में ले जायी गई……				७,२३८	१	६
कुल योग				२३,४००	२	३

आय	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
आचार्य शुल्क	५,०८५	०	०			
विशारद शुल्क	६,८२०	०	०			
वैद्य विशारद शुल्क	१,१५०	०	०			
भिषक् शुल्क	७,०३८	०	०			
विलम्ब शुल्क	१,११४	०	०			
गुणांक शुल्क	२३०	०	०			
पुनः संशोधन शुल्क	५०४	०	०			
उपप्रमाणपत्र तथा प्रमाणपत्र प्रतिलिपि शुल्क	२२८	८	०			
सम्बद्ध संस्था शुल्क	१८५	०	०			
ब्याज	१०६	१३	०			
विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर लाभ	४१६	१५	३			
फुटकर आय	११८	१४	०	२३,४००	२	३
कुल योग				२३,४००	२	३

मनमोहनगुप्त अकाउन्टेन्ट	तिलकराम शर्मा कार्यालय मन्त्री	रामगोपाल शास्त्री विद्यापीठ मन्त्री	जांचा और ठीक पाया जे० सी० माथुर ऐण्ड कम्पनी चारटर्ड अकाउन्टेन्टस् (आडीटर की मुद्रा)	शिवनाथ शर्मा कोषाध्यक्ष	गुरुदत्त प्रधान मन्त्री	मणिराम शर्मा अध्यक्ष

(क) निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, नई दिल्ली

सन् १६५१-५२ वर्षीय प्रस्तावित आनुमानिक आय-व्यय पत्र

(Proposed Budget for the year 1951-52)

आय		व्यय	
संरक्षक सदस्यता शुल्क	२००) रु०	वेतन	२१५०) रु०
आश्रयदाता सदस्यता शुल्क	४००) रु०	मुद्रण तथा स्टेशनरी	५००) रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क	८५००) रु०	डाक तथा तार	६००) रु०
मान्य सदस्यता शुल्क	४०००) रु०	यातायात	१००) रु०
प्रतिनिधि सदस्यता शुल्क	३५०) रु०	प्रचार	१०००) रु०
प्रान्तीय सम्बद्धता शुल्क	३००) रु०	यात्रा	१०००) रु०
संस्था सम्बद्धता शुल्क	१५०) रु०	कर्मचारी प्रावीडेंट फण्ड	२१०) रु०
सम्मेलनाधिवेशन प्रतिनिधि शुल्क	३००) रु०	आडिट व्यय	२५) रु०
व्याज	२४००) रु०	बैंक व्यय	२०) रु०
विज्ञापन	२५००) रु०	आयुर्वेदानुसंधान समिति	५००) रु०
मिश्रित	१००) रु०	आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति मैमोरेंडम	१५००) रु०
जरनल आफ़ आयुर्वेद की बिक्री से प्राप्य	३०००) रु०	फरनीचर पर घटती	१५०) रु०
		मिश्रित	१४५) रु०
		योग	७,६००) रु०
		पत्रिका कार्यालयः-	
		मुद्रण तथा स्टेशनरी	७५००) रु०
		डाक	५००) रु०
		वेतन	२०००) रु०
		यातायात	२५) रु०
		मिश्रित	१७५) रु०
		योग	१०,२००) रु०
		जरनल आफ़ आयुर्वेद की मासिक ५०० प्रतियों का मूल्य	२०८४) रु०
		डाक व्यय	१००) रु०
		योग	२१८४) रु०
		बचत ……	१६१६) रु०
योग	२२,२००) रु०	सम्पूर्ण योग	२२,२००) रु०

ख) आयुर्वेद महासम्मेलन प्रकाशन लिमिटेड की स्थापना में महासम्मेलन का भाग ………… १०,२००) रु०

ओङ्कार प्रसाद शर्मा	शिवनाथ शर्मा	गुरुदत्त	यादवजी त्रिकमजी आचार्य
उपाध्यक्ष	कोषाध्यक्ष	प्रधानमन्त्री	अध्यक्ष

(ग) निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ नई दिल्ली

सन् १६५१-५२ वर्षीय प्रस्तावित आनुमानिक आय-व्यय पत्र
(Proposed Budget for the year 1951-52)

आय		व्यय	
आयुर्वेदाचार्य परीक्षा शुल्क	५२५०) रु०	वेतन	१३५००) रु०
वैद्याचार्य परीक्षा शुल्क	४५०) रु०	मुद्रण तथा लेखन सामग्री	२०००) रु०
आयुर्वेद विशारद परीक्षा शुल्क	७०००) रु०	डाक तथा तार व्यय	१३००) रु०
वैद्य विशारद परीक्षा शुल्क	१५००) रु०	केन्द्र तथा परीक्षा व्यय	१२००) रु०
आयुर्वेद भिषक् परीक्षा शुल्क	७५००) रु०	रेलवे पारसल व्यय	१५०) रु०
विलम्ब शुल्क	१२००) रु०	किराया कार्यालय	………
गुणांक शुल्क	२५०) रु०	बिजली व्यय	………
पुनः संशोधन शुल्क	५००) रु०	यातायात	१५०) रु०
उपप्रमाणपत्र तथा प्रमाणपत्र		यात्रा व्यय	१०००) रु०
प्रतिलिपि शुल्क	३००) रु०	प्रावीडेंट फण्ड	६००) रु०
सम्बद्ध संस्था शुल्क	२००) रु०	आडिट व्यय	१००) रु०
व्याज	५०) रु०	बैंक व्यय	२०) रु०
फुटकर आय	२००) रु०	फरनीचर पर घटती	२५०) रु०
		मिश्रित व्यय	२३०) रु०
		व्यय से आय की अधिकता	३६००) रु०
	२४,४००) रु०		२४,४००) रु०

(घ) निखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय योजना

सन् १६५१-५२ वर्षीय प्रस्तावित आनुमानिक आय-व्यय पत्र
(Proposed Budget for the year 1951-52)

आय		व्यय	
ता० ३१-१०-५१ तक प्राप्त		भूमि खरीदने के लिये	३०,०००) रु०
धनराशि	६,७६६-१२-६	स्नातकोत्तर विद्यालय चालू	
वर्ष मध्ये एकत्रित की		करने के लिये प्रारम्भिक व्यय	८०००) रु०
जाने वाली धनराशि	६३,२३०-३-३	स्नातकोत्तर विद्यालय का	
		वार्षिक व्यय	१८,०००) रु०
		विश्वविद्यल योजना पर	
		वार्षिक व्यय	६०००) रु०
		शेष धनराशि जो अगले वर्ष	
		में ले जाई जायगी	३८०००) रु०
	१,००,०००-०-०		१,००,०००) रु०

रामगोपाल शास्त्री	गुरुदत्त	शिवनाथ शर्मा	श्री उपेन्द्रनाथ दास	मणिराम शर्मा
विद्यापीठमन्त्री	प्रधानमन्त्री	कोषाध्यक्ष	उपाध्यक्ष विद्यापीठ	अध्यक्ष विद्यापीठ

पुस्तकालय
G 38429
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

कार्यकारिणी एवं स्थायी समिति तथा विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के सम्मिलिताधिवेशन का कार्य-विवरण

स्थान—–आर्यसमाज मन्दिर, बाजार सीताराम, देहली ।

समय—–ता० ६ दिसम्बर १६५१, दिन रविवार, २ बजे अपरान्ह से ।

उपस्थिति :—

सर्व श्री ओंकार प्रसाद शर्मा, सभापति (देहली), रामगोपाल शास्त्री (देहली), लालचंद्र (देहली), बाबूराम (हापुड़), सत्यव्रत प्रेमी (परीक्षतगढ़), विष्णुप्रकाश आत्रेय (मेरठ), लक्ष्मीनारायण मिश्र (मेरठ), दौलतराम (देहली), बाबूराम शर्मा (बरनाला), स्वामी पंचमदास (बरनाला), हरिकृष्ण सिंह (पटियाला), हरिदास वैद्य (घनौला), हरनामसिंह (बरनाला), स्वामी इंद्रदास (जैतों), मुंशीराम शर्मा (भटिण्डा), बद्रीदास (गौनयानामंडी), प्रीतमानंद (गिल), रामस्वरूप (सिविया), रामकृष्ण (पटियाला), प्रज्ञानंद (अवतुगंगा), बनवारीद (जस्सींपौवाली), मखनसिंह (देहली), लखवीरसिंह (देहली), हरनाथ त्रिपाठी (कानपुर), हरिचरण (देहली), हरिकृष्ण (देहली), देशराज वीरा (देहली), महाराव बृजेन्द्र विक्रमसिंह (मेरठ), प्राणनाथ पुष्करणा (देहली), बलदेवराज (देहली), नानकचंद्र शर्मा (देहली), नानकचंद्र शास्त्री (देहली), धर्मेन्द्रनाथ (देहली), दरयाइमल (नई देहली), गणेशदत्त वैद्य (मेरठ), केशवप्रसाद आत्रेय (देहली), घनानंद पंत (देहली), कुंदनलाल खेतल (देहली), राधाकृष्ण (देहली), यशवंत शर्मा (नाभा), गोकुलराम (नाभा), हंसराज (नाभा), हनुमत्प्रसाद शास्त्री (रामगढ़), जयरामदास स्वामी (जयपुर), ईश्वरदास स्वामी (जयपुर), नेत्रपाल शर्मा (देहली), मामचंद वत्स (रामराय), आनंद प्रकाश सेठी (देहली) मंगलदास स्वामी (जयपुर), ए. पी. गौतक (उझाना), ओम्प्रकाश इन्दु (फगवाड़ा), रामदयाल (जींद), हरिबंश (उचाना), प्रेमचंद शर्मा (देहली), हरीन्द्रदत्त (पटियाला), चेतनानंद (फगवाड़ा), सरजीतसिंह (पटियाला), हरचरणसिंह (घुड़ानीकलाँ), बालकराम (दयालपुरा, पटियाला), विहारीलाल (संगरूर), विष्णुदत्त (मेरठ), कृष्णगोपाल शास्त्री (कोटा), सत्यपाल (नई देहली), चन्द्रकांत दीक्षित (देहली), कान्हदास स्वामी (भिवानी), रामस्वरूप चक्रवर्ती (देहली), दीवानचंद (देहली), पं० बलराम (देहली),

जगदीश प्रसाद (देहली), मोहनलाल शास्त्री (देहली), गोविन्दसहाय (देहली), मनोहरलाल (देहली), बंसरीलाल साहनी (देहली), हंसराज (देहली), खुशहालचंद शर्मा (देहली), रामप्रताप अग्रवाल (देहली), बोधराज (शहादरा), कीर्ति शर्मा (पटियाला), केशोराम (पटियाला), रामप्रताप (सरहिन्द), महेशदत्त (सरहिन्द), धर्मप्रकाश (टूटु), रामगोपाल (पटियाला), राधाकृष्ण (पटियाला), बंताराम शर्मा (पटियाला), पारब्रह्म (पटियाला), रामस्वरूप (पटियाला), आशुतोष मजूमदार (नई देहली), हरबंशलाल (पटियाला), मस्तराम कौशल (पटियाला), हुकुमचंद (सुनांम), प्रकाशचंद्र (लहरागागा), चेतराम (मुलीवाल), प्यारेलाल (महलकलां), भक्तराम शंर्मा (पटियाला), हरगोपाल शास्त्री (कजियाना), भुवनचंद्र जोशी (देहली), के. भारद्वाज (शहादरा), विद्याधर (शहादरा), श्रीपति शर्मा (देहली), शंकरदेव शर्मा (देहली), जगदीशचंद्र (बदी), धूर्जेटि शर्मा (नालागढ़), रामस्वरूप स्नेही (नालागढ़), कांतिनारायण (पटियाला), नित्यानंद वर्मा (देहली), देसराज कपूर (नई देहली), अमृतलाल हंस (देहली), महाराज कृष्ण (देहली), धर्मपाल (देहली), परमानंद तनेजा (देहली), स्वामी चेतनानंद (देहली), किशोरीलाल (बसीपठाना), रामजीदास शर्मा (पटियाला), अमरनाथ शर्मा (पटियाला), दयानंद शर्मा (देहली), सुरेन्द्रमोहन (देहली), अमरनाथ चोपड़ा (देहली), रामलाल मलहोत्रा (नई देहली), टेकचंद दीवान (देहली), श्रीकृष्णदत्त मुलतानी (नई देहली), श्रीयदुगोपाल गोस्वामी (देहली), सोमप्रकाश शर्मा (पटियाला), काशीनाथ शर्मा (देहली), चन्द्रप्रकाश शास्त्री (देहली), कुलपति शर्मा (पसौरभाई की), वैद्य गुरुदत्त (नई देहली)।

निम्नलिखित महानुभावों की ओर से सम्मतिपत्र प्राप्त हुए :—
सर्व श्री मणिराम शर्मा (रतनगढ़), कृष्णपदभट्टाचार्य (झांसी), पुरुषोत्तमदेव मुलतानी (हैंदराबाद), कालीदास चट्टोपाध्याय (कलकत्ता), अनंतप्रसाद लक्ष्मीशंकर (राजकोट), शम्भूनाथ पाण्डेय (कानपुर) एल. एस. वैद्य (सिकंदराबाद), चंदमणि प्रसाद (रीवां), मनोहरलाल (संगरूर), उमाशंकराचार्य (सरदार शहर), मदनलाल (संगरूर), दुर्गाप्रसाद पाठक (विवार), वैद्य रमणीकलाल जेठालाल (अहमदाबाद), जगन्नाथ प्रसाद (धमदा), भ्रमरदत्त (अजमेर), मंत्री वैद्यमण्डल (बड़ौदा), हरगोपाल शास्त्री (धुरी), किशोरी मोहनदास (कलकत्ता), विरंचि शर्मा (इस्लामपुर), सूर्यकांत शर्मा (भगवतगढ़), शिवजीजेठाभाई (माण्डवी), एम. वैंकट शास्त्री (बेजवाड़ा), पूर्णानंद शास्त्री (श्रीमाधोपुर), हरिप्रकाश (धुरी), बाबूराम शर्मा (घड़ूवां), ऋषिराम वैद्य (अलवर), महाशंकर नरोत्तम भट्ट (कच्छ), रामसिंह (दौराला), घासीराम गणपतराम (देवास),

लक्ष्मणदास (घनहोरीं कलां), रामदयालु (रायगढ़)।

कार्य-विवरण :—

वैद्य श्री ओंकार प्रसाद शर्मा की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

१–(क) गताधिवेशन का कार्यविवरण पढ़ा गया और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

(ख) विद्यापीठ कार्यसमिति के ता० १४-१०-५१ के अधिवेशन का कार्यविवरण पढ़ा गया और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

२–निम्नांकित सदस्यताएं स्वीकार की गईं :—

आश्रयदाता सदस्य : राजवैद्य श्री जयानंद नारायण मिश्र भटूरिया (रामघाट हरिद्वार)।

आजीवन सदस्य—सर्व श्री ओम्प्रकाश इंदु (फगवाड़ा), चेतनानंद वैद्य (फगवाड़ा), अमरनाथ चौपड़ा (देहली), राधाकृष्ण (नालागढ़), बनवारी दास (गुलाबगढ़) नसीबचंद शर्मा (झण्डूक), प्रीतमदास (जींद), जगन्नाथ गिरजी (महमा सवाई), धर्मदास (महमासवाई), प्रज्ञानंद वैद्य (गुनियाना मण्डी), चेतनदास वैद्य (गुनियाना मंडी) रामस्वरूप स्वामी (गुनियाना मण्डी), रामकिशन गिर (महमासवाई), बग्गासिंह (भटिण्डा), प्रीतमानंद (भटिण्डा), धूर्जटि शर्मा (नालागढ़), जगदीशचंद्र (वड्डी), रामस्वरूप स्नेही (नालागढ़), जयदेवी मरवाहा (देहली), धर्मदत्त शर्मा (देहली), सोमप्रकाश शर्मा (लोहसिम्बली), हरिवंशकौर अहलुवालिया (पटियाला), पारब्रह्म (पटियाला), धर्मप्रकाश (टटू), प्यारालाल शास्त्री (पटियाला), हेमराज (नालागढ़), बालकराम शर्मा (सौडियां), विष्णुप्रकाश आत्रेय (टिकौली) हरात्मस्वरूप (गाजियाबाद), चिरंजीलाल (गुढ़ा), जगदीशचंद्र (बड़ौत), सत्यदेव शर्मा (बड़ौत), देवेन्द्र किशोर (गाजियाबाद), शिवकुमार शास्त्री (गाजियाबाद), प्रेमप्रकाश (आगरा), चन्द्रप्रकाश शास्त्री (देहली), नानकचंद (देहली), देवकीनंदन शर्मा (जालंधर), ब्रह्मदेव बत्रा (सोनीपत), रुद्रमणि सेठ (सोनीपत), दीवानचंद गुप्त (देहली), परशुराम शास्त्री (जोधपुर), संत सारंगहरि (देहली), भट्ट कृष्णस्वरूप (अलवर)।

मान्य सदस्य :—मान्य सदस्यता सन् १९५१ तक ३९ तथा १९५२ के लिए २२। प्रतिनिधि सदस्य १।

३—स्थानिक संघ के ता० २४–१०–५१ के अधिवेशन का कार्यक्रम पढ़ा गया। कर्मचारी रक्षाकोष (प्राविडेण्ट फंड) के ट्रस्ट निर्माण संम्बंधी नियम (छ) पर कुछ सदस्य महानुभावों ने विभिन्न प्रकार के सुझाव उपस्थित किए। प्रधान मंत्री ने बताया कि इसी

विषय पर कार्यालय कर्मचारी मण्डल की ओर से भी प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ है । अतएव इस समय उपस्थित कार्यविवरण स्वीकृत कर लिया जाय ताकि ट्रस्ट स्थापित करके बैंक में हिसाब आदि खुला दिए जांय । नियमों पर समय समय पर विचार करके उन्हें परिवर्तित किया जा सकता है तथा इसी प्रकार इन नियमों पर भी पुनः विचार कर लिया जायगा । प्रधानमंत्री जी के इस वक्तव्य के अनंतर स्थानिक संघ का कार्यविवरण (जो इसी पत्रिका के पृष्ठ ३-४ पर मुद्रित है) सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ ।

४--निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की नियमावली में संशोधन का अधिकार स्थायी समिति को प्राप्त है अथवा नहीं, इस विषय पर विचार उपस्थित हुआ दो बार एसोसियेशन्ज (Bar Associations) तथा सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के दो एडवोकेट्स की इस विषय पर सम्मतियों का सारांश सदस्य गण में वितरित किया गया । तत्पश्चात् प्रधानमंत्री ने निम्नांकित प्रस्ताव उपस्थित किया :--

नियमावली सम्बन्धी प्रस्ताव–"स्थायी समिति के ता० २९–४–५१ के अधिवेशन में दिए गए श्री प्रधानजी के आदेश (रूलिंग) के अनुसार नियमावली संशोधन विषयक अधिकार के विषय-विशेष पर कानूनी परामर्श उपस्थित किया गया तथा इसे सुनकर स्थायी समिति का यह अधिवेशन इस परिणाम पर पहुंचा है कि स्थायी समिति को निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की प्रचलित नियमावली के अनुकूल महासम्मेलन नियमावली अर्थात् विधि-विधानों में परिवर्तन, परिवर्धन, संशोधन, परिवर्जन, ह्रस्वीकरण या आंशिक परिवर्तन का पूर्ण अधिकार प्राप्त है । अतएव यह स्थायी समिति निश्चय करती है कि स्थायी समिति के ता० २८ जनवरी १९५१ के अधिवेशन में नियामावली में जो संशोधन स्वीकार किए गए हैं उन्हें अविलम्ब लागू किया जाय ।"

इस प्रस्ताव पर विचार प्रारम्भ हुआ तथा इसके पक्ष एवं विपक्ष में अनेक सदस्य महानुभावों ने भाषण दिए । क्योंकि इस प्रस्ताव पर कार्यवाही पहले ही बहुत लम्बी जा चुकी थी परन्तु सर्व सम्मत निश्चय की आशा कुछ कम प्रतीत पड़ती थी अतएव प्रधानजी ने सुझाव दिया कि ४ व्यक्तियों की एक उपसमिति पृथक् बैठकर इस विषय पर विचार कर लें । इस पर कुछ सदस्यों ने आपत्ति प्रकट की । जब सदस्यों द्वारा मत लेने का आग्रह किया गया तो लगभग १३-१४ सदस्य महानुभाव उठकर बाहर चले गए । श्री प्रधानजी उठकर गए और यत्न करते रहे कि वे लोग वापिस आ जांय परन्तु ४-५ मिनट के बाद प्रधानजी अकेले ही सभा में पधारे और कार्यवाही पुनः प्रारम्भ हुई । तदुपरान्त उपर्युक्त प्रस्ताव पर मत लिए गए । मत गणना में तीन

सदस्य--श्री पं० हनुमत्प्रसाद शास्त्री (रामगढ़), श्री पं० नानकचंद शर्मा (देहली) तथा डा० कुंदनलाल खेतल (देहली) तटस्थ रहे, शेष ९४ सदस्यो की सम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

५–सन् १९५०-५१ के महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के आय व्यय तथा संतुलन पत्रों (Income and Expenditure Accounts and Balance Sheets) पर विचार हुआ तथा वे सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए (उक्त पत्र इसी पत्रिका के पृष्ठ १७, १८, १९, २०, २१ तथा २२ पर मुद्रित हैं)।

६ – महासम्मेलन तथा विद्यापीठ, आयुर्वेद महासम्मेलन प्रकाशन लिमिटेड एवं विश्वविद्यालय योजना के सन् १९५१-५२ वर्षीय प्रस्तावित आनुमानिक आय-व्यय पत्र (Budgets) उपस्थित किए गए तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए (उक्त पत्र इसी पत्रिका के पृष्ठ २३ तथा २४ पर मुद्रित हैं)।

विश्वविद्यालय सम्बन्धी प्रस्ताव

७--नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय योजना के कार्यान्वित करनें पर विचार हुआ तथा निम्नलिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ :--

"स्थायी समिति का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि विश्वविद्यालय योजना को कार्यान्वित करने के लिए वर्ष के भीतर-भीतर स्नातकोत्तर विद्यालय की स्थापना तथा विश्वविद्यालय के लिए भूमि का प्रबन्ध किया जाय। एतदर्थ विश्वविद्यालय योजना का प्रस्तावित आनुमानिक आय-व्यय पत्र (जो इसी पत्रिका के पृष्ठ २४ पर मुद्रित हैं) स्वीकार किया जाता है तथा इस योजना को चलाने के लिए एक कार्यवाहक समिति का निर्माण किया जाता है जिसके महासम्मेलनाध्यक्ष, प्रधानमंत्रीं, विद्यापींठाध्यक्ष, विद्यापीठमंत्री तथा कोषाध्यक्ष के अतिरिक्त ये--

१–वैद्य श्री शिवशर्मा (बम्बई), २–वैद्य श्री हरिरंजन मजुमदार (बनारस), ३–वैद्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी (पीलीभीत), ४–वैद्य श्री, उपेन्द्रनाथ दास (देहली), ५–श्री स्वामी जयरामदास (जयपुर), ६–श्री हरिदत्त शास्त्री (जालंधर), ७–श्री सुरेन्द्रमोहन आचार्य (देहली), ८–श्री डी. एन. बैनर्जी (कलकत्ता) ९–श्री डा. ए. लक्ष्मीपति (मद्रास) १०–श्री सर श्रीराम (नई देहली), ११–श्री लाला सरदारीलाल जी (देहली) १२–श्री डा० वी. एम. शर्मा (देहली), १३–रिक्त स्थान, १४–रिक्त स्थान, १५–रिक्त स्थान, १६–रिक्त स्थान, सदस्य होंगे।

आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थापना सम्बन्धीं सम्पूर्ण कार्मभार यही समिति वहन करेगी तथा रिक्त स्थानों की पूर्ति भी समिति स्वयं करेगी।"

ख–श्री र. वि. धुलेकर, संस्थापक प्रधान, शासक समिति, आयुर्वेद विश्वविद्यालय झांसी, के विभिन्न पत्र उपस्थित किए गए तथा विचार विमर्श के अनन्तर इस विषय पर निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ :—

"श्री र. वि. धुलेकर, संस्थापक प्रधान, शासक समिति, आयुर्वेद विश्वविद्यालय झांसी, का पत्र, जिसमें उन्होंने अपने विश्वविद्यालय के लिए महासम्मेलन की मान्यता तथा सहायता के लिए लिखा है पर विचार करने के अनन्तर स्थायी समिति का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि उक्त विश्वविद्यालय की शासक समिति से बातचीत करने के लिए निम्नांकित ३ महानुभावों की एक समिति का निर्माण किया जाय जिसे मान्यता, आर्थिक सहायता अथवा विश्वविद्यालय को महासम्मेलन के तत्वावधान में लेने एवं अन्य सम्बन्धित विषयों पर विचार विमर्श, पूछताछ तथा बातचीत करने का अधिकार दिया जाय। यह समिति अपने परामर्श महासम्मेलन कीं स्थायी समिति के समक्ष अंतिम विचारार्थ उपस्थित करे।

समिति के सदस्य :—

१. श्री महासम्मेलनाध्यक्ष।
२. श्री महासम्मेलन प्रधानमंत्री।
३. श्री विद्यापीठ मंत्री।

औषध निर्माता संघ सम्बन्धी प्रस्ताव

८–निखिल भारतीय आयुर्वेद औषध निर्माता संघ के विषय पर निम्नांकित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ :–

"स्थायी समिति का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि निखिल भारतीय आयुर्वेद औषध निर्माता संघ के विधान एवं प्रारम्भिक कार्य संचालनार्थ एक अस्थायी कार्य समिति का निर्माण किया जाय, जिसके निम्नांकित २१ सदस्य होंगे :—

१. वैद्य श्री शिवनाथ शर्मा, देहली। २. आचार्य श्री सुरेन्द्रमोहन, देहली। ३. श्री गोविन्द जी वैद्य, देहली। ४. वैद्य श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, मेरठ। ५. मुलतानी आयुर्वेदिक फार्मेसी, नई देहली। ६. रिक्त स्थान। ७. रिक्त स्थान। ८. मैसर्स जैमिनी वेंकटा रमय्या एण्ड संस, मद्रास। ९. बालगोविन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी, कोटा। १०. काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर। ११. साधना औषधालय, कलकत्ता। १२. श्री रसशाला औषधाश्रम, गौंडल। १३. श्री धन्वन्तरि भेषज निर्माण शाला, जयपुर। १४. मजुमदार लेबौरेट्रीज, नई देहली। १५. कृष्णगोपाल धर्मार्थ

आयुर्वेदिक औषधालय, कालेड़ा, कृष्णगोपाल, अजमेर। १६. जी. ए. मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, झांसी। १७. अमृतधारा फार्मेसी, देहरादून। १८. लोकमान्य रसायनशाला, श्रीमाधोपुर। १९. सुधा फार्मेस्युटिकल वर्क्स, अहमदाबाद। २०. आर्य वैद्य शाला, कोटाकल, मद्रास। २१. रसायन फार्मेसी, देहली। रिक्त स्थानों की पूर्ति का अधिकार भी इसी समिति को दिया गया।''

९. निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा पी. एच. डी. की समकक्ष उपाधि प्रदान पर विचार हुआ तथा निम्नांकित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ :–

''स्थायी समिति का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा आधुनिक पी. एच-डी. की समकक्ष आयुर्वेदिक उपाधि प्रदान का अविलम्ब आयोजन किया जाय। उक्त उपाधि निम्न लिखित नियमों के आधार पर प्रदान की जाय :–

क––इस उपाधि का नाम–१. आयुर्वेद मार्तण्ड, २. आयुर्वेद चूड़ामणि, ३. आयुर्वेद तत्वज्ञ ४. आयुर्वेद महोदधि ५. आयुर्वेद दिवाकर, ६. आयुर्वेद सूरि, ७. आयुर्वेद शिखर, वैद्य बारिधी; भिषक् सागर, वैद्य सागर होगा। (उपाधि के नाम का अन्तिम निर्णय विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति पर छोड़ा गया)।

ख—कोई भी विद्वान् वैद्य जिसकी आयु २५ वर्ष से कम न होगी, इस उपाधि के लिए आवेदन पत्र दे सकता है।

ग– आवेदक अपने अनुसंधान कार्य के फलस्वरूप लिखी गई गवेषणात्मक पुस्तक अथवा लेख, जोकि २०० पूरे पृष्ठ से कम न होगा, इस उपाधि के लिए उपस्थित कर सकता है। पृष्ठ संख्या में न्यूनाधिक्य परीक्षक समिति विषय विचार कर, कर सकती है।

घ—आवेंदक अपने प्रार्थना पत्र के साथ ५१ रु० जमा कराए।

ङ—प्रार्थना स्वीकार होने पर उपाध्यर्थी अपने लेख अथवा पुस्तक यदि वह नवीन मुद्रित हो, की ५ प्रतियां भेजें परन्तु हस्तलिखित ग्रंथ अथवा लेख की एक ही प्रति पर्याप्त होगी।

च—पुस्तक अथवा लेख प्राप्त होने पर विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति द्वारा विषय विशेषके ज्ञाता ५ निरीक्षक नियुक्त किये जायेंगे।

छ––उपाधि प्रदान करने के विषय में इन्हीं परीक्षकों का निर्णय अन्तिम होगा।

ज––जो विद्वान किसी विषय विशेष पर अनुसंधान करने के इच्छुक हों वे अपने विषय की स्वीकृति विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति से लेकर इस उपाधि के लिए तैयारी कर सकते हैं।

झ—उपर्युक्त स्वीकृति के ३ वर्ष के भीतर-भीतर उपाध्यर्थी को अपनी पुस्तक लिखनी होगी और तदुपरान्त उपर्युक्त नियम 'क' से 'छ' के अनुसार उसका परीक्षण किया जाय।

ट—विषय विशेष पर अनुसंधान के लिए विद्यापीठ द्वारा उपाध्यर्थियों को विशेषज्ञ विद्वानों से परामर्श अथवा विचार विमर्श करने का सुझाव दिया जायगा।

ठ—इस उपाधि से विभूषित व्यक्ति को विद्यापीठ की सर्वोत्तम परीक्षा आयुर्वेदाचार्य उपाधि प्राप्त समझा जायगा।

विशेष :—इस प्रस्ताव के नियम धारा 'ज' पर चर्चा चल रही थी जब कि सभापति वैद्य श्री ओंकार प्रसाद शर्मा अपना आसन वैद्य श्री मुंशीराम शर्मा विद्यापीठ उपाध्यक्ष को सौंप कर चले गए। शेष कार्यवाही वैद्य श्री मुन्शीराम जी की अध्यक्षता में हुई।

१०. निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ३८ वें वार्षिक अधिवेशन के आयोजन पर विचार हुआ तथा निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ:—

"चूंकि नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के ३७ वें वार्षिक अधिवेशन को हुए २२ मास बीत चुके हैं और ३८ वें अधिवेशन के लिए कहीं से निमन्त्रण प्राप्त नहीं हो रहा है, इस अवस्था में स्थायी समिति का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि ३८वाँ नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन भारत के किसी प्रमुख नगर में शीघ्रातिशीघ्र आयुर्वेद महासम्मेलन की ओर से ही सम्पन्न करनें का प्रबन्ध किया जाय और इस कार्य के लिए २००० रु० प्रारम्भिक व्यय के लिए स्वीकार किए जांय।"

११. विद्यापीठ केन्द्र तथा सशुल्क परीक्षण व्यवस्था समितियों के सुझाव जो इसी पत्रिका के पृष्ठ १६ पर मुद्रित हैं, पढ़े गए तथा निश्चय हुआ कि :—

१—पुरातन केन्द्र पूर्ववत् रहें परन्तु नूतन केन्द्र उन्हीं स्थानों पर खोले जांय जहां आयुर्वेद विद्यालय चल रहे हों तथा परीक्षार्थियों की संख्या १५ से कम न हो। धमदा (मध्यप्रदेश) में केन्द्र स्थापित किया जाना स्वीकार हुआ।

तथा २—सन् १९५३ से सशुल्क परीक्षण व्यवस्था प्रारम्भ की जाय तथा एतदर्थ सन् १९५२-५३ वर्षीय अनुमानिक व्यय में ७००० रु० (सात सहस्र रुपए) स्वीकार किए जांय।

मिश्रित विषय :—क–नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, आयुर्वेद विद्यापीठ एवं इनकी सम्बद्ध संस्थाओं के हितों की रक्षा आधुनिक परिस्थिति में कैसे हो सकती है इस विषय पर पर्याप्त विचार विमर्श के अनन्तर निम्नांकित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ :—

(शेष पृष्ठ ६१३ पर देखो)

आयुर्वेद में जीवाणुओं का स्थान

(लेखक – साहित्याचार्य पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत, मेडिकल कालेज, लखनऊ)

अंतिम अंश

अथर्ववेद में जीवाणु वर्णन

आयुर्वेद की अपेक्षा उसके मूलभूत अथर्ववेद में इन जीवाणुओं (सूक्ष्मकृमियों) का वर्णन अधिक विस्तार से मिलता है तथा इनका कृमि, रक्षः, राक्षस, यातुधान, पिशाच, गन्धर्व अप्सरा आदि नामों से वर्णन किया है उनका जल दूध आदि में निवास हम प्राणियों के शरीर में रोगोत्पत्ति, सूर्य किरण, अग्नि, गूगल, पीलू धातकी जटामांसी, अपिल, वट, अज श्रृंगी (मे ठासिमी) आदि से उनके विनष्ट होने का वर्णन विस्तार से ८० मंत्रों में मिलता है[१] ।

---

[१] (अ) उद्यन्नादित्यः कृमीन् हन्तु निम्रोचन हन्तु रश्मिभिः ।
(अथर्व-काण्ड २।३२।१)

(आ) उपप्रागाद्देवो अग्नी रक्षोहा अमीवचा ह नः ।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ।।
(अथर्व-काण्ड १।२८।१)

(इ) त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्यौषधे ।
त्वया जघान कश्यप स्त्वया कण्वो अगस्त्यः ।।
त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे ।
अजश्रृंग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय ।।
नदी यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् ।
गुग्गुलू पीला नलद्यौक्षगन्धिः प्रमन्दनी ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ।।
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ।।
(अथर्व-काण्ड ४।३७।१-४)

अथर्ववेद में आये हुए इन रक्ष, राक्षस, यातुधान, पिशाच, अप्सरा गन्धर्व आदि शब्दों का अर्थ वैदिक साहित्य में रक्त तथा मांस खाने वाले सूक्ष्म कृमि (जीवाणु) हैं यथा —

रक्षस् (राक्षस)— रुधिर पीने वाले सूक्ष्म कृमि, इन से प्रत्येक प्राणी को अपनी रक्षा करनी चाहिये ।

जैसे—(अ) असृग्भाजानि ह वै रक्षांसि ।

(कौ. १०।४)

(आ) रक्षो रक्षि तव्यमस्मात् । (निरुक्त. ४।१८)

यातुधान— यातुं वेदनां दधतीति यातुधांना-वेदनोत्पादक कृमि ।

पिशाच— मांस को खाने या चाटने वाला सूक्ष्म कृमि—

(अ) पिशितं मांसमाचामतीति पिशाचः (बाचस्पत्य कोष)

(आ) पिशितं मांसमश्नातीति पिशाचः (शब्दकल्पद्रुम)

अप्सरस्— (अ) अप्सु सरन्तीति अप्सरस :— जल में घूमने वाले कृमि

(आ) गन्ध इत्यप्सरसा उपासहो :— गन्ध वाले स्थान में रहने वाले

(शतपथ १०।५।२।२०)

गन्धर्व— रूप पर गिरने वाले, सुन्दर रूप पर गिरने वाले ।

रूपमिति गन्धर्वा उपासते । (शतपथ १०।५।२।२०)

अथो गंधेन च वै रूपेण च गन्धर्वा प्सरसश्चरन्ति । (शतपथ ९।४।१।४)

इस प्रकार ऊपर की व्युत्पत्ति से रक्षः आदि शब्द सूक्ष्म कृमि वाचक सिद्ध होते हैं जिनका विनाश सूर्य किरण, अग्नि, गूगल तथा अज शृंगी आदि औषधियों की धूप के गन्ध से होता है । रक्ष या राक्षस शब्द का पर्यायवाचक निशाचर बहुत प्रसिद्ध है । सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता व्रण के रोगी की इन जीवाणु रूपी निशाचरों से ही रक्षा* करने का निर्देश किया है । यथा:—

निशाचरेभ्यो रक्ष्यस्तु नित्यमेव क्षतातुरः ।

(सुश्रुत. उत्तरतंत्र. अ.।६०।१)

गूगल*, अगुरु, राल, वच, सरसों, नमक, नीम के पत्ते तथा घृत की रक्षोघ्न धूप से व्रण को धूपित करने का निर्देश भी सुश्रुत ने किया है । इस गुग्गुल आदि की रक्षोघ्न

---

*रक्षोघ्नै र्धूपै र्धूपये द्रक्षोघ्नैश्चमन्त्रै रक्षां कुर्वीत

*गुग्गुव्युरुसर्ज रस वचागौरसर्षप चूर्णै र्लवण निम्ब पत्रव्यामिश्रै राज्य युक्तै र्धूपै र्धूपयेत् ।

(सुश्रुत सूत्र. अ. ५।१३।१४)

धूप से सूक्ष्म क्रमि रूप राक्षसों का ही विनाश सम्भव है, पौराणिक साहित्य में वर्णित महाकाय राक्षसों का विनाश इन से नहीं हो सकता है। सुश्रुत मुनि ने व्रण के रोगी के समीप व्रण का रुधिर पान करने के लिये राक्षस पिशाच नाम गन्धर्व पितर तथा यक्ष आदि के आने का उल्लेख किया है। यह सब अनेक प्रकार के सूक्ष्म क्रमि ही हैं। इनके लिये भूत तथा भूतग्रह, देवग्रह, देवयोनि शब्द भी प्रयुक्त हुये हैं। इन विभिन्न जातियों के सूक्ष्म क्रमि रूप भूतों या प्राणियों के आक्रमण से अनेक रोगों की उत्पत्ति हुआ करती है। जैसे पागल कुत्ते तथा शृगाल के काटने से कुत्ते और शृगाल के समान मनुष्यों में भूकने आदि के लक्षण मिलते हैं ऐसे ही इन जीवाणुओं के आक्रमण होने पर भी उन जीवाणुओं की प्रकृति के अनुसार ही लक्षण मनुष्यों तथा स्त्रियों में उत्पन्न हुआ करते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद तथा अथर्ववेद में सूक्ष्म अदृश्य क्रमियों के रूप में जीवाणुओं का अस्तित्व सदैव ही माना जाता रहा है। इतना अवश्य है कि यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त एवं अस्पष्ट है। कीट दंश से रोग क्रमि फैलने का बिलकुल भी निर्देश नहीं है।

जीवाणुओं की रोग कारणता

आयुर्वेद में रोगों के कारण (हेतु) बाह्य तथा आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार के माने गये हैं। यथा–

स च हेतुरनेकधा ... .बाह्याभ्यन्तर भेदाच्च द्विधा।

(माधवनिदान-मधुकोष व्याख्या)

इन में से बाह्य हेतु (कारण) से उत्पन्न रोग की आगन्तुक तथा आभ्यन्तर (दोष) हेतु से उत्पन्न को निज रोग के नाम से निर्देश किया गया है। यथा–

(अ) निजागन्तुविभागेन रोगाश्च द्विविधा मताः।
(अष्टांग संग्रह सूत्र० अ० १।४०)

(आ) बाह्यहेतुजास्त्वागन्तवः–– (अष्टांग संग्रह सूत्र० २२)

महर्षि कश्यप, चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट सब* आचार्य इस विषय में एक मत हैं।

---

* (१) निजागन्तु निमित्ताश्च द्विविधा प्रकृती रुजाम्।
(२) स पुन द्विविधो व्याधिरागन्तुर्निज एव च। (काश्यप० खिल०)
(३) द्विविधा पुनः प्रकृतिरेषामागन्तु निजविभागतः।
(४) रोगानीके द्वे निमित्त भेदेन स्वधातु वैषम्य निमित्तं चागन्तुनिमित्तंच
(चरक० वि० ६।३)
(५) तद्दुःखसंयोगा व्याधय इत्युच्यन्ते। ते चतुर्विधा आगन्तवः शारीरा मानसा स्वाभाविकाश्चेति। (सुश्रुत० सूत्र० अ० १।२०)

अथर्ववेद के 'ये अस्माकंतन्वमाविविशु': इस मंत्र में बतलाया गया है कि ये जीवाणु (सूक्ष्म कृमि) बाहर से हमारे शरीर में प्रवेश करके रोग उत्पन्न किया करते हैं। इस प्रकार यह जीवाणु रोगों के बाह्य कारण सिद्ध होते हैं और इन के संक्रमण से उत्पन्न होने वाले रोग 'आगन्तु' कहलाते हैं। चरक के मत में प्रज्ञापराधज तथा सुश्रुत के मत में आधिभौतिक माने जाते हैं।

आगन्तु रोगों के कारण

चरक मुनि के मत में आगन्तु रोगों के कारण नख, दशन, पतन, अभिचार, अभिशाप, अभिषङ्ग, व्यध, बध, बन्ध, पीड़न, रज्जु दहन, मंत्र, अशनि (बिजली भूतोपसर्ग आदि तथा विष, वायु अग्नि) सम्प्रहार हैं। यथा–

(अ) मुखानि खल्वागन्तो नख दशन पतना भिचाराभिशापाभिषङ्ग व्यध बध बन्ध पीड़न रज्जु दहन मन्त्राशनि भूतोपसर्गादीनि।

(चरक० सूत्र० अ० २०।४)

(आ) ये भूत विषवाय्वग्नि सम्प्रहारादिसम्भवा:।
नृणा मागन्तवो रोगाः प्रज्ञा तेष्वपराध्यति॥

(चरक० सूत्र० अ० ५।५१)

यद्यपि चरक के उपर्युक्त वचनों में जीवाणु वाचक कृमि शब्द का नाम नहीं मिलता है तथापि 'भूत' शब्द का अर्थ 'कृमि' मान लेने पर अथवा अन्त के आदि शब्द से कृमि जीवाणु को ग्रहण कर आगन्तु रोगों के कारण समूह में कृमि गिना जा सकता है।

इस प्रकार आयुर्वेदिक दृष्टि कोण से जीवाणु, संक्रामक आगन्तु रोगों के बाह्य कारण सिद्ध होते हैं।

जीवाणुओं के वातादिदोष प्रकोपक वर्ग

जिस प्रकार निज रोग, मिथ्याहारविहार अथवा ऋतुओं के प्रभाव से दोषों के प्रकुपित होने पर उत्पन्न हुआ करते हैं उसी प्रकार आगन्तु* संक्रामक रोगों में भी, इन जीवाणुओं* (सूक्ष्म कृमियों) से दोष कुपित होते हैं परन्तु इतना असर हुआ करता है कि

---

* (अ) अभिघातादिना दोषप्रकोप आगन्तु: (इन्दुकृत शशिलेखा व्याख्या)

(आ) अभिघात भूतादिना दोष प्रकोपजः स आगन्तु:।

(दास पण्डित कृत वाग्भट व्याख्या)

*विंशतिविधास्तु कृमियो दोष प्रकोपण द्वारेण ज्वरशूलादीनि जनयतीति हि रोगा उच्यन्ते।

(मधुकोष व्याख्या)

निज रोगों में उनकी उत्पत्ति होने से पूर्व ही दोषों का वैषम्य शरीर में हो जाता है और आगन्तु रोगों में जीवाणु आदि बाह्य कारणों से उन रोगों की उत्पत्ति होने के पश्चात् वातादि दोषों का प्रकोप होने से उन में विषमता हुआ करती है। जिस के परिणामस्वरूप उन दोषों से उत्पन्न हुये लक्षण उन आगन्तु रोगों में मिलते हैं। इस लिये आगन्तु रोगों में भी दोषों के लक्षण मिश्रित पाये जाते हैं अर्थात् कुछ समय तक तो वह रोग अकेला 'आगन्तु' रोग कहलाता है परन्तु फिर जब उस में कुपित वातादि दोषों के लक्षण मिल जाते हैं तब वह आगन्तु और निज दोनों के लक्षणों से युक्त होनें पर मिश्रित हो जाता है। इसी कारण आगन्तु रोगों के प्रारम्भ में उन की विकृति की चिकित्सा करने के पश्चात् फिर दोषों के संबन्ध के अनुसार चिकित्सा करने का आयुर्वेद में निर्देश मिलता है। यथा–

(१) आगन्तु हि व्यथापूर्व समुत्पन्नो जघन्यं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यमापादयति।
(चरक० सूत्र० अ० २०।७)

(२) आगन्तु र्बाधते पूर्वं पश्चाद्दोषान् प्रपद्यते।
तस्मादागन्तु रोगाणां पश्यन्ति निजवत्क्रियाः॥
(काश्यप० खिल स्थान० अ० ३)

(३) आगन्तुरन्वेति निजं विकारं
निजस्तथागन्तुमपि प्रवृद्धः।
तत्रानुबन्धं प्रकृतिं च सम्यक्
ज्ञात्वा ततः कर्म समारभेत॥
(चरक० सूत्र० अ० १९।७)

(४) यथा–आगन्तु हि व्यथापूर्वोत्पन्नो ज्वरोऽष्टमो भवति, स किंचित् कालमागन्तुः केवलो भूत्वा पश्चान्निजैं र्दोषैरनुबध्यते।
(माधवनिदान, मधुकोषटीका)

(५) कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात् पित्तंत्रयो मलाः।
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः
(चरक० चि० अ० ३)

इस उपर्युक्त शास्त्रीय विवेचन से प्रामाणित होता है कि जीवाणुओं से उत्पन्न हुये आगन्तु स्वरूप संक्रामक रोगों में भी पीछे से इन जीवाणुओं द्वारा वातादि दोषों की

विषमता हमारे शरीर में हुआ करती है । यह विषमता दोषों के प्रकोप से वृद्धि अथवा क्षय रूप में होती है इस लिये इन जीवाणुओं से वातादि दोषों का प्रकोप या क्षय हुआ करता है, यह सिद्ध होता है । ऐसी अवस्था में आयुर्वैदिक शास्त्रानुसार चिकित्सा करने वाले वैद्यों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि इन जीवाणुओं से किस किस दोष का प्रकोप या क्षय होता है यह निश्चय किया जाय । ऐसा निश्चय हो जाने पर जीवाणुओं से प्रकुपित दोषों के लक्षणों के आधार पर जीवाणु से रोगों की चिकित्सा करने में वैद्य को सरलता हो सकती है । इस लिये हम यहाँ पर यथामति जीवाणुओं से उत्पन्न लक्षणों के आधार पर उनका वातपित्त कफ़ दोष प्रकोपक या शामक होना बतलाते हैं । जैसे स्टैफ़िलोकोकस पायोजीनस आरस नाम का जीवाणु पूयजनक है और पूय कफ़ के बिना उत्पन्न नहीं हो सकती है इस कारण हमने इस जीवाणु को कफ़ प्रकोपक लिखा है । इसी आधार पर वातादि दोष प्रकोपक जीवाणुओं की आनुमानिक तालिका प्रस्तुत करते हैं ।

सं०	जीवाणु	लक्षण	दोष प्रकोपक
१	स्टैफ़िलोकोकस पायोजीनस आरस	पूयोत्पत्ति	कफ प्रकोपक
२	स्ट्रैप्टोकोकस हिमालिटीकस	उपत्वचा, अस्थि, सन्धि, मज्जा, मस्तिष्कावरण, मध्यमकर्ण, रसायनी, ग्रसनिका गलान्तर्गत ग्रन्थिका शोथ, लाल ज्वर, सूतिका ज्वर, विसर्प तथा ब्रांकोन्यूमोनिया	,,
३	स्ट्रैप्टोकेकस विरिण्डक	विद्रधि, दंतमांस हृदन्तर शोथ आमवात	कफ वात प्रकोपक
४	न्युमोकोकस	लोबर न्यूमोनिया, फुप्फुसावरण, हृदयावरण, हृदन्तर, सन्धि, उदरकला तथा कर्ण शोथ, पूयोरस (Empyma) नेंत्राभिष्यन्द, सव्रण शुक्र	कफवातो ल्वण सन्निपात प्रकोपक

सं०	जीवाणु	लक्षण	दोष प्रकोपक
५	मीनिंगोकोकस	मस्तिष्क सुषुम्नावरण शोथ (मेनिंजाइटिस)	वातोल्वण सन्निपात प्रकोपक
६	गोनोकोकस	औपसर्गिक पूयमेह (गनोरिया) नवजात नेत्राभिष्यन्द	कफ रक्त प्रकोपक
७	मैक्रोकोकस कटारालिस	प्रतिश्याय, नासा शोथ, कास, पूयदंत आदि	कफ प्रकोपक
८	बैसीलस टायफ़ोसिस	आन्त्रिक ज्वर, अस्थि, मज्जा, अस्थ्यावरण, कर्णमूल, मस्तिष्कावरण शोथ सन्धि, मस्तिष्क त्वचा तथा पेशियों में विद्रधि	कफोल्वण सन्निपात प्रकोपक
९	बैसीलस डिसेण्टरी	अतिसार	कफ पित्त प्रकोप्रक
१०	,, पैराटायफ़ोसिस	पैराटाइफ़ाइड	त्रिदोष प्रकोपक
११	,, एण्टरीटीडस	वमन प्रवाहिका, उदर में एंठन, दौर्बल्य, हृदयावसाद तथा पिण्डकोद्वेष्टन	वात कफ प्रकोपक
१२	कोम बैसीलस	विशूचिका	वातोल्वण त्रिदोष प्रकोपक
१३	बैसीलस टयूव़रक्लोसिस	राजयक्ष्मा	त्रिदोष प्रकोपक
१४	,, लेप्री	गलित कुष्ठ	,,
१५	,, टिटैनी	धनुस्तम्भ	वात प्रकोपक
१६	,, इन्फ़्लून्ज़ा	इन्फ़्लून्ज़ा (वातश्लैष्मिक ज्वर)	वात श्लेष्मोल्वण सन्निपात प्रकोपक

सं०	जीवाणु	लक्षण	दीप प्रकोपक
१७	,, डयूके	उपदंश	कफ रक्त प्रक्रोपक
१८	,, पटर्यूसिस	कुकुर खांसी (हूपिंग कफ़)	कफ वात प्रकोपक
१८	बैसीलस पैस्टिस	प्लेग	त्रिदोष प्रकोपक
१९	,, डिप्थीरिया	रोहिणी (डिप्थीरिया)	कफोल्वण सन्निपात प्रकोपक
२०	लीशमनिया डोनोवर्नी	काला आज़ार	रक्तप्रकोपक
२१	ट्रेपोनेमा पालीङ	फिरंगोपदंश	रक्त तथा त्रिदोष प्रकोपक
२२	लेप्टोस्पाइरा इक्टरोइडीज़	पीत ज्वर (हारिद्रक सन्निपात)	पित्तोल्वण सन्निपात प्रकोपक
२३	प्लेज़मोडियम	विषमज्वर (मैलेरिया)	वातोल्वण त्रिदोष प्रकोपक
२४	तंतु कृमि (थ्रेड वर्म)	गुदकंडू प्रवाहिका शय्यामूत्र	कफपित्तप्रकोपक
२५	अंकुश मुख कृमि (हुक वर्म) (एंकिलोस्टोमा डयूडेनल)	भीषण पाण्डु	पित्तप्रकोपक
२६	गण्डूपद कृमि (अर्थ वर्म) (राउण्ड वर्म)	कृशता, अरुचि	कफप्रकोपक

यह ज़ीवाणुओं की दोष प्रकोपक तालिका आनुमानिक है। इसलिये अभी इसमें संशोधन की आवश्यकता है। इससे चिकित्सा में वैद्यों को कुछ सहायता मिल सकती है।

नेत्र विज्ञान

लेखक: श्री डा० आर० एस० अग्रवाल, १५, दरियागंज, दिल्ली

सहायक : कविराज, ओम्प्रकाश वैद्य वाचस्पति, २३, दरियागंज, दिल्ली

कुछ समय पहले पाश्चात्य सभ्यता में रंगे हुये भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली को अवैज्ञानिक और अपूर्ण समझते थे । किन्तु इसके विपरीत उन्ही दिनों कुछ पाश्चात्य डाक्टर इस विचार के भी थे कि "यदि इस चिकित्सा प्रणाली को अपना लिया जावे तो उत्पन्न हुये रोग बहुत शीघ्र नष्ट हो जावें, तथा अन्य उत्पन्न ही न होने पावें । किन्तु यह सब कुछ होने पर भी त्रिदोष सिद्धांत वात, पित्त, कफ उनके लिए एक रहस्य ही रहा ।

धीरे धीरे समय की गति के अनुसार इस देश के निवासियों में भी राष्ट्रीय भावना जागी और वह इस पुरातन चिकित्सा प्रणाली की उपादेयता को समझने लगे । शोक तो ऐसे व्यक्तियों पर है जो इतने कट्टरपंथी है, कि आधुनिक विज्ञान की खोजों को मानने से इंकार करते हैं । जहाँ हम उन व्यक्तियों को अच्छा नहीं समझते जो आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली को अवैज्ञानिक और अपूर्ण कहते हैं वहां हमें उन कट्टरपंथियों की आलोचना करने में भी संकोच नहीं करना चाहिये, जो आधुनिक विज्ञान की नवीनतम खोजों की उपादेयता को मानने से इंकार करते हैं ।

श्रेयस्कर तो यह है कि सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने के लिए हमें सदैव तत्पर रहना चाहिए, इसी में मानव की भलाई निहित है । यदि हम ऐसा नहीं करते तो, न तो हम अपने प्रति सच्चे हैं और न ही आयुर्वेद के प्रति । महर्षि चरक-भेषज की व्याख्या करते हुए लिखते हैं :—

"तदेव युक्तं भेषज्यं यदारोग्याय कल्पते"

अर्थात् श्रेष्ठ औषध वही है, जिससे आरोग्य की प्राप्ति हो । इससे सिद्ध होता है कि कोई भी पदार्थ जो स्वास्थ्य प्रदान करने वाला हो, भेषज कहा जा सकता है । अतः हमें उदार हृदय होकर प्रत्येक लाभदायक नवीन आविष्कृत औषधि अथवा उपचार को आत्मसात करने में संकोच नहीं करना चाहिये । इसी में केवल हमारा ही नहीं प्रत्युत मानव समाज का कल्याण है ।

प्राचीनतम नेत्रचिकित्सक महर्षि सुश्रुतने नेत्र रोगों के कारणों तथा उनकी प्रकृति को जानने का कोई वैज्ञानिक साधन नहीं बतलाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल बाह्य परीक्षा से ही सभी नेत्र रोगों का अनुमान लगा लिया जाता था।

आधुनिक युग के नवींनतम आविष्कृत यंत्रोंने आज के नेत्र चिकित्सक को नेत्र रोगों के कारण, उनकी पहचान तथा एक निश्चित परिणाम पर पहुंचने में अत्यन्त सहायता दी है :—

१. रैटिनोस्कोप (Retinoscope) इससे किरण वक्रता सम्बन्धी दोष का ज्ञान होता है।

२. ओप्थैल्मोस्कोप : नेत्र की आन्तरिक रचना का ज्ञान कराता है।

३. पैरिमीटर : दृष्टि के क्षेत्र का ज्ञान कराता है।

४. टोनोमीटर : इससे नेत्र के तनाव का ज्ञान होता है।

५. बायोफोटोमीटर : इससे रात्र्यन्ध्य (रात्री को दिखाई न देना) और विटामिन ए की कमी का बोध होता है आदि २।

इससे पहले लेख में यह बताया गया है कि मनुष्य, मन, चेतना शक्ति 'आत्मा' और शरीर इन तीन स्तम्भों पर खड़ा है। इनकी प्रकृति क्रमशः सात्विक, राजसिक और तामसिक है। मानव शरीर में विकार आजाने पर इन्हें हम वात, पित्त, कफ़ के नाम से पुकारने लग जाते हैं। निम्नलिखित क्रम को देखने से आशा है सब स्पष्ट हो जावेगा।

मन	प्राण	शरीर
सत्व	रजस	तमस्
वात	पित्त	कफ

नेत्र का मन के साथ निकटतम सम्बन्ध है और चेतना नेत्रगोलक में आविर्भूत होती है तथा जो कुछ भी हमें दिखाई देता है वह नेत्रों द्वारा आये हुए प्रतिबिम्बों की मन द्वारा की हुई व्याख्या है।

नेत्ररोगों के कारणों पर प्रकाश डालते हुए महर्षि सुश्रुत लिखते हैं, कि यदि नेत्र में स्थित वात, पित्त, कफ दोषरूप से विकृत हो जावे और दूसरे शब्दों में मन चेतन तत्व और शरीर के प्राकृतिक संयोग में विकार आजावे, तो निम्नलिखित कारणों से भिन्न २ रोग आंख में उत्पन्न हो जाते हैं।

घूरकर देखना, दृष्टि को किसी पदार्थ विशेषपर अपलक जमाए रखना, आंखों के अयोग्य पदार्थों की ओर देखने का प्रयत्न (यथासूर्य) शोक और चिन्ता, शारीरिक रोग, धूल तथा धुंआ, मिथ्या आहार, विहार, कब्ज, अत्यधिक स्त्री सहवास अथवा अन्य अप्राकृतिक कारणों द्वारा वीर्य नाश, संक्रमण आदि २।

इन उपर्युक्त कारणों को हमारे विचार में गौण अथवा सहायक कारण कहा जा सकता है।

हम प्रायः अपने दैनिक जीवन में यह देखते हैं कि हम में से प्रत्येक को उपर्युक्त कारणों में से गुजरना पड़ता है, किन्तु नेत्र रोग किसी २ को ही होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि यदि मन के ऊपर बोझ (Strain) हो, शारीरिक शक्ति क्षीण हो अथवा शरीर में विषैला मादा एकत्र हो चुका हो, अथवा नेत्रों का प्रयोग गलत तरीके पर किया जा रहा हो, तो उस अवस्था में ऊपर लिखे हुए सहायक कारण नेत्रेन्द्रिय के कार्य सम्बन्धी अथवा ऐंद्रियक विकार उत्पन्न करने में समर्थ हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

मिथ्या आहार विहार, शारीरिक दुर्बलता तथा अतिमैथुन आदि को दृष्टि विकृत होने में मुख्य कारण समझा जाता है, किन्तु यह तथ्य नहीं है। बहुत से पुरुष ऐसे भी मिलते हैं, जिनका आहार विहार भी ठीक नहीं है, शारीरिक दुर्बलता भी बहुत अधिक है तथा स्त्री सहवास भी वह अधिक ही करते हैं, फिर भी उनकी आंखें अच्छी हैं। इसके विपरीत ऐसे भी पुरुष देखनें को मिलेंगे जिनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। आहार भी नियमित है, मैथुन भी बहुत कम करते हैं, फिर भी उनकी आंखें खराब हैं। उपर्युक्त कारण रोगोत्पत्ति में सहायक हो सकते हैं, जब कि पहले से ही शरीर में विकार उत्पन्न हो चुका हो अथवा पैदा हो रहा हो।

उपर्युक्त तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि कारण दो प्रकार के हैं:-

१. **मुख्य कारण** : मानसिक दबाव "वात दोष" से, "शक्ति हीनता" पित्त विकृत होने से, तथा विषैले अंश के एकत्र हो जाने से अथवा नेत्र के गलत इस्तेमाल से 'कफज विकार'।

२. **सहायक कारण** : यह सभी कारण ऊपर बतलाए जा चुके हैं।

परीक्षा : जब कभी वात पित्त और कफ विकृत हो जावे, अर्थात् मानसिक तनाव बढ़ गया हो, नेत्र की शक्ति क्षीण हो गई हो अथवा तन्तु विषैले मादे से भर चुके हों

तो यह समझना चाहिए कि नेत्रों पर दबाव है अर्थात् नेत्रों को विश्राम नहीं मिल रहा। यह जानने के लिए कि क्या नेत्र दबाव में है अथवा विश्राम अवस्था में है? निम्नलिखित परीक्षा ठीक रहेगी।

आँखों को धीरे से बन्द करके हाथ की हथेलियों से इस प्रकार ढकें कि नेत्र गोलकों पर किसी प्रकार का दबाव भी न पड़ने पावे और उन पर प्रकाश की किरणें भीं न पहुंच सके। अब इस प्रकार विचार करें कि नेत्रों के सामने बिल्कुल अंधकार है। यह अंधकार तुरन्त और अविराम है तथा विश्रामावस्था का द्योतक है। यदि पूर्ण अंधकार प्रतीत नहीं होवे और यदि होवे भी और क्षणिक रहे तो यह इस बात का सूचक होगा कि आंख दबाव में है। इसे हम अपूर्ण विश्रामावस्था भी कह सकते हैं।

किरण वक्रता दोष तथा नेत्र के आंतरिक पटलों के रोग प्रायः विश्राम की कमी अथवा अत्यधिक दबाव के कारण होते हैं। शोथमय अवस्था, प्रायः सौत्रिक तन्तुओं में विषैला मादा एकत्र होने अथवा सौत्रिक तन्तुओं तथा मांसपेशियों के कठोर होने के कारण उत्पन्न होती है।

किरण वक्रता दोष

प्राचीन नेत्र चिकित्सक किरण वक्रता दोष को "तिमिर रोग" के नाम से पुकारता है और इसका कारण, घूरकर देखना, अपलक दृष्टि जमाए रखना, शारीरिक दुर्बलता तथा अत्यधिक मैथुन आदि बतलाता है। यद्यपि वह इसकी कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं दे सका है, फ़िर भी उसकी धारणा सही है। आधुनिक नेत्र विशेषज्ञ आज भी किरण वक्रता सम्बन्धी दोष के उत्पादक कारणों को निश्चित करने में असमर्थ है। केवल मात्र डा० बेट्सने अपने तथ्यों और प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि किरण वक्रता सम्बन्धी दोष घूरकर देखने का ही परिणाम हैं।

प्राकृतावस्था में नेत्र देखने की क्रिया को बिना किसी प्रयत्न के करते हैं और देखते समय उन पर किसी प्रकार का बोझ अथवा दवाव भी नहीं अनुभव होता। भिन्न भिन्न दूरी से देखने पर भी इनका (नेत्रों का) फोकस ठीक रहता है। किन्तु जब प्राकृतिक नेत्र किसी वस्तु अथवा पदार्थ को देखने का विशेषतया प्रयत्न करते हैं अथवा घूर कर देखते हैं तो दृष्टि में विकार आजाता है तथा किरण वक्रता सम्बंधी दोष उत्पन्न हो जाता है। जब दूरस्थ पदार्थ को देखने के लिए नेत्र को प्रयत्न करना पड़ता है और नेत्र पर दवाव पड़ता है तो नेत्र गोलक लम्बायमान अवस्था में हो जाता है। इसका

परिणाम यह होता है कि दूर की वस्तु दिखाई ही नहीं पड़ती और यदि दिखाई भी पड़ती है तो धुंधली दिखाई पड़ती है। इसे हम मायोपिया अर्थात् दूरांध्य कहकर पुकारते हैं। यदि नजदीक के पदार्थ को देखने से आंखों पर बोझ पड़े तो नेत्र गोलक चौड़ाई में फैलते हैं तथा हाईपरमैट्रोपिया अथवा समीपांध्य रोग उत्पन्न हो जाता है।

ऐस्टिग्मेटिज्म (Astigmatism) में नेत्र गोलक की वक्रता अथवा घुमाव में विषमता उत्पन्न हो जाती है, किन्तु यह अवस्था सदैव मायोपिया अथवा हाईपरमैट्रोपिया के साथ ही उत्पन्न होती है। ऐस्टिग्मेटिज्म आंख के उस विकार को कहते हैं जिसमें कोई पदार्थ ऊपर नीचे को अथवा अगल बगल एकसा स्पष्ट दिखाई न पड़े।

प्रमाण सिद्धि स्नैलेन टैस्ट चार्ट को १५ फीट के फासले पर टांग दें और आंखों को बिना मीचे हुए किसी बड़े अक्षर के एक भाग पर अपनी दृष्टि को जमा दे अथवा उस अक्षर के ऊपरी हिस्से को एक साथ ही देखने का प्रयत्न करें। इस प्रकार के देखने में जितनी अधिक से अधिक शक्ति आप लगा सके लगावें तो आपको ज्ञात होगा कि इस प्रकार करना दुखदायी है और आंखों में पीड़ा उत्पन्न कर देता है तथा जो छोटे अक्षर होंगे वह इतने धुंधले प्रतीत होने लग जावेंगे कि पहचानना भी कठिन हो जावेगा।

यह इस बात का द्योतक है कि मायोपिया आरम्भ हो गया है।

अब छोटे अक्षरों को पढ़ने वाली दूरी पर रखकर दृष्टि को जमावे तो वह भी तुरन्त धुंधले प्रतीत होंगे। इससे यह प्रतीत होता हैं कि हाईपरमैट्रोपिया है।

वृद्धावस्था--जब मनुष्य ४० वर्ष का हो जाता है तो वह बारीक टाईप को पढ़ने में कठिनाई अनुभव करता है, विशेषतया जबकि उसे कृत्रिम प्रकाश में पढ़ना पड़े। वह प्रायः ऐसी अवस्था में ऐनक के आधीन हो जाता है। समीप की दृष्टि निरंतर घटती ही चली जाती है और उसे अधिक शक्ति के शीशों कीं आवश्यकता पड़ती है और वह उसी गति से बदलता रहता है और अन्ततः वह अवस्था भी आजाती है कि अधिकतम शक्ति वाले शीशे भी उसे दृष्टि देने में असमर्थ हो जाते हैं और वह पढ़ने में अत्यधिक कष्ट अनुभव करता है।

नेत्र गोलक के आन्तरिक पटलों के रोग

मोतियाबिंद तो वृद्धावस्था में यह एक सर्व साधारण-सा रोग हो गया है। बहुत से रोगियों में इसकी उत्पत्ति, आंख पर अधिक दबाव पड़ने से, शक्ति के कम होने से, अथवा नेत्र काच का पूर्ण रूप से पोषण न होने के कारण होता है।

ग्लौकोमा (लिंगनाश) इतना सर्व साधारण रोग तो नहीं है, किन्तु मध्य आयु में यह रोग काफी मात्रा में हो जाता है । इसका कारण प्रायः विश्राम की कमी अथवा अधिक दबाव तथा नेत्र के अन्तः वर्ती तन्तुओं में विषैले अंश का एकत्र हो जाना है ।

मध्य आयु में बहुत से रोगी नेत्र गोलक के अन्तः पटलो के भयंकर रोगों के शिकारी होते हैं और ऐसा विश्वास जम गया है कि ऐसे भयंकर रोगों का कारण केवल मात्र उपदंश है । उन रोगियों की चिकित्सा में उपदंश चिकित्सा का ही आश्रय लिया जाता है, चाहे इस रोग का कोई पूर्व इतिहास न मिला हो और रक्त परीक्षा करने पर भी उपदंश के कीटाणु प्राप्त न हो सके हों । निरंतर चिकित्सा देने के पश्चात् भी अधिकतर रोगियों का रोग बढ़ता ही जाता है । वस्तु स्थिति यह है कि बहुत कम रोगियों में उपदंश विरोधी चिकित्सा से लाभ होता है । अधिकतर रोगियों में तो वास्तविक निदान ही नहीं हो पाता । **इसका वास्तविक कारण है प्रयत्न लगाकर देखने की आदत ।**

आजकल यह भी एक प्रथा हो गई है कि जब भी कोई नेत्र के आंतरिक पटलों का भयंकर रोगी सामने आता है तो चिकित्सक उसे सभी दांत निकलवा देने का परामर्श देता है । यह परामर्श उस समय दिया जाता है जब चिकित्सक को और कोई कारण समझ में नही आता तो वह पायरिया का ही आश्रय लेता है । दांत निकल जाने के पश्चात् भी रोगी को शायद ही कुछ संदिग्धसा लाभ प्राप्त होता है । यह सत्य है कि रुग्ण दांतों की चिकित्सा अनिवार्य है और करनी भी चाहिए, किन्तु इस प्रकार से सभी दांतों का निकलवा देना भी अक्सर हानिकारक सिद्ध होता है ।

इसके वास्तविक कारणों का ज्ञान हम उपशय अथवा अनुपशय से जान सकते हैं । उपशय कहते हैं, सात्म्य अथवा मुआफिक तथा अनुपशय कहते हैं असात्म्य अथवा नामुआफिक को ।

पाँच सौ वर्ष पुराना मारड्डूर
४०) प्रति मन शुद्ध ६०) प्रति मन भस्म ३०) सेर
शुद्ध संखिया सफेद–आठ आना तोला
शक्ति आयुर्वेद मन्दिर लिमिटेड––चौमू जयपुर

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति अधिवेशन

(पृष्ठ ५९८ का शेष)

"स्थायी समिति का यह अधिवेशन नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन विद्यापीठ के संगठन, इसकी सम्बद्ध संस्थाओं के हित एवं इसकी नीति के विरुद्ध आचरण करने वाले सदस्यों के कार्यों की जांच करने के लिए तथा ऐसे कार्यों की रोक-थाम के लिए उपायों पर परामर्श देने के लिए निम्नांकित ५ महानुभावों की एक समिति निर्माण करता है :-

१. वैद्य श्री ओंकार प्रसाद, महासम्मेलनोपाध्यक्ष। २. श्री स्वामी जयरामदास, जयपुर। ३. श्री हरिदत्त शर्मा शास्त्री, जालंधर। ४. श्री गुरुदत्त, प्रधानमंत्री। ५. श्री रामगोपाल शास्त्री, विद्यापीठ मंत्री।"

ख—वैद्य श्री बालकृष्ण द्विवेदी (कानपुर) जिन्हें स्थायी समिति के ता० ११-७-४८ के अधिवेशन द्वारा अनुशासन भंग के कारण सदस्यता से पृथक् किया गया था, का प्रार्थना पत्र उपस्थित हुआ। श्री द्विवेदीजी ने स्वयं उपस्थित होकर खेद प्रकट किया तथा आश्वासन दिलाया कि भविष्य में वे कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे। तदुपरान्त सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि उन पर जो प्रतिबन्ध पहले लगाया गया है उसे अब हटा लिया जाय।

ग—जनरल ऑफ आयुर्वेद के विषय पर निम्नांकित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। निश्चय हुआ कि "जनरल ऑफ आयुर्वेद को महासम्मेलन पूर्णरूपेण अपने अधिकार में ले लें और इसका स्वयं प्रकाशन करें।"

उपर्युक्त प्रस्ताव कविराज श्री आशुतोष मजुमदार के समक्ष उपस्थित किया गया तथा उन्होंने जनरल ऑफ आयुर्वेद को महासम्मेलन को दे देना सहर्ष स्वीकार किया। तदुपरान्त निम्नांकित प्रस्ताव उपस्थित किया गया तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

प्रस्ताव—"स्थायी समिति का यह अधिवेशन कविराज श्री आशुतोष मजुमदार जी को उनके जनरल ऑफ आयुर्वेद को महासम्मेलन को दे देने के उपलक्ष में उनको हार्दिक धन्यवाद देता है।"

सभापति जी का धन्यवाद करके रात्रि को ८ बजे सभा विसर्जित हुई।

गुरुदत्त
प्रधानमंत्री
नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

प्र० का फोन नं० ५६३ स्थापित १८९२ तार–'इंजेकशन' झांसी

देशमान्य–**मिश्रा–आयुर्वेद इन्जेकशन**–भारतीय

द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेकशन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेद इन्जेकशन विज्ञान पुस्तक, संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ।।=) नियमादि मुफ्त मंगायें।

सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २।।) पोस्ट ।।=)

सर्व प्रथम आविष्कता एवं एक मात्र निर्माता—

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू. पी.

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)

गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे. के. शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४३ वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। ७५ पृष्ठ का हिन्दी सूचीपत्र मुफ्त। अंग्रेज़ी, गुजराती, उर्दू और भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों व ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपयुक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० [illegible]मनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक एक वाक्य हज़ारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के नीरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होने वाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हज़ार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसा उत्तम पुस्तक दूसरा नहीं है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १।।।), डाक खर्च ।।=), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० एजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि[illegible]ड,

कलकत्ता, पटना, झाँसी, [illegible]० आई०

रजिस्टर्ड नं० डी० पी० ६२४

विज्ञान और भारत

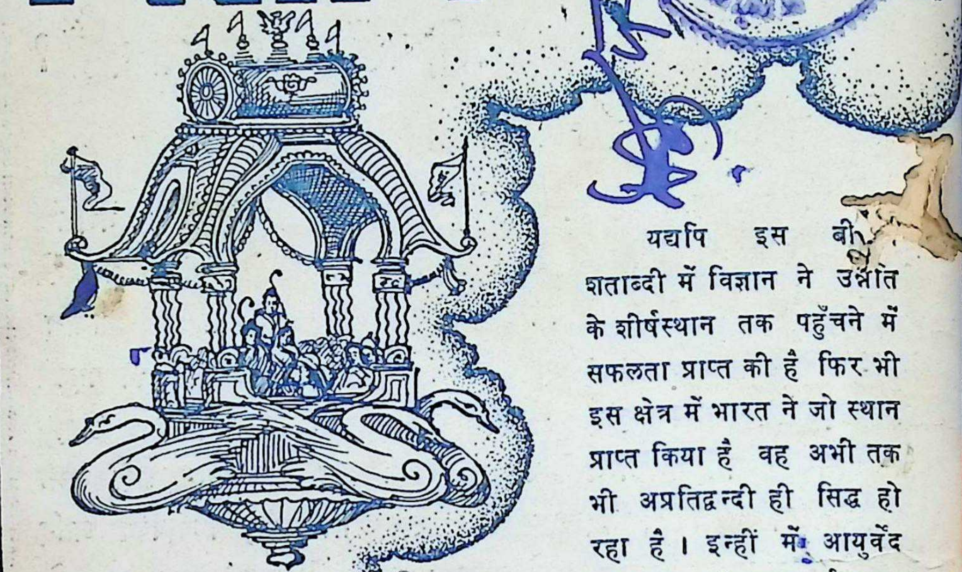

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. वर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लि०

पोस्ट-बक्स ५५४, कलकत्ता।

नि० भा० आयुर्वेद म[illegible]न के [illegible]ए पं० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी द्वारा प्रकाशित
[illegible]क:-कैक्स्टन प्रेस, नई देहली।

नवम्बर
१९५१

कार्तिक
२००८

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

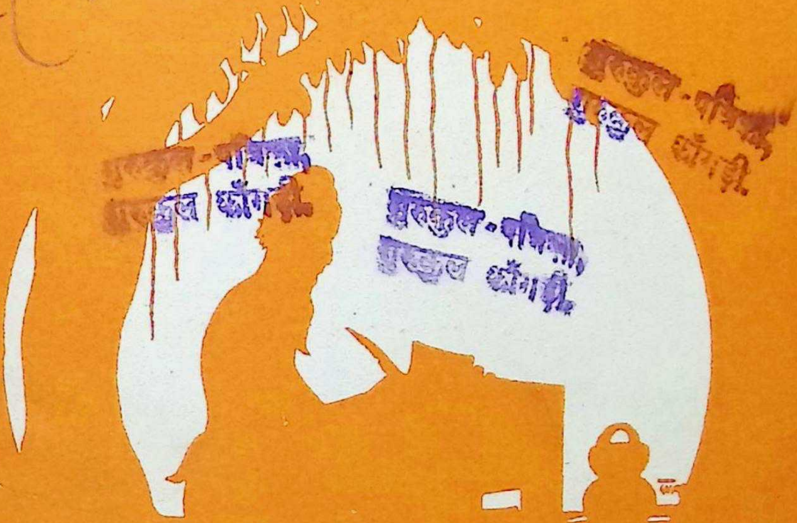

गुरुकुल-पत्रिका
गुरुकुल काँगड़ी

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए० [illegible]० आई० एम०

देखिये ये क्या कहते हैं:—

आयुर्विज्ञानाचार्य पं श्री गयाप्रसादजी शास्त्री, भिषग्रत्न, अध्यक्ष हैदराबाद स्टेट आयुर्वेदिक कांग्रेस, सम्पादक अजन्ता, हैदराबाद (दक्षिण) के प्रमुख वैद्य हैं। गत वर्ष आपने 'ए फाइव' गोलियों का मलेरिया के रोगियों पर परीक्षण किया जिसका फल आपही के शब्दों में छपा है।

इसी प्रकार भारतवर्ष के कई स्थानों पर 'ए फाइव' गोलियों का मलेरिया ज्वर पर परीक्षण हुआ है तथा 'ए फाइव' गोलियाँ सफल रही हैं।

'ए फाइव' गोलियों का निर्माण आधुनिक ढंग पर आयुर्वेद के अनुसार पांच वर्ष के परीक्षण के पश्चात् किया गया है जो इसकी सफलता का प्रमुख कारण है।

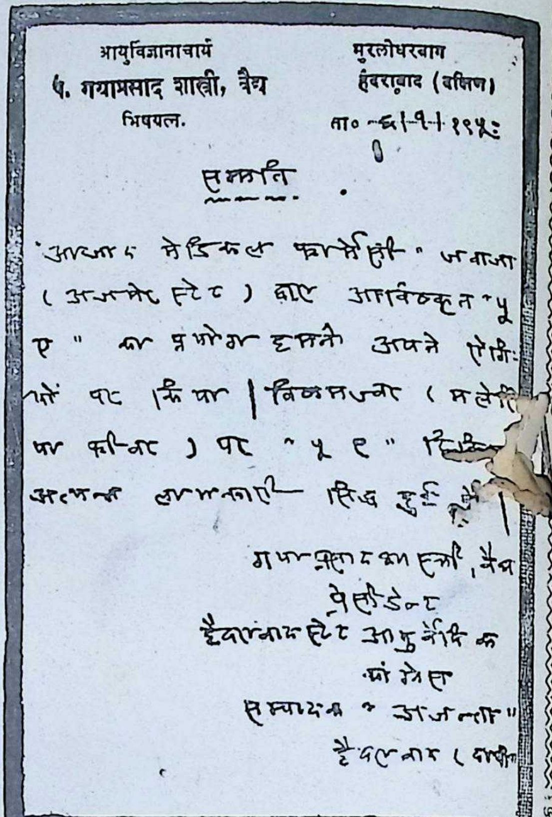

आयुर्विज्ञानाचार्य
पं. गयाप्रसाद शास्त्री, वैद्य
भिषग्रत्न.

मुरलीधरबाग
हैदराबाद (दक्षिण)

ता० ८।१।१९५

सम्मति

"आजाद मेडिकल फार्मेसी" जवाजा (अजमेर स्टेट) द्वारा आविष्कृत "५ ए" का प्रयोग हमने अपने रोगियों पर किया। विषमज्वर (मलेरिया ज्वर) पर "५ ए" टिकियां अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई हैं।

गयाप्रसाद शास्त्री, वैद्य
प्रेसीडेन्ट
हैदराबाद स्टेट आयुर्वेदिक
कांग्रेस
सम्पादक "अजन्ता"
हैदराबाद (दक्षिण

"ए फाइव" गोलियाँ अपने ढंग की एक ही औषधि हैं। देशी तथा विदेशी किसी भी दवा में निम्न गुण, जो कि "ए फाइव" गोलियों में विद्यमान हैं, नहीं मिलते।

- ● **स्वाद में मीठी** :—बच्चे भी सरलता से ले लेते है।
- ● **शीघ्र प्रभावोत्पादक** :—लेते ही तुरंत प्रभाव करती हैं।
- ● **सुरक्षित** :—शरीर के किसी भी अवयव को हानि नहीं पहुँचाती हैं।

ए फाइव गोलियाँ

मलेरियाका मीठा इलाज़

A5
MALARIA
AZAD MEDICAL PHARMACY JAWAJA

पाँच गोली के पैकेट तथा पाँच सौ गोली की शीशी में मिलती हैं। पूर्ण विवरण तथा सुविधा के लिए आज ही लिखें :—

निर्माता आज़ाद मेडिकल फार्मेसी

ज[illegible]ाजा (अजमेर स्टेट)

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली ।

वर्ष ३७
अङ्क ११
नई दिल्ली, कार्तिक २००८, नवम्बर १९५१
मूल्य ।।)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. सम्पादकीय	...	५२२
२. पाठकों के पत्र	...	५२४
३. नेत्र विज्ञान	अग्रवाल, ओम्प्रकाश	५२९
४. वृक्कशोथ	पुरुषोत्तमदेव	५३४
५. कामावेग के विकार	बलदेव	५४३
६. दर्शनों में आयुर्वेद	प्रियव्रत	५४६
७. आयुर्वेद में जीवाणु	सोमदेव	५५३
८. गृध्रसी चिकित्सा	नृसिंहदेव	५५९
९. आयुर्वेद लोक		५६०
१०. परीक्षाफल		५६३

सम्पादकीय

क्या आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति द्वारा रोग की शान्ति देर से होती है ?

आज कल आम जनता में यह चर्चा सुनने में आती है कि अन्य चिकित्सा पद्धतियों की अ[illegible] आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति द्वारा आरोग्य लाभ कुछ देर से होता है । पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति आशुलाभप्रद होने के कारण दिन प्रतिदिन लोक प्रिय होती जा रही है । कई बार तो ऐसे उदाहरण भी देखने में आए हैं कि रोग का निदान भी ठीक है, औषधि भी ठीक दी जा रही है, रोगी पथ्यसेवी भी है किन्तु फिर भी लाभ उतनी जल्दी नहीं हो पाता, जितनी कि हम आशा करते हैं । इसके कारण पर कभी हम ने सोचने की कोशिश ही नहीं की, यही कारण है कि संसार की दौड़ में हम इतने अग्रसर नहीं हैं, जितना कि हमें होना चाहिए ।

आजकल प्रायः जितनी भी वनौषधियां हमें बाज़ार में मिलती हैं, वह पुरानी, निर्वीर्य तथा निःसत्त्व मिल रही हैं । दुकानदार अपनी पुरानी से पुरानी काष्ठौषध को निकालने का प्रयत्न करता है, साथ ही साथ अपने अन्य दूकानदारों की अपेक्षा कमभाव का लालच देकर निर्माणशालाओं (फ़ार्मेसी) के अधिकारियों को अपनी ओर आकृष्ट करता है । निर्माणशालाओं के अधिकारी भी अपनी निर्मित औषधियों को मार्केट में सस्ते से सस्ता देने के लिए, उन्हें सड़ी बुसी वनस्पतियों को, जोकि फैंक देने योग्य हैं, औषध-निर्माण में प्रयुक्त करते हैं, तो उन औषधियों से परिणाम भी वैसे ही निकलते हैं ।

यदि हम चाहते हैं कि हमारी औषधियां उतनी ही आशुलाभप्रद और इच्छित फल देने वाली हों तो हमें सदैव ताज़ी, परिपक्व और उत्तम वनस्पतियों को ही औषध-निर्माण में प्रयोग करना चाहिए ।

इस समस्या के हल के लिए वैद्यसमाज को तुरन्त ही प्रत्येक प्रान्त में "को-ओपरेटिव वनौषधि भण्डार" खोलने का आयोजन करना चाहिए । इन भण्डारों के शेयरहोल्डर सभी वैद्य हों तथा इसका प्रबन्ध भी वैद्यों के हाथ में हो । काष्ठौषधियों के बारे में यह नियम हो कि यदि शास्त्र में वर्णित अवधि बीत जाने के पश्चात वह हीनसत्त्व हो गई है तो उसे न बेचा जावे प्रत्युत नष्ट कर दिया जावे । ऐसे विश्वस्त को-ओपरेटिव भण्डारों के बनते ही सभी वैद्यबन्धु और निर्माणशालाएं विश्वस्त औषधियों की प्राप्ति के लिए अपने आप ही इन भण्डारों से वनौषधियां (तथा खनिज पदार्थ) ख़रीदने लग जावेंगी । इस प्रकार वैद्य समाज भी संगठित होगा और औषधिय

भी उत्तम गुणों से युक्त बनेंगी तथा हम इस भ्रममूलक विचार को जनता में फैलने से रोकने में सफल होंगे कि आयुर्वैदिक औषधियों से रोग देर से शान्त होता है।

रूस में आयुर्वेद

अभी-अभी भारत के प्रख्यात अभिनेता श्री अशोककुमार रूस की यात्रा के पश्चात् भारत लौटे हैं, उन्होंने अपनी एक भेंट में यह विचार व्यक्त किए हैं कि रूस में भारतीय आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार "कायाकल्प" हो रहे हैं। हमारी स्वतन्त्र भारत सरकार को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए कि संसार के अन्य देश तो आयुर्वेद के सिद्धांतों को अपनाकर लाभ उठा रहे हैं, और हमारी अपनी सरकार इस से सौतेली मां जैसा व्यवहार कर रही है। यह ध्रुव सत्य है कि यदि भारत सरकार स्वास्थ्य विभाग में व्यय होने वाली राशि में से २५ प्रतिशत भी आयुर्वेदोत्थान में लगावे तो जहां हम अन्य वस्तुओं में स्वावलम्बी होने का प्रयत्न कर रहे हैं, वहां हम औषधि-क्षेत्र में भी स्वतन्त्र, आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी हो सकते हैं।

भगवान् धन्वन्तरि की पुनीत स्मृति में

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के आदेश के अनुसार समस्त भारत में कार्तिक त्रयोदशी २८ अक्टूबर को धन्वन्तरि दिवस अप्रत्याशित उत्साह के साथ मनाया गया। पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित विवरण से पाठकों को यह जान कर असीम आनन्द होगा कि वैद्यसमाज में वव जागरण के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा आयुर्वेद के प्रति प्रदर्शित उपेक्षा की तीव्र निन्दा करते हुए यह मांग की गई कि राज्यों में स्वतन्त्र आयुर्वेद विभाग स्थापित किये जायं तथा केन्द्र में एक आयुर्वैदिक बोर्ड तथा सर्वोपरि आयुर्वैदिक समिति स्थापित की जाय जो आयुर्वेद विषयक योजनायें तथा नीति निर्माण आदि में केन्द्रीय तथा राज्य की सरकारों का पथ-प्रदर्शन करे। उक्त बोर्ड तथा समिति के प्रमुख अधिकारी आयुर्वेद के प्रौढ़ विद्वान् ही होने चाहियें। इस दिन विभिन्न प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन तथा नगर व ग्रामों में सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया जिनका प्रारम्भ ध्वज उत्तोलन; संगीत, प्रभातफेरी आदि के साथ हुआ।

इस दिशा में राजस्थान प्रान्त के सरदार शहर नगर के धन्वन्त्रि दिवस समारोह का कार्यक्रम विशेषतः उल्लेखनीय है। सप्ताह व्यापी आयोजन में प्रतिदिन प्रभातफेरी के बाद नगरपालिका भवन में दुःसाध्य जटिल रोगियों की निःशुल्क निदान तथा औषध व्यवस्था की गई। मध्याह्न में नगर के विभिन्न मुहल्लों तथा शिक्षण संस्थाओं में आयुर्वैदिक चिकित्सा और स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी व्याख्यानों के साथ-साथ श्री सम्पतराय विद्यालय के ४सौ छात्रों की स्वास्थ्य परीक्षा की गई। इसी प्रकार रात्रि में मैजिक लेनटर्न की सहायता से भाषण दिये जाने के अतिरिक्त नगर के प्रमुख वैद्यों का एक दल मोटर लारी द्वारा समीपवर्त्ती ग्रामों में गया जहां निःशुल्क रोगी निरीक्षण, स्वास्थ्य-[illegible]-चर्चा तथा विद्वानों के आयुर्वेद महत्त्व पर भाषण हुए।

निःसन्देह, इस प्रकार के दिवस पर जहां हम तपः पूत, मानव सेवा व्रती, आयुर्वेद विज्ञान

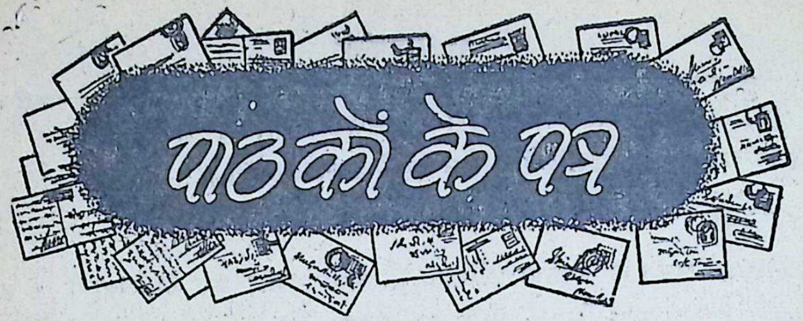

प्रश्नों के उत्तर

गत सितम्बर मास की पत्रिका में उपस्थित किये गये प्रश्नों पर विभिन्न विद्वानों के विचार :—

तृतीय प्रश्न

"अनुबन्ध्यानुवन्ध्यभेदाश्च द्विधा"। यह पंक्ति कारणभेदों को व्यक्त करते हुए माधव में वर्णन की गई है जिसका अर्थ "अनुबन्ध्यः प्रधानं, अननुबन्ध्योऽप्रधानम्। यदाह चरकः, 'स्वतन्त्रो-व्यक्तलिंगो यथोक्तसमुत्थानोपशमो भवत्यनुबन्ध्यः। तद्विपरीतलक्षणस्त्वननुबन्ध्यः"—इति। इसका प्रयोजन संसर्गज व्याधि में अनुबन्ध्य विशेष से चिकित्सा करनी चाहिए जो अनुबन्ध के विपरीत न हो। यदुक्तं चरके—"तत्रोपद्रवस्य प्रायः प्रधानप्रशमात्प्रशमः इति उपद्रवोनुबन्धः।

इन उक्त चरक के वाक्यों से आप को ज्ञान हो जायगा कि "ज्वरानुबन्धरहित" अर्थात् जो रोगी ज्वर के उपद्रवों से रहित हो तथा बलवान हो, जो "चिकित्सा राजयक्ष्मा के योग्य हो" उसे सहन कर सकता हो, आत्मवन्तं अर्थात् जितेन्द्रिय हो, मन्दाग्नियुक्त न हो, "अकृशं नरम्" अर्थात् बलमांस से कृश न हो ऐसे रोगी की चिकित्सा करनी चाहिये। माधव निदान ने ज्वर के साध्य लक्षण वर्णन करते हुए लिखा है कि "बलवत्स्वल्पदोषेपु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः"। यहां "अनुपद्रव" शब्द कहा है अर्थात् उपद्रव रहित ज्वर साध्य माना है। उपद्रवाणि—"कासो मूर्छाऽरुचि श्छर्दिस्तृष्णातिसारविडग्रहा। हिक्काश्वासाङ्गभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश"—इति। इन उपद्रवों से रहित जो यक्ष्मा (ज्वर) हो उसे चिकित्सा योग्य जाना चाहिए। इस मेरे विचार को सम्मुख रख कर उक्त श्लोक का अर्थ करने से आपका अर्थात् पं० विद्याधर जी का तथा पं० मुन्शीराम जी का सन्देह अवश्य दूर हो जायेगा।

द्वितीय प्रश्न

आयुर्वेदाचार्य पं० मुन्शीराम जी ने "धराम्बुदमानलज्वलनाकाश मारुतैः" इत्यादि श्लोक

संस्थापक महर्षि धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं वहां साथ ही संगठित आयोजन द्वारा वैद्यसमाज में स्फूर्ति और नव चेतना का संचार कर सकते हैं। हम चाहते हैं, महर्षि सुश्रुत और आचार्य चरक के संस्मरण दिवस भी इसी प्रकार सोत्साह मनाये जायं। सुप्तप्राय वैद्य समाज को एक सूत्र में आबद्ध करने और उसे झकझोर कर जागृत करने का यह अति श्रेयस्कर मार्ग है।

की संगति चरक सुश्रुतादि से करने को कहा है। मेरे विचार में पाठ वाग्भट्ट ने रसभेदीयाध्याय में स्पष्ट बर्णन किया है यथा—

"क्ष्माम्भोऽग्निक्ष्माम्बुतेजः खवाय्व्यग्न्यनिलगोनिलैः।
द्वयोल्वणैः क्रमाद्भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः। इति स्पष्टार्थः॥

तथा चरक में रसादियों का वर्णन करते हुए महाभूतों को रसों का आश्रय स्वीकार किया है, यथाह चरकः—तेषां षण्णां रसानां योनिरुदकम्,"—तथाच—"पञ्चमहाभूतविकारास्त्वाश्रयाः,"—इति। उक्त दोनों वाक्यों से रसों की उत्पत्ति का कारण उदक है और पञ्चभूतों के संयोग से यह व्यक्त होते हैं अर्थात् पृथ्व्यादि गुणों का इसमें समावेश होता है। यथाचोक्तम्—"तेष्वाश्रयेषु द्रव्यसंज्ञकेषु गुणा गुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्याः" ॥ इति ॥

उन भूम्यादि भूतों का जिनसे षडरसों का परिज्ञान होता है वह "द्रव्य"(हरीतक्यादि) होते हैं उन्हीं से गुरु आदि गुणों का ज्ञान हो सकता है अतः यह सिद्धान्त है कि द्रव्य पञ्चभूतात्मक होते हैं जिनसे रसों का ज्ञान अवश्यम्भावी है, यथाचोक्तम् सुश्रुते—"तत्र, पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानां समुदयाद द्रव्याभिनिर्वृत्तिः, इति। इन वाक्यों से व्यक्त हो जाता है कि शारङ्गधर का उक्त श्लोक चरकादि संहितायों के अनुरूप ही है।

प्रथम प्रश्न

वातकलाकलीय अध्याय में भगवान पुनर्वसुरात्रेय ने सर्व ऋषियों के वाद को श्रवण कर स्वमत वर्णन किया है। उवाचेति––आप सब ने युक्त कहा—अन्यत्र एकान्तिक वचन से। सब ही "वात पित्त कफ" प्रकृतिभूत होने पर अर्थात् अधिकृत होने से पुरुष को जिसकी सर्व इन्द्रिय विकृति रहित हों उसे बलवर्णसुख युक्त महत् आयु को प्राप्त कराते हैं; और भली प्रकार आचरण करने से त्रिवर्ग की भान्ति विशेष कल्याण इस लोक में तथा परलोक में पुरुष को प्राप्त होता है। तथ वही तीनों वातादि विकृतावस्था में विशेष विकारों को उत्पन्न कर देते हैं, जैसे विकृत तीनों ऋतुएं (अर्थात् शीतोष्णवर्षा)। बड़े विकारों को उत्पन्न कर लोक का विनाश कर देती हैं इसी प्रकार वातादि अनाचार तथा मिथ्याहारादि से विकृत होकर देह में नाश का कारण हो जाते हैं।

मैंने पं० मुन्शीराम जी के तीनों प्रश्नों का उत्तर अपनी तुच्छ मति द्वारा देने का साहस किया है।

(२) नानकचन्द वैद्य शास्त्री, दिल्ली।

मैंने गत मास तीन प्रश्न चरक, शार्ङ्गधर माधव निदान के सम्मेलन पत्रिका में भेजे थे। श्री माननीय पं० विद्याधर जी विद्यालङ्कार आयुर्वेद शास्त्री भिषगाचार्य प्रोफेसर गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज हैदराबाद ने अपना अमूल्य समय देकर इन प्रश्नों के उत्तर देने की कृपा की परन्तु मेरे कुछ इसमें सन्देह रह गये हैं जो निम्नाङ्कित हैं। आशा है आप उन्हें इसी प्रकार अपना समय देकर कृतार्थ करेंगे।

चरक सूत्र स्थान अध्याय १२ में—

"तच्छ्रुत्वा काप्यवचो भगवान् पुनर्वसुरात्रेय उवाच"

इस पाठ के अन्त में "ऋतवस्त्रय इव विकृतिमापन्नाः लोकमशुभेनोपघातकाल इति ।"

इसमें सन्देहात्मक "ऋतवस्त्रयः" इसकी व्याख्या कविराज श्री अत्रिदेव जी विद्यालङ्कार ने तीन ऋतुयें की हैं जबकि यह स्पष्ट है कि ऋतु छ होती हैं तो यहां तीन कैसे। हां यदि इसका अर्थ ऋतवः और त्रयः का अर्थ तीन दोषों के साथ सम्बन्ध कर लिया जाय जैसे (ऋतवः विकृताः) (दोषाः विकृताः), तो ऐसा करने से व्याख्या मेरी तुच्छबुद्धि के अनुसार ठीक हो सकती है यदि तीन ऋतुओं से सम्बन्ध है वह कौनसी तीन ऋतु हैं।

प्र० २—शाङ्गधर संहिता पूर्वखण्ड द्वितीय अध्याय में—

"धराम्बुध्मानल जलज्वलनमाकाशमारुतैः ।
वाय्वग्निध्मानिलैर्भूतद्वयै रसंभवः क्रमात् ॥"

इसके लिये यह पूछा गया था कि यह श्लोक चरक सुश्रुतादि के भावार्थों के प्रतिकूल है, या अनुकूल है, क्योंकि रसोत्पत्ति पाञ्च महाभूतों के उत्कर्ष और अपकर्ष से मानी है जिसके आर्षग्रन्थों ने ६३ भेद किये हैं अतः शाङ्गधर से चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में भेद पाया जाता है जिसका चक्र निम्नाङ्कित लिखा जाता है जिससे आप को समझने में सुविधा होगी कि शाङ्गधर का चरकादियों से क्या भेद है यह बहुत मोटी बात है अतः या तो शाङ्गधर के पाठ को बदल देना चाहिये क्योंकि यह आर्षग्रन्थों के प्रतिकूल है।

शाङ्गधर मत	सुश्रुत सूत्र स्थान अ० ४२	चरक सूत्र स्थान अ० २६
पृथ्वी जल से, मधुर	पृथ्वी जल से, मधुर	पृथ्वी जल से, मधुर
पृथ्वी अग्नि से, अम्ल	पृथ्वी अग्नि से, अम्ल	पृथ्वी अग्नि से, अम्ल
अग्नि जल से, लवण	जल अग्नि से, लवण	जल अग्नि से, लवण
आकाश वायु से, कटु	वायु अग्नि से, कटु	वायु अग्नि से, कटु
बायु अग्नि से, तिक्त	वायु आकाश से, तिक्त	वायु आकाश से, तिक्त
पृथ्वी वायु से, कषाय	पृथ्वी वायु से, कषाय	वायु पृथ्वी से, कषाय

इस प्रकार दो रसों कटु और तिक्त में भेद है।

"ज्वरानुबन्धरहितम्" शब्द की व्याख्या माधव निदान के यक्ष्मा निदान में पूछी गई थी जिसको श्री पण्डित जी ने आक्षेपक बतलाया और दूसरे 'रहितम्' शब्द की जगह 'सहितम्' ऐसा पाठ भी बतलाया सो इसमें 'वदतोव्याघात' दोष आता है सो इसको पहले आक्षेपक मानते हैं दूसरे 'रहितम् की जगह 'सहितम्' ऐसा पाठ कर लिया जाय तो ठीक है सो इन दोनों बातों में कौनसी बात मानी जाये आक्षेपक माना जाय, या 'रहितम्' की जगह 'सहितम्' पाठ माना जाय।

"ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम् ।
उपाक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥"

मान्य सदस्यों व ग्राहकों से अनुरोध

१—"पत्रिका" का इस वर्ष का ११वां अँक आपके हाथ में है। आगामी दिसम्बर के अंक के साथ आपका इस वर्ष का मूल्य समाप्त हो जाएगा।

२—अच्छा हो यदि सदस्य और ग्राहक महानुभाव आगामी वर्ष १९५२ का चन्दा दिसम्बर १९५१ तक भेज दें। अन्यथा जनवरी मास १९५२ में हमें वी० पी० भेजना पड़ेगा। यह ध्यान रखें कि वी० पी० द्वारा आपको ११ आना अधिक व्यय देना पड़ेगा।

स्मरण रखें

३—पत्रिका के प्रचार और प्रसार में वृद्धि करना आपका प्रमुख कर्त्तव्य है। यद्यपि ग्राहक संख्या में प्रति वर्ष वृद्धि हो रही है पर हम उससे सन्तुष्ट नहीं हैं। हम वह दिन देखना चाहते हैं जब भारत, लंका और नेपाल के प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी के हाथ में यह पत्रिका हो। पर यह कैसे और कब? तभी जब प्रत्येक वैद्य स्वयं ग्राहक बने और कम से कम पाँच नये ग्राहक बनाये। यह

इस श्लोक में 'ज्वरानुबन्धरहितम्' इतना पाठ ही संशयात्मक है शेष पाठ चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों से मिलता जुलता है यदि इतना पाठ ही आक्षेपक है तो श्लोक की पूर्ति के लिये इसकी जगह क्या पाठ होना चाहिये।

दूसरे आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् 'ज्वरानुबन्धरहितम्' को यक्ष्मा मानते हैं अर्थात् बुखार के बिना भी यक्ष्मा होती है जैसे--

अन्तड़ियों को यक्ष्मा, व्रणजन्य यक्ष्मा, अस्थि-की यक्ष्मा, इनमें निरन्तर ज्वर नहीं रहता।

अनुबन्ध शब्द का अर्थ कोशादि ग्रन्थों में—अमरकोष तृतीय काण्ड नानाऽर्थ वर्ग में ये हैं :—

"दोषोत्पादेऽनुबन्धेस्यात् प्रकृत्यादि विनश्वरे।
मुख्यानुयायिनि शिशौ प्रकृतस्यानुवर्तने॥"

और दूसरे हिन्दी कोष में इसी का अनुवाद किया है प्रारम्भ, अन्वय, उपक्रम इति।

जिसको निरन्तर ज्वर न रहे और बलवान् क्रियासह इत्यादि लक्षणों से युक्त यक्ष्मा रोगी साध्य होते हैं, ऐसा अर्थ करने में क्या दोष है। आशा है कि आप इन विषयों पर पुनः विचार करने की कृपा करेंगे।

मुन्शीराम शर्मा, आयुर्वेदाचार्य,
उपाध्यक्ष अ० भा० विद्यापीठ,
भटिंडा।

(इस विषय पर अन्य विद्वानों के लेख भी प्रार्थनीय हैं पर लेख संक्षिप्त और युक्तिपूर्ण होने चाहियें)

---सं० प०

मान्य सदस्यों व ग्राहकों से

वैद्य बन्धुओं की एक मात्र संगठित और प्राचीन संस्था महासम्मेलन, आयुर्वेद और राष्ट्र की निःस्वार्थ सेवा है।

विज्ञापन भी दें

अनेक वैद्यबन्धु अपनी औषधियों और फार्मेसियों के विज्ञापन देते हैं। यह विज्ञापन प्रायः आयुर्वेदेतर पत्रों में प्रकाशित होते हैं। कई सम्पन्न, धनी मानी वैद्य व उनकी फार्मेसियां प्रति मास विपुल धन इस दिशा में व्यय करती हैं पर इनमें से बहुत कम महानुभावों ने अभी तक पत्रिका को अपने विज्ञापन का साधन बनाया है। पत्रिका की ऐसी उपेक्षा अनुचित है। यह नहीं भूलना चाहिये कि आज के घोषणा युग में किसी भी पत्र की आय का मुख्य स्रोत विज्ञापन ही ही होते हैं। आपका विज्ञापन पत्रिका को पुष्ट करने में बड़ा सहायक हो सकता है।

लेख भेजें

यदि आपने अपने तुलनात्मक अध्ययन और गम्भीर अनुशीलन से कोई आयुर्वेद सम्बन्धी खोज की है व अपने चिकित्सा कार्य में किसी दुःसाध्य रोगी का सफल उपचार किया है तो उसका संक्षिप्त और साभिप्राय वर्णन सुवाच्य और सुन्दर लिपि में कागज के एक ओर हाशिया छोड़ कर भेजें। आयुर्वेद पर हो रहे आक्रमणों का निराकरण विद्वत्तापूर्ण वैज्ञानिक लेखों द्वारा ही किया जा सकता है। पत्रिका के स्तम्भ इसके लिए उन्मुक्त हैं। हम आयुर्वेदज्ञों के सहयोग के इच्छुक हैं।

आपका कर्त्तव्य

वैद्य बन्धुओ! हृदयंगम कर लो कि आज के संघर्षमय जीवन में अस्तित्व स्थिर रखने का एकमात्र उपाय संगठन है। वैद्य समाज के संगठन का मूर्त्तरूप महासम्मेलन है जिसे पुष्ट और अनुप्राणित करना प्रत्येक वैद्य बन्धु का कर्त्तव्य है। महासम्मेलन की प्रतीक रूप पत्रिका के प्रति अपने कर्त्तव्य को अनुभव करिये और सक्रिय सहयोग देने का निश्चय करिये।

९०/८ कनाट सरकस,
नई दिल्ली।

सम्पादक
आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

जनरल आव आयुर्वेद कम मूल्य में

प्रचार की दृष्टि से यह निश्चय किया गया है कि महासम्मेलन के अंग्रेजी भाषा के मुख्य पत्र जनरल आव आयुर्वेद १९५१ के समस्त अंक छात्रों को २ रु० ८ आने में और वैद्यों को ३ रु० ८ आने में केवल इस वर्ष प्राप्त हो सकेंगे। इन अँकों में बहुत गवेषणापूर्ण और ज्ञानवर्द्धक लेख हैं। प्रत्येक अंक संग्रहणीय है। छात्रों और वैद्यों को इससे लाभ उठाना चाहिये। बहुत कम प्रतियाँ अवशिष्ट हैं। अवसर मत चूकें। इन अंकों का वास्तविक मूल्य ७ रु० है।

९०/८ कनाट सरकस,
नई दिल्ली।

व्यवस्थापक
जनरल आव आयुर्वेद

नेत्र विज्ञान

लेखक : डा० आर. एस. अग्रवाल, २५ दरियागंज, देहली
कविराज ओम्प्रकाश वैद्यवाचस्पति, २३ दरियागंज, देहली

महर्षि सुश्रुत ने अपनी संहिता में नेत्र परीक्षा करने का कुछ साधन नहीं बताया है । उस समय शायद केवल सामने से आंख देख कर ही अनुमान लगा लिया जाता था । यदि रोगी दृष्टि-क्षीण होने की शिकायत करता था, तो यह अनुमान लगाना कठिन था, कि दृष्टि कितनी क्षीण है और क्या कारण है ? यदि नेत्र के आंतरिक पटलों में कोई विकार हो जाता था तो उसका पता नहीं लगाया जा सकता था । आधुनिक विज्ञान ने नेत्र परीक्षा के अद्भुत तरीके और अनेक यन्त्र आविष्कृत किए हैं । इन यन्त्रों द्वारा दृष्टि में कितनी क्षीणता है, किस प्रकार की क्षीणता है और किस कारण से है, यह सब कुछ जाना जा सकता है । इन यन्त्रों में रैटिनोस्कोप और ऑफथेलमोस्कोप (Retinoscope & Ophtholmoscope) बहुत ही उपयोगी हैं ।

नेत्र अपना कार्य कैसे करते हैं ? और देखने का कार्य किस प्रकार होता है, तथा स्वस्थ नेत्र की क्या पहिचान है ? इसपर महर्षि सुश्रुत ने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला । इसी कारण सुश्रत संहिता पढ़ते हुए अनेक नेत्र तथा नेत्र विकार न तो जाने जा सकते हैं और न ही उनकी चिकित्सा हो सकती है । मैं अपने इस लेख में दृष्टि-परीक्षा करने के तरीके तथा साधन बताऊंगा । साथ-साथ यह भी बतलाने का प्रयत्न करूंगा कि नेत्र अपना कार्य किस प्रकार करते हैं और स्वस्थ नेत्र की क्या पहचान है ?

आंख का कार्य

आंख का मुख्य कार्य किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब लेना और उस अक्स को मस्तिष्क तक पहुँचाना है । आंख का यह कार्य स्वाभाविक रीति से होता है । पलकों के खुलते ही आंख में सामने की वस्तुओं की छाया पड़ती है । यह कार्य उसी प्रकार स्वाभाविक होता है, जिस प्रकार कान से सुनने या नाक से सूंघने की क्रिया अनायास ही हो जाती है । जब नेत्र पूर्ण स्वस्थ होते हैं तो देखने की क्रिया में उन्हें बिलकुल परिश्रम नहीं करना पड़ता, और यह क्रिया बड़ी आसानी से होती रहती है ।

मस्तिष्क में जब अक्स पहुंचता है तो वास्तविक देखने का कार्य मन ही करता है । कई बार आंखों में पड़ने वाले अक्स का ज्ञान मनको उससे बिलकुल भिन्न होता है । उदाहरण के लिए कभी-कभी रस्सी सांप के रूप में दिखाई देती है । भावार्थ यह है कि जो कुछ देखते हैं यह सब मन का खेल है ।

उदाहरणार्थ, अक्षरों के चार्ट को देखें जो पृथक् मुद्रित हैं ।

इन अक्षरों के बीच में जो सफेद भाग है, उसपर दृष्टिपात करने पर मालूम होगा, कि जो श्वेत भाग अक्षर के मध्य में है, वह काग़ज के हाशिए से अधिक सफेद मालूम होता है । वस्तुतः अक्षर के अन्दर का भाग उतना ही श्वेत है, जितना कि मार्जिन का, किन्तु हमारा मन अक्षर के अन्दर अधिक सफेदी अनुभव करेगा और उतना ही अक्षर का काला भाग अधिक काला मालूम होगा और अक्षर भी अधिक साफ दिखाई देगा । जब मन विश्रामावस्था में होता है, तो वैसा ही प्रभाव नेत्रों पर पड़ता है, वस्तुएं अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं । इसके विपरीत जब मन श्रान्त, बोझल या भाराक्रांत होता है तो किसी चीज पर दृष्टि जमाते समय नेत्रों पर ज़ोर पड़ता है ।

१. प्रकृति माता ने दो आंखों का निर्माण किया है, और वे दोनों ही अलग अलग कार्य करती हैं, किन्तु जो वस्तु हम देखते हैं और जब दोनों आंखें अपने-अपने अक्स को मस्तिष्क तक पहुंचाती हैं, तो वहां पर हमारा मन दोनों अक्सों को एक में परिणत कर देता है ।

२. हमारे नेत्र मन और शरीर की स्थिति को स्पष्ट कर देते हैं । आंखों से क्रोध, विचार-मग्नता, बीमारी, सुन्दरता, प्रेम, प्रसन्नता आदि भाव प्रगट हो जाते हैं ।

३. नेत्रों को हम अनेक दिशाओं में घुमा सकते हैं । नेत्र बहुत छोटी-छोटी हरकत जल्दी २ करते रहते हैं । यह गति प्रगट रूप से दृष्टिगोचर नहीं होती । नेत्र में विकार आ जाने अथवा मन के श्रांत और बोझल होने की दशा में यह गति कम हो जाती है । नेत्र सिर के साथ-साथ घूमते हैं । यदि सिर को दाहिनी ओर घुमायें तो नेत्र भी उसी ओर घूम जायेंगे । यदि नेत्र सिर के साथ-साथ जान बूझ कर अथवा अनजाने में न घुमाये जावें, तो नेत्रों पर ज़ोर पड़ता है । कुछ पुस्तकों में सिर को सीधा और एक ही स्थिति में रखकर आंखों को कई दिशाओं में घुमाने के परामर्श को हानिकारक ही समझें । यह क्रिया प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है, इससे कभी-कभी बहुत हानि हो जाती है ।

पलकों का कार्य

पलकों का कार्य नेत्रों की रक्षा करना तथा आंखों को धूल, धुआं, तेज़ प्रकाश आदि से बचाने तथा दृष्टि-शक्ति ठीक रखने और नेत्र रक्त संचार में सहायता पहुंचाने का है । पलकें हल्के-हल्के ऊपर नीचे चला करती हैं । पलकों का यह कार्य पलक झपकना कहलाता है । स्वस्थ आंखों में यह कार्य अपने आप और निष्प्रयास ही हो जाता है ।

स्वस्थ नेत्र की पहचान

स्वस्थ नेत्र भी हर अवस्था में एक जैसे नहीं रहते । इनकी देखने की शक्ति भी अवस्था-विशेष के अनुसार स्वस्थ और कमज़ोर होती रहती है । किसी के नेत्र तेज़ रोशनी में अच्छे रहते हैं, और मध्यम रोशनी में कमज़ोर पड़ जाते हैं । किसी को कमज़ोर रोशनी में अच्छी और तेज़

में कम दिखाई देता है। किसी को दूर से बहुत दीखता है, किन्तु नज़दीक से बहुत अच्छा दीखता है। कइयों को इन दोनों के विपरीत दूर अथवा नज़दीक की अपरिचित वस्तुओं पर जब दृष्टि जाती है, तो दृष्टि दोनों जगह कमज़ोर हो जाती है। शारीरिक पीड़ा, चिन्ता, डर और अन्य असुविधायें स्वस्थ नेत्रों को स्वस्थ नहीं रहने देतीं। जिस समय नेत्र स्वस्थ रहते हैं, और अपना कार्य बिना ज़ोर दिये करते हैं उस समय नीचे लिखी बातें पाई जाती हैं।

१. दूर दृष्टि चार्ट पर जब २० फ़ीट की दूरी से पढ़ा जाता है, तो २० फ़ीट वाली पंक्ति के अक्षर साफ़-साफ़ पढ़े जाते हैं, और नज़दीक से बारीक अक्षर साफ़-साफ़ दीखते हैं।

२. स्वस्थ नेत्र देखने की कोशिश नहीं करते और न वे देखने में थकते ही हैं तथा न किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव करते हैं।

३. अक्षर के बीच में जो सफेद भाग होता है, वह सफ़ेद भाग दूर दृष्टि चार्ट के अक्षरों में अधिक सफ़ेद मालूम होता है।

४. २० फ़ीट की दूरी से जब दृष्टि दायें बायें फेरी जाती है, अक्षर विपरीत दिशा में फिरता हुआ प्रतीत होता है, या जब दृष्टि अक्षर के दाईं ओर जाती है, तो अक्षर बाईं ओर चलता प्रतीत होता है, और जब दृष्टि बाईं ओर को जाती है तो अक्षर दाईं ओर हिलता प्रतीत होता है।

५. जब आंखें बन्द करके उन्हें हथेलियों से बिना दबाव के इस प्रकार ढका जाता है कि प्रकाश अन्दर न जाने पावे तब अनुभव होता है कि आंखों के सामने गहरा अंधेरा है अथवा किसी अंधेरे कमरे में हैं।

त्राटक (Central Fixation)

जिस समय नेत्र किसी वस्तु अथवा अक्षर की ओर देखते हैं, उस समय वह वस्तु या अक्षर का वह भाग जिस पर दृष्टि केन्द्रित होती है, साफ़ प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ ट के नीचे का काला भाग देखिए। आपको ऐसा प्रतीत होगा, कि नीचे का काला भाग ऊपर के काले भाग से अधिक काला है। इस तरह पढ़ने में एक-एक अक्षर अथवा एक-एक शब्द बहुत साफ़ और काला दिखाई देता है। हर एक अक्षर के किनारे बहुत साफ़ और कटे मालूम देते हैं। परन्तु जब केन्द्रित दृष्टि में कमी आ जाती है, तो नेत्र स्वस्थ नहीं रहते। अक्षरों में वह स्वच्छता नहीं दिखाई देती और न ही उतना कालापन मालूम होता है। अक्षर धीमे, कटे-फटे, टेढ़े या दो-तीन प्रतीत होने लगते हैं।

दृष्टि परीक्षा

जब रोगी नेत्र चिकित्सा के लिये आते हैं, तो पहले उसका नाम, आयु और पता लिख लिया जाता है। रोगी नेत्र खराब होने की अपनी कहानी और नेत्रों की शिकायत बताता है।

कुछ प्रश्नादि की पूछताछ के पश्चत् राग का कारण का पता लगा लिया जाता है। इसके अनन्तर रोगी को अच्छी रोशनी वाले कमरे में ले जाकर दृष्टिपट से २० फीट की दूरी पर बैठा दिया जाता है। वह दृष्टि-पट को पहले दोनों आंखों से फिर एक-एक आंख से अलग-अलग पढ़ता है। आंख को बन्द करते समय वह अपनी हथेली आंख पर इस प्रकार धीरे से रखता है, कि जिससे आंख पर दबाव न पड़ने पावे। जो कुछ वह दृष्टि-पट पर पढ़ता है, उसे भिन्न के रूप में लिख लिया जाता है। नेत्रों से दृष्टि पट्ट जितनी दूरी पर रखा हो वह फासला अंश कहलाता है। और दृष्टि-पट पर पड़ी हुई लाइन पर जो संख्या लिखी रहती है वह 'हर, (Denominator) कहलाता है। उदाहरण के लिए मान लो कि रोगी दृष्टिपट से २० फीट की दूरी पर है, और दाहिनी आंख से दृष्टि-पट की वह लाइन पढ़ता है, जिस पर २० फीट लिखा है तो उसकी दाहिनी आंख $\frac{२०}{२०}$ हुई। उसे सामान्य दृष्टि शक्ति कहते हैं।

यदि वह बाईं आंख से दृष्टि-पट की तीसरी लाइन जिस पर ५० फीट लिखा है, पढ़े तो उसकी बांईं आंख की दृष्टि २०/५० कहलाएगी। यदि २० फीट से कोई भी अक्षर नहीं पढ़ा जाता है, तो फिर दृष्टि १० फीट या ५ फीट अथवा १ फीट के फासले से जांची जाती है।

सामीप्य दृष्टि की परीक्षा के लिए छोटे अक्षरों का चार्ट रोगी के हाथ में दे दिया जाता है। वह दोनों आंखों से और फिर एक-एक आंख से बारीक पढ़े जाने वाले अक्षर, उनकी संख्या और जितनी दूरी से वह पढ़ता है वह फासला इंचों में नोट कर लिया जाता है।

उदाहरणार्थ यदि दाहिनी आंख से ८ इंच की दूरी से रीडिंग टैस्ट टाइप नं० २ के अक्षर पढ़े जाते हैं तो उसे इस प्रकार लिख लिया जावेगा, दाहिनी आंख, नं० २ दूरी ८ इंच। नेत्र परीक्षा के चार्ट पर ये पंक्तियां साफ़-साफ़ लिखी गई हैं। पूरा विवरण आसानी से समझने के लिए एक चार्ट लेख के साथ दिया जाता है।

ऊषा की नेत्रपरीक्षा

ऊषा अभी १५ वर्ष की ही थी, कि उसकी आंखें बहुत क्षीण हो गईं। बाईं आँख पर नं० १ की और दांईं पर नं० ४ की ऐनक लगती थी। ऐनक लगने पर भी ऊषा प्रायः सिर दर्द की शिकायत किया करती थी।

ऊषा के कुर्सी पर बैठने के पश्चात् दूर दृष्टि चार्ट उससे २० फीट की दूरी पर रख दिया गया। ऐनक उतारने के पश्चात् उसने चार्ट को दोनों आंखों से, फिर एक-एक आंख से अलग पढ़ा। पश्चात् सामीप्य दृष्टि परीक्षा चार्ट पढ़ा। जब बिना ऐनक के दूर और समीप की दृष्टि परीक्षा हो चुकी, तो ऐनक लगाकर परीक्षा की गई, और उसकी दृष्टि परीक्षा इस प्रकार लिखी गई :—

ऐनक के बिना	ऐनक लगा कर
१. दोनों आंखें २०/५०	२०/२०
२. दाईं आंख २०/२००	२०/२०
३. बाईं आंख २०/५०	२०/२०

नोट—बारीक अक्षर समीप से पढ़ लेती थीं।

जब ऊषा ने एक आंख से पढ़ना शुरू किया, तो दूसरी आंख मीच ली। उससे आंख मीचने की बजाए हाथ से ढकने को कहा गया। लेकिन जब हाथ से आंख ढकी, तो उसने उंगलियों से आंख दबा ली। आंख के दबाने से आंख पर भार पड़ता है। आंख की दृष्टि मन्द पड़ जाती है। ऊषा को समझाया गया कि वह आंख को इस प्रकार ढके कि आंख पर कोई दबाव न पड़े।

ऊषा जब चार्ट के अक्षर पढ़ती थी, तो घूर कर देखने का प्रयत्न करती और पलक न झपकती। जब उससे इस तरह अधिक अक्षर न पढ़े गये तो आंख थोड़ी-थोड़ी खोल कर तथा थोड़ी मीच कर पढ़ने लगी और अब बहुत से अक्षर पढ़ गई। परन्तु यह क्रिया अनुचित थी।

उसे दृष्टि चार्ट का बड़ा अक्षर छोटे अक्षरों से अधिक स्पष्ट दिखाई देता। परन्तु स्वस्थ आंख को तो चार्ट का बड़ा और छोटा अक्षर एक जैसा काला प्रतीत होता है। जब लड़की ने अपनी आंखें बन्द करके उन पर हथेली बिना दबाव के रखी, अथवा पामिंग की, तो उसे अनेक प्रकार के रंग दिखाई दिए। उसे आंखों के सामने कालापन नहीं मालूम होता था।

इन बातों से यही प्रतीत हुआ कि उसकी दूर-दृष्टि मन्द है, परन्तु लिखने-पढ़ने की दृष्टि ठीक है। इस प्रकार की दृष्टि को मायोपिया कहते हैं। इसका काम दूर की वस्तुओं को घूर कर देखना है।

परीक्षा समाप्त होने पर उषा के पिता को बताया गया, कि ऊषा की दाईं आंख की दृष्टि कुछ बढ़ सकती है। दाईं आंख बहुत क्षीण हो चुकी है ऊषा को ऐनक लगाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह बांईं आंख से दूर की वस्तु स्पष्ट देख सकेगी। पढ़ने-लिखने में तो दोनों ही आंखें ठीक हैं।

ऊषा के पिता जी पूछने लगे कि भोजन में स्निग्ध पदार्थ तथा विटामिन्स को अधिक मात्रा में पहुँचाने से क्या ऊषा की दाईं आंख की रोशनी बढ़ सकेगी? मेरा उत्तर यह था कि अच्छे भोजन अथवा विटामिन्स की कमी के कारण दृष्टि क्षीण नहीं होती। जब ऊषा आंख से घूरकर देखने की आदत को छोड़ देगी, तभी दृष्टि ठीक होगी। बिल्कुल ठीक हो जाना असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है।

उषा के पिता पूछने लगे कि २०/२०० तथा २०/५० लिखने का क्या अर्थ है? मैंने उन्हें समझाया कि पहली संख्या २० तो वह दूरी है, जितनी दूर नेत्र परीक्षा होती है। रोगी और चार्ट में २० फीट का अन्तर है। यदि यह फासला कम होता अर्थात् १० फीट अथवा ५ फीट होता तो १० या ५ फीट लिखा जाता। दूसरा अंक वह है जो चार्ट लाइन के ऊपर छपा हुआ है। इसी प्रकार २०.५० लिखने से यह मालूम होता है कि रोगी २० फीट की दूरी से वह लाइन पढ़ सकता है, जिस पर ५० लिखा है। यह ५० फीट वाली लाइन स्वस्थ आंख ५० फीट की दूरी से पढ़ सकती है। स्वस्थ नेत्र २० फीट की दूरी से २० फीट वाली लाइन पढ़ सकते थे।

वृक्क शोथ (Nephritis)

(लेखक—कविराज पुरुषोत्तम देव मुलतानी एम० ए० एम० एस०)

प्राचीन ग्रंथों में इस रोग का वर्णन मेह रोगों में नहीं मिलता किन्तु इसका मुख्य लक्षण शोथ होने से इसका वर्णन शोथ रोग में मिलता है ।

यह शोथ अन्य अङ्गों की तरह सारे वृक्क में भी होती है अथवा वृक्क के किसी विशेष भाग में भी हो सकती है ।

वृक्क में रक्तवाहिनियों के गुच्छे (Glomeruli) हैं। उन पर आवरण (Capsule) चढ़ा होता है जिस में से मूत्र स्रावणियां (Tubules) आरम्भ होती हैं ।* यही वृक्क के प्रधान अङ्ग हैं। उनमें से शोथ कभी रक्तवाहिनियों के गुच्छों में होती है, कभी इनके संयोजक तन्तु में—लेकिन अधिकतर मूत्र स्रावणियों में होती है । पर भेद तो विकृत विज्ञान की दृष्टि से शारीर विज्ञान वाले करते हैं ।

रोग विज्ञान वाले दो और भेद करते हैं—(१) तीव्र वृक्क शोथ (२) चिरस्थायी वृक्क शोथ। तीव्र में कफ प्रकोपजन्य शोथ होती है और यह रोग अधिकतर बाल्यावस्था में होता है जिसे "बालसुलभ वृक्क शोथ" भी कहते हैं । शारीर विज्ञान की दृष्टि से यह शोथ वृक्क की रक्तवाहिनियों और मूत्र स्रावणियों दोनों में हो सकती हैं परन्तु, अधिकतर वृक्क के प्रधान भाग (Parenchymeatus) में होती है ।

चिरस्थायी वृक्क शोथ बालकों में न होकर २०—३० वर्ष की आयु के बाद अर्थात् मध्यम आयु में होती है । इसे "तरुण सुलभ वृक्क शोथ" कहते हैं । यह वात-कफ प्रकोप जन्य होती है यदि कफ का प्रकोप विशेष हो तो वृक्क सूजी (Large white kidney) हुई होती है और यदि वात प्रकोप से सूज जाय तो वृक्क श्वेत और संकुचित (Small & white Kidney) होती है ।

तीव्र वृक्क शोथ

इसमें वृक्क सूजा हुआ होता है । उसकी सूक्ष्म परीक्षा करने पर उसकी रक्तवाहिनियों के गुच्छे फूल-फूल कर मोटे हो जाते हैं और उसमें से कुछ रक्त भी निकला हुआ दिखाई देता है। इसके साथ ही मूत्र स्रावणियां भी सूजी हुई दिखाई देती हैं । संयोजक तन्तु भी सूजा हुआ होता है, अर्थात सम्पूर्ण वृक्क ही सूजी हुई होती है । फिर भी इसके भेद इस प्रकार करते हैं कि

---

*पाश्चात्य चिकित्सक डा०ब्राइट (Bright) के नाम पर इसे (Bright Disease) भी कहते हैं । उनकी दृष्टि में डा० ब्राइट ने ही इस रोग की सर्वप्रथम खोज की ।

एक भेद में मूत्र स्रावणियों में विशेषतः सूजन होती है और दूसरे भेद में रक्तवाहिनियों के गुच्छों में विशेष सूजन होती है।

कारण—प्राचीन ग्रंथों में इस रोग का वर्णन हम 'शोथ रोग में' पाते हैं। वहां इसके ये कारण कहे गये हैं :—

कि जब कोई विषयुक्त पदार्थ शरीर में संचित हो जाय तो उसका प्रभाव वृक्क में पड़ने से उसमें श्वयथु हो जाती है।

रक्त में यदि कोई उष्ण तीक्ष्ण गुरु पदार्थ हो और वह मूत्र के द्वारा बाहर निकलता रहे तो वृक्क का अवयव उसके स्पर्श से सूज जायगा। शरीर में विष पदार्थों की अधिकता होने पर लसिका में कफ द्रव के संचित होने से शरीर में कफ का प्रकोप होने से वृक्क में भी कफ द्रव संचित हो जाता है। ऐसे रोगी को कफ के अन्य विकार भी अधिकता से होते हैं जैसे, गलशुंडिका शोथ, कर्णाग्र ग्रंथि शोथ, मध्य कर्ण शोथ या श्वासमार्ग के रोग। शरीर में पूय जीवाणु का विष, विषमज्वर का विष, त्वचा में विसर्प रोग या कहीं दाह व्रण हो तो उसका विष रक्त के द्वारा मूत्र में पहुंच कर वृक्क में शोथ पैदा कर देता है। इस प्रकार से यह कहना कठिन है कि किस प्रकार का विष यह रोग पैदा करता है लेकिन इतना स्पष्ट है कि जब रक्त में कफ प्रकोप जन्य विष संचित हो जाय तो यह रोग हो जाता है।

लक्षण—प्रारम्भ में इस रोग का पता नहीं लगता परन्तु यह रोग सहसा प्रारम्भ होता है। ८—१० वर्ष के बच्चे के मुख पर चारों तरफ शोथ दिखाई देने पर इस रोग का शक होता है। शोथ मुख से पांव में, पांव से अंडकोषों में और फिर धीरे-धीरे सारे शरीर में फैलता जाता है।

मूत्र सम्बन्धी लक्षणों की भी इसमें विशेषता होती है। मूत्र सारे दिन में थोड़ा-थोड़ा (८—१० औंस) और काले या सफेद रङ्ग का आता है। (वृक्क में सूजन होने से रक्त मूत्र में आने से रङ्ग काला होता है) यदि रक्त की मात्रा अधिक हो तो मूत्र का रङ्ग अधिक काला, अन्यथा थोड़ा होने पर मूत्र का रङ्ग धुंधला या सफेद सा होता है। मूत्र गाढ़ा होता है तथा इसमें एलब्यूमिन (Albumin) की अधिकता होती है अर्थात्—हमारे शरीर को बनाने वाली प्रोटीन बाहर आ रही होती है और जो मूत्र स्रावणियां हैं उनके अन्दर की झिल्लियां झड़-झड़ कर आती हैं जिन्हें क्षिप्त (Casts) कहते हैं। मूत्र में यूरेट्स भी—पाये जाते हैं। यद्यपि मूत्र में मूत्रकाम्ल (Urea यूरिया) बहुत ही कम होता है तब भी एलब्युमिन के कारण मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व बहुत बढ़ जाता है।

अन्य लक्षण—पांडुता बहुत होती है गलशुण्डिका शोथ की तरह रोगी का रङ्ग फूला फूला सा पीला होता है। मलबन्ध रहता है। जिह्वा शुष्क रहती है। मूत्र के द्वारा जो विष बाहर

निकलना चाहिये वह नहीं निकलता। नमक भी निकलना बन्द हो जाता है । मूत्र का संचित विष सारे शरीर में फैल जाने से शिरः शूल, शिरोभ्रम, अरुचि, वमन तथा आक्षेप आदि होने लगते हैं। मूत्र की राशि कम हो जाने से शरीर में से जल की राशि कम निकलने में पहले तो जल त्वचा के नीचे भरता है फिर फुफ्फुसावरण कोष (Pleura) में भरने लगता है जिससे श्वासकाठिन्य भी हो जाता है ।

भेदक लक्षण—१०-१५ वर्ष से छोटी आयु के बालक को श्वयथु रोग हो जाय और मूत्र में एलब्युमिन मिले तो 'वृक्कशोथ' का ही शक करना चाहिए ।

साध्यासाध्यता—यह रोग जब एक बार किसी युवक को हो जाय तो शीघ्र ही अच्छा नहीं होता । कम से कम तीन चार मास लग जाते हैं। यदि उसके अन्दर से मूत्र का धुंधलापन कम होने लगे और एलब्यूमिन की राशि भी कम होने लगे तो रोग अच्छा हो रहा समझना चाहिये।

२–जीर्ण वृक्कशोथ

इसमें वृक्क में चिरस्थायी शोथ होता है । प्रारम्भ में कफ का प्रकोप होकर बाद में वात प्रकोप होने से वृक्क संकुचित और क्षीण होते हैं । यदि मूत्र स्राविणियां रुग्ण हों तो वृक्क फूल जाता है । यदि संयोजक तन्तु फूल कर मोटा हो जाय तो वृक्क क्षीण होकर छोटा होता जाता है।

कारण—शारीरिक अवयवों में अधिकाधिक मल या कफ प्रकोपजन्य विषों के अधिक संचित होने पर यह श्वयथु हो जाता है । आयुर्वेद का यह मत बहुत ही वैज्ञानिक है । अधिक विष के इकट्ठे होने पर उसके दुष्प्रभाव से बचने से लिये उस स्थान पर जो द्रव संचित हो जाता है उससे श्वयथु हो जाता है। इस प्रकार यह श्वयथु भी प्राकृतिक उपचार है और हमारे शरीर की भलाई के लिये ही है ।

वर्तमान विद्वान् इस विषय में कई दृष्टियों से विचार करते हैं परन्तु वे सब भी एक मत नहीं हैं ।

(क) एक विचार यह है कि इस रोग में मूत्र में द्रव भाग के कम निकलने से अंतः संचित भाग श्वयथु पैदा कर देता है । इस प्रकार यह रक्त में कफ की अति वृद्धि है। शारीरिक विष पित्त-प्रकोपक होते हैं । उनके विपरीत कफ सौम्यगुण है जिसकी वृद्धि शरीर में अग्नि तत्व की वृद्धि होने से बचा लेती है । इस प्रकार यह रक्त में जल की अति वृद्धि (Hyaraemia in the blood) है ।

इस मत के विरोध में यह कहा जाता है कि बहुत बार कई रोगियों को कई दिन तक मूत्र न आने पर श्वयथु नहीं होता ।

(ख) दूसरा विचार यह है कि रक्तवाहिनियों की मृदु दीवारों में से जब रक्त के अन्दर से रक्त का द्रव भाग अधिक छनकर आता है तो श्वयथु हो जाता है । रक्त वाहिनियों में विष द्रव्य

संचित होने से उनके क्षीण होने के कारण उस क्षीण भाग में से रक्त का द्रव भाग जितना अधिक निकलता है उतना ही श्वयथु अधिक होता है ।

इस विषय में दूसरों का मत यह है कि रक्तवाहिनियों के क्षीण होने पर रक्त का द्रव भाग अवयवों में कम होकर रक्तवाहिनियों में ज्यादा रह जाता है । जैसे हमारे मुख से लेकर गुदा तक जो अन्न मार्ग है उसके अन्दर की श्लेष्मल कला (Epithelium) से हमारे खाने का रस भाग अन्दर विलीन होता रहता है । यदि आप इसको उतार दें या क्षीण कर दें तो भोजन अधिक भाग में विलीन होना चाहिए लेकिन इसके विपरीत भोजन सर्वथा ही विलीन नहीं होता । इसलिये कहना चाहिए कि रक्तवाहिनियां जब स्वस्थ हों तो रक्त का मस्तु अधिक जाता रहता है अन्यथा विलीन नहीं होता ।

(ग) तीसरा विचार यह है कि वृक्क के रुग्ण होने पर नमक बाहर नहीं निकलता जिससे उसके अवयवों में संचित हो जाने से भी श्वयथु हो जाता है । अवयवों में द्रव में नमक के अधिक संचित होने से रक्त वाहिनियों में से बहुत सा द्रव अवयवों में भरना शुरू हो जाता है जिससे श्वयथु हो जाता है । यह विचार अधिक मान्य प्रतीत होता है । इसीलिये इस रोग में नमक का प्रयोग भी बन्द कर देते हैं क्योंकि नमक भी तीक्ष्णोष्ण गुण द्रव्यों में ही है । अधिकतर विद्वान् इस विचार को ही मानते हैं ।

लेकिन यदि अवयवों में सिर्फ नमक ही भर दें तो श्वयथु नहीं होता । इसलिए यह कहना कठिन है कि केवल अवयवों में नमक संचित होना ही श्वयथु का एक मात्र कारण है । इसलिए दूसरे विद्वानों का इस पर विचार यह है कि जब अन्दर से पानी ही कम निकलेगा तो नमक अवयवों में अधिक जायगा ताकि रक्त स्थित नमक के घोल के बराबर ही अवयवों में नमक रहे । इस प्रकार अवयवों में नमक के अधिक संचय को आप रोक नहीं सकते । इस प्रकार हमारे विचार में तो चाहे पानी कम निकले, चाहे नमक की निकासी कम हो तो दोनों का अन्ततोगत्वा परिणाम एक ही है ।

(घ) चतुर्थ विचार यह है कि जब शारीरिक अवयवों में अम्ल की मात्रा की अधिकता हो जाती है तो श्वयथु हो जाता है । इस रोग में शरीर में यूरिक एसिड आदि अम्लों की-अधिकता अवयवों को क्षीण कर देती है और उस क्षीण अवयव में अधिक द्रव भर जाने से श्वयथु हो जाता है ।

(ङ) पाँचवां विचार यह है कि जब शरीर से प्रोटीन और एलब्यूमिन, अधिक मात्रा में निकलते हैं तो शरीर में उनकी कमी होने से रक्त का दबाव घट जाता है । इससे रक्त में और अवयवों में स्वाभाविक दबाव रहने से अवयवों में द्रव की अधिक मात्रा एकत्रित हो जाने से श्वयथु हो जाता है ।

उपर्युक्त भिन्न-भिन्न विचारों को देखते हुए पाश्चात्य चिकित्सक अभी तक किसी एक

परिणाम पर नहीं पहुंचे कि आखिर वृक्क रोग का कारण क्या है और यह श्वयथु क्यों हो जाता है ? इसलिए इस विषय में तो हमें आयुर्वेद का ही सिद्धान्त सर्वोत्कृष्ट प्रतीत होता है कि उष्ण तीक्ष्ण गुण पदार्थों के रक्त में अधिक संचित होने पर जब वह मूत्र द्वारा निकलते हैं तो वृक्क उनके स्पर्श से सूज जाता है और "वृक्क शोथ" हो जाता है। उसी समय वही उष्ण तीक्ष्ण गुण पदार्थ जब अवयवों में संचित हो जायं तो उनमें शोथ पैदा करते हैं, और श्वयथु हो जाता है। इस प्रकार वर्तमान विद्वानों के उपयुक्त विचार नमक, अम्ल आदि का अधिक संचित होना आदि इसी एक ही सिद्धान्त में सम्मिश्रित हो जाते हैं।

लक्षण—इस रोग में मुख्यतः तीन प्रकार के लक्षण होते हैं, क—रक्तवाहिनियों में क्षीणता, ख—मूत्र में विभिन्नता, ग—अवयवों में श्वयथु आदि।

(क) वृक्क हमारे शरीर के मल निकालने के मुख्य द्वार हैं। इनके रुग्ण होने पर शरीर में संचित मल रक्तवाहिनियों में वात प्रकोप पर इनको कठोर कर देते हैं। यह किसी भी अंग की वृद्धावस्था का चिह्न है। रक्त वाहिनियों के कठोर होने से हृदय को भी रक्त फेंकने के लिये जोर लगाना पड़ता है जिससे उसकी वृद्धि हो जाती है। यों भी कह सकते हैं कि जिस प्रकार रक्तवाहिनियों में कठोरता आ जाती है उसी प्रकार हृदय में भी कठोरता हो जाती है।

(ख) मूत्र सम्बन्धी लक्षण—मूत्र की राशि कम होती है। यूरिया नहीं होता लेकिन एलब्यूमिन की राशि अधिक मूत्र द्वारा निकलती है, लिप्त (Casts) भी निकलते हैं।

(ग) अवयवों में संचित विष पदार्थ को हल करने के लिये द्रव एकत्रित हो जाने से श्वयथु हो जाता है जिससे शरीर फूल-सा जाता है। रोगी सफेद फूला हुआ सा पांडुरंग वर्ण का होता है। ऐसे आदमी को देख कर कह दिया जाता है कि इसका गुर्दा भी सफेद फूला हुआ (Large white Kidney) है बाद में वात प्रकोप होकर वह संकुचित होकर क्षीण (Small Kidney or Contracted Kidney) भी हो सकता है।

भेदक लक्षण—मूत्र की मात्रा मध्यम ही रहती है, एलब्युमिन बहुत अधिक नहीं होती। मूत्र भार में हलका होता है। (यूरिया आदि के न निकलने से)—रक्तवाहिनियाँ कठोर हो जाती हैं। हृदय सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।

साध्यासाध्यता—उपयुक्त लक्षण यदि कुछ कम होने लगें (हृदय सम्बन्धी लक्षण भी कुछ कम प्रतीत हों) तो रोग साध्य समझना चाहिए अन्यथा रोग बढ़ने पर मूत्र-विष के रक्त में चले जाने से अनेक उपद्रवों की आशंका बनी रहती है।

वृक्क क्षीणता (वृद्धावस्थासुलभ)

यह वृद्धावस्था का रोग है। ५०—६० वर्ष की आयु में स्वाभाविक बुढ़ापा आ जाने पर वृक्क में भी क्षीणता आ जाती है।

कारण—विषों के त्वचा द्वारा न निकल कर अधिकतर वृक्क द्वारा निकलने से, पारद

संखिया आदि के योगों के अधिक सेवन से तथा शरीर में आमवात जन्य विष या अन्य किसी विष के रक्त में होने पर वृक्क पर प्रभाव पड़ने से वृक्क में भी क्षीणता हो जाती है।

लक्षण—

मूत्र सम्बन्धी लक्षण—मूत्रमें जल की राशि कम होने से वह पर्याप्त हलका होता है। इसलिए उसकी आपेक्षिक गुरुता भी कम होती है। (१००५ तक) मूत्र में पोषक तत्व यूरिया आदि भी घट जाते हैं। श्वयथु आदि भी नहीं होता। (युवावस्था में अधिक, तरुणावस्था में कम और वृद्धावस्था में बिलकुल नहीं)। इसी प्रकार मूत्र भी युवावस्था में भारी, तरुणावस्था में हल्का और वृद्धावस्था में और भी हलका (१००५ तक) हो जाता है।

सामान्य लक्षण—रोगी का रंग अधिकाधिक पीला होता है। रक्त में विष द्रव्यों के संचय से रक्त का दबाव बढ़ जाता है जिससे हृदय भी आकार में बढ़ जाता है। हृदय के शब्दों में भी वैषम्य होने लगता है। मूत्र विष संचार के लक्षण (शिरः शूल आदि) बाद में होने लगते हैं। ऐसा भी होता है कि किसी वृद्ध के नेत्र के पश्चिम पटल (Ratina) में शोथ होकर वह क्षीण हो जाय और उसकी दृष्टि नष्ट होती जाय और अन्त में दृष्टि बिलकुल ही जाती रहे।

परीक्षा—यह ध्यान रखना चाहिए कि इस बीमारी का रोगी कभी मूत्र सम्बन्धी शिकायत करने नहीं आयेगा। वह तो शिरः शूल, पांडुता, निर्बलता, हृदय वैषम्य या दृष्टि मांद्य आदि की शिकायत आपको करेगा। यदि वह वृद्ध हो तो आपका ध्यान सर्वप्रथम इसी रोग पर जाना चाहिए।

साध्यासाध्यता—बाल्यावस्था में तो चाहे कम पानी निकले लेकिन वृक्क विषों को पर्याप्त मात्रा में बाहिर करते रहते हैं। इसलिए इस अवस्था में रोग अधिक भयंकर नहीं होता। यदि बाल्यावस्था में भी जल फुफ्फुसों में भरने लगे या मूत्र सम्बन्धी लक्षण होने लगे तो रोगी की मृत्यु हो सकती है।

तरुणावस्था में भी अधिकतर मृत्यु मूत्र विष संचार से ही होती है।

वृद्धावस्था में प्रारम्भ में हृदय वैषम्य होता है। बाद में जब वृक्क इतना क्षीण होता है कि पानी तो बाहर फेंकता है लेकिन अन्य विष संचित होकर उपद्रव करते हैं तब उसके परिणामस्वरूप हृदयावरोध (Heart failure) से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

उपद्रव—

मूत्रविष संचार (Uraemia)

कारण—वृक्क के रुग्ण होने की अवस्था में पोषक तत्वों के मलों (यूरिया, यूरिक एसिड, क्रियाटिनीन आदि) के शरीर में संचित होने से विष संचार सम्बन्धी कुछ विशेष लक्षण (शिरः शूल, अरुचि, वमन आदि) होने लगते हैं, ऐसा कइयों का मत है।

दूसरा विचार यह है कि मल संचित होने से यह रोग नहीं होता क्योंकि यदि हम रक्त में

यूरिया का सूचीवेध करें तो ये लक्षण नहीं होते। इसके विपरीत यदि मूत्र में यूरिया उचित मात्रा में आ रहा हो तब ही ये लक्षण देखे जाते हैं।

तीसरा विचार यह है कि ये लक्षण केवल यूरिया के ही न निकलने से नहीं होते अपितु अन्य विषों के संचित होने से होते हैं। इसके विरोध में यह कहा जाता है कि यदि रक्त में मूत्र का सूचीवेध किया जाय तब भी ये लक्षण नहीं होते।

चौथा विचार यह है कि वृक्क रोग में मलबन्ध ही रहता है, इस लिये मूत्र की ही नहीं अपितु मल और मूत्र दोनों द्वारा विषों के न निकलने से यह रोग हो जाता है।

पाँचवाँ विचार यह है कि वृक्क में कुछ अन्तः स्राव (Intetnal secretions) हैं जिसके न निकलने से यह रोग हो जाता है।

इस प्रकार इस रोग का कुछ निश्चित कारण कह सकना कठिन है। वृक्क इसमें कहाँ तक कारण है, यह भी अभी अस्पष्ट है। लेकिन यह रोग होता है वृक्क के रुग्ण होने पर ही, यह निश्चित है।

चिरस्थायी मूत्र विष संचार (वृक्क रोग जन्य)

लक्षण—जिन व्यक्तियों (तरुण या वृद्ध) को वृक्क का रोग चिरकाल से हो उनकी तबीयत गिरी रहती है। सिर में दर्द रहता है। मानसिक व शारीरिक निर्बलता हो जाती है। मांस पेशियां कृश हो जाती हैं। निद्रा भी कम आती है। मस्तिष्क की शक्ति भी निर्बल हो जाती है।

इस रोग के अधिक स्पष्ट होने पर रोगी को निरन्तर शिरःशूल व शिरोभ्रम बना रहता है। मांस पेशियों में कम्प होने लगता है। दिन में तो नींद आती है लेकिन रात्रि में निद्रा का नाश हो जाता है।

मूत्र विष के भिन्न-भिन्न अवयवों में संचित होने पर तदनुसार लक्षण होने लगते हैं।

आमाशय में यदि इसके विष का प्रभाव हो तो वमन और अरुचि आदि होने लगते हैं।

आंतों में इसका प्रभाव होने पर अतिसार होने लगता है।

फुफ्फुसों में इसका प्रभाव होने पर श्वासकाठिन्य व श्वास, कास के दौरे होने लगते हैं।

यदि यह रोग अत्यन्त तीव्र रूप में हो तो रोगी को तन्द्रा और निद्रा के बाद मूर्छा भी आ जाती है। साथ में आक्षेप भी होने लगते हैं। मुख से श्वास के द्वारा विष की दुर्गंध आती है। वक्षोदर मध्यदेशी (Diaphragm) पर इसका प्रभाव होने से हिचकी भी आने लगती है।

भेदक लक्षण—मूत्र विष संचार की मूर्छा का मद्य या अन्य किसी विष द्वारा होने वाली मूर्छा से भेद करना चाहिये।

यदि धमनी कठोर, हृदय आकार में बड़ा और मूत्र द्वारा एलब्यूमिन निकलती हो तो इसी रोग का सन्देह करना चाहिए।

वृक्क शोथ चिकित्सा

वृक्क रोग से बचने के लिये आवश्यक है कि शरीर में किसी भी प्रकार का विष (आम वात जन्य व अन्य तीक्ष्णोष्ण गुण) अधिक देर तक न रहें। इसी लिए इस रोग में संखिया या पारद के योगों का निषेध है। अधिक देर तक अम्लीय मूत्र आना भी अच्छा नहीं है। इसीलिये ज्वरों में कभी-कभी क्षारों का भी सेवन कराया जाता है जिससे गुर्दों में सूजन न हो।

दूसरी बात यह है कि वृक्क की सूजन को कम करने के लिए उनके कार्य भार को घटाना चाहिए। इसके लिए अधिक पोषक तत्वों (प्रोटीन, नमक आदि) का सेवन नहीं करना चाहिए अन्यथा उनके मल को बाहर करने के लिये गुर्दों को अधिक जोर लगाना पड़ेगा। निशास्ते की चीज़ें, रस वाले फल, शहद, जौ का पानी थोड़ी मात्रा में दूध आदि रोगी को सेवन कराया जा सकता है। जल भी थोड़ी मात्रा में ही दिया जाना चाहिये क्योंकि अधिक जल देने से भी उसकी निकासी के समय वृक्क को अधिक कार्य करना होगा। किसी क्षारीय जल का सेवन रोगी के लिये हितकर है। क्षारीय जल के लिए आध सेर पानी में १ ड्राम एसिड सोडियम टारट्रेट और एक निम्बू डाल दें। थोड़ी सी खांड भी डाल दें। यह थोड़ी-थोड़ी मात्रा में रोगी को दे सकते हैं। यदि सर्दी का मौसम हो तो गरम करके दें, अन्यथा, ग्रीष्म ऋतु में ठंडा कर के दें। यह योग मूत्र को क्षारीय करता है तथा वृक्कस्थित अम्लों को उदासीन करता है।

इसके अतिरिक्त, मल मार्ग तथा त्वचा आदि मार्गों द्वारा मल निकालने का यत्न करना चाहिए। मल निस्सारण के लिये त्रिफला जल या चूर्ण, हरीतकी तथा मैगनेशिया आदि का सेवन कराया जा सकता है। इसी प्रकार त्वचा से मल निकालने के लिये वाष्प स्नान का सेवन आवश्यक है। क्षारों का अंतः प्रयोग कराया जा सकता है। इसके लिये यव क्षार, महाक्षार, सर्वक्षार, या पोटाशियम सिट्रेट देवें।

सूजे हुए गुर्दों पर सेक करना चाहिए, और पुलटिस बांधनी चाहिए। अथवा, शृंगी लगा कर खून निकलवा दें अथवा घटिका पातन (Cupping) करें।

जीर्ण वृक्कशोथ की चिकित्सा

जिस विष के कारण यह शोथ हो रहा है उसके निर्हरण करने का यत्न करना चाहिए, नासिका, गले या गलशुण्डिकाओं में कहीं पूय हो तो उसे निकालने का यत्न करें। रोगी नमक या प्रोटीन का अधिक सेवन करता हो तो बन्द कर दें।

ऐसे क्षारों का सेवन करावें जो पानी को खींच कर शरीर द्वारा पानी को बाहर करते हैं, अर्थात, ऐसों का सेवन न करायें जो रक्त की धमनियां को फैला कर अस्पष्ट तौर पर वृक्क पर प्रभाव करते हैं क्योंकि इसमें वृक्क शोथ और अधिक बढ़ने का भय रहता है। इस रोग में यूरिया भी दे सकते है। गो-मूत्र का सेवन अत्युत्तम है। त्वचा द्वारा स्वेद दें। विरेचन भी दे सकते हैं। कई दिन तक केवल फलों के रस और बिना नमक के शाक सब्जी का सेवन कराना चाहिए।

अति जीर्ण वृक्क शोथ चिकित्सा

शरीर के शोधन का उपाय करें। १५-२० दिन तक विरेचन व बस्ति देते रहना चाहिए। भोजन बहुत कम कर दें। प्रोटीन का भोजन तो बिल्कुल बंद कर दें। फल व शाक थोड़ी मात्रा में दें। नमक भी दें। केवल दूध का सेवन करते हुए नमक बिल्कुल बंद कर देना चाहिए। रक्त का निर्हरण भी कर सकते हैं।

औषधि चिकित्सा—मूत्रल, विरेचक तथा शोथ हर औषधियों का सेवन करावें। मूत्रल और विरेचक के तौर पर पुनर्नवाष्टक कषाय (पुनर्नवा, पटोल, सोंठ, कटुकी, गिलोय, हरड़, दारुहरिद्रा तथा निम्बू) में क्षार या गोमूत्र डाल कर गुग्गुल के साथ सेवन कराना चाहिए। शिलाजीत भी साथ में दे सकते हैं।

रोगी को नमक न देकर केवल दूध का सेवन कराना चाहिए। साथ में थोड़ी मात्रा में फलों का रस भी दे सकते हैं। इससे पेट पर बोझ कम पड़ता है। साथ में दुग्धवटी।

१७५—वत्सनाभ १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोह भस्म ५ रत्ती, अभ्रक भस्म ३० रत्ती इनकी २-२ रत्ती की गोलियां बना कर देने से अधिक दूध देते हुए भी अतिसार नहीं होता।

धमनी काठिन्य आदि शारीरिक उपद्रवों को रोकने के लिये दशमूल हरीतकी, अगस्त्य हरीतकी इसमें से कोई आधा तोला की मात्रा में दे सकते हैं।

पांडुता दूर करने के लिए पुनर्नवा मंडूर या गोमूत्र पक्व मंडूर भस्म (मंडूर भस्म को २०-३० गुना गोमूत्र में पका लेना चाहिए) या गोमूत्र के साथ पिप्पली, पंच कोल या त्रिकटु आदि के साथ मिला कर दें।

सूजन को दूर करने के लिये पुनर्नवादि लेप—१७६—पुनर्नवा, सोंठ, देवदार, शोभाञ्जनत्वक्, राई—या इनकी पुलटिस या पुनर्नवा से बनाये तैलों को शोथ नाशक के तौर पर प्रयोग करना चाहिए।

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)
गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र
निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे० के० शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४३ वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। ७५ पृष्ठ का हिन्दी सूचीपत्र मुफ्त। अंग्रेजी, गुजराती, उर्दू और भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों व ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपयुक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

कामावेग के विकारों की सम्प्राप्ति

(ले० डा० बलदेव शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, शास्त्री, बी० ए०, एम० एन० एम० एस० (बर्लिन)
एम० आई० पी० ए० (बियाना) ५२ माल रोड, महू, मध्य भारत)

(अन्तिम अंश)

चरक मुनि ने मानस विकारों के लिये कुछ अन्य उपाय भी बताये हैं।

मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्य स्मृतिसमाधिभिः

'सत्त्वानुशीलन की विधि में केवल ज्ञान तथा स्मृति का उपयोग है। विज्ञान अर्थात् बौद्धिक उपाय, जो आगे कहे गये हैं, धैर्य और समाधि ये तीन उपाय जो प्रयोग में ला सके, अवश्य लाये।

केवल एक बात बड़ी आवश्यक है और उसे चिकित्सक न भूलें कि ऐसे पीड़ितों को पूर्ण सहानुभूति दिखाये और उनके कोमल हृदयों को कोई ऐसा आघात न पहुंचायें, जिससे उनकी आत्म श्लाघा को क्षति पहुंचे। उनके विश्वास पात्र बनने का भरसक प्रयत्न करें।

बौद्धिक उपाय, जो चरक मुनि ने कहे हैं, वे भी विचारणीय हैं। उनसे प्रतिरोधक कारणों का निराकरण नहीं, तो उनके कारणों के विरोधी प्रतिक्रिया तो अवश्य उनसे मानस में उत्पन्न हो जायगी।

"तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम्।
विस्मयो विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः॥

अर्थ :—डांटना, धमकाना, ललचाना, ढाढस बंधाना, हर्षित करना, डराना तथा आश्चर्य में डालना, जिनसे भूल जाने पर मन प्रकृतिस्थ हो जाता है।

यहां स्मृति का प्रबोधन अभिप्रेत नहीं है, प्रत्युत स्मृति का भुलाना। इसी लिए ये उपाय केवल अस्थायी रूप से विकृत मन को प्रकृतिस्थ कर सकते हैं। और इनका उपयोग केवल उन अवस्थाओं में करना चाहिये जहां तात्कालिक विकार शमन आवश्यक हो। चरक मुनि ने इन उपायों को उन्माद के लिए उपयोगी बताया है।

उपसंहार

सारांश में यह कहना पड़ेगा कि यौन शक्ति की किसी प्रकार की भी निर्बलता से पीड़ित व्यक्तियों की चिकित्सा में मानस कारणों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। मानस कारण ही वास्तव में इस शक्ति की हीनता की संप्राप्ति में मुख्य कारण हैं। शारीरिक स्थिति अथवा क्षीणता बिल्कुल ही अप्रधान कारण हैं और उसकी अधिकांश व्यक्तियों में उपेक्षा की जा सकती है।

मन का चिन्ता रहित होना, संकोच का अभाव, बेधड़कपन, प्रसन्नता, तथा आनन्द की

मस्ती ही सबसे आवश्यक तत्व हैं। इसी अवस्था में हर्ष की सम्भावना की जा सकती है। चरक मुनि ने हर्ष को ही यौन शक्ति का सीधा जन्मदाता माना है और यह विचारणीय बात है कि, औषधियां इस हर्ष को उत्पन्न नहीं कर सकतीं। चरक मुनि ने उन अवस्थाओं का वर्णन किया, जिनमें हर्ष सहज ही उत्पन्न हो जाता है।

चरक के कथनानुसार आत्मज अर्थात् आत्मा से उत्पन्न हुए कामदेव के बाण जो हर्ष को जन्म देने वाले हैं वे ये हैं; जल का किनारा, आम के पेड़, कोयल की कूक, फूलों का उपवन, रुचिकर खाद्य तथा पान, संगीत की ध्वनि, मोहक सुगन्धियां, तरुण प्रेम पिपासा, मनोऽनुकूल प्रणय तथा श्रृंगार, स्त्री, नवयौवन, चित्त में मस्ती का जब राज्य हो वह समय, बेधड़क, निश्चिन्त मन, तथा समस्त मानस प्रतिरोध कारणों का अभाव।

काम की "आत्मज" संज्ञा, तथा "मन का प्रतिरोध रहित होना" दोनों काम के मानस मूल को अभिव्यक्त करते हैं।

निम्न लिखित लक्षणों में से एक लक्षण से भी युक्त व्यक्ति केवल सत्वानुशीलन का ही आश्रय ले, क्योंकि निःसन्देह इनमें से प्रत्येक लक्षण प्रकट करता है कि उनका कष्ट मानस प्रतिरोधों से उत्पन्न हुआ है।

लक्षण :—१. यौन शक्ति की किसी प्रकार की भी निर्बलता, विशेष कर जब शरीर का स्वास्थ्य भला चंगा हो। २. पौष्टिक वाजीकरण औषधियों से लाभ न होता हो। ३. निर्बलता अकस्मात् ही प्रकट हुई हो। ४. यदि शक्ति की निर्बलता किसी अवस्था में अनुभव हो और किसी अवस्था में या कभी न हो। ५. यदि बिना किसी कारण के शरीर स्वास्थ्य जर्जरित होता जा रहा हो।

काम शक्ति भी सब में एक समान नहीं होती। चरक मुनि ने इसके चार विभाग किये हैं। १. कई इच्छा के प्रभाव से ही शक्ति का अनुभव करते हैं। २. कई अभ्यास के प्रभाव से अर्थात् जिस स्त्री के साथ अभ्यास हो जाय उसी के साथ। ३. कई विविध प्रयत्नों से अर्थात् मस्ती और हर्ष उत्पन्न करने वाले साधनों से अपना कार्य सिद्ध करते हैं। ४. और कई स्वभाव से ही काम बहुल होते हैं। क्योंकि उनकी मनोवृत्ति विशेष कर इसी क्षेत्र में केन्द्रित होती है।

चिकित्सक को चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति को इन विभागों के अनुसार उसकी प्राकृतिक सीमा और शक्ति की मर्यादा समझा देवे। इसका यह लाभ होगा कि प्रत्येक व्यक्ति काम बहुल व्यक्तियों को देखकर अपनी शक्ति में अविश्वास अनुभव न करेगा।

मानस प्रतिरोधी का निराकरण प्रत्येक विभाग के व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

महान् सत्वानुशीलक डा० स्टेकल के निम्न लिखित शब्द यहां उद्धरणीय हैं।

"सभ्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति के यौन शक्ति सम्बन्धी विकार बुद्धि तथा मेरुदंड के संघर्ष का परिणाम हैं। एक सूक्ष्म सा मानसिक प्रतिरोधक कारण उत्तेजना शक्ति को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। तनिक भर चिन्ता, क्षोभ, असन्तोष अथवा अनुभव न की जा रही हल्की सी

घृणा, उत्तेजना यन्त्र की कोमल विद्युद्गति को तथा उसके साथ आने वाले आनन्द को कुंठित करने का प्रभाव रखते हैं।"

यदि एक ही पंक्ति में इस सारे विषय का सारांश कहना हो तो चरक का यह श्लोकार्ध उपयुक्त होगा।

"आत्मवेगेन चोदीर्णः स्त्रीगुणैश्च प्रहर्षितः"

दो तत्व हैं, जिन पर यह शक्ति आश्रित है; आपका अपना मन और स्त्री। यदि मन अप्रतिरोध है और स्त्री में वे गुण हैं, जो आपकी इच्छा को जागृत करते हैं, तो शक्ति भी उपयुक्त होगी। आपके मन में प्रतिरोधक कारण घर चुके हैं, तो स्त्री के रूप, गुण, अभीष्ट प्रभाव न कर सकेंगे। और यदि आपका मन अप्रतिरोध है और वेग से पूर्ण है, परन्तु स्त्री आपके मन में ग्लानि अथवा अरुचि उत्पन्न करती है, तो आपका वेग भी कुंठित हो जायगा।

सच तो यह है कि कामावेग के इस सूक्ष्म तत्त्वावगाहन के लिए हम पाश्चात्य सत्वानुशीलकों के आभारी हैं। हमारे प्राचीन शास्त्रों में जो इस ज्ञान का बीज विद्यमान है, उसकी ओर हमारी उपेक्षा ही रही है।

अब कुछ आदेशात्मक अथवा यूं कहिये उपदेशात्मक शब्द अगले भाग में कहे जायंगे जो, उन नवयुवकों के प्रति विशेष कर के उद्दिष्ट हैं, जो अपनी शक्ति खो बैठे हैं; और जो कई प्रकार के भ्रम रूपी विचारों के जंजाल में फंस कर अपने व्यक्तित्व की सम्पूर्ण क्षमताएं ही गंवा बैठे हैं।

उनकी दशा दयनीय है, क्योंकि वे विचलितमति, निराशचित्त, जीवन के लिये निरुत्साह और पुरुषार्थहीन हो चुके हैं। वे पापात्माओं की भांति संसार से परित्यक्त, लज्जा से मुंह छिपाये हुए फिरते हैं। हमें प्रतीत होता है कि वे सब विचार शील, कल्पना के धनी, तथा महत्त्वाकांक्षाओं के स्वप्न देखने वाले हैं। उनमें से कइयों की महत्त्वाकांक्षायें समूर्त्त होती भी हमारे सम्मुख आती हैं। उनमें से कई बड़े-बड़े लेखक, कवि, कलाकार तथा नेता भी बन जाते हैं। यह एक सत्य है कि इसी प्रकार के विक्षुब्ध व्यक्ति ही प्रायः असाधारण व्यक्ति बन कर चमकते हैं; परन्तु इनमें से अधिकांश, जीवन में सन्तुष्टि प्राप्त नहीं करते और उनकी महत्त्वाकांक्षाएं उनके मन में ही रह जाती हैं। उनकी हीनतापूर्ण वस्तुस्थिति उनके सुख स्वप्नों को सदा आघात पहुंचाती रहती है। ऐसे नवयुवकों के मन में आत्मविश्वास और उत्साह का संचार आवश्यक है।

सत्वानुशीलन विज्ञान तो आश्चर्य जनक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। विशेष कर काम शक्ति के क्षेत्र में लेखक का यह दृढ़ विश्वास है और खुली घोषणा है कि सत्वानुशीलन से सम्पूर्ण यौन शक्ति की निर्बलता के रोगी सदा के लिये सशक्त बनाये जा सकते हैं।

समाप्त (सर्वाधिकार सुरक्षित)

द्रष्टव्य—(लेखक की शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तक का एक अध्याय)

दर्शनों में आयुर्वेद

(ले० वैद्य प्रियव्रत शर्मा शास्त्री एम० ए० बेगूसराय, मुंगेर)

(२)

आत्मा के अनादि निघन प्रकरण में सूत्रकार लिखते हैं :—

"पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोक सम्प्रतिपत्तेः":— ३।१।१६

अर्थात्—नवजात बालक में पूर्व शरीर से अभ्यस्त स्मृति का अनुबन्ध होने से हर्ष, भय शोक आदि मानस भाव होते हैं।

"जातः खल्वयं कुमारकोऽस्मिन् जन्मन्यगृहीतेषु हर्षभयशोकहेतुषु हर्षभयशोकान् प्रतिपद्यते लिंगानुमेयान्। ते च स्मृत्यनुबन्धादुत्पद्यन्ते नान्यथा। स्मृत्यनुबन्धश्च पूर्वाभ्यासमन्तरेण न भवति। पूर्वाभ्यासश्च पूर्वजन्मनि सति, नान्यथा इति सिध्यत्येतदवतिष्ठतेऽयमूर्ध्वं शरीरभेदादिति।"

महर्षि चरक ने इसी को निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त किया है :—

"धर्म्याः क्रिया हर्षनिमित्तयुक्तास्ततोऽन्यथा शोकवशं नयन्ति।
शरीरसत्वप्रभवास्तु दोषास्तयोरवृत्या न भवन्ति भूयः॥

—चरक शा० २ अ०

इसी प्रकरण में आगे कहा है :—

"प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।" न्या० ३।१।२२

अर्थात्—पूर्व जन्म में किये गये आहार की स्मृति से ही नवजात शिशु को स्तन्यपान की अभिलाषा होती है।"

"जातमात्रस्य वत्सस्य प्रवृत्तिलिंगः स्तन्याभिलाषो गृह्यते। स च नान्तरेणाहाराभ्यासात्। कया युक्त्या? दृश्यते हि शरीरिणां क्षुधापीड्यमानानामाहाराभ्यासकृतात् स्मरणानुबन्धादाहाराभिलाषः। न च पूर्वशरीराभ्यासमन्तरेणासौ जातमात्रस्योपपद्यते। तेनानुमीयते भूतपूर्वं शरीरं, यत्रानेनाहारोऽभ्यस्तः, स खल्वयमात्मा पूर्व शरीरात्प्रेत्य शरीरान्तरमापन्नः क्षुत्पीड़ितः पूर्वाभ्यस्तमाहारमनुस्मरन् स्तन्यमभिलषति। तस्मान्न देहभेदादात्मा भिद्यते भवत्येवोर्ध्वं देहभेदादिति।

—न्याय भाष्य

महर्षि चरक ने भी गर्भ के आत्मज भावों का निरूपण करते हुए स्मृति का उल्लेख किया है :—

"तासु तासु योनिषूत्पत्तिरायुरात्मज्ञानं मन इन्द्रियाणि प्राणापानौ प्रेरणं धारणमाकृतिस्वरवर्णविशेषाः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ चेतना धृतिर्बुद्धिः स्मृतिरहंकारः प्रयत्नश्चेति आत्मजानि।"

—चरक शा० ३ अ०

इसी प्रकार सत्वज भावों के प्रकरण में :—

भक्तिः शीलं शौचं द्वेषः स्मृतिर्मोहस्त्यागो मात्सर्यं शौर्यं भयं क्रोधस्तन्द्रोत्साह स्तैक्ष्ण्यं मार्दवं गाम्भीर्यमनवस्थितत्वं इत्येवमादयश्चान्ये, ते सत्वजा विकाराः; तानुत्तरकालं सत्त्वभेदमधिकृत्य उपदेक्ष्यामः—इति सत्त्वजानि ।"

सत्वगुण की अधिकता के कारण कभी-कभी बालक को पूर्व जन्म की बातों का स्मरण होता है, इन्हें 'जातिस्मर' कहते हैं। अनेक जातिस्मर बालकों के उदाहरण प्रत्यक्ष देखे जा चुके हैं। गर्भ में भी दौहृद का कारण पूर्वजन्मानुकूल विषयों की स्मृति ही है :—

"तस्य यत्कालमेवेन्द्रियाणि सन्तिष्ठन्ते, तत्कालमेवास्य चेतसि वेदना निर्बन्धं प्राप्नोति, तस्मात्तदाप्रभृति गर्भः स्पन्दते प्रार्थयते च जन्मान्तरानुभूतं च यत् किंचित्, तद् द्वैहृदय्यमाचक्षते वृद्धाः ।"

—चरक शा० ४ अ०

महर्षि चरक ने गर्भ के आत्मज भावों में इच्छा द्वेष का भी उल्लेख किया है। अतः पूर्वाभ्यस्त विषयों के अनुसार किन्हीं के प्रति राग और किन्हीं के प्रति द्वेष स्वभावतः बालक को होता है? कोई प्राणी वीतराग जन्म नहीं लेता। प्राणी की स्वाभाविक रागद्वेषात्मिका प्रवृत्ति से पूर्व शरीर, फलतः आत्मा का नित्यत्व सिद्ध होता है। इसी को सूत्रकार लिखते हैं :—

"वीतरागजन्मादर्शनात्"—न्या० ३।१।२५

"सरागो जायते इत्यर्थादापद्यते। अयं जायमानो रागानुबद्धो जायते, रागस्य पूर्वानुभूतविषायानुचिन्तनं योनिः। पूर्वानुभवश्च विषयाणां अन्यस्मिन् जन्मनि शरीरमन्तरेण नोपपद्यते। सोऽयमात्मा पूर्वशरीरानुभूतान् विषयान् अनुस्मरन् तेषु तेषु रज्यते। तथा चायं द्वयोर्जन्मनोः प्रतिसन्धिः। एवं पूर्वशरीरस्य पूर्वतरेण, पूर्वतरस्य पूर्वतमेनेत्यादिनाऽनादिश्चेतनस्य शरीरयोगः अनादिश्च रागानुबन्ध इति सिद्धं नित्यत्वम्।"—भाष्य

जात पुरुष में पूर्वानुभूत विषयों के अनुचिन्तन से राग उत्पन्न होता है, इसकी सिद्धि कैसे होती है? ऐसा क्यों नहीं माना जाय कि जिस प्रकार उत्पन्न द्रव्य में कारण के द्वारा गुण उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार उत्पत्तिधर्मक आत्मा में राग उत्पन्न होता है? इसका उत्तर देते हैं :—

"न, संकल्पनिमित्तत्वाद्रागादीनाम्।"—न्या० ३।१।२७

सगुण द्रव्य की उत्पत्ति के समान आत्मा और उसके राग की उत्पत्ति नहीं होती। प्राणियों में राग आदि मानस विकार संकल्पजन्य होते हैं और संकल्प पूर्वानुभूत विषयों के अनुचिन्तन से होता है। अतः उत्पन्न पुरुष में भी अनुमान के द्वारा पूर्वानुभूत विषयों के चिन्तन से उत्पन्न राग की सिद्धि होती है। संकल्प के अतिरिक्त अन्य कोई राग कारण न होने से आत्मा की उत्पत्ति भी सगुण द्रव्य के समान मानना अयुक्त है। यदि धर्माधर्म रूप अदृष्ट को राग का कारण माना जाय, तब भी पूर्वशरीर का संयोग मानना ही पड़ेगा। पूर्व शरीर में विषयों के अभ्यास से तथा जन्म विशेष से राग विशेष की सिद्धि होती है। अतः संकल्प के अतिरिक्त अन्य कोई राग का कारण मानना अयुक्त है।

शरीर परीक्षा प्रकरण

आत्मा का शरीर के साथ संयोग अनादि है अतः शरीर की परीक्षा आवश्यक है। सर्वप्रथम, शरीर की प्रकृति का विचार करना उपयुक्त है। घ्राण आदि इन्द्रियों के समान शरीर का संख्या कारण एक है या अनेक? क्योंकि विभिन्न दार्शनिक पृथिव्यादि पंच महाभूतों को भिन्न-भिन्न विकल्प से शरीर का कारण मानते हैं। अतः संशय होने से विषय का विमर्श अपेक्षित है।

सूत्रकार के मत में मानुष शरीर पार्थिव है। क्योंकि इसमें गन्ध की उपलब्धि होती है। पृथिवी गन्धवती है और शरीर भी गन्धवान् है, अतः शरीर पार्थिव है। जल आदि गन्ध रहित भूतों से उत्पन्न होने पर शरीर अगन्ध होता। किन्तु ऐसा नहीं है। शरीर पार्थिव है, इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य भूतों का इसमें किंचित् भी संपर्क नहीं होता। वस्तुत: पांचों भूतों का संयोग होने पर ही शरीर उत्पन्न होता है क्योंकि भूतों का परस्पर संयोग निषिद्ध नहीं है। शरीर में पांचों भूतों का संयोग होने पर भी उसका मूल कारण पृथिवी होता है, अतः शरीर पार्थिव माना गया है। जिस प्रकार भूलोक में शरीर पार्थिव होता है, उसी प्रकार वरुणलोक में आप्य, सूर्यलोक में तैजस और वायुलोक में वायव्य शरीर होते हैं। आकाश में आरम्भकता नहीं है, अतः आकाशीय शरीर नहीं होता। इन शरीरों में भी मूल प्रकृति के अतिरिक्त अन्य भूतों का संयोग होता है। उदाहरणत:, घट का समवायिकारण मिट्टी मानी जाती है, किन्तु वहां भी जल, तेज आदि भूतों का संयोग रहता ही है, जिनके बिना घट की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अन्य भूतों का संयोग रहने पर भी घट मृत्तिकाजन्य ही कहा जाता है। उसी प्रकार शरीर भी अन्य भूतों का संयोग होने पर भी पार्थिव ही कहा जाता है।

शरीर की प्रकृति के सम्बन्ध में दार्शनिकों में अनेक मतभेद हैं। शरीर में गन्ध, शैत्य और उष्णता देख कर कुछ लोग इसे पार्थिवाप्यतैजस मानते हैं। इसके साथ-साथ निःश्वासोच्छ्वास होने के कारण वायु की भी कारणता कुछ लोग मानते हैं और इस प्रकार शरीर चतुर्भूतात्मक सिद्ध होता है। कुछ लोग गन्ध, क्लेद, पाक, रस सन्चरण और अवकाश इन शरीर भावों को देख कर शरीर को पान्चभौतिक मानते हैं।

"पार्थिवाप्यतैजसं तद्गुणोपलब्धेः"—३।१।२९
"निःश्वासोच्छ्वासोपलब्धेश्चातुर्भौतिकम्"—३।१।३०
"गन्धक्लेदपाकव्यूहावकाशदानेभ्यः पान्चभौतिकम्"—३।१।३१

इन पूर्वपक्षीय सूत्रों में उपस्थित युक्तियों को सन्दिग्ध समझ कर सूत्रकार ने उनकी उपेक्षा कर दी, किन्तु भाष्यकार ने इस पर विचार किया है। उसका कथन है कि भूतों के धर्म की उपलब्धि दो प्रकार से होती है, एक तो प्रकृति भाव (कारणता) से और दूसरे संयोग मात्र से। अतः उपर्युक्त गुणों को देख कर सब भूतों की कारणता बतलाना अयुक्त है। एकप्रकृतिक होने पर भी अन्य भूतों के संयोग मात्र से अन्य गुण उत्पन्न हो जाते हैं। जिस प्रकार घट में पञ्चभूतों

का संयोग रहने पर भी वह पार्थिव (मृत्तिकासमवायिकारणक) कहा जाता है उसी प्रकार यह शरीर भी पंच गुण युक्त होने पर भी पार्थिव ही है। यदि शरीर का समवायिकारण अनेक भूतों को माना जाय तो भिन्न-भिन्न कारणों के प्रभाव से शरीर अगन्ध, अरस, अरूप और अस्पर्श हो जायगा, किन्तु ऐसा नहीं है। अतः गन्ध की उपलब्धि से शरीर पार्थिव सिद्ध होता है :—

"तदिदमनेकभूतप्रकृति शरीरमगन्धमरसमरूपमस्पर्शं च प्रकृत्यनुविधानात् स्यात्"--नत्विदमित्थं भूतं, तस्मात् 'पार्थिवं गुणान्तरोपलब्धेः—वा० भाष्य।

इसकी विस्तृत व्याख्या उद्योतकर ने अपने न्यायवार्त्तिक में की है। कारण गुण स्वतन्त्र स्थिति में कार्यगुण का आरम्भक होता है, अन्य भूतों का संयोग होने से यह शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः पार्थिव परमाणुओं से आरब्ध द्रव्य तो गन्धवान् होगा, किन्तु पृथिवी और जल इन दो परमाणुओं से उत्पन्न द्रव्य गन्ध रहित होगा। इसी प्रकार पृथिवी और अग्नि से अगन्ध और अरस, पृथिवी और वायु से अगन्ध, अरस और अरूप तथा पृथिवी और आकाश से आरब्ध द्रव्य अगन्ध, अरस, अरूप और अस्पर्श होगा।

इसके अतिरिक्त, श्रुति प्रमाण भी शरीर को पार्थिव ही बतलाता है। 'सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतात्' इस मन्त्र में 'पृथिवीं ते शरीरम्' यह कहा गया है। अर्थात् अन्तकाल में शरीर पृथिवी में लीन हो जाय। चूंकि यह प्रकृति में विकार का लय होना बतलाता है, इसलिए पृथिवी प्रकृति और शरीर विकार है, यह सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'सूर्यं ते चक्षु स्पृणोमि' इस मन्त्र में 'पृथिवीं' ते शरीरं स्पृणोमि' यह सुना जाता है। यहां पर कारण से कार्य की उत्पत्ति बतलाई गई है। इससे भी पृथिवी कारण और शरीर कार्य सिद्ध होता है। वट आदि में भी समान जातीय द्रव्यों से ही एक कार्य की उत्पत्ति देखी जाती है, विजातीय कारणों से एक कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती :—

"स्थाल्यादिषु च तुल्यजातीयानामेककार्यारम्भदर्शनात् भिन्नजातीयानामेककार्यारम्भानुपपत्तिः।"—वा० भा०

आयुर्वेद में पंचीकृत महाभूतों के द्वारा शरीर की उत्पत्ति बतलाई है। किन्तु इन अन्योन्यानुप्रविष्ट भूतों में भी किसी एक का उत्कर्ष होता है और उस शरीर में उसी उत्कृष्ट भूत का लक्षण उपलब्ध होता है :—

"अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत्।
स्वे स्वे द्रव्ये तु सर्वेषां व्यक्तं लक्षणमिष्यते।"—सु०सू० १ अ०

"तत्र पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां समुदायाद् द्रव्याभिनिर्वृत्तिरुत्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं तैजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति।"

सु० सू० ४१ अ०

"सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकमस्मिन्नर्थे"—च० सू० २६ अ०

पञ्चीकरण के अनुसार द्रव्य में विशिष्ट महाभूत का आधा अंश तथा आधे में शेष चारों महाभूतों का १/४ भाग होता है। यथा पार्थिव द्रव्य में पृथिवी महाभूत १/२ तथा अप, तेज, वायु और आकाश इन चारों महाभूतों का अर्ध भाग का १/४ भाग होता है । इस पृथ्वी महाभूत के उत्कर्ष के कारण ही उसके लक्षण उस द्रव्य में व्यक्त रूप में उपलब्ध होते हैं। इसके अनुसार भी शरीर का समष्टिरूप में विचार करने पर वह पार्थिव प्रतीत होता है, क्योंकि उसी के गुण अभिव्यक्तरूप में मिलते हैं। इसी प्रकार घट भी पाञ्चभौतिक होने पर भी पार्थिव है । वैशेषिक दर्शन द्रव्य की उत्पत्ति में पूर्व ही पंच महाभूतों का संयोग मानता है और इसी समुदाय से द्रव्य की उत्पत्ति मानता है। किन्तु न्याय दर्शन मूलतः शरीर को एकप्रकृतिक मानता है और अन्य महाभूतों का संयोगमात्र मानता है। ऊपर बताया जा चुका है कि जैसे घट पाञ्चभौतिक होते हुए भी पार्थिव है उसी प्रकार मानव शरीर भी पांचभौतिक होते हुए भी पार्थिव है।

"यथा स्थाल्यामुदकतेजोवाय्वाकाशानामिति।"—वा० भाष्य

इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है :

"यथा स्थाली वह्निसंयुक्ता पचति । उदकसंगे क्लेदयति; वायुसंयुक्ता सञ्चारयति, आकाशसंयुक्ता तथा करोति । तथापि स्थाली पार्थिव्येव एवं मनुष्यशरीरमिदं पार्थिवमेव न पाञ्चभौतिकम्।"—भाष्य चन्द्रिका

इसी शैली में महर्षि चरक ने शरीर के निर्माण का वर्णन प्रारम्भ किया है :—

"तञ्च चेतनावस्थितं वायुर्विभजति, तेज एनं पचति, आपः क्लेदयन्ति, पृथिवी संहन्ति, आकाशं विवर्द्धयति।"—च० शा० ५ अ०

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि न्याय और वैशेषिक के इस पारस्परिक मतभेद का कारण दृष्टिकोण का अन्तर है न कि वस्तुतत्त्व का। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि आयुर्वेद का पाञ्चभौतिक विचार वैशेषिक दर्शन पर ही आधारित है।

इन्द्रियों का भौतिकत्व

न्याय, वैशेषिक और वेदान्त दर्शनों में इन्द्रियों को भौतिक माना गया है। आयुर्वेद भी इसका समर्थन करता है :—

"भौतिकानि चेन्द्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यन्ते तथेन्द्रियार्थाः।"—सु० सू० १ अ०

सांख्यदर्शन इन्द्रियों को आहंकारिक मानता है और राजस अहंकार की सहायता से सात्त्विक अहंकार के द्वारा उनकी उत्पत्ति बतलाई गई है।

"आहंकारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि"—सांख्यदर्शन २।२०

इन्द्रियों का भौतिकत्व सिद्ध करने में निम्नलिखित दो प्रधान युक्तियां दी जाती हैं:—

(१) इन्द्रियों के प्रतिनियत विषय :—

सांख्यदर्शन के मतानुसार सभी इन्द्रियां आहंकारिक हैं, अतः सभी के द्वारा समान रूप से सभी विषयों का ग्रहण होना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता । चक्षु के द्वारा केवल रूप का ही ग्रहण होता है, रस आदि का नहीं। इसके विपरीत, जब हम इन्द्रियों को भौतिक मानते हैं, तो तुल्ययोनि होने के कारण उस-उस इन्द्रिय से उस महाभूत के गुण का ग्रहण होता है। यथा चक्षुरिन्द्रिय तैजस है और रूप भी तैजस है; अतः चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा रूप का ही ग्रहण होता है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के भी विषय प्रतिनियत होते हैं :—

"इन्द्रियेणेन्द्रियार्थं तु स्वं स्वं गृह्णाति मानवः ।
नियतं तुल्ययोनित्वान्नान्येनान्यमिति स्थितिः ॥"

—सु० सू० १ अ०

महर्षि चरक ने भी लिखा है :—

"तत्रानुमानगम्यानां पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मकानामपि सतामिन्द्रियाणां तेजश्चक्षुषि, खं श्रोत्रे, घ्राणे क्षितिः, आपो रसने, स्पर्शनेऽनिलो विशेषेणोपपद्यते । तत्र यद्यदात्मकमिन्द्रियं विशेषात्तत्तदात्मकमेवार्थमनुगृह्णाति, तत्स्वभावाद्विभुत्वाच्च ।"

—च० सू० ८ अ०

इन पंक्तियों में महर्षि चरक ने इन्द्रियों के विषय प्रतिनियम में दो हेतु दिये हैं। एक तो यह कि तुल्ययोनि का तुल्य स्वभाव होने के कारण एक इन्द्रिय से विशिष्ट अर्थ का ही ग्रहण होता है। यथा तैजस होने के कारण ही चक्षुरिन्द्रिय तैजस रूप का ग्रहण करती है । दूसरी बात यह कि इन्द्रियों की शक्ति सजातीय विषयों के ग्रहण तक ही सीमित है । विजातीय विषयों का ग्रहण इन्द्रियों की शक्ति के बाहर है । इसी आधार पर इन्द्रियों का अनुमान किया जाता है। अनुमान का प्रकार उपर्युक्त सूत्र की व्याख्या करते हुये श्री चक्रपाणि ने लिखा है:—

"एतच्चक्षुस्तैजसं, रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात् बाह्यालोकवत्; रसनमाप्यं, रूपादीनां मध्ये रसस्यैव प्रकाशकत्वात् दन्तोदकवत्; तथा गन्धः स्वजातीयगुणोत्कर्षवदिन्द्रियग्राह्यो भूतविशेषगुणत्वात्, रूपवदिति ।"—चक्रपाणि

इसी प्रकार जयनारायण तर्कपंचानन लिखते हैं :—

"घ्राणेन्द्रियं पार्थिवं रूपादिमध्ये गन्धस्यैव व्यञ्जकत्वात् कुंकुमगन्धाभिव्यञ्जकघृतादिवत् । रसनेन्द्रियं जलीयं परकीयरूपाद्यव्यञ्जकत्वेव सति परकीयरसव्यञ्जकत्वात्सक्तुरसाभिव्यञ्जकोदकवत्, चक्षुरिन्द्रियं तैजसं गन्धाद्यव्यञ्जकत्वे सति रूपव्यञ्जकत्वात् दीपप्रभावत् । त्वगिन्द्रियं वायवीयं रूपाद्यव्यञ्जकत्वे सति स्पर्शव्यञ्जकत्वात्, अंगसंगिसलिलशैत्यव्यञ्जकव्यजनवत् ।"—कणाद सूत्रविवृति ।

आयुर्वेद महासम्मेलन पुस्तक विक्रय विभाग

पुस्तकों का सूचीपत्र

चरक (जयदेव कृत भा० टी०)	३२)
,, संहिता (भागीरथी टिप्पणी)	७)
सुश्रुत (श्री अत्रिदेव भा० टी०)	२०)
,, शारीर स्थान प्रभादर्पण	३)
,, ,, (डा० घाणेकर)	८)
भावप्रकाश विद्योतिनी भा० टी०	३०)
भावप्रकाश विद्योतिनी निघण्टु	७॥)
शार्ङ्गधर संहिता सुबोधिनी भा.टी.	६)
वाग्भट्ट अष्टांग हृदय भा० टी०	१६)
वाग्भट्ट अष्टांग हृदय (सटिप्पणी)	५)
चक्रदत्त भा० टी०	१०)
माधव निदान	४॥)
रसेन्द्रसारसंग्रह (3 Volumes) (वैद्य घनानन्द पन्त)	११)
रसेन्द्रसारसंग्रह, (रसचन्द्रिका भा० टी०)	६)
रस रत्न समुच्चय (मूल)	३॥)
रस रत्न समुच्चय भा० टी०	५)
नाडीविज्ञान	।–)
नाडी परीक्षा ,,	।–)
व्यवहारायुर्वेद (वैद्य गणेशदत्त कृत)	५)
विषतन्त्र ,, ,,	३)
सरल व्यवहारायुर्वेद व विषविज्ञान	४)
कौमार भृत्य (प्रो० रघुवीर प्रसाद)	९)
सिद्धान्त निदान (२ भाग)	१०)
प्रत्यक्ष शारीरम् (संस्कृत)	३॥)
(हिन्दी केवल प्रथम भाग)	६।)
शरीर तत्व दर्शनम् (श्री ह्विर्लेकर)	६)

हमारे शरीर की रचना (२ भाग)	२५॥)
पञ्चभूत विज्ञान (श्री उपेन्द्र नाथ कृत)	३)
त्रिदोष विज्ञान	२॥)
नव-परिभाषा ,, ,,	१॥)
यन्त्रशस्त्र परिचय (आचार्य सुरेन्द्रमोहन कृत)	१॥)
प्रतिसंस्कृत निदान चिकित्सा	१)
स्वास्थ्य संहिता (नानक चन्द)	२॥)
भैषज्य रत्नावली विद्योतिनी भा.टा.	१५)
प्रारम्भिक उपचार	१)
आरोग्यविधान	६)
विद्यापीठ परीक्षा नियमावली	॥)
विद्यापीठ गतपरीक्षा प्रश्न पत्र	
मर्मविज्ञान (सचित्र)	३॥)
Ayurveda Survey	४)
शहद (श्री रामेश वेदी कृत)	३)
लहसुन प्याज ,, ,,	२॥)
तुलसी ,, ,,	२)
सोंठ ,, ,,	१॥)
मिर्च ,, ,,	१)
देहाती इलाज ,, ,,	१)
काक चण्डीश्वर	१)
यकृत के रोग	२)
वैद्यक परिभाषा प्रदीप	१॥)
प्रारम्भिक भौतिकी	८)
,, रसायन सम्पूर्ण	४॥)
सौश्रुति	८॥)

उपर्युक्त पुस्तकें मंगवाते समय पुस्तकों का मूल्य तथा डाक व्यय निम्नलिखित पते पर भेजें :—

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय, ९०/८ कनॉट सर्कस, नई दिल्ली।

आयुर्वेद में जीवाणुओं का स्थान

[लेखक—साहित्यायुर्वेदाचार्य पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत, ए० एम० एस० लेक्चरार फार्मेकालोजी डिपार्टमेण्ट मेडीकल कालिज लखनऊ (यू० पी०)]

आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र की आधारशिला त्रिदोष-विज्ञान पर और आधुनिक पाश्चात्य एलोपैथिक चिकित्सा शास्त्र की प्रधानतया जीवाणु विज्ञान पर अवलम्बित है तथा वे (पाश्चात्य चिकित्साशास्त्रज्ञ), सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (माइक्रोस्कोप Microscope) की सहायता से अनेक रोगों के जीवाणुओं का दिग्दर्शन भी करा देते हैं, एवं उनको प्रतिषेधक तथानाशक चिकित्सा से जनता को लाभ भी पहुँचाते हैं,ऐसी अवस्था में सूक्ष्म दर्शक से प्रत्यक्ष सिद्ध, इन जीवाणुओं का रोग कारण तथा उनका वातादि दोषों से सम्बन्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से सम्भव है अथवा नहीं, इस प्रश्न पर विचार करना परम आवश्यक प्रतीत होता है ।

जीवाणुओं का अस्तित्व

आयुर्वेद में यद्यपि जीवाणु नाम नहीं मिलता है, परन्तु कृमि शब्द आयुर्वेद और अथर्ववेद में आता है जिसके अदृश्य* और दृश्य यह दो भेद सुश्रुत मुनि ने लिखे हैं । इनमें से आँखों से न दिखने वाले (Invisible इनविजिबल) †सूक्ष्म अदृश्य कृमि शब्द जीवाणु (बैक्टेरिया Bacteria) तथा प्रोटोजुआ Protozooa) का तथा कृमि शब्द वर्म (Worm) का बोधक है । अथर्ववेद में इनको क्रम से अदृष्ट‡ और दृष्ट नाम से निर्देश किया गया है—तथा इनकी पुरुष और स्त्री जाति का भी निर्देश किया गया है । यथा—

सर्वेषां च कृमीणां सर्वासां च कृमीणाम् । (अथर्व. काण्ड ५।२३।१३)

अथर्ववेद तथा महाभारत में इनके पर्वत, वन, औषधि, पशु, दूध, मन्थ भोजन, जल, फल

---

* (१) सूक्ष्मत्वाच्चैके भवन्त्यदृश्याः । (चरक वि. अ. ७।११)

(२) सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः । (अष्टांगहृदय निदान)

सौक्ष्म्यात्सूक्ष्मत्वात्कारणात्केचिददर्शनाः प्रत्यक्षप्रमाणसमधिगम्याः कार्येणैवानुमीयन्ते ।
(अरुणदत्त)

(३) केशादाद्यास्त्वदृश्यास्ते ।

† दृश्यास्त्रयोदशाद्यास्तु कृमीणां परिकीर्तिताः । (सुश्रुत. उत्तर. अ. ५४।१७)

‡ (अ) दृष्टश्च हन्यतां कृमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् । (अथर्व काण्ड ५।२३।२७)

(आ) दृष्टमदृष्टमतृहम् । (अथर्व. काण्ड २।३१)

तथा पृथ्वी में रहने का भी उल्लेख मिलता है तथा इनके हमारे शरीर में प्रवेश करने का भी वर्णन मिलता है । यथा:—

१— ये कृमयः पर्वतेषु वनेष्वौषधीषु पशुष्वन्तः
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिमक्रमीणाम् ॥
(अथर्व. काण्ड २।३१।५)

२—आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वियातयन्तामगदोऽयमस्तु ॥
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः ।
(अथर्व. काण्ड ५।२९।६-७)

३—ये अन्तः क्रमयो गवि । अथर्व. काण्ड (२।३२।६)

४—उदके बहवः प्राणाः पृथिव्यां च फलेषु वै ।
सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि भारत ।
पक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात्स्कन्दपर्ययः ॥ (महाभारत)

इन जीवाणुओं (दृश्य या अदृश्य कृमियों) के आँख, नाक तथा दाँतों में घूमने का वर्णन भी आयुर्वेद में मिलता है । यथा –

यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि । (अथर्व. काण्ड ५।२३।३)

महर्षि चरक ने इनके सहज अर्थात् अवैकारिक (नानपैथाजनिक (Non-Pathogenic) तथा वैकारिक भेदों का भी निर्देश किया है ।

यथा (अ) विंशतिविधाः कृमयः पूर्वमुद्दिष्टा नानाविधेन प्रविभागेनान्यत्र सहजेभ्यः ।
(चरक. विमान. अ. ७।९)

(आ) अन्यत्र सहजेभ्य इत्यनेन सहजास्त्ववैकारिकाःक्रमयो विंशतेरप्यधिका भवन्तीति दर्शयति । (चक्रपाणिदत्त)

(इ) विंशत्यतिरिक्ताश्चातिसूक्ष्माः कृमयश्चरकेणोक्ताः, ते चावैकारिकत्वेन रोगाधिकारे नोच्यन्ते । (मधुकोष व्याख्या)

वैकारिक कृमियों (जीवाणुओं) का स्थान[१] तथा स्वरूपः—

१—(अ) स्थानं रक्तवाहिन्यो धमन्यः । संस्थानमणवो वृत्ताश्चापादश्च वर्णस्ताम्रः ।
(चरक. विमान. अ. ७)

(आ) ते सरक्ताश्च कृष्णाश्च । रक्ताधिष्ठानजान् प्रायो विकारान् जनयन्ति हि ॥
(सुश्रुत. उत्तर. अ. ५४।१४)

(इ) रक्तवाहिसिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः अपादाः वृत्त ताम्राश्च।

इनका स्थान प्राणियों के शरीर में रक्तवाहिनियाँ और महास्रोत है तथा आकार में अणु स्वरूप गोल अथवा दीर्घवृत्त, पादरहित, चपटे, ताम्र या कृष्णवर्ण होते हैं ऐसा मुनिवर चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट का मत है।

प्रभाव[1] तथा संक्रमण—

प्राणियों के शरीर में इन सूक्ष्म कृमियों (जीवाणुओं) द्वारा गलित कुष्ठ, केश श्मश्रु, नाखून, दन्त, रोमकूप तथा पक्ष्म (पलक) का विनाश, कंडू आदि त्वचा के रोग, कास, श्वास, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा, नेत्राभिष्यन्द, पक्ष्मशात, विद्रधियाँ, विस्फोटक ज्वर, मसूरिका, विसर्प, मुखपाक, अरुनिका कृमिदन्त आदि रोग उत्पन्न हुआ करते हैं तथा इन रोगों का संक्रमण—एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर मैथुन[2] से शरीर का स्पर्श करने से, दूषित वस्त्र एवं

---

[1]--(क) सर्वाणि कुष्ठानि सवातानि, सपित्तानि, सश्लेष्माणि, सकृमीणि च भवन्ति।
(सुश्रुत निदान अ. ५।१३)

(ख) केशश्मश्रनखलोमापध्वंसो व्रणगतानां च हर्षकण्डूतोदसंससर्पणान्यतिवृद्धानां चासृक् शिरास्नायुमांसतरुणास्थि भक्षणमिति : (चरक. विमान. अ. ७)

(ग) केशरोमनखादाश्च दन्तादा:। (सुश्रुत उत्तर. अ. ५४।१३)

(घ) प्रपद्य धातून् व्याप्यान्त सर्वान् संक्लेद्य चावहेत्।
सस्वेदक्लेदसंकोथान् कृमीन् सूक्ष्मन् सुदारुणान्॥
लोमत्वक्स्नायु धमनी तरुणा स्थीनि यैः क्रमात्।
भक्षयेत् .... (अष्टांग संग्रह. निदान. अ. १४)

(ङ) षट् ते कुष्ठैककर्माणः (,,)

(च) कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥ (सुश्रुत. नि. अ. ५।३०)

(छ) औपसर्गिक रोगाश्च-- मसूरिकाश्च रोमान्त्यो ग्रन्थिवीसर्प च।
उपदंश कंड्वाद्या औपसर्गिकसंज्ञिका :

(ज) कासश्वासप्रति श्यायज्वरमसूरिकादयः (डल्हण)

[2]—(अ) प्रसङ्गाङ्गात्र संस्पर्शान्निःश्वासात्सह भोजनात्।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥
(सुश्रुत. निदान. अ. ५।३०)

(आ) स्पर्शैकाहारशय्यादिसेवनात्प्रायशीगदाः।
सर्वे संचारिणो नेत्रत्वग्विकाराविशेषतः॥ (अष्टांगसंग्रह)

बर्तन आदि का उपयोग करने से, श्वासप्रश्वास से, साथ में भोजन करने और बिछौने पर सोने से, रुग्ण व्यक्ति के जूते[1] और माला आदि के धारण करने से तथा मक्खियों द्वारा कृमि ले जाने से भी होता है।

यदि रोगसंक्रमण के इन उपर्युक्त कारणों पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि प्रधानतया त्वचा, श्वास प्रश्वास और मुख द्वारा ही जीवाणु प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट कर रोगों का संक्रमण करते हैं।

यथाः—(१) त्वचा द्वारा—

त्वचा में मैथुन, गात्रसंस्पर्श, सह शय्यासन, वस्त्रमाल्यानुलेपन और व्रणमुख का समावेश हो जाता है जैसे—

(अ) श्लेष्मल त्वचा द्वारा–फिरंगोपदंश तथा सूजाक आदि।

(आ) त्वचा के क्षत द्वारा विसर्प तथा धनुस्तम्भ आदि।

(इ) त्वचा में कृमिदंश द्वारा—जैसे मशकदंश द्वारा त्वचा में प्रविष्ट जीवाणु द्वारा विषम ज्वर, श्लीपद तथा पीत ज्वर आदि।

(२) मुख द्वारा—

विशूचिका, अतिसार तथा आन्त्रक ज्वर के जीवाणु मुख द्वारा खाद्य-पेय वस्तुओं के साथ प्रविष्ट होकर रोगों का संक्रमण किया करते हैं।

(३) श्वास प्रश्वास द्वारा—

वातश्लैष्मिक (इन्फ्लूएन्जा), न्यूमोनिया (श्वसनक ज्वर), राजयक्ष्मा, तथा फुफ्फुस-

---

(इ) त्वगक्षिरोगापस्माररराजयक्ष्मसूरिकाः।
दर्शनात्स्पर्शनाद्दानात् संक्रामन्ति नरान्नरम्॥ (उरभ्र)

(ई) कंडूकुष्ठोपदंशाश्च भूतोन्मादव्रणज्वराः।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥ (भावप्रकाश. मध्यमखंड)

(उ) तत्र नासारन्ध्रानुगतेन वायुना श्वासकासप्रतिश्याया. . .
त्वगिन्द्रियगतेन ज्वरमसूरिकादयः। (डल्हण)

(ऊ) अस्माकं शरीराणि व्रणमुखेन अन्नपानादिद्वारेण प्रविष्टाः। (सायणाचार्य)

(ए) मक्षिकाव्रणजातस्य निक्षिपन्ति यदा कृमीन्। (सुश्रुतसंहिता)

(ऐ) मक्षिकोपसर्पणात् व्रणे कृमयः पतन्ति। (डल्हण)

[1] —इसीलिए मनुस्मृति में अन्य व्यक्ति के धारण किये गये जूते तथा वस्त्रों का निषेध किया गया है।

उपानहौ च वासश्च धृतमन्यै र्न धारयेत्। (मनुस्मृति)

गत प्लेग के जीवाणु श्वास के साथ शरीर में प्रविष्ट होकर रोगों का संक्रमण करते हैं।

संक्रामक रोगों का प्रतिषेध—

इन सूक्ष्म कृमियों (जीवाणुओं)से संक्रान्त होने वाले रोगों से रक्षा करने के लिए आयुर्वेद में रसायन के प्रयोगों एवं ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से शरीर और मन को सबल बनाना, स्थान परित्याग तथा स्वस्थ स्थान का सेवन करना, खाने पीने की वस्तुओं की मल-मूत्रादि से दूषित होने से रक्षा करना शुद्ध जलवायु का प्रयोग करना, और यम नियम आदि का पालनकरना आदि उपाय संक्रामक रोगों के प्रतिषेध के लिए बताये गये हैं।

यथा—(क) रसायनानां विधिवच्चोपयोगः प्रशस्यते।
शस्यते देह वृत्तिश्च भेषजैः पूर्वमुद्धृतैः॥
हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्।
सेवनं ब्रह्मचर्यस्य। (चरक. विमान. अ. ३)

(ख) ब्रह्मचर्यं दयादानं सदाचार रतिःशमः।
देशानामविपन्नानां साधूनां च निवेषणम्॥ (अष्टांगसंग्रह)

(ग) नाप्सुमूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।
उपानहौ च वासश्च धृतमन्यर्नं धारयेत्॥ (मनु०)

संक्रामक रोगों की चिकित्सा—

अन्य रोगों की भाँति इन संक्रामक रोगों की चिकित्सा भी निदान परिवर्जन, संशोधन तथा संशमन आदि उपायों के द्वारा करने का निर्देश आयुर्वेद में दिया गया है। यथा—

अपकर्षण मेवादौ कृमीणां भेषजं स्मृतम्।
ततो विघातः प्रकृतेर्निदानस्य च वर्जनम्॥
संशोधनं संशमनं निदानस्य च वर्जनम्।
एतावद्भिषजा कार्यं रोगे रोगे यथाविधि॥

(आगामी अंक में समाप्य)

पाँच सौ वर्ष पुराना माण्डूर
४०) प्रति मन शुद्ध ६०) प्रति मन भस्म ३०) सेर
शुद्ध संखिया सफेद—आठ आना तोला
शक्ति आयुर्वेद मन्दिर लिमिटेड—चौमू जयपुर

गृध्रसी-चिकित्सा

(आयुर्वेदाचार्य श्री नृसिंह देव शर्म्मा, शास्त्री B. A. कविरत्न)

गृध्रसी एक अत्यन्त दुःखदायी रोग है, जहां रोगी को अपनी भयंकर वेदना से तड़पाता है वहां चिकित्सक को भी परेशान कर देता है।

आयुर्वेदाचार्यों ने समस्त रोगों के कारणों को वात, पित्त और कफ की मानव शरीर में विकृतावस्था माना है। यही त्रिदोष सिद्धान्त सार्वकालिक सत्य सिद्धान्त है। इसे ही केन्द्र में रख कर अन्य सिद्धान्तों की आचार्यों ने व्याख्या की है।

दोष दूष्य संयोग ही व्याधि की उत्पत्ति का कारण है और दोष दूष्य विकृति की विभिन्न अवस्थाओं एवं अंशांशि-कल्पना का सम्यक् ज्ञान ही आयुर्वेद के विद्यार्थी को सफल चिकित्सक बना सकता है। यही विशिष्ट "सम्प्राप्ति ज्ञान" ही हमारे शास्त्र को ऐलोपैथी एवं अन्य चिकित्सा शास्त्रों से भिन्न करता है। आयुर्वेद के विद्यार्थी के लिए शारीरिक यन्त्रों के घटकों (Tissues) आदि में तद्-तद् व्याधि द्वारा जो रचनात्मक या क्रियात्मक परिवर्तन होते हैं और जो ऐलोपैथी के विकृति विज्ञान शास्त्र (Pathalogy) का विषय है, मेरी सम्मति में जानना उतना आवश्यक नहीं जितना दोष दूष्य संयोग आदि का ज्ञान वैद्य के लिये चिकित्सोपयोगी हो सकता है। अतः वैद्य को केवल यही स्मर्तव्य है कि गृध्रसी "वात" से या "वात कफ" से होती है। जब नाड़ी में वात प्रकोपक कारणों से वात वृद्धि हो जाती है तो "स्तम्भ रुक् तोद" आदि लक्षणों से यह रोग अपना रूप प्रकट करता है। पहले पहल यह नितम्ब के प्रदेश में "स्तब्धता और वेदना" इन लक्षणों से प्रकट होता है और धीरे-धीरे नितम्ब के नीचे का प्रदेश पुनः जानु के पश्चाद् भाग और पिण्डलियों, पैर का निचला भाग तक, आक्रान्त कर लेता है। कभी-कभी तो अंगूठे तक वेदना और खिंचाव होता है। रह-रह कर व्याधि के दौरे पड़ते हैं। प्रायः वात प्रकृति के पुरुष ही इसका शिकार होते हैं। जीर्ण वृक्क शोथ, मधुमेह, वात नाड़ी-शोथ "गृध्रस्या नाड़ी" के समीपस्थ अङ्गों के अर्बुदों के कारण भी यह रोग हो जाता है। ऐसे रोगी भी देखे गए हैं जिन्हें मधुमेह का ज्ञान "गृध्रसी" के ज्ञान के बाद मूत्र परीक्षा द्वारा हुआ। वात रोग होने के कारण नितम्ब प्रदेश पर आघात और शीत लग जाना इसके प्रधान कारण हैं। अतः दूसरे शब्दों में "कटि वेदना" (Lumbago) के अनन्तर प्रायः इसके दर्शन होते हैं। रोगी चींटियां रेगती हुई और सुई चुभती हुई और कभी-कभी गर्मी का भी गृध्रसी नाड़ी पथ पर अनुभव करता है। सीधा लेटने पर रुग्ण पैर को सीधा नहीं कर सकता उसे सिकोड़ कर सोता है। मांसपेशियां प्रायः सूख जाती हैं, क्षीण हो जाती हैं, कभी-कभी स्पर्शज्ञान भी मारा जाता है, रोगी की गति में एक ओर झुकाव सा आ जाता है—यह है रोग का साधारण चित्र।

एलोपैथी चिकित्सा का प्रयोग कर के भी निराश हुए रोगी निम्नलिखित आयुर्वेदीय उपचार से नीरोग हुए हैं।

रास्ना गुग्गुलु ४ रत्ती, रस सिन्दूर ½ रत्ती, कुचला शुद्ध चूर्ण ½ रत्ती।

दोनों समय मधु से दें ऊपर से रास्नादिक्वाथ निलावें शुद्ध वातज गृध्रसी में निम्नलिखित तैल मलवायें।

कपूर १ भाग, तारपीन का तेल २ भाग, माल कंगनी का तेल ४ भाग—गरम करके मालिश करायें। यही तेल वृक्कशूल के तड़पते हुए रोगी को मर्दन मात्र से आश्चर्यजनक लाभ करता है। महानारायण तेल का भी मर्दन कराया जाता है। इतने पर भी कुछ रोगी ठीक नहीं होते। उनकी निश्चित और अमोघ औषधि "शेफालिका दल क्वाथ" (शार्ङ्गधर)—हारसिंगार के पत्ते २॥ तोला का षोडशगुणजल सिद्ध चतुर्थ भागावशिष्ट क्वाथ है। उक्त क्वाथ रास्ना गुग्गुलु के साथ देना चाहिए। कुछ समय पूर्व एक ऐसी धनी परिवार की रोगिणी आई जिसे आयुर्वेद और ऐलोपैथी के समस्त उपचार लाभ नहीं पहुंचा सके थे। उसे केवल हारसिंगार के पत्तों के क्वाथ से आश्चर्यजनक लाभ हुआ। तब से लेखक ने "दुराग्रही रोगियों" पर इसका सदा सफल प्रयोग किया है। मेरा विश्वास है कि उपर्युक्त पथ पर चिकित्सा करके प्रत्येक "आयुर्वेदानुयायी चिकित्सक" इस रोग की सफल चिकित्सा कर सकता है। मैंने अपने अनुभव में अनेक औषधियों के बृहद्वात चिन्तामणि, योगराज गुग्गुलु महालक्ष्म विलास, सीर पन्नग, आदि-आदि के प्रयोग के पश्चात् उक्त औषधियों को अत्यन्त लाभदायक पाया है।

—०—

प्र० का० फोन नं० ५६३ स्थापित १८६२ तार—'इन्जेकशन' झांसी
देशमान्य—मिश्रा—आयुर्वेदिक इन्जेक्शन-भारतीय
द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेक्शन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेदिक इन्जेक्शन विज्ञान पुस्तक, षष्ठ संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ॥=) नियमादि मुफ्त मंगायें।
सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २।) पो० ।=)।
सर्वप्रथम आविष्कर्ता एवं एक मात्र निर्माता—
जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू० पी०

आयुर्वेद लोक

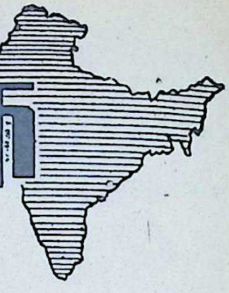

देश व्यापी धन्वन्तरि दिवस आयोजन

आयुर्वेद के प्रति प्रदर्शित उपेक्षा की तीव्र भर्त्सना

वैद्य समाज में अभिनव जागरण

नि० भा० आयुर्वेद सम्मेलन ने देशव्यापी प्रान्तीय सम्मेलनों तथा जिला, नगर और ग्राम वैद्य मण्डलों से अनुरोध किया था कि २८ अक्टूबर रविवार को धन्वन्तरि त्रयोदशी दिवस उत्साहपूर्वक मनायें जिसमें प्रभात फेरी, ध्वजा आरोहण, शास्त्र चर्चा, रोगी निरीक्षण आदि के बाद सार्वजनिक सभायें की जायें जिनमें देशकी स्वास्थ्य नीति में आयुर्वेद को प्रमुख स्थान देने के पक्ष में और आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति के प्रति केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदर्शित उपेक्षा नीति की भर्त्सना की जाय। यह परम हर्ष का अवसर है कि देश में सर्वत्र यह दिवस आशातीत सफलता के साथ मनाया गया। हमारे पास इस सम्बन्ध में बहुसंख्यक पत्र आये हैं जिनमें से प्रत्येक को प्रकाशित करना, स्थानाभाव से सम्भव नहीं है। वैद्य बन्धुओं से इसके लिये क्षमा याचना करते हुए हम नीचे केवल मात्र कुछ प्रमुख स्थानों का ही निर्देश करते हैं :—

नकोदर (जालन्धर), आयुर्वेद चिकित्सक मण्डल, बम्बई, आगाशीविरार (बम्बई,) फतेहगढ़-साहब (पेप्सु), सरहिन्द (पेप्सु), जंडियाला गुरु (अमृतसर), हरदा (मध्यभारत), जीरा (फिरोजपुर), सीकर (राजस्थान); कालेड़ा-बांगला (अजमेर), माजरा (हिमाचल प्रदेश), अपरा (जिला-जालन्धर), संगरूर (पेप्सु), नोहर (बीकानेर), मनावर (मध्यभारत), नडियाद (गुजरात), बूंदी बीकानेर, महेन्द्रगढ़ (पेप्सु), होशियारपुर, गुना (मध्यभारत), कच्छभुज (काठियावाड़), फरीदकोट (पेप्सु), फिरोजपुर, गोहाना (जि० रोहतक), भेलसा (मध्यभारत), उज्जैन (मध्यभारत), जगरावाँ (जि० लुधियाना), श्री माधोपुर (राजस्थान), नलीया (कच्छ), भरतपुर, खन्ना (पंजाब), अमृतसर, नाभा (पेप्सु), जेठाना (अजमेर), सवाई माधोपुर (जयपुर), मथुरा, भिवानी, (हिसार), नवलगढ़ (राजस्थान), हिसार, हरदा (मध्यप्रदेश), धार (करनाटक), शिमला, जोधपुर, ऊंझा, रीवाँ, भटिण्डा, सिरसा, ऊना, (जि० होशियारपुर), मेरठ, जोधपुर, कर्णगढ़ (भागलपुर), घनौर (पटियाला), इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा दिल्ली प्रान्त, मौड मण्डी (पेप्सु), स्यौनार।

सरदार शहर में सप्ताह व्यापी महोत्सव

सरदार शहर (राजस्थान) में सप्ताह व्यापी धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव मनाया गया जिसमें २२ अक्टूबर से २८ अक्टूबर तक नित्य प्रातःकाल नगरपालिका भवन में दुःसाध्य रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई । प्रति सायंकाल ७॥ बजे नगर के विभिन्न मुहल्लों में सार्वजनिक सभायें हुईं जिनमें मैजिक लेनटर्न की सहायता से स्वास्थ्योपयोगी भाषण हुए । असमर्थ रोगियों के गृह पर जाकर निःशुल्क रोगी निरीक्षण और उनकी चिकित्सा की गई । २६ अक्टूबर को नगर के प्रमुख आयुर्वेदज्ञ मोटर द्वारा फूलासर ग्राम गये जहाँ प्रातः ८ से ११॥ बजे तक सार्वजनिक सभा हुई तथा निःशुल्क रोगी निरीक्षण किया गया । नगर में श्री सम्पतराम विद्यालय तथा गवर्नमेंट कालेज में छात्रों के सम्मुख आयुर्वेद महत्व पर भाषण हुए । २८ अक्टूबर को प्रभातफेरी व ध्वजा अभिवादन के बाद सायं ७॥ बजे गाँधी चौक में श्री शोभाचन्द्र जम्पड़ के सभापतित्व में सार्वजनिक सभा हुई जिसमें महा सम्मेलन द्वारा निर्दिष्ट प्रस्ताव स्वीकृत किये गये ।

श्री आयुर्वेद विद्यालय, बरनाला का उत्सव

बरनाला (पेप्सु) स्थित उपर्युक्त विद्यालय का द्वितीय वार्षिकोत्सव तथा धन्वन्तरि दिवस २६,२७,२८ अक्टूबर को नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के अध्यक्ष वैद्य श्री मणिराम जी भिषगाचार्य (रतनगढ़) के सभापतित्व में हुआ जिसमें पटियाला राज्य संघ के प्रमुख वैद्यों ने भाग लिया । वीतराग श्री स्वामी रामसिंह जी महाराज मसूकावालों के करकमलों द्वारा पताका उत्तोलन किया गया । आपने ही विशाल अध्यापन भवन का शिलान्यास किया । सभापति महोदय के गवेषणापूर्ण भाषण के बाद महा सम्मेलन के विशेष प्रतिनिधि श्री स्वामी चेतनानन्द जी महाराज चिदाकाशी का समयोपयोगी भाषण हुआ । इस अवसर पर विद्यालय की सहायता के लिए वैद्यभूषण श्री वैद्य सन्तराम जी ने १००१) दान दिया तथा अन्य वैद्य महानुभावों ने २५०) से १०) तक यथाशक्ति दान दिया ।

मुजफ्फर नगर जिला वैद्य सम्मेलन

बिहार प्रान्त स्थित मुजफ्फर नगर जिले का वैद्य सम्मेलन विशेष उत्साह के साथ महनार कस्बे में जिले के प्रमुख वैद्य श्री रामदेव ओझा की अध्यक्षता में धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन २८ अक्टूबर को सम्पन्न हुआ । नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रधान मन्त्री वैद्य श्री गुरुदत्त एम० एस० सी० इस अवसर पर विशेषतः आमन्त्रित थे । आपके वहाँ ठीक समय पर पहुंच कर सम्मेलन में भाग लेने से इस अंचल के वैद्य समुदाय में बड़ा उत्साह फैल गया । बिहार राज्य के अर्थ मन्त्री श्री अनुग्रह नारायणसिंह ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि इस राज्य की सरकार आयुर्वेद को उन्नत करने के लिये विशेष प्रयत्नशील है तथा भारत के अन्यसब राज्यों से आगे है । आपने घोषणा की कि राज्य में देसी चिकित्सा बोर्ड का विधेयक पास हो कर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त कर चुका है ।

सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों में प्रथम महासम्मेलन द्वारा निर्दिष्ट प्रस्ताव था जिस द्वारा केन्द्र में आयुर्वेद चिकित्सा बोर्ड के निर्माण की माँग की गई थी तथा दूसरे प्रस्ताव में बिहार सरकार को देसी चिकित्सा बोर्ड निर्माण के लिए बधाई दी गई थी। २८ अक्टूबर रात्रि को एक घण्टे तक प्रधान मन्त्री श्री गुरुदत्त जी का आयुर्वैदिक—एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति की तुलना पर विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ जिसे उपस्थित वैद्य बन्धुओं ने बड़ा पसन्द किया।

सम्मेलन की सफलता का श्रेय प्रधानतः श्री कविराज उपेन्द्रनाथ झा को है जिसके लिए वे बहुशः धन्यवादार्ह हैं।

केकड़ी में धन्वन्तरि दिवस

२८ अक्टूबर को सायंकाल ३ से ६ बजे तक स्थानीय नगरपालिका भवन में श्री परमानन्द सेठ सब डिविजनल मैजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में यह दिवस मनाया गया जिसमें नगर के गण्यमान्य व्यक्ति बड़ी संख्या में उपस्थित थे। सभापति महोदय ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डाला।

—२१ अक्टूबर को बीजापुर में १८वाँ अखिल कर्नाटक आयुर्वेद सम्मेलन वैद्य गुरु श्री डी० के० भारद्वाज की अध्यक्षता में हुआ जिसका उद्घाटन बम्बई राज्य के बोर्ड आफ इण्डियन मैडिसन के प्रधान डा० बी० बी योघ द्वारा किया गया।

हैद्राबाद में आयुर्वेद की गूँज

१६ अगस्त का दिन हैद्राबाद के इतिहास में तथा आयुर्वेद जगत् में चिरस्थायी रहेगा। आज के दिन हैद्राबाद के स्वास्थ्य मन्त्री माननीय श्री फूलचन्द्र गाँधी ने पुनर्गठित राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय तथा नवीन आयुर्वेद चिकित्सालय का उद्घाटन किया। इस अवसर पर हैद्राबाद के मुख्य मन्त्री श्री एम० के० बैल्लेडी तथा स्वास्थ्य विभाग के प्रमुख अधिकारी, नगर के गण्यमान्य व्यक्ति तथा चिकित्सक भारी संख्या में उपस्थित थे। नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के उपप्रधान वैद्यराज श्री पं० शिवशर्मा इस अवसर पर विशेषरूप से सरकारी निमन्त्रण पर हवाई जहाज से पधारे थे। लगभग १॥ घण्टा तक आपने विद्वत्तापूर्ण सारगर्भित भाषण दिया जिसका हैद्राबाद की जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। आपके भाषण के बाद स्वास्थ्य मन्त्री श्री फूलचन्द गाँधी ने राज्य में हो रही आयुर्वेद प्रगति का संक्षिप्त परिचय दिया जिसके अनुसार गत वर्ष का आयुर्वेद का बजट १ लाख ७८ हजार था जबकि इस वर्ष में ५ लाख के लगभग हैं। ग्रामों में १०४ आयुर्वेद औषधालय खोले जा रहे हैं। नगर के आयुर्वेद चिकित्सालय पर ७५ हजार रु० के लगभग व्यय होगा। स्वास्थ्य सचिव मेजर जनरल भाटिया ने धन्यवाद देते हुए आयुर्वेदोक्त वे आदेश पढ़ कर सुनाये जिनका पालन वैद्यों के लिए आवश्यक था जिनमें एक यह था कि वैद्य एकाँत में स्त्रियों की परीक्षा न करें और न ही उनके पतियों की अज्ञानता में किसी प्रकार की भेंट स्वीकार करे। आशा है, यह महाविद्यालय आयुर्वेद विश्वविद्यालय के रूप में तथा चिकित्सालय अष्टाँग आयुर्वेद चिकित्सालय के रूप में अन्य प्रान्तों का पथ प्रदर्शन करेगा। समारोह की सफलता का श्रेय प्रधान चिकित्सक श्री पुरुषोत्तमदेव को ही है।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठस्य १९५१ तमवर्षीयं परिशिष्टपरीक्षाफलम्

(१) आचार्य परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमांकः २८, घासीराम शर्मा तृतीया श्रेणी । ७८, शिवानन्द शुक्ल, द्वितीया । ११९, रामेश्वर प्रसाद, द्वितीया । १२२, मथुराप्रसाद शर्मा, तृतीया । २०६, क्षेत्रपाल उपाध्याय, तृतीया । २४५, सत्यनारायण द्विवेदी, तृतीया । २४९, रामसेवक शुक्ल, द्वितीया । २५७, राजनारायण मिश्र, तृतीया । २८१, मोहनलाल मिश्र, द्वितीया । २८६, वंशीधर शर्मा, तृतीया । २८७, रामकिशोर शर्मा, द्वितीया । २८९, रामकिशोर शर्मा गौड़, द्वितीया ।

(२) आचार्य प्रथम खण्ड परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमांकः ७३, शिवनाथ शुक्ल । ७४, शिवदर्शन लाल शुक्ल । १०२, शम्भुदयाल सारस्वत । १०५, गंगाविष्णु शर्मा । १०८, मोहनलाल लाटा । १४८, रामनिरञ्जन शर्मा । २०८, गंगा प्रसाद पान्डेय । २२१, देवकीनन्दन गोस्वामी । २७४, गणपति शर्मा ।

(३) आयुर्वेदाचार्य परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः

क्रमांकः ६८, गयाप्रसाद ओझा, रोगविज्ञान । ९६, कृष्णचन्द्र जोशी, सुश्रुत । २२६, गो० मु० सत्यनारायण, सुश्रुत । २४७, चतुर्भुज मिश्र, आयुर्वेद इतिहास । २६८, रामचरणदास, शारीर ।

(४) आयुर्वेद विशारद परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमांकः १७, भीष्मदत्त, प्रथमा श्रेणी । १६६, नारायण दत्त, द्वितीया । २०५, नन्दलाल शर्मा, द्वितीया । २०७, मुरारीलाल शर्मा, तृतीया । २२७, देवकीनन्दन, तृतीया । ३९६, गोपाल कृष्ण गौड़, तृतीया । ३९७, देवीसहाय शर्मा, तृतीया । ५५८, हनुमत्प्रसाद शर्मा, द्वितीया । ५५९, गोवर्धन मिश्र, तृतीया ।

(५) आयुर्वेद विशारद प्रथम खण्ड परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमांकः २२३, मुन्शीलाल शर्मा । २४७, सत्यनारायण शर्मा । ३१३, अवधनारायण शुक्ल । ४४०, सीताराम महर्षि । ५३७, मदनलाल शर्मा ।

(६) आयुर्वेद विशारद परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः

क्रमांकः १६५, रामगोपाल शर्मा, अष्टांग० उ०। १८६, हनुमत्प्रसाद दाधीच, शारीर। २६८, राधेश्याम शर्मा, शारीर। ३०१ उमाशंकर जोशी, शारीर। ३६५, दामोदर प्रसाद शर्मा, शारीर। ३८५, नसीब चन्द्र, शारीर। ३९९, गो० राधावल्लभ, शारीर। ४४७, विष्णुदत्त वाजपेयी शारीर। ४९८, रमेशचन्द्र बादल, अष्टांग पू०।

(७) वैद्य विशारद प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमांकः २७, लक्ष्मी देवी। २८, कृष्णदत्त पूरे। ५४, ओंकारजी। ६५, मिहिरचन्द शर्मा।

(८) वैद्य विशारद परिशिष्ट परीक्षाधिकारी

क्रमांकः ४६, रामेश्वर मिश्र, शल्य।

(९) आयुर्वेद भिषक् परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमांकः १६४, शंकरलाल नागर, तृतीया श्रेणी। १६५, रेवाशंकर व्यास, तृतीया। २२३, अम्बालाल भट्ट, द्वितीया। ३५७, कैलाश सहगल, प्रथमा। ३६९, भगवानदास, तृतीया। ५०६, रामानन्द, द्वितीया। ५०७, वंशराजसिंह, द्वितीया। ५०८ विष्णु देशपाण्डे, द्वितीया। ५०९, श्यामबिहारीसिंह, द्वितीया। ५१०, सीताराम चौधरी, द्वितीया। ५११, गौरीशंकर त्रिपाठी, प्रथमा। ५१४, जमीनदारसिंह द्वितीया। ५४६, साधुराम शर्मा, तृतीया। ६८०, सोमेश्वर भट्ट, द्वितीया। ७०३, किशनलाल गुप्त, द्वितीया। ७२२, रामगोपाल शर्मा, तृतीया। ७६५, प्रेमदास कबीर, द्वितीया। ७८०, कोतपल्लिवेंकटराव, द्वितीया। ७९६, शिवशंकर तृतीया। ८०४, गिरजाशंकर शुक्ल, द्वितीया। ८०५, जगन्नाथ त्रिपाठी, द्वितीया। ८५२, सावित्रीबाई, तृतीया। ८७७, वेदप्रकाश गुप्त, तृतीया।

(१०) आयुर्वेद भिषक् प्रथम खण्ड परीक्षोत्तीर्णाः

क्रमांक; ९९, नर्मदाशंकर। १२३, राधावल्लभ शर्मा। १८१, तेजमल जैन। १९६, स्वरूप नारायण। २०५, रामचन्द्र चवरे। २१२, सखाराम गोरे। ४०४, मदनगोपाल [शर्मा। ५४२, सियाराम गुप्त। ६०५, वसवलिंगय्या। ६६१, रामचन्द्र खापर्डे। ७१८, पुरुषोत्तम लाल शर्मा। ७९७, ज्ञानकुमारी जैन। ८६०, नन्दरानी देवी। ९४०, मो० प० सूर्यनारायण।

(११) आयुर्वेद भिषक् परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः

क्रमांकः १०३, सुरेन्द्रनाथ जोशी, रोगविज्ञान। १३३, गोवर्धन लाल गुप्त, द्रव्यगुण। १७२, राधेश्याम अजमेरा, शारीर। ८२६, राममूर्ति त्रिपाठी, द्रव्यगुण। ९६१, चगन्ति सत्य नारायण, शल्यतंत्र।

रामगोपाल शास्त्री, विद्यापीठ मंत्री।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यसमिते-श्चतुर्थाधिवेशनम् ।

स्थानम्—विद्यापीठ कार्यालयः (९०।८ कनाट सरकस, नई दिल्ली) ।
समयः—ता. १४ अक्टूबर १९५१ रविवार द्विवादनान्तरमपराह्णे ।
सभापतिः—कविराज श्री उपेन्द्रनाथदासः (विद्यापीठोपाध्यक्षः)

उपस्थिति—सर्वश्री उपेन्द्रनाथदासः (दिल्ली), बाबूराम शर्म्मा, (बरनाला), हीरालाल शास्त्री (बरनाला), जयभगवान शर्म्मा (खुर्जा), गणेशदत्त शास्त्री (मेरठ), धर्मेन्द्रनाथ (दिल्ली), नानकचन्द्र (दिल्ली), शिवनाथ शर्मा (दिल्ली), जगदीशप्रसाद शर्मा (दिल्ली); घनानन्द पन्त (दिल्ली), आशुतोष मजूमदार (दिल्ली), रामगोपाल शास्त्री (दिल्ली) ।

सम्मतिप्रेषकाः—सर्वश्री जयप्रकाश शर्मा (धमदात :), पी० डी० मूले (अमरावतीतः), मदनमोहन द्विवेदी (बरेलीतः), ब्रह्मदत्त शर्मा (भुसावलतः), श्रीधर मायाधारी शास्त्री (अमृतसरतः), वी० वी० नटराज (त्रिचनापल्लीतः), वामन दीनानाथः (बुरहानपुरतः) वैद्यनाथ शर्मा (बगड़तः), वंशीधर (इन्दौरतः), प्र० अ० द्विवेदी आयुर्वेद विद्यालय (कानपुरतः), प्रभुदत्त (सीकरतः), प्रतापसिंह (उदयपुरतः), डी० के० भारद्वाज (बैंगलौरतः), दुर्गादत्त शास्त्री (बनारसतः), जी० वी० पुराणिक (बीजापुरतः)

१—गताधिवेशनस्य कार्यविवरणं श्रावितं सर्वसम्मत्या स्वीकृतञ्च ।

(२)—परिशिष्टपरीक्षाफलविषयसमुपस्थिते प्रस्तुतं परीक्षा फलं स्वीकृतन्तथा अनिरीक्षितोत्तरपुस्तकनिरीक्षणभारः श्रीपण्डितवर्याभ्यां नानकचन्द्रघनानन्दपन्तमहोदयाभ्यां समर्पितम् । इदमपि च निर्णीतं यदवशिष्टोत्तरपुस्तकानां निरीक्षणानन्तरं परिणामः १८. १०. ५१ तम दिनांके उद्घोषितः स्यात् । तथा चेदमपि निर्णीतं यत् मराठीतामिलभाषापरिणामः उत्तरपुस्तकप्राप्त्यनन्तरमेव विद्यापीठमंत्रिणोद्घोषणीयः ।

(३) १९५२ तमवर्षीयपरीक्षारम्भतिथिविषये निश्चितं यत् २४ मार्च १९५२तः प्रारभेरन् ।

(४) सशुल्कपरीक्षकस्थापनासम्बन्धे सर्वमतेन स्वीकृतं यत्—
विद्यापीठपरीक्षाणां स्तरमुच्चैः कर्तुं परीक्षककेन्द्राध्यक्षनिरीक्षकाः—सर्वेऽपि सशुल्का

भवेयुः । एतदर्थं सविद्यापीठमंत्री प्रधानमंत्री सर्वश्रीआशुतोषमजूमदारशिवनाथशर्मा नानकचन्द..महोदयै निर्मितोपसमितिः सम्पूर्णं व्ययस्य विवरणं स्थायीसमित्यामुपस्थाप्य स्वीकृतिमाप्नुयात् ।

(५) १९५२ तम वर्षीय परीक्षोपसमत्यै अधोविन्यस्ताः महानुभावाः निश्चिताः—श्री विद्यापीठमंत्री, श्री जगदीशप्रसादः, आचार्यसुरेन्द्रमोहनश्च ।

(६) (क) निश्चितं यत् वैद्यविशारदपरीक्षोत्तीर्णछात्रेभ्यः प्रादेशिकभाषासु वैद्याचार्य परीक्षा प्रारब्धा स्यात् ।

(ख) वैद्यविशारद परीक्षोत्तीर्णछात्रो यदि कस्यचिद् विश्वविद्यालयस्य संस्कृतभाषाया मध्यमा अथवा विशारदपरीक्षामुत्तीर्येत् अथवा यस्य समकक्ष परीक्षा परिशिष्टपरीक्षा काले विद्यापीठद्वारा संगृहीता स्यात् तामुत्तीर्य स छात्र आयुर्वेदाचार्य परीक्षायां प्रवेष्टु मर्हति वैद्यविशारदोत्तीर्णः छात्रः आयुर्वेदाचार्यपरीक्षायां प्रवेशो वांछति चेत्तदा स पूर्वं संस्कृते मध्यमाविशा परीक्षां दद्यात् अथवा सम्मेलननिश्चितसंस्कृतपरीक्षामुत्तीर्येत् ।

(७)--(क) बनराला केन्द्र पुनः वर्षैकाय सर्वमतेन स्वीकृतम् ।

(ख) सर्वमतेन निर्धारितमिदं यन्नूतनमथप्राचीनकेन्द्रविषये निम्नांकित महोदयानमेकोपसमिति र्नियोक्तव्या या स्वपरामर्शान् कार्यसमित्यामुपस्थापयेत् :—

(१) श्री विद्यापीठ मंत्री (२) श्री प्रधान मंत्री (३) श्री आशुतोष मजूमदार (४) श्री शिवनाथ शर्म्मा (५) श्री जगदीश प्रसाद शर्म्मा (६) श्री सुरेन्द्र मोहन : (७) श्री नानक चन्द्र शास्त्री ।

(८) निश्चितं यत् कार्यसमित्या कठोरपरीक्षकाणां विषयेषु यावदधिकांकप्रदानं कृतं तेष्वंकेषु अंकद्वयप्रदानेन तस्यां परीक्षायां छात्रोत्तीर्णः स्यात्तर्हि इदं प्रदातव्यम् ।

मिश्रितविषयाः

(९) श्री भोलादत्तपाण्डेयपत्रश्रावणानन्तरं निश्चितं यत् सम्मानितोपाधिप्रदानविषयः शिक्षासम्मेलने उपस्थातव्यस्तस्यच निर्णयः स्वीकार्यः ।

(१०) झांसी विश्वविद्यालयविषये श्री धुलेकरमहोदयपत्रश्रावणानन्तरं निर्धारितं य पुनरप्यधिकपत्रव्यवहारानन्तरं तस्य मतं ज्ञात्वा पुनरपि विषयोऽयं कार्यसमित्यामुपस्थापितव्यः।

(१) यैः परीक्षकैः परीक्षार्थिनां विषये परस्परानुकरणं निर्दिष्टं तेषां परीक्षार्थिनां परीक्षा अस्वीकरणीया भवेत् ।

(१२) सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् प्रश्नपत्रसंशोधनाधिकारः परीक्षोपसमित्यै प्रदातव्यः॥ धन्यवादानन्तरं सभा समाप्ता ।

रामगोपाल शास्त्री ।
मंत्री विद्यापीठ।

हिमालय तथा अन्य देशीय आयुर्वैदिक द्रव्य सस्ते भाव पर

जिनके एक एक द्रव्य मनों लगता हो वह भाव पत्र से निश्चय करें।

अष्ट वर्ग	३) सेर	मयूर शिखा	२) सेर
शुद्ध शिलाजीत	२५) सेर	खर्पर	४) सेर
जिया पोता	११) सेर	निर्विषि असली उदवार	१५) सेर
कुठ असली	२॥) सेर	निर्विषि कांटा	॥।) सेर
सालम पंजा	१६) सेर	वच मधुर	४) सेर
भिखरमा	७) सेर	अक़ीक़	१५), ६), २) सेर
नागकेशर असली तरीवाला	१०) सेर	प्रवाल शाखा	२०) सेर
संगमसव	४) सेर	सत गिलोय	६॥) सेर
दशमूल सात्वत	३५) मन	अम्बर सितारेदार	१८) तोला
दशमूल क्वाथ	२०) मन	शिवलिंगी बीज	६॥) सेर
केशर कश्मीरी मोगरा	७) तोला	मंडूर बहुत पुराना	।) सेर
कस्तूरी तिब्बती	४०) तोला	अभ्रक कृष्ण वज्र	१॥) सेर
कस्तूरी नैपाली	३५) तोला	लोह चूर्ण उत्तम	१॥) सेर
कस्तूरी कश्मीरी	३०) तोला	अशोक बंगाल	३२) मन
प्रपंगुवाटीक असली	२॥) सेर	अर्जुन छाल	।=) सेर
पत्थर शिलाजीत	४) सेर		

सब वनौषधियां बढ़िया हैं। द्रव्य, भस्म, रस आदि हम से सस्ते भाव पर लें।

मैनेजर आयुर्वैदिक देश रक्षक औषधालय नं० ४
कनखल (हरिद्वार) यू० पी०।

शुद्ध और अत्यन्त सस्ती

शीघ्रता से मंगाइये, पुनः मौका नहीं मिलेगा

हम केवल आयुर्वेद की विशुद्ध सेवा के लिये उपयोगी वस्तुओं का स्टाक शीघ्र विक्रय करना चाहते हैं। इन भावों पर २० तोला से कम कोई औषधि न भेजी जावेगी, कम मंगाने पर परचून के अधिक भाव होंगे। स्टाक कम होते ही इन भावों पर विक्री बन्द कर दी जावेगी।

अभ्रक वज्रभस्म ६० पुटी	८०) सेर
अभ्रक वज्र भस्म ३० पुटी	३०) सेर
अभ्रक श्वेत भस्म	१२) सेर
कस्तूरी नैपाली असली	३०), ४०) तोला
कर्पूररस	२०) पाव
केसर काश्मीरी	५), ८) तोला
कान्त लोह भस्म	२४) सेर

कालीस भस्म	८) सेर
कांकायनी वटी (टेबलट)	१०) पाव
गंधक शुद्ध आमलासार	८) सेर
चन्द्र प्रभा वटी	२८) सेर
ताम्र भस्म	८०) सेर
प्रवाल भस्म	३०) सेर
पारद शुद्ध	३०) सेर
मुक्ता शुक्ति भस्म	८) सेर

मण्डूर भस्म	१८) सेर
योगराज गुग्गलु	१३) से
रस सिन्दूर	५८) से
लोहभस्म	२०) से
वंग भस्म	२५) से
शंख जीरक भस्म	[illegible]) से
शृंगराज	१२) से
स्वर्ण वंग	७०) से
स्वर्ण मात्तिक-	२६) से
विंशति प्रमेह नाशक जड़ी	४) से

अन्य आवश्यक द्रव्य उचित मूल्य पर भेजे जाते हैं।

पता—श्री योगेन्द्र फार्मेसी, (रजिस्टर्ड) अमृतसर।

'Standard' आदर्श आयुर्वैदिक औषधियों के लिए :-

प्रताप
अयुर्वैदिक
फार्मेसी
लिमिटेड
अमृतसर
को
सदा सम्मरण रक्खें

उत्तरीय भारत की केवल यही एक फार्मेसी है जिसमें ठीक विधिवत आयुर्वैदिक रस, रसायन, भस्में आसव, अरिष्ट, चूर्ण, गुटिका, अवलेह, और घृत तैलादि समस्त औषधियां पूरे परिश्रम मेहनत और ईमानदारी से तय्यार की जाती हैं।

सूचिकाभरण

प्रताप आयुर्वैदिक इन्जैक्शन

फार्मेसी ने वर्षों के परिश्रम अनुसन्धान तथा भारी व्यय से आयुर्वैदिक इन्जैक्शन तय्यार किये हैं, जो शत प्रतिशत सफल सिद्ध हो रहे हैं।

हर प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियों और इन्जैक्शनों का सूचीपत्र मंगाने का पता :-

प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटेड.

अमृतसर •

ब्रांचें :- ① आर्य समाज रोड करौल बाग देहली •
② तलाब बाजार लुधियाना •

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक एक वाक्य हज़ारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के नीरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हज़ार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसो उत्तम पुस्तक दूसरी नहीं है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ १॥।), डाक खर्च ॥=), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० एजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,
कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

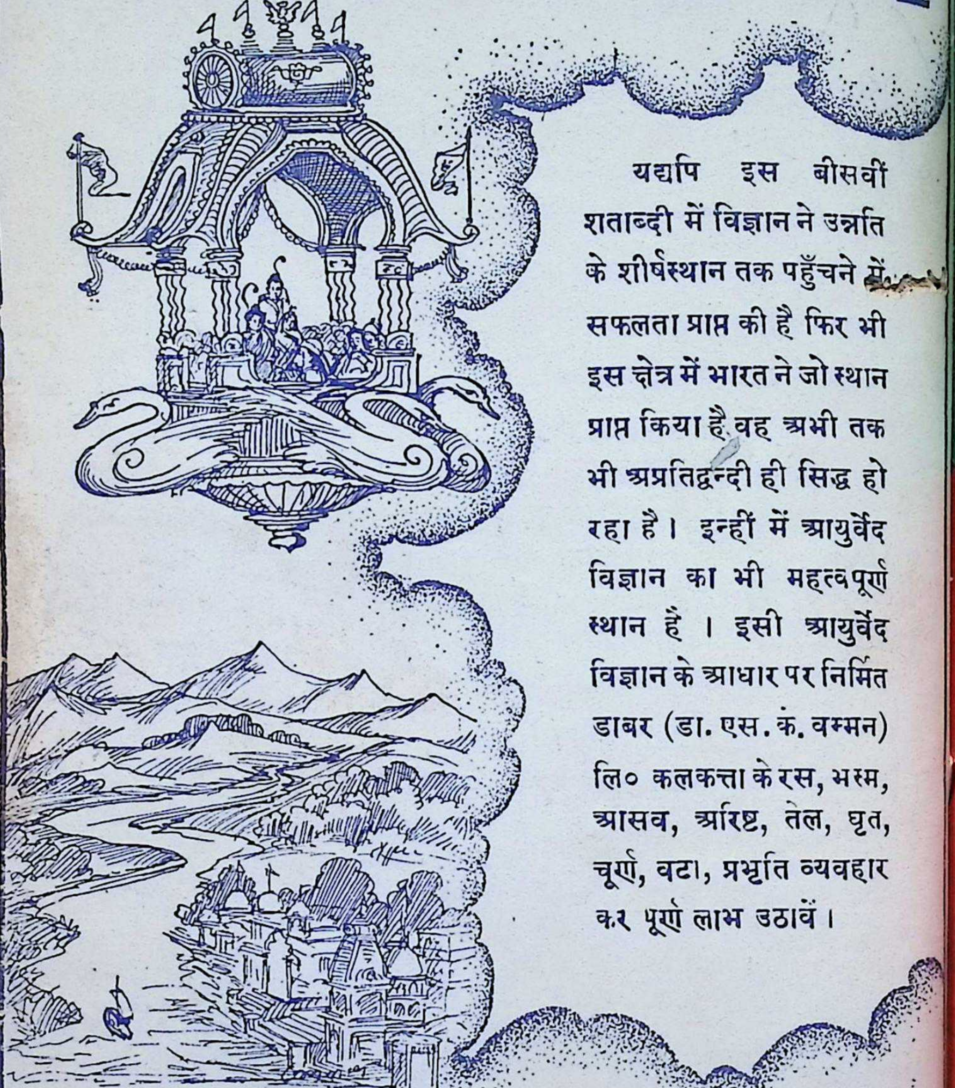

'विज्ञान' और 'भारत'

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. वर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर डा० एस० के० वर्म्मन) लि०

पोस्ट—बक्स ५५४, कलकत्ता।

नि०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये क० [illegible] मुलतानी द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—न्यू इण्डिया प्रैस, नई दिल्ली।

सितम्बर
१९५१

भाद्रपद
२००८

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

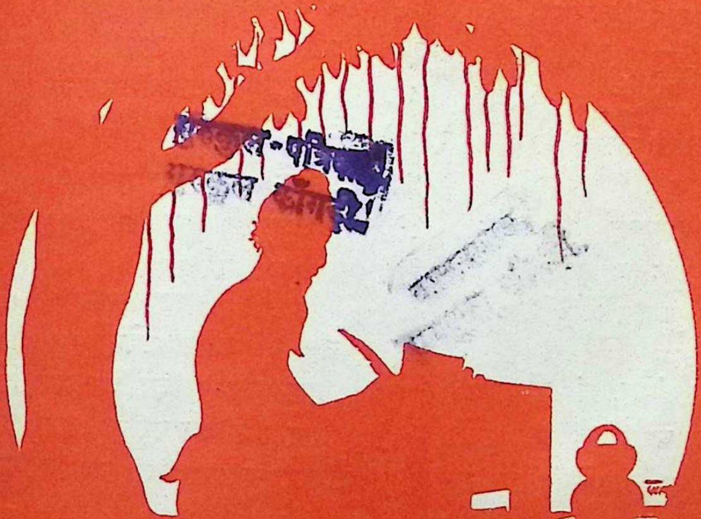

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०, बी० आई० एम० एस०

आयुर्वेद महासम्मेलन पुस्तक विक्रय विभाग

पुस्तकों का सूचीपत्र

चरक (जयदेव कृत भा० टी०)	३२)
,, (श्री अत्रिदेव कृत ,,)	३६)
,, संहिता (भागीरथी टिप्पणी)	७)
सुश्रुत संहिता भा० टी० सहित	२०)
सुश्रुत संहिता शारीर स्थान प्रभादर्पण	३)
,, ,, ,, ,, (डा० घाणेकर)	८)
भावप्रकाश विद्योतिनी भा० टी०	३०)
शार्ङ्गधर संहिता सुबोधिनी भा टी.	६)
भावप्रकाश चिद्योतिनी निघण्टु	७॥)
नाडीविज्ञान भा० टी	।–)
नाडी परीक्षा ,,	।–)
वाग्भट्ट अष्टांग हृदय वि० भा०टी०	१६)
वाग्भट्ट अष्टांग हृदय (सटिप्पणी)	५)
चक्रदत्त भा० टी०	१०)
रस तरंगिणी	१०)
कौमार भृत्य (प्रो० रघुवीर प्रसाद)	६)
सिद्धान्त निदान (२ भाग)	१०)
प्रत्यक्ष शारीरम् (संस्कृत)	२३॥)
(हिन्दी केवल प्रथम भाग)	६।)
हमारे शरीर की रचना (२ भाग)	२५॥।)
माधव निदान	४॥)
माधव निदान सुन्दरी भा० टी०	१२)
रस रत्न समुच्चय (मूल)	३॥)
रस रत्न समुच्चय भा० टी०	१५)
आरोग्यविधान	६)
रसेन्द्र सार संग्रह, सं० हिंदी टीका (वैद्य घनानन्द पन्त कृत)	११)
रसेन्द्रसार संग्रह (रसचन्द्रिका भा०टी०)	६)
व्यवहारायुर्वेद (वैद्य गणेशदत्त कृत)	५)
विषतन्त्र (,, ,, ,,)	३)
सरल व्यवहारायुर्वेद व विषविज्ञान	४)
भैषज्य रत्नावली विद्योतिनी भा.टा.	१३)
यन्त्रशस्त्र परिचय (आचार्य सुरेन्द्रमोहन कृत)	[illegible]
त्रिदोष विज्ञान (क० उपेन्द्र नाथ कृत)	२॥)
प्रतिसंस्कृत निदान चिकित्सा (वैद्य घनानन्द पन्त कृत)	१)
मर्मविज्ञान (सचित्र)	३॥)
Ayurveda Survey Dr. D. Narayan Rao.	४)
भारतीय रस पद्धति	१॥)
आयुर्वेद विज्ञानसार	१॥)
वैद्यक परिभाषा प्रदीप	१॥)
प्रारम्भिक भौतिकी	८)
,, रसायन सम्पूर्ण	४॥।)
सौश्रुति	८॥)
प्रारम्भिक उद्भिद शास्त्र	४॥)
पञ्चभूत विज्ञान (श्री उपेन्द्र नाथ कृत)	३)
स्वास्थ्य संहिता (नानक चन्द शास्त्री कृत)	२॥)
नव परिभाषा उपेन्द्रनाथ दास)	१॥।)
विद्यापीठ परीक्षा नियमावली	॥)
विद्यापीठ गत परीक्षा प्रश्न पत्र	

उपर्युक्त पुस्तकें मंगवाते समय पुस्तकों का मूल्य तथा डाक व्यय निम्नलिखित पते पर भेजें :—

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय ९०/८, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली।

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली ।

वर्ष ३७
अङ्क १०
नई दिल्ली, भाद्रपद २००८, सितम्बर १९५१
मूल्य ।।)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१, वेदान्तर्गत औषध	(पं० रामगोपाल जी)	४२६
२. वैद्यक का इतिहास	(स्व० गुणे जी)	४२९
३. आयुर्वेद लोक		४३१
४. गाजियाबाद सम्मेलन	(मंगलदास स्वामी)	४३३
५. नेत्र रोग विज्ञान	(डा० अग्रवाल)	४४१
६. दर्शनों में आयुर्वेद	(पं० प्रियव्रत जी)	४४५
७. साहित्यसत्कार		४५१
८. एक नेत्र रोगी	(पं० वीरलभाया)	४५३
९. स्व० ऊधवदासजी	(श्री दौलतराम)	४५४
१०. ज्ञान-विज्ञान		४५५
११. केला	(डा० शिवप्रसाद)	४५६
१२. वैदिक काल में सांप	(नित्यानन्द जी)	४५७
१३. पाठकों के पत्र		४६०
१४. आयुर्वेद महासम्मेलन		४६५
१५. कामावेग के विकार	(डा० बलदेव)	४७१

वेदान्तर्गत औषध संग्रह

ले० वैद्य भूषण पं० रामगोपाल शास्त्री मंत्री, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली।

सम्मेलन पत्रिका के जून मासांक में "वेदान्तर्गत रोग संग्रह" और अगस्त मासांक में "वेदान्तर्गत आयुर्वेद विषय" लेख पाठकों ने पढ़ लिये होंगे। यह तीसरा लेख "वेदान्तर्गत औषध संग्रह" नाम का पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। वेदों के अध्ययन से आज तक जिन जिन वैदिक औषधों का मुझे पता लगा है मैंने उन सब का पते सहित संग्रह लिख दिया है। ओषधि से वनस्पति समझें और जो रोग निवारणार्थ द्रव्य प्रयुक्त होता है वह औषध है। इसमें नाग, सुवर्ण, सूर्य, चन्द्रादि आते हैं। अथर्ववेद ८। ७। १४ में ज्ञात तथा अज्ञात ओषधियों (वनस्पतियों) का वर्णन आता है। इससे निश्चित होता है कि जितनी ओषधियां यहां लिखी हैं, इनके अतिरिक्त अनेकों अज्ञात ओषधियां भी संसार में विद्यमान हैं। औषधियें मनुष्य और पशु रोगार्थ प्रयुक्त होती हैं—ऐसा अथर्ववेद ८। ७। ११ से प्रकट है। अथर्ववेद ८।७।१३, पृथिव्यामध्योषधी" स्पष्ट करता है कि वैदिक ऋषि सब पृथ्वी मण्डल की ओषधियों को प्रयोग में लाने के पक्ष सें हैं। ओषधियों में "प्रस्तृणती". "स्तम्बिनी", "एकशुङ्गा', "प्रतन्वती", "काण्डिनी","पुष्पा" आदि आदि अनेक प्रकार की ओषधियों का अथर्ववेद ८।७ में वर्णन आता है। विस्तार से पाठक वहां देखें। ये ओषधियें मूल्य ली जाती हैं—ऐसा वर्णन अथर्ववेद ४।७।६ में है।

प्रस्तुत लेख में पहले औषध का वैदिक नाम दिया है, उसके आगे जिन-जिन का वर्तमान नाम मिला है वे लिख दिये हैं। जिनका पता नहीं मिला है, उनके आगे कुछ नहीं लिखा है। वैदिक आयुर्वेद सम्बन्धी गवेषणा करने वालों को इससे बहुत लाभ होगा। भविष्य में मुझे जो अन्य औषध मिलेंगे वह पाठकों की सेवा में उपस्थित किये जायेंगे। यदि अन्य किसी विद्वान् को वेदान्तर्गत अन्य किसी औषध का पता मिले तो मुझे अवश्य सूचित करें, कृपा होगी। इस संग्रह में प्राकृतिक सूर्य, वायु, जल, चन्द्रमा, विद्युत आदि-आदि जो रोग निवारक औषधरूप में आते हैं, उनका नाम भी दिया है। खनिज औषधों का वर्णन भी दिया गया है, पाठक इसे ध्यान से पढ़ें।

अंग अ० १।१६।२ अग्नि
अग्निः ५।२९।१
अजश्रृङ्गी अ० ४।३७।२ मेढासिंगी
अनाबयो अ० ६।१६।१
अपचित् वेधनम् अ० ७।७४।१
अपामार्ग अ० ४।१७।८ पुठकण्डा
अरंघुष १०।४।४
अराटकी ४।३७।६
अरुन्धती ५।५।९
अर्कः ६।७२।१ आक
अर्जुनः १३।३।६ कोहूवृक्ष
अर्जुन काण्ड २।८।३
अलसाला ६।१६।४

अश्वत्थः ८।७।२० पीपल वृक्ष
अश्ववारः १०।४।२
अश्विनौ ऋ० ८।१८।८ अहोरात्रौ द्यावापृथिव्यौ, सूर्याचन्द्रमसौ
असिक्नी १।२३।१ नीलिनी
अस्तृतमणिः १९।४६।१
आंगिरसी ८।७।१७
आंजनः ४।९।७ सुरमा
आपः ऋ० १।२३।१९ जल
आबयो ६।१६।१
आसुरी १।२४।१ (गौर सर्षप)
इन्द्रः (सूर्यः) यजु० २८।९
उदुम्बरः २०।१३६।१५ गूलर

उत्तान पर्णी ३।१८।२ एरण्ड
ऋतावरी ५।१५।१
ऋत जात ५।१५।१
औक्षगन्धिः ४।३७।३
औदुम्बर मणिः १९।३१।१
कनक्नम् १०।४।२२ टंकण
कृत्यादूषणी ८।७।१०
कृष्णा १।२३।१; ८।७।१ मरिच, पिप्पली, नीली वृक्ष, द्राक्षा लता, नील पुनर्नवा, कृष्ण-जीरक, इन्द्रयव, सोमराजी, शारिवा-विशेष, कृष्ण तुलसी, दूर्वा, कस्तूरी जटामांसी, काकोली, शतपत्री, कुटज वृक्ष
कुष्ठ ५।४।१ कुठ
कण्व जम्भनी २।२५।२
करम्भम् ४।७।३
कल्याणी २०।१२८।८ माषपर्णी, स्वर्ण पत्रिका, सर्ज वृक्ष
कान्दा विषम् १०।४।२२ विषभेदे
केश दंहणी ६।१३७।१ } भृंगराज
केश वर्धनी ६।१३७।१ }
क्षेत्रिय नाशनी २।८।२
गुल्गुलु ४।३७।३; १९।३८।१ गूगल
घृताची ६।१।४ बड़ी इलायची
चन्द्रमा ६।८३।१ अपचित् नाशकः
चीपुद्रु ६।१२७।२ चीड़ वृक्ष
जंगिडः १९।३४।१
जंगिडमणिः २।४।१
जलाष भेषजः २।२७।६
जालाष ६।५७।२
जीवन्ती ८।२।६ शाक विशेषे, गुडूची, हरीतक भेदे, वन्दा, मेदा, काकौली, हरिणी, मधूक वृक्षे, शमी वृक्ष, लता विशेष
जीवला ८।२।६ सिंह पिप्पली
तरूणकम् १०।४।६ तृण विशेष

तिर्यंपीवस्पाक ४।७।८
तलाश ६।१५।३।
तारका २।८।१
तुस्तुव ५।१३।११
ताबुवम् ५।१३।१०
तिलपिंजी २।८।३ तिलमंजरी
तीक्ष्णश्रृङ्गी ४।३७।६
तौदी १०।४।२४
त्रायमाणा ६।१०७।१ त्रायन्ती
दर्भः ६।४३।१ कुशा दूब
दर्भमणिः १९।२८।१
दशवृक्ष २०।९।१
दिव्या आपः ६।१२४।१ आकाश जल
नघारिषा ८।२।६ कुष्ठभेद
नघमार ,,
नलदी ४।३७।३ जटामांसी
नितत्नि ६।१३६।१
नील शिखण्ड २।२७।६
नीला गलसाला ६।१६।४
न्यग्रोधः ४।३७।४ बड़
पर्जन्यः अ० १।२।१ ऋ० ५।८३ मेघ
पर्णमणि ३।५।१
परुष वार १०।४।२
पाटा २।२७।४
पिंगः ८।६।२५
पुरुष जीवनी ८।७।४
पिप्पली ६।१०९।१ पीपल
पीला ४।३७।३
पृश्निपर्णी २।२५।१ पिठवन
पृश्नयः ८।७।१ पृश्निपर्णी
पैद्वः १०।४।६
प्रतिसरमणिः ८।५।१
प्रमन्दनी ४।३७।३
प्राशः २।२७।१

फाल मणि १०।६।२
बभ्रवः ८।७।१ रास्ना
बलास नाशनी ८।७
बजः ८।६।३ सर्षप
विल्वः २०।१३६।१५ बेल वृक्ष
भगवती २।८।१
मदावती ४।७।७
मरुत् (वायुः) ऋ० २।३३।१३
मधु जाता
मधुला ५।१५।१
मधुश्चुत ७।५८।२
मधू ७।५८।२
मधुमती ८।७।६ गाम्भारी वृक्षे
    मशक जम्भनी ७।५६।२
महावृक्षः ४।३७।४ स्नुही वृक्षे, करंज वृक्षे
मुंजः १।२।४ तृण विशेषे
    ताल वृक्ष, महापीलु वृक्षे
यवः ८।२।१८ जौ
यव पलाली २।८।३
रजनी १।२३।१ हरिद्रा
रामा १।२३।१ घृतकुमारी, हिंगु, हिंगुल
    अशोक, सातल, तमाल पत्र त्रायमाणा
रुद्र विद्युत् ऋ० २।३३।७
रोपणाका १।२२।४
रोहणी ४।१२।१ मांस रोहणी
लवण
लाक्षा ५।५।७ लाख
वचस् २।३१।२
वरणमणि १०।३।१ वरना
वरणावती ४।७।१
वरुणः (जल) यजु० २१।५ ८

वात ४।१३।३ विश्व भेषज
विषम् ११।२।२६
विष दूषणी ८।७।१०
विषाणः ३।७।१ मृगश्टङ्ग
विषाणका ६।४४।३
विश्वभेषजी ६।५२।३
वैश्वदेवी ८।७।४
व्रीहि ८।२।१८ धान्यविशेष
वृषा (मेघः) (कौंच)
शंखः ४।१०।१
शणः २।४।५ सन
शतकाण्डः १६।३२।१
शतवार १६।३६।१
शमी ६।३०।२ वृक्षविशेषः
शिखण्डी ४।३७।४ गुंजा
शुक्रा ८।७।१ वंशलोचन लता-स्वर्णयूथिका
शेप हर्षणी ४।४।१
श्वेत १०।४।३ सफेद आक
शोचिः १०।४।२ कुशा
सहमाना ८।२।६; ८।७।५
सहस्वती ८।२।६
सरस्वती य० २१।३० नदी-वाक्
सहस्र पर्णी ६।१३६।१
सहस्र काण्ड २।७।३ श्वेत दूर्वा
सिलांजाला ६।१६।४
सीसः ११६।२ नाग
सूर्यः (अपचित् नाशकः) ६।८३।१
सोमः १०।८५।३ प्रसिद्ध वैदिक लता
सुपर्ण नाग केशर
हारिद्रवः १।२२।४
हिरण्यम् य० ३४।५२ सुवर्ण।

भारतीय वैद्यक का इतिहास

(लेखक—स्वर्गीय गंगाधर शास्त्री गुणे, अहमदनगर)

(पूना के बी० जे० मैडिकल कालेज के छात्रों के सम्मुख दिये जाने वाले १२ व्याख्यानों में से केवल तीन ही स्वर्गीय श्री पं० गुणे जी ने दिये थे जिन में से पहले का सारांश "पत्रिका" के जुलाई अंक में प्रकाशित हो चुका है। अब उनके दूसरे व्याख्यान का सारांश दिया जाता है—)

दक्षिण का हिंदवी साम्राज्य विजयनगर में था। आयुर्वेद के विकास के लिए इस साम्राज्य ने सहायता की। सम्पूर्ण राज्य में आयुर्वेद की कई प्रमुख संस्थायें थीं। कई स्थानों पर विद्यालय-महाविद्यालय संचालित होते थे। इस समय आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप में मान्यता दी जाती थी। अरब व ईरान से अनेक छात्र आयुर्वेद पढ़ने के लिए विजयनगर आते थे। यहां भलिभांति शिक्षा प्राप्त करके अपने देश को वापस जाते और वहां इस चिकित्सा पद्धति का प्रयोग करते थे। अरब और ईरान के व्यापारी विजयनगर से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। इस कारण दोनों देशों में अनेक प्रकार से कई वर्ष तक आदान-प्रदान होता रहा। सांस्कृतिक, वैचारिक शैक्षणिक, औद्योगिक व आर्थिक आदान-प्रदान से दोनों देशों पर गहरा प्रभाव पड़ा जिस के फलस्वरूप आयुर्वेद का महत्व बढ़ गया। इसी प्रकार ग्रीस, रोम आदि यूरूपीय देश और चीन जापान, कोरिया आदि एशियाई देशों के साथ भारतवर्ष का सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया जिस से भारतीय संस्कृति, कला, शास्त्र, तथा सब से बढ़ कर आयुर्वेद का अन्य देशों पर गहरा प्रभाव पड़ गया।

जिन महाभाग पण्डितों में यह सब महान कार्य किया उन के प्रति हमारा सादर नमस्कार। इस आयुर्वेद महोदधि से अनेक रत्न प्राप्त हो सकते हैं जिन में से कुछ का निर्देश इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) आयुर्वेद किसे कहा जाता है। (२) पूर्व शास्त्रों में रस शास्त्र व औषधिकरण विद्या। (३) शरीर रचना। [४] शरीर क्रिया, त्रिधातु, त्रिदोष, सप्तदोष [प्रति मूल घातु] (५) मानस शास्त्र (६) आयुर्वेद का रोगच्छेदकर व स्वास्थ्यानुवृत्तिकर विभाग (७) निदान शास्त्र व हेतुलक्षण, रोगविज्ञान शास्त्र, औषधि विज्ञान, त्रिकंध (८) चिकित्सा (९) कायचिकित्सा, बाल चिकित्सा (१०) शल्य चिकित्सा, शल्यतंत्र (११) ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा (१२) अगद् तंत्र (१३) रसायन, वाजीकरण (१४) स्वास्थ्य संरक्षण, आहार. आचार, चेष्टा, मानसिक व्यवहार (१५) उपसंहार।

इन विषयों पर तनिक विचार करने से उन कारणों का ज्ञान हो जायगा जिन से आयुर्वेद आज तक जीवित रह सका है। इस में प्रभुकृपा के अतिरिक्त वैद्यों का उत्कृष्ट शास्त्राध्ययन, उद्योगप्रियता व प्रतिपादन द्वारा अर्थ बोध इत्यादि भी कारण हैं। जब वैद्यगण उद्योग प्रिय, आलस्य विरत, अर्थज्ञ और दृष्टकर्मा होंगे, तब इन गुण चतुष्टय से गुणाढ्य वैद्य गतायुष्य रोगी को भी जीवन और उत्तम स्वास्थ्य प्रदान कर सकेंगे। इसीलिए चरक ऋषि ने कहा है—

तस्मात् शास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने।
भिषक् चतुष्ठये युक्तः प्राणाभिसर उच्यते॥ चरकसूत्र९ —१३

एसी प्रकार श्रद्धायुक्त निष्ठामय आयुर्वेदज्ञों की ही आज आवश्यकता है। इस प्रकार के

आचरणशील वैद्यों ने ही आज तक आयुर्वेद की रक्षा की है। मैं कहना चाहता हूं कि यदि आयुर्वेद को चिकित्साविज्ञों द्वारा मान्यता प्राप्त करनी है तब इसे, निश्चित रूप से, उपयोगिता और तर्क की कसौटी पर पूरा उतरना होगा।

प्रश्न यह है कि आयुर्वेद किसे कहा जाय ? "आयुर्वेद" यह शब्द वैदिक वाङ्मय में आया हुआ प्रतीत नहीं होता। किं बहुना, वेद वेदांग, ब्राह्मण व उपनिषदादि वाङ्मय में आयुर्वेद का उपेक्षा बुद्धि से ही उल्लेख किया गया है। आयुर्वेद यह शब्द, सर्वप्रथम अग्निवेश कृत तंत्र में प्रथम बार आया हुआ प्रतीत होता है "तस्यायुष' पुण्यतम: वेदो वेदविदाम्मतः"। इस प्रकार आयु के इस वेद "आयुर्वेद" शब्द का प्रयोग प्रथम बार अग्निवेश ने किया है। 'वेदवित्' शब्द में आयुर्वेद अन्तर्भुक्त है और आयुर्वेद शब्द के समानार्थक वेदतंत्र , विज्ञान, शास्त्र इत्यादि समझे जाते थे। ऋक् , यजु, साम और अथर्व—इन चारों वेदों के उपवेद आयुर्वेद, अर्थवेद, गंधर्ववेद और धनुर्वेद हैं। ये वेद शाश्वत और अपौरुष हैं। अथर्ववेद में वैद्यक सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है। इसी का उपवेद "आयुर्वेद" है। प्राचीनकाल में वेदों के प्रति पवित्र कल्पना और श्रद्धा की भावना थी। वेदों में वैद्यकीय चर्चा कई स्थलों पर है जिस में शारीर, शारीर क्रिया, द्रव्यगुणकर्म विषयक तथा अन्य विषयों पर कई स्थलों पर चर्चा की है। उदाहरण के लिए यजुर्वेद वाजसनेयी संहिता १६।५ में कहा गया है "भिषक्तमं त्वां भिषजां करोमि"। इसी प्रकार ऋग्वेद ११।७। १६ के नासदीय सूक्त में भी आयुर्वेद सम्बन्धी मूल भूत निर्देश प्राप्त होते हैं। वस्तुतः वैद्यक वाङ्मय का मूल स्रोत वेद ही हैं।

'आयुर्वेदतन्त्र' शब्द में 'तन्त्र' का क्या अर्थ है ? इसका अभिप्राय है, युक्ति, शास्त्र, विद्या, ज्ञान, सूत्र, शाखा, लक्षण आदि। इन सब शब्दों का एक ही अर्थ है, "तन्त्रणात् तन्त्रम्।" अर्थात् जो वाक्य, वाक्यार्थ, अर्थावयव व बुद्धि की सहायता से उत्तम प्रकार अर्थ तत्व प्रकट करे, संक्षेपतः व विस्तार से जिसके द्वारा सिद्धांत प्रतिपादन व विवेचन हो, इसे ही तन्त्र व शास्त्र कहा जाता है।

ऋग्वेद में ज्ञान प्राधान्य, यजुर्वेद में कर्मकांड प्राधान्य और अथर्ववेद में वनस्पति उसके गुणधर्म, शरीरावयव, मंत्र, मणिमंगल, होम, प्रायश्चित्त इत्यादि का वर्णन है। उदाहरणार्थ निम्न मन्त्र में वर्णन किया गया है।

"उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति सपत्निम् मे पराधम मतिर्में केवलं कुरु।"

'आयुर्वेद' कहने से आयुष्य का वेद, आयुष्य का शास्त्र अथवा आयु का तन्त्र अभिप्रेत हैं। 'आयु' का अर्थ चेतनानुवृत्ति, जीवित व अनुबन्धधारी है। चरक सूत्र ३०,२० के अनुसार आयु का अर्थ "आयुश्चेतनानुवृत्तिर्जीवितं अनुबंधो धारीचेत्येकोऽर्थः।" चरक सूत्र अ० सूत्र ४१ में आयुष्य शब्द की निम्न व्याख्या की गई है :—

शरीरेन्द्रिय सत्वात्मसंयोगधारी जीवितम्।
नित्यगश्चारुवंधश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥

अर्थात्—शरीर, इन्द्रिय, सत्व व आत्मा, इनका संयोग ही आयुः, आयुष्य व जीवित कह' जाता है। यह आयु का वेद (Science of Life) ही 'आयुर्वेद' कहा जाता है जो जीवित विज्ञान है।

(अपूर्ण)

आयुर्वेद लोक

राजस्थान आयुर्वेद बोर्ड निर्माण

राजस्थान आयुर्वेद बोर्ड का उद्घाटन करते हुए प्रान्त के स्वास्थ्य मंत्री श्री मथुरादास माथुर ने कहा कि हम सब की इच्छा जनता की सेवा करने की है। सरकार द्वारा गठित इस बोर्ड का उद्देश्य आयुर्वेद की उन्नति और प्रचार बताते हुए आपने कहा कि इस कार्य के लिए सरकारी सहायता दी जायगी परन्तु प्रान्त के आर्थिक कष्ट के कारण वह अति सीमित ही होगी। वैद्यों के सम्मुख विस्तृत कार्य क्षेत्र है। आयुर्वेद पद्धति अभी तक हमारे उज्वल भूत का अंग है। श्री माथुर ने विश्वास दिलाया कि भविष्य में उनके साथ अन्य चिकित्सा पद्धति के पोषकों के समान व्यवहार किया जायगा। आपने बताया कि वैद्यों के कार्य और योग्यता के बारे में नियम बनाये जा रहे हैं और वे शीघ्र प्रकाशित होंगे। इससे सम्पूर्ण पद्धति नियमबद्ध हो जायगी।

दिल्ली में प्रथम आयुर्वेदिक चिकित्सालय का उद्घाटन

५ अगस्त रविवार को बिल्ली मारान, दिल्ली में नगर पालिका द्वारा खोले गये प्रथम आयुर्वेदिक चिकित्सालय का उद्घाटन करते हुए बनारस के सुप्रसिद्ध वैद्य कविराज हरिरंजन मजूमदार ने इस प्रकार की आरोग्यशालाओं के आर्थिक संकट को दूर करने का उपाय बताया और इस पद्धति द्वारा की गई चिकित्सा का लाभ वर्णन किया। आपने इस बात पर खेद प्रकट किया कि चिकित्सालयों और आरोग्य शालाओं की संख्या वृद्धि के साथ-साथ रोग प्रसार में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आ रही है। "रोग का प्रतिरोध रोगमुक्ति से बढ़ कर है"—इस सिद्धान्त की ओर निर्देश करते हुए आपने कहा कि "इस विषय में हम बीज की अपेक्षा क्षेत्र को प्रधानता देते हैं। अतः प्राच्य तथा पाश्चात्य—दोनों स्वास्थ्य नीतियां एक दूसरे की पूरिका हैं। इसलिए हमें किसी की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।"

हैदराबाद के आयुर्वेद चिकित्सालय में राष्ट्रपति का आगमन

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने प्रान्त के स्वास्थ्यमंत्री श्री फूलचन्द्र गांधी के साथ सरकारी आयुर्वेद चिकित्सालय का अनायास निरीक्षण किया। मुख्य द्वार पर स्वास्थ्यमंत्री ने चिकित्सालय के प्रधान चिकित्सक कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी का परिचय कराया जिन्होंने राष्ट्रपति का पुष्पमालाओं से स्वागत किया। आपने औषधालय, महिलावार्ड तथा अन्य रोगीगृह देखकर चिकित्सालय की कार्यप्रणाली की अत्यन्त सराहना की। प्रान्त भर में यह प्रथम एवं एकमात्र चिकित्सालय है जहां रोगियों की सुविधा के लिए सब प्रकार का उत्तम प्रबन्ध है। इसके अतिरिक्त २

औषधालय तथा ५२ ग्रांट-इन-एड औषधालय भी खोले जा रहे हैं । आयुर्वेद विभाग का बजट इस वर्ष ५ लाख के लगभग होगा । इसका श्रेय स्वास्थ्यमंत्री श्री फूलचन्द्र गांधीजी को है ।

अजमेर वैद्य सभा का चुनाव

१० अगस्त शुक्रवार को नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय दिल्ली में अजमेर राज्यायुर्वेद सम्मेलन के अध्यक्ष का मत पत्रों द्वारा चुनाव हुआ जिसमें बहुमत से वैद्य-शास्त्री डा० अम्बालाल अध्यक्ष निर्वाचित हुए ।

—सौराष्ट्र राज्य में आयुर्वेद मेडिकल सर्विसेज के निर्देशक पद पर ध्रांगध्राके वैद्यराज श्री वासुदेव म० द्विवेदी १ जुलाई से नियुक्त किये गये हैं ।

—श्री परमानन्द प्रतापानन्द धर्मार्थ औषधालय, संगरूर का वार्षिकोत्सव पटियाला और पूर्वी राज्य संघ सरकार के अर्थ मंत्री श्री चौधरी निहालसिंह तक्षक की अध्यक्षता में २२ जुलाई रविवार को सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ ।

—श्री इन्द्रप्रस्थीय देहात वैद्यसभा, पश्चिमी भाग देहली प्रान्त नजफगढ़ ने वैद्यों और हकीमों की रजिस्ट्रेशन फीस २० रु० दिये जाने के बाद भी १० रु० प्रति वर्ष पुनः शुल्क लगाये जाने का एक प्रस्ताव द्वारा विरोध करते हुए कहा कि यह शुल्क किसी अन्य प्रान्त में नहीं है तथा दिल्ली के रजिस्टर्ड डाक्टर इससे मुक्त हैं ।

—निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रधान आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी ने लखनऊ, अल्मोड़ा और प्रयाग में वैद्यों के कुछ प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि आगामी चुनाव में वैद्यों को अवश्य खड़ा होना चाहिए ।

—आर्य समाज नूरपुर ज़ि० कांगड़ा में लगभग ७ वर्ष से अमृतसर के दानवीर श्री सेठ सन्तलालजी ने अपने पिता की स्मृति में एक आयुर्वेद औषधालय खोला हुआ है जिससे सहस्रों रोगी प्रतिवर्ष लाभ उठाते हैं ।

—मध्य भारत सरकार द्वारा प्रकाशित मान्यता प्रदत्त आयुर्वेदीय संस्थाओं में परगणा आयुर्वेद मंडल सोनकच्छकी मध्य भारत आयुर्वेद संस्था का नाम नहीं है जो इस प्रान्त की अत्यन्त पुरानी संस्था है । सरकार को इधर ध्यान देना चाहिये ।

—मानकपुरा, करौलबाग, दिल्ली में कुछ उत्साही युवकों ने जन स्वास्थ्य रक्षक संघ की स्थापना की है जिसके प्रधान श्रीकृष्ण त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य तथा मंत्री पं० श्रीराम जी निर्वाचित किये गये ।

—डा० के० एस० म्हसकर की अध्यक्षता में बम्बई सरकार ने राज्य के लिए आयुर्वेद अनुसन्धान संघ की स्थापना की है जिसके ५ सदस्यों में आचार्य यादव जी त्रिकम जी और पं० शिवशर्मा जी हैं ।

(शेष पृष्ठ ४४० पर)

गाजियाबाद सम्मेलन

लेखक—श्री मंगलदास स्वामी, जयपुर,

ता० ११-१२ अगस्त को नि० भा० वैद्य सम्मेलन का गाजियाबाद में विशेष अधिवेशन था। अधिवेशन का हेतु था पंडित कमेटी की रिपोर्ट पर नि० भा० वैद्य सम्मेलन का निर्णय। यातायात की दृष्टि से स्थान की बिशेष उपयोगिता थी। देहली से आध घण्टे के फासले से मोटर सर्विस तथा रेलों का आवागमन था। अधिवेशन में स्थायी समिति के सदस्य तथा साधारण सदस्यों में से प्रति प्रान्त नियत संख्या के प्रतिनिधि आमन्त्रित थे।

वैद्यों की उपस्थिति अनुमानतः तीन सौ के करीब हो गई होगी। प्रातिनिध्य था—देहली, यू० पी०, पंजाब, पटियाला संघ तथा राजस्थान का। दूरस्थ प्रांतों के सदस्य शायद ही पहुंचे हों। प्राधान्य था देहली तथा यू० पी० का। हम लोग देहली से ११ ता० को दिन के १ बजे चले थे। दो बजे से स्थायी समिति का अधिवेशन प्रारम्भ होना था। हम समय पर अधिवेशन स्थान पर पहुंच गये थे। जाने पर पहिली बात जो ज्ञात हुई वह यह कि उत्तर प्रदेश के प्रान्तीय सम्मेलन की आपसी खींचतान के फलस्वरूप गाजियाबाद के वैद्यों में भी दो विभाग हो गये। फिर भी स्थानीय वैद्यों ने विशेषाधिवेशन की प्रबन्ध व्यवस्था समुचित कर ली थी। स्थान अधिवेशन के उपयुक्त था। उद्घाटन शायद केन्द्रीय सरकार के एक मिनिस्टर करने वाले थे पर समय पर उनका वक्तव्य ही आया। वे स्वयं कारणवश नहीं आ सके।

सभापति पूज्य आचार्य यादवजी महाराज स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण नहीं पधारे थे। उपसभापति पं० श्री शिवशर्माजी आचार्य ने सभापतित्व किया। मंगलाचरण के पश्चात् सभा का कार्यारम्भ हुआ। विगत स्थायी समिति के अधिवेशन की कार्यवाही पढ़ी गई तथा स्वीकृत की गई। कार्यक्रम के अनुसार आज पंडित कमेटी की रिपोर्ट पर ही विचार करना था—पर विगत स्थायी समिति के अधिवेशन में संशोधित नियमावलि स्वीकृत करने के विषय पर पर्याप्त वादविवाद होकर सभापति जी के निर्देश से यह निश्चय किया गया था कि नियमावलि के अनुसार संशोधित नियमावलि को स्वीकृत करने का अधिकार संमेलन को ही है या स्थायी समिति को भी इसपर कानूनी सलाह लेकर आगामी स्थायी समिति में विचार किया जाय। मन्त्री जी ने शायद इस पूर्व निश्चय के अनुसार कार्यक्रम में वह विषय न होते हुए भी इस पर विचार करना चाहा। सदस्यों ने आपत्ति की कि यह विषय आज की स्थायी समिति के कार्यक्रम में नहीं है अतः आज के कार्यक्रम पर ही विचार किया जाय। सभापति जी ने यह आपत्ति स्वीकार न कर संशोधित नियमावलि की स्वीकृति सम्बन्धी विषय पर विचार करने के लिए सदस्यों का मतदान चाहा। तदनुसार मत ग्रहण किये गये। बहुमत के निश्चयानुसार आज के कार्यक्रम पर ही विचार करने का निश्चय किया गया।

पंडित कमेटी की रिपोर्ट पर विचार करने के निश्चय होने के पश्चात् करीब ४॥ बजे स्थायी समिति का अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। ४॥ बजे सभापतिजी प्रेस कान्फ्रेंसमें चले गये। शाम के ७ बजे आज का खुला अधिवेशन आरम्भ हुआ। कविराज माधव प्रसाद जी, जोधपुर, ने मंगलाचरण किया। पश्चात् स्वागताध्यक्ष वैद्य बाबूराम जी आ॰ आचार्य ने अपना स्वागत भाषण पढ़ा। आपने अपने भाषण में पंडित कमेटी की सिफारिशों का रूप व्यक्त किया तथा आयुर्वेद के महत्त्व के बारे में पाश्चात्य विज्ञवर्ग का क्या मत है ? इसके कुछ उद्धरण उपस्थित किये, तथा आयुर्वेद के प्रति केन्द्रीय सरकार की नीति जिस दृष्टिकोण से व्यवहार में लाई जा रही है उसकी आपने समालोचना की।

स्वागताध्यक्ष जी के भाषण के पश्चात् आज के सभापति वैद्य शिवशर्मा जी का भाषण हुआ। आपने प्रारम्भ में केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य विभाग के द्वारा आयुर्वेद की जो उपेक्षा जान-बूझ कर की जा रही है उस पर समुचित प्रकाश डाला। चोपड़ा कमेटी की उपादेय सिफारिशों को उलटने के लिये बनाई गई उलट समिति अर्थात् पण्डित कमेटी उसकी रिपोर्ट में प्रच्छिन्न तथा आयुर्वेद विनाश के बीज किस तरह सम्मिलित किये गये हैं इस पर आपने अपने बंबई राज्य वैद्य सम्मेलन के सभापतिपद से दिये गये भाषण के अंश उपस्थित किये।

आधुनिक वैज्ञानिक निश्चयों में तथा ऐलोपैथी चिकित्सा के स्वीकृत सिद्धान्तों में किस तरह परस्पर विरोध है इसके अनेकों उदाहरण प्रदर्शित किये गये। आपने उस विचारधारा का भी कड़ा विरोध किया जो कि वैद्य समुदाय के एक अंश में धीरे-धीरे घर कर रही है जिसका उद्देश्य है चिकित्सा का एकीकरण। इस एकीकरण में आयुर्वेद के सिद्धान्तों को ऐलोपैथी के सिद्धान्तों में समाहित करने के लिये उन्हें ऐलोपैथी का जामा पहिनाने का अनुपादेय प्रयास करना है। साथ ही पाठ्यक्रम की अनवस्थित धींगाधांगी भी आयुर्वेद के लिये अहितकर है जो बिना विचारे अनेक विषयों तथा अंशों को आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने के लिये चल रही है।

पटना परिषद् की वह विचारधारा भी जिसमें वातपित्त-श्लेष्मा का समानाधिकरण आधुनिक साइण्टिफिक चिकित्सा क्रम के कुछ विषयों से करने का प्रयास किया गया आपके विचार में असंगत है। आपने स्पष्ट घोषित किया कि आयुर्वेद का दोष-विज्ञान अभी ऐलोपैथी के दायरे से बाहर की वस्तु है। त्रिदोषवाद जिस सूक्ष्म विवेचन के आधार पर आधारित है उस सूक्ष्म विवेचन पर अभी आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान पहुंचा नहीं है। आयुर्वेद का सैद्धान्तिक क्षेत्र इतना व्यापक व निश्चित तथ्यों पर आरूढ़ है कि उसमें वर्तमान चिकित्सा प्रणाली आसानी से समाहित की जा सकती है। यदि सरकार समन्वय का विचार रखती है तो यही एक मार्ग है जो उपयुक्त व संगत कहा जा सकता है।

ऐलोपैथी में आयुर्वेद के समन्वय का तो विचार करना भी गलत होगा, कारण अभी इस चिकित्सा पद्धति में कोई स्थिर सिद्धान्त निर्णीत ही नहीं हुआ है। जो बात कल स्वीकृत की जाती है वही बात परसों त्याज्य मानी जाने लगती है। इतने अस्थिररूप वाली चिकित्सा पद्धति में

त्रिदोषवाद के सुनिश्चित स्थायी सिद्धान्त वाला आयुर्वेद कैसे किस तरह समाहित किया जा सकता है ? आपनें विविध दृष्टान्तों से इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला।

आपने अपने भाषण में हमारे देश के प्रधान मन्त्री तथा स्वास्थ्यविभाग का ध्यान भी उनकी अज्ञतापूर्ण अव्यावहारिक नीति के परित्याग की ओर आकर्षित किया है जिससे कि वे समय असमय आयुर्वेद को कोसते हुए उसके बारे में मनचाही शब्दावली का प्रयोग करते रहते हैं।

मतलब, आपने अपने भाषण में उन-उन सभी स्थितियों पर प्रकाश डाला है जिनका सम्बन्ध आयुर्वेद के प्रश्न को उलझन में डालने का कारण है। आपने पण्डित कमेटी की रिपोर्ट पर भी थोड़े से मर्यादित शब्दों में प्रकाश डाल यह बतला दिया है कि पण्डित कमेटी का निर्माण जिस ध्येय से यानी चोपड़ा कमेटी की उचित सिफारिशों को अनुपयुक्त करने को मूर्तरूप देना था वह पूरा कर दिया गया है। अन्त में आपने वैद्य समुदाय का इस समय का जो कर्तव्य है उसपर नपे तुले शब्दों में निर्देश कर अपना भाषण समाप्त किया।

दूसरे दिन प्रातः स्थायी समिति का अधिवेशन पुनः हुआ—उसमें एक ११ सदस्यों की समिति का निर्णय किया गया। उक्त समिति ने एक प्रस्ताव का मसविदा बनाया जो कुछ संशोधनों के साथ आज के अधिवेशन में स्वीकृत किया गया।

इस अधिवेशन में श्री गणेशदत्त जी सारस्वत व डा० सुब्रह्मण्यम् दो पंडित कमेटी के वैद्य सदस्य भी उपस्थित थे। सम्मेलन द्वारा जो प्रस्ताव स्वीकृत किया गया है उसमें पंडित कमेटी की अनुपादेयता बतलाते हुए सरकार को सुझाव दिया गया है कि यदि वह आयुर्वेद के लिये वस्तुतः कुछ करना चाहती है तो उन्हें सही और उचित मार्ग ग्रहण करना चाहिये।

सम्मेलन का विशेषाधिवेशन बुलाने वालों ने सम्मेलन के अधिवेशन के लिये यथाशक्य व्यवस्था का उचित प्रबन्ध किया। पंडित कमेटी के बारे में दूसरे दिन की स्थायी समिति में अनेकों वैद्यों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये; उनसे यह सिद्ध होता था कि पंडित कमेटी की जो मोटी सिफारिशें आयुर्वेद के पत्रों में निकल चुकी हैं या कार्यालय द्वारा जो सार उपस्थित किया गया था–उससे अधिक कमेटी की रिपोर्ट का पूरा अध्ययन शायद कुछ ही वैद्यों ने किया हो। इससे यह स्पष्ट होता था कि अंग्रेजी में निकली रिपोर्ट होने के कारण वैद्यों के विचार क्षेत्र से बाहर की बात थी।

पहिले दिन की स्थायी समिति के अधिवेशन में यह भी सामने आया कि शायद पदाधिकारी गण संशोधित नियमावली को स्थायी समिति से ही स्वीकृत कराने के आग्रही थे। वैद्य समुदाय शायद अभी यह अनुभव नहीं करने लगा है कि उन्हें अपनी जिम्मेवारी की पूर्ति किस तत्परता से करनी चाहिये। हमारी विचार सरणी ऊपरी वातावरण पर ही अधिक आश्रित रहती है। हम अन्तःप्रवेश करने के लिये अपने आपको न तो तैयार ही करते हैं न तत्पर ही। यही प्रबल कारण है कि हमारा संगठन तथा हमारी सामुदायिक स्थिति जैसी सुदृढ़ होनी चाहिये थी, नहीं हो पाई।

जहां पण्डित कमेटी ने डिग्री शिक्षणालयों के प्रवेश के लिये एफ०एस०सी० प्रवेश योग्यता

की सिफारिश की थी वहां सम्मेलन ने विज्ञान व संस्कृत के उचित ज्ञान के साथ मैट्रिक प्रवेश योग्यता रक्खी है । एक ओर हम आयुर्वेद के विशुद्ध पक्ष के संरक्षण के लिये अधिक से अधिक जोर देते हैं दूसरी ओर उसके अध्ययन के लिये संस्कृत की निश्चित योग्यता स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं । संस्कृत के उचित ज्ञान का प्रवेश काल में कुछ भी उपयोग हो सकेगा यह व्यर्थ है । इस निश्चय से प्रतीत होता है कि हम अभी आयुर्वेद के लिये कौनसा मार्ग पकड़ें इसका अन्तिम निश्चय हमारे सामने है ही नहीं । यही स्थिति पाठयक्रम के बारे में है ।

गाजियाबाद के अधिवेशन में एक बात मेरे विचार से अधिक उपादेय रही । वह थी निरर्थक प्रदर्शन की टाल । हमें अपने सभी सम्मेलनों में इस रुख को अपनाने की आवश्यकता है । सम्मेलन के दूसरे दिन केन्द्रीय सरकार के माननीय मन्त्री श्री प्रकाशजी पधारे थे और उन्होंने अपने विचार आयुर्वेद के लिये बहुत ही उचित शब्दों में प्रकट किये । मुझे उनके विचार इसलिये अधिक प्रिय लगे कि उनमें अनावश्यक बनावटी सहानुभूति का लेश ही नहीं था जो कि आजकल एक तरह से सभ्यता का अंग सा बनता जा रहा है । उन्होंने स्थिति पर जितना सा प्रकाश डाला वह स्पष्ट तथा सराहनीय था । इस तरह गाजियाबाद सम्मेलन कई नये दृष्टिकोण देने में सार्थक रहा ।

महासम्मेलन के प्रधान मन्त्री जी का वक्तव्य

श्री स्वामी मंगलदास जी की नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के विशेषाधिवेशन पर समालोचना महा सम्मेलन पत्रिका के पाठकों के सम्मुख है । उनकी समालोचना बहुत सुन्दर और सत्य हैं । परन्तु इस में एक बात का उल्लेख करना वह भूल गए हैं । वह गाजियाबाद में पास हुए प्रस्ताव में एक विशेष बात है । उक्त प्रस्ताव में यह निश्चय हुआ है कि आयुर्वेद की शिक्षा के लिए इन्टरमीडिएट सायंस की आवश्यकता नहीं है । दसवीं श्रेणी में जितनी सायंस पढ़ी जाती है उतनी या उससे कुछ अधिक जो हिन्दी माध्यम होने के कारण पढ़ाई जा सकेगी, ही पर्याप्त है ।

डाक्टरों तथा अन्य अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों के बार-बार कहने से आयुर्वेद के पण्डित भी यह समझने लगे थे कि उच्च कोटि का रसायन तथा भौतिकी विज्ञान आयुर्वेद पढ़ने वालों के लिए आवश्यक है । गाजियाबाद महासम्मेलन ने वैद्यों के इस भ्रम को दूर कर दिया है । प्रारम्भिक रसायन तथा भौतिकी का ज्ञान पर्याप्त है ।

वास्तव में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि रसायन और भौतिकी विज्ञान अभी स्थिर नहीं हुआ । इन के सिद्धान्तों में ही परिवर्तन हो रहे हैं । जब ये विज्ञान अभी अस्थिर ही हैं तो इनके अधिक पढ़ाने से आयुर्वेद को विशेष लाभ होने की आशा नहीं है । इन विज्ञानों में अन्वेषण करने वालों के लिए तो उनका पढ़ना आवश्यक है ही परन्तु आयुर्वेद के विद्यार्थियों को तो केवल आधारभूत इन का ज्ञान कराना है । इसके लिए दसवीं श्रेणी की सायंस पर्याप्त है ।

स्वामी मंगलदास जी ने विशेषाधिवेशन की समालोचना में यह बात भी लिखी है कि मह सम्मेलन के अधिकारीवर्ग नियमावली संशोधन को स्थायी समिति से ही स्वीकार कराने का आग्रह करते प्रतीत होते हैं ।

इस विषय में पाठकों से एक निवेदन करना चाहता हूँ ! वास्तविक परिस्थिति यह है कि नियमावली में संशोधन तो स्थायी समिति द्वारा स्वीकार किए जा चुके हैं । केवल यह वैधानिक आपत्ति उठाई गई है कि केवल स्थायी समिति से स्वीकार होने पर लागू हो सकते हैं या लागू करने के लिए खुले अधिवेशन की स्वीकृति की आवश्यकता है ?

यह प्रश्न विधान सम्बन्धी है । जैसा विधान में लिखा हो वैसा मानना चाहिये । पिछली स्थायी समिति में बहुत से सदस्यों का मत था कि विधानानुकूल स्थायी समिति को नियमावली संशोधन का पूर्ण अधिकार है । कुछ एक का यह मत था कि यह अधिकार केवल वार्षिक अधिवेशन को ही है । तब प्रधान श्री यादवजी महाराज ने यह सुझाव दिया था कि वकीलों से सम्मति ले ली जावे ।

इस विषय में दो सुप्रीम कोर्ट के वकीलों और दो बार कौंसिल से सम्मति ली गई है । इन सम्मतियों पर किसी प्रकार की टीका टिप्पणी किए बिना उन का सारांश इस वक्तव्य के अंत में पृथक् रूप से दिया जाता है ।

यह ठीक है कि कार्यालय उन संशोधनों को जो स्थायी समिति द्वारा स्वीकार हो चुके हैं लागू करने के लिए उत्सुक है परन्तु इसके अर्थ यह नहीं कि कोई अवैधानिक कार्यवाई करना चाहता है । जब संशोधन स्वीकार करने के लिए उपस्थित किए गए तो उनका भली भांति प्रचार कर दिया गया था । जब स्थायी समिति के अधिकारों पर कुछ लोग संदेह करने लगे हैं तो नियमावली दिखाकर उच्च कोटि के वकीलों से राय लेली गई है । अब पाठकों से अनुरोध है कि वे वकीलों की सम्मति पढ़ें और कार्यालय को किसी अंतिम निर्णय तक पहुंचने में सहायता दें ।

एक बात इस विषय में और लिख देना चाहता हूँ । स्वामीजी ने यह लिखा है कि नियमावली संशोधन विषय पर मत लिए गए और बहुसंख्यकमत यह था कि नियमावली संशोधन के विषय पर इस समय विचार न किया जावे । यद्यपि उस समय नियमावली संशोधन पर वादविवाद उचित नहीं था तो भी मत गणना का रहस्य यह है कि वहां पर कुछ लोग स्थायी समिति के सदस्य से अतिरिक्त भी बैठे थे और उन्होने भी मत प्रदान किए प्रतीत होते हैं । स्थायी समिति के सदस्यों के हस्ताक्षर लिए गए थे और उनमें १६ हस्ताक्षर ऐसे वैद्य महानुभावों के हैं जो स्थायी समिति के सदस्य नहीं ।

इस पर भी कार्यालय किसी बात को घबराहट में कराना नहीं चाहता । साथ ही किसी विषय को अनावश्यक रूप में रोकना भी उचित नहीं समझता । —गुरुदत्त एम० एस० सी०

प्रधानमन्त्री

नियमावली संशोधन पर स्थायी समिति के अधिकार के विषय पर कानूनी परामर्श का सारांश

स्थायी समिति की ता० २९-४-५१ की बैठक में यह निश्चय हुआ था कि "विधान में संशोधन करने का अधिकार स्थायी समिति को है अथवा नहीं "इस विषय पर कानूनी परामर्श लिया जाय ।

इस पर जो सम्मतियां प्राप्त हुई हैं उनका सारांश यह है :—

१. भटिण्डा बार ऐसोशियेशन की सम्मति का सारांश

नियम ५६ किसी प्रकार भी स्थायी समिति के अधिकारों को कम नहीं करता। इस नियम का अर्थ यह है कि खुला अधिवेशन भी यदि चाहें तो वही अधिकार प्रयोग कर सकता है। अतएव कोई सदस्य स्थायी समिति के संशोधन पर आपत्ति नहीं उठा सकता।

२. फ़िरोजपुर बार ऐसोसियेशन की सम्मति का सारांश

हम सबकी सम्मति है कि स्मृति पत्र की धारा ५ में स्थायी समिति को दिए गए अधिकार किसी भी प्रकार सीमित नहीं हैं। नियम ५६ भी इसकी सीमा नहीं बांधता। इसके विपरीत नियम ५६ स्वयं स्मृतिपत्र की धारा ५ से सीमित है।

इसमें ए० आई० आर० १९३३ प्रिवी कौंसिल ३६ भी इसी बात का समर्थन करता है।

इस प्रकार किसी भी सदस्य को उन संशोधनों के विरुद्ध जो स्थायी समिति ने स्वीकार किए हैं, कहने को स्थान नहीं है।

३. श्री आर. एन. निगम बी. ए. एल-एल. बी. वकील सुप्रीम कोर्ट की सम्मति का सारांश

लार्ड कैरन का कहना है कि किसी एसोसियेशन का स्मृतिपत्र (मैमोरैण्डम) एक प्रकार का 'चार्टर' होता है जो एसोसियेशन की शक्ति का वर्णन करता है। संस्था के नियम-उपनियम का दर्जा स्मृतिपत्र से गौण है।

नियम ५६ (क) तथा (ग) में जो कुछ लिखा गया है वह स्मृतिपत्र के लेखानुसार होना चाहिए। अर्थात् खुले अधिवेशन में स्थायी समिति की राय से ही प्रस्ताव जा सकेगा।

मेरी सम्मति में इसका अर्थ यह है कि स्थायी समिति को अधिकार है कि विधान में संशोधन इत्यादि कर सके, तथा नियम ५६ (क) तथा (ग) इस अधिकार को सीमित नहीं करते।

४. श्री के. बी. अस्थाना वकील सुप्रीम कोर्ट की सम्मति का सारांश

स्मृतिपत्र की धारा ५ और नियम ५६ में कोई संघर्ष है या नहीं इसको देखने के लिए पूर्ण विधान को देखना पड़ेगा। विधान में परस्पर विरोधी बातें नहीं होनी चाहिएं।

स्थायी समिति नियम १६ के अनुसार बनी है। इसके सदस्यों का निर्वाचन नियम २० के अनुसार हुआ है। इसका कार्य संस्था के उद्देश्यों को चलाना, संस्था में स्वीकृत प्रस्तावों पर काम करना और संस्था के सब मामलों का प्रबन्ध करना है। इसके दिन प्रतिदिन के कार्य चलाने के लिए एक कार्यकारिणी का भी निर्माण होता है। संस्था का प्रधान और प्रधानमन्त्री ही इन दोनों के प्रधान और प्रधानमन्त्री होते हैं। यह कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए किया गया है।

नियम २२ के अनुसार स्थायी समिति अपने अधिकार किसी भी उपसमिति को दे सकती है। नियम २३ से स्थायी समिति को संस्था के कामों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। नियम २४ के अनुसार तो स्थायी समिति खुले अधिवेशन को भी रोक सकती है।

सदस्य स्वीकार करना, संस्थाओं को सम्बद्ध करना इत्यादि अधिकार भी स्थायी समिति को प्राप्त हैं।

इससे यह पता चलता है कि स्थायी समिति इस संस्था में विशाल अधिकार रखती है। इसी के द्वारा संस्था के सब काम सम्पन्न होते हैं।

नियम ३६ के अनुसार खुले अधिवेशन में जाने वाले प्रस्ताव पहिले स्थायी समिति में स्वीकार होने आवश्यक हैं। इसका अर्थ यह है कि कोई भी प्रस्ताव स्थायी समिति खुले अधिवेशन में जाने से रोक सकती है।

उप-नियम ४ के अनुसार विषय निर्धारिणी समिति में स्थायी समिति के सब सदस्य होते हैं। यह भी इस उप-नियम में है कि खुले अधिवेशन में केवल वह प्रस्ताव पास हो सकते हैं जो स्थायी समिति और विषय निर्धारिणी समिति में पास हो जाते हैं।

केवल विशेष अवस्था में प्रधान किसी प्रस्ताव को स्थायी समिति की इच्छा के विरुद्ध खुले अधिवेशन में उपस्थित करने की स्वीकृति दे सकता है। स्मृतिपत्र की धारा ५ से विधान में परिवर्तन करने का असीम अधिकार स्थायी समिति को है। इस परिवर्तन की स्वीकृति अधिवेशन से लेने की कोई बात नहीं। नियम ५६ (क) में खुले अधिवेशन को नियमावली संशोधन का अधिकार है परन्तु यह अधिकार सीमित है। सीमा स्मृति पत्र में बांधी है अर्थात् स्थायी समिति को पूर्ण अधिकार है परन्तु खुले अधिवेशन में बात बिना स्थायी समिति की स्वीकृति के नहीं चल सकती।

नियम ५६ ग, अधिवेशन में नियमावली संशोधन के प्रस्ताव को उपस्थित करने की विधि बताता है। इसमें लिखा है कि इस विषय का प्रस्ताव कार्यालय में १॥ मास अधिवेशन से पूर्व आना चाहिए। तब मन्त्री उस प्रस्ताव को स्थायी समिति, विषय निर्धारिणी समिति और अंत में अधिवेशन में रखेगा।

इसको मिलाइये नियम ३६ और उपनियम ४ से, तो बात स्पष्ट होगी कि नियम ५६ ग, के अनुसार नियमावली संशोधन के प्रस्ताव तब तक खुले अधिवेशन में नहीं आ सकते जब तक स्थायी समिति की स्वीकृति न हो।

नियम ५६ ग के अंत में 'फाइनली' शब्द का यही अर्थ है कि स्थायी समिति और विषय निर्धारिणी प्रस्तावों को जिस रूप में उपस्थित करेगी उसी रूप में खुले अधिवेशन में जा सकेंगे।

उक्त विवेचना से यह बात स्पष्ट है कि नि०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का विधान स्थायी-समिति को नियमावली में संशोधन का पूर्ण अधिकार देता है।

[४३२ पृष्ठ का शेष]

नेपाल में वैद्य सभा

"नेपाल आयुर्वेदीय संस्था" द्वारा आयोजित वैद्यों की एक विशाल सभा श्री सर्दार कविराज शिवनाथ जी के सभापतित्व में हुई जिस में नेपाल राज्य के करीब २००० वैद्य-बन्धुओं ने भाग लिया। सभा ने कुछ दिन पहले संगठित अस्थायी व्यवस्थापिका समिति द्वारा निर्मित विधान संशोधन के बाद पास किया। जिस के बाद निर्वाचन हुआ। प्रधान श्री सर्दार कविराज शिवनाथ शर्मा, मन्त्री–श्री क० चन्द्रानन्द, उपमन्त्री–श्री हिमालय श्वरानन्द।

आयुर्वेद में अनुसंधान

ठाकुरदत्त शर्मा धर्मार्थ ट्रस्ट देहरादून आयुर्वेद के अनुसन्धान के कुछ कार्य के लिए योग्य वैद्यों की सहायता चाहते हैं। निर्वाह का प्रबन्ध ट्रस्ट की ओर से होगा। अनुसंधानप्रेमी वैद्यों को पत्र व्यवहार करना चाहिये।

रघुनाथदत्त बन्धु मन्त्री,
ठाकुरदत्त शर्मा धर्मार्थ ट्रस्ट, देहरादून

ग्राहकों को सूचना

जिन ग्राहक महानुभावों को पत्रिका पर लिखे पते में परिवर्तन कराना अभीष्ट हो वे शीघ्र सूचित करें क्योंकि नवीन मतदाता सूची तैयार की जा रही है।

व्यवस्थापक आयुर्वेद संमेलन पत्रिका

—संशोधन द्वारा भिषक् परीक्षार्थी भगवानदास शर्मा क्रमांक ३६९ प्रथम खंड में उत्तीर्ण घोषित किया गया है।

रामगोपाल शास्त्री विद्यापीठ मंत्री

पाँच सौ वर्ष पुराना माण्डूर
४०) प्रति मन शुद्ध ६०) प्रति मन भस्म ३०) सेर
शुद्ध संखिया सफेद—आठ आना तोला
शक्ति आयुर्वेद मन्दिर लिमिटेड—चौमू जयपुर

नेत्र-रोग विज्ञान

[लेखक : डा० आर० एस० अग्रवाल : कविराज ओमप्रकाश वैद्य वाचस्पति, दरियागंज दिल्ली]

अत्यन्त प्राचीन काल में महर्षि सुश्रुत ने अपनी संहिता में नेत्र विज्ञान पर विशद प्रकाश डाला है। अनेक नेत्र-रोगों का वर्णन करते हुए उनकी चिकित्सा भी लिखी है, तथा कई रोगों में तो महर्षि सुश्रुत द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत अत्यन्त ही लाभकारी सिद्ध हुए हैं। उस युग में नेत्र-परीक्षा करने के लिए कोई विशेष यन्त्र न थे, केवल बाहर से ही नेत्रों को देख कर निदान कर लिया जाता था। नेत्र अपना कार्य किस प्रकार करते हैं ? तथा क्षीण दृष्टि वाले रोगी का उपचार सूर्य व्यायाम आदि प्राकृतिक उपायों से किस प्रकार हो सकता है, आदि विषयों पर सुश्रुत संहिता में कुछ नहीं मिलता। अनेकानेक औषधियों द्वारा भिन्न-भिन्न रोगों की चिकित्सा का वर्णन तो मिलता है, किन्तु आवश्यकता उन सिद्धान्तों का अध्ययन व मनन करने की है, जिन पर महर्षि सुश्रुत का निदान व चिकित्सा आधारित है। यदि मूल-भूत सिद्धान्त समझ में आ जावे, तो भिन्न-भिन्न नेत्र-रोगों का निदान और चिकित्सा कठिन नहीं मालूम होगी।

"मुख्यतः आयुर्वेद के दो सिद्धान्त हैं। प्रथम सिद्धान्त तो इस प्रकार का है, कि वह कभी नहीं बदलता सदैव स्थायी है, इसे त्रिदोष सिद्धान्त कहते हैं, इसी के आधार पर ही भिन्न-भिन्न रोगों का निदान और चिकित्सा होती है। दूसरा सिद्धान्त है, चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ अथवा उपकरण आदि। यह सिद्धान्त स्थिर नहीं किया जा सकता, अर्थात् समय के अनुसार परिवर्तशील है। सृष्टि के आदि में जब आयुर्वेद शास्त्र का प्रयोग स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए तथा रोगी के रोग नाश के लिए किया जाने लगा तो केवल काष्ठौषधियां—जड़ी-बूटियाँ ही प्रयोग में लाई जाती थीं। किन्तु समय ने पलटा खाया और मानव चूर्ण अथवा काढ़ों की बड़ी-बड़ी मात्राओं को पीने में असुविधा और कष्ट अनुभव करने लगा। अब मनुष्य ने धातुओं की भस्म तथा पारद-गंधक के योग से सैंकड़ों नहीं हज़ारों और लाखों योगों का निर्माण कर डाला, जोकि प्रायः प्रत्येक रोग में लाभकारी सिद्ध हुए तथा पारद और गंधक की सहायता से वही योग टिकाऊ होगए तथा शीघ्र लाभकारी भी। इधर भारत में तो परतन्त्रता आजाने के कारण आयुर्वेद को राज्याश्रय प्राप्त न रहा और प्रगति रुक गई। किन्तु पश्चिमीय देशों में मानव ने औषधियों पर अनुसन्धान जारी रखा, जिसके परिणामस्वरूप भिन्न-भिन्न रोगों के अनेकानेक इंजकशन आविष्कृत हुए। पैनसिलीन तथा कुछ सल्फा ड्राम तो इतनी प्रचलित हो गई हैं कि बहुत वैद्य महानुभाव भी अपनी दैनिक चिकित्सा में इन्हें प्रयुक्त करने लग गए हैं।

अब हम आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त, जोकि अपरिवर्तनशील है, पर विचार-विनिमय करते हैं। त्रिदोष से तात्पर्य है शरीरस्थ दोष रूप और धातुरूप वात-पित और कफ। हमारे ऋषियों ने आत्म चिन्तन और सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा इस सिद्धान्त का निर्माण किया था। क्योंकि आजकल के बहुत कम वैद्य समुदाय में उपर्युक्त दोनों गुण विद्यमान हैं, इसीलिए अधिकतर वैद्य इस

त्रिदोष सिद्धान्त को समझने में असमर्थ रहते हैं, तथा निदान और चिकित्सा में भी इस सिद्धान् की सहायता नहीं ले पाते हैं। किन्तु यह सिद्धांत इतना सरल और शीघ्रग्राही है, कि जरा स आत्मचिन्तन करते हुए इसे समझने का प्रयत्न करें तो तुरन्त समझ में आ जाता है।

वात, पित्त और कफ ये तीन पारिभाषिक शब्द हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों पर इन्हें दो और धातु के रूप में पुकारा जाता है। उदाहरणार्थ अग्नि है, तो हम उसे जलने वाली अग्नि कहते हैं, परन्तु जब कोई यह कहे कि शरीर में अग्नि सी लगी हुई है, तो इस का भावार्थ है शरीर में बेहद गरमी और बैचैनी का होना। इसी प्रकार यदि यह कहा जावे कि यदि यह मनुष्य तो अग्नि है इसका मतलब यह है कि यह पुरुष अत्यन्त शक्तिशाली है और शत्रु को अग्नि की तरह भस्म कर सकता है। इसी प्रकार वात, पित्त, कफ को भी समझना चाहिए।

मलरूप वात, पित्त, कफ

जिस समय गुदा से अपान वायु निकलता है, अथवा मुख द्वारा उद्गार निकलता है, तो यह मलरूप अथवा दोष रुप वात है। जब अतिसार होने की आवश्यकता में पीला-पीला पित्त गुद द्वारा अथवा कभी-कभी वमन द्वारा भी पीला-पोला पित्त बाहर निकलता है तो इसे हम दोष रू पित्त कहते हैं।

जब टट्टी में आंत्र आती है, नाक से कफ गिरता है, आँख में कीचड़ आती है अथवा वमन में बलगम निकलती है तो इसे दोषरूप कफ कहेंगे।

२. जब रोगी के शरीर में अथवा नेत्रों में विकार उत्पन्न होते हैं, तो उन्हें हम निम्न रू से समझ सकते हैं :—

पीड़ा का होना अनुभव हो तो वात कहलाता है।
गरमी का अनुभव हो पित्त कहलाता है।
ठंड तथा नेत्रों में खुजली होने का अनुभव कफ कहलाता है।

३. जब रोग का कारण जानना हो तो वात,पित्त, कफ के कुछ और ही अर्थ बनते हैं—मन प्राण, शरीर। मन से विचारने का कार्य होता है और जो कुछ वह विचारता है उसे प्राण की शक्ति कार्य का रूप दे देती है और अन्त में शरीर उसे दर्शाता है। जब तक मन, प्राण व शरीर में एकता नहीं आजाती तब तक मनुष्य का स्वस्थ रहना असम्भव सा हो जाता है। अतः मनुष्य जो भी रोग अनुभव करता है उसमें इनके किसी एक भाग की कमी आ जाती है। इस जगह वात, पित्त और कफ के अर्थ इस प्रकार है।

मन—को वात कहते हैं।
प्राण—को पित्त कहते हैं।
शरीर—को कफ कहते हैं।

४. जब रोगों को क्रमबद्ध (Classification) करना हो तो वात, पित्त, कफ को हम अन्य रूप में समझते हैं।

१. वात के रोग—जब रोग पीड़ा युक्त हो अथवा पक्षाघात आदि हो गया हो तो हम उसे वातज कहेंगे। जैसे ग्लोकोमा रोग में कभी-कभी नेत्र में अत्यन्त शूल होता है।

२. पित्तज—जब आँख से गरम-गरम जल बहता हो, आँख में लाली तथा जलन हो। जैसे आइराइटिस। (Iritis)

३. कफज—जब नेत्र में रोग तो हो, भारीपन हो, न लाली हो और न पीड़ा, तो ऐसे विकार को कफज विकार कहते हैं। यथा (Simple Glaneoma) मोतियाबिन्द, तिमिर इत्यादि।

४. यदि नेत्र रोग में पस आने लग जावे अथवा (Degeneration) हो रहा हो, तो ऐसे रोग को त्रिदोषज विकार कहते हैं।

चिकित्सा—रोगों की चिकित्सा करने में भी मुख्यतः निम्नलिखित तीन सिद्धांत हैं :—

१. दोष को शरीर से बाहर निकालना (Elimination)।

क. रोगी को जुलाब अथवा एनिमा देकर दोषों को बाहर निकालना ! यह प्रायः सभी नेत्र रोगों में श्रेयस्कर रहता है, विशेषतः जब कि आंखों में लाली हो और रोगी को कब्ज की शिकायत रहतीहो। ऐसी अवस्था में हरड़ का चूर्ण अथवा त्रिफला का चूर्ण बहुत लाभकारी होता है।

ख. जब नाक अथवा मुंह से दोष को निकालना हो तो सूंघने के लिए थोड़ी सी तीव्र औषधि देनी पड़ती है, यह औषधि नाक की आन्तरिक श्लैष्मिक कला में जा कर खुजली सी उत्पन्न करती है जिस से कुछ छींकें आकर बलगम बाहर निकल जाता है। इसके लिए "कटफल नस्य" अच्छी रहती है। यह प्रयोग आधा सीसी, ग्लोकोमा, आँखों में पुरानी लाली आदि में किया जाता है।

ग. आपरेशन—रसौली, मोतियाबिन्द आदि रोगों में दोष को आपरेशन से दूर किया जाता है।

घ. सूचिवेध इंजैक्शन—कुछ नेत्र रोग ऐसे भी होते हैं जिन में विष को शरीर से बाहर निकालने में सूचीवेध का आश्रय लेना पड़ता है। यथा उपदंश, सिफलिस और पूयमेह (गोनोरिया) आदि। यदि उपर्युक्त भयंकर रोगों के कारण नेत्रों में विकार हो तो उनके विष से मुक्ति पाने के लिए आशु लाभकारी इंजैक्शन का सहारा लेना पड़ता है।

ङ. लेखन अंजन—जो औषधियाँ आँख में लगाने से लगे तथा काट करे, वह भी स्थानीय ज़हरीले मादे को बाहर निकालने में सहायता देती है। यथा आँखों में रोहे अथवा कुक्करे पड़ने की अवस्था में तूतिया (Copper Sulphate) तथा फिटकरी (Alum) आदि के योगों का प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में उपरिलिखित औषधियाँ प्रायः लेखन अंजनों में प्रयुक्त की गई हैं। यथा—तूतिया ४ ग्रेन या २ रत्ती, हींग ३० ग्रेन या १५ रत्ती, सोंठ ३० ग्रेन या १५ रत्ती, नमक २ ड्राम या ४ माशा, काला सुरमा २ ड्राम या ४ माशा।

यह सुरमा रोहे, आँखों में कीचड़ का आना, आँखें गदली रहना आदि रोगों में अत्यंत लाभकारी है। औषधियों की मात्रा रोग अथवा रोगी के बलाबल के अनुसार घटाई बढाई जा सकती है। यह सुरमा सलाई से सुबह शाम लगाना चाहिए।

२. दूसरा सिद्धांत है शक्ति का संचालन करना (Stimulation), जोकि उपयोगी भोजन, फल आहार, रसायन औषधियाँ (Tonics), सूर्य व्यायाम, प्राणायाम, भाप, सेक, मालिश तथा ऐसी औषधियाँ जोकि शरीर में रुधिर का संचार कर सकें तथा रुधिर की मात्रा को बढ़ा भी सके, से प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार आँखों में भी रुधिर के संचार को बढ़ाने के लिए औषधियां डालनी चाहिएं। ऐसी औषधियों में मधु का स्थान सब से ऊंचा है। मधु मिश्रित औषधियों को आँखों में लगाने से आँखों का तेज बढ़ता है :—

१. प्याज का रस १ ड्राम, अदरक का रस १ ड्राम, मधु १ औंस।

२. नमक ३० ग्रेन, शहद १ औंस।

३. आयुर्वेदोक्त "चन्द्रोदय वर्त्ति"।

उपयुक्त औषधियों में से कोई एक औषधि सलाई से आँखों में लगाकर पाँच मिनट सूर्य की ओर मुंह कर के आँखें बन्द किए हुए बैठना चाहिए। पीछे जल व आईलोशन से आँखें धो डालनी चाहिए।

३. तीसरा सिद्धांत है नसों व दिमाग में शांति पैदा करना, अथवा आराम पहुंचाना (Rest or Relaxation)।

इसके वास्ते मालिश, लेप, सेक, ध्यान, शुद्ध वातावरण, आत्मिक प्रभाव (Auto suggestion) पटी, नसों में सुन्नता अथवा शांति उत्पन्न करने वाली औषधियाँ, तथा अन्य आराम पहुंचाने के तरीके (Relaxation methods) जोकि पहले वर्णित किए जा चुके हैं, का प्रयोग हितकर है।

जो औषधियाँ आँखों में ठंडक पैदा करें तथा शक्ति दें, उनका भी प्रयोग करो।

१. काजल २ माशा, शुद्ध मनशिला ४ रत्ती, भीमसेनी कपूर २ रत्ती।

२. सुफेद सुरमा २ माशा, शंख भस्म १ माशा, भीमसेनी कपूर २ रत्ती।

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)
गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र
निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे० के० शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४३ वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। ७५ पृष्ठ का हिन्दी सूचीपत्र मुफ्त। अंग्रेजी, गुजराती, उर्दू और भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों व ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपर्युक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

दर्शनों में आयुर्वेद

(साहित्याचार्य पं० प्रियव्रत शर्मा शास्त्री, एम० ए०, ए० एम० एस०, वाइसप्रिंसिपल, आयुर्वैदिक कौलेज, बेगूसराय)

[प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि विभिन्न दर्शनों में आयुर्वेदीय विषयों का प्रसंग कहाँ कहाँ किस रूप में आया है। इससे आयुर्वेद की मौलिक महत्ता, प्रामाणिकता, गम्भीरता एवं उपादेयता का अच्छा दिग्दर्शन होता है। किन्तु यह केवल बहिरंग विवेचन है। आयुर्वेद तथा दर्शन शास्त्र की विचारधारा की आन्तरिक सामञ्जस्यपूर्ण मीमांसा आगामी लेखों में की जायगी। —सं०]

१. न्याय दर्शन

न्यायदर्शन का वाङ्मय अतीव विशाल है। गौतमसूत्र तथा वात्स्यायन भाष्य में इस दर्शन के सिद्धान्तों का मौलिकरूप से प्रतिपादन किया गया है। इसके बाद समय समय पर विरोधियों द्वारा उस पर जो प्रहार किये गये उनका निराकरण परवर्ती आचार्यों ने अपनी अकाट्य युक्तियों द्वारा किया। इस प्रकार इस दर्शन का वाङ्मय निरन्तर पल्लवित और पुष्पित होता चला गया। विशेषत: बौद्ध और नैयायिकों के विवाद का इतिहास अतीव मनोरंजक है। गौतम ने 'न्यायसूत्र' की रचना की। बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन (३०० ई०) ने उसमें दोष निकाले। वात्स्यायन (४०० ई०) ने अपने भाष्य में उन दोषों का उद्धार किया। दिङ्नागाचार्य (५०० ई०) ने वात्स्यायन भाष्य पर आक्षेप किया जिसका निराकरण उद्योतकर (६०० ई०) ने अपने 'न्यायवार्तिक' में किया। धर्मकीर्ति (७०० ई०) ने अपने 'न्यायबिन्दु' नामक ग्रन्थ में वार्तिककार को प्रत्युत्तर दिया। धर्मोत्तर ने न्यायबिन्दु पर टीका की रचना कर दिङ्नाग और धर्मकीर्ति का समर्थन किया। तब दर्शन के उद्भट विद्वान् श्री वाचस्पति मिश्र (८०० ई०) ने 'न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका' की रचना कर बौद्ध आक्षेपों का खण्डन करते हुये न्यायवार्तिक का उद्धार किया जैसा कि इन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हुये लिखा है :—

> "इच्छामि किमपि पुण्यं दुस्तरकुनिबन्धपंकमग्नानाम्।
> उद्योतकरगवीनामतिजरतीनां समुद्धरणात् ॥"

खण्डनमण्डनक्रम से विकसित न्याय दर्शन की इस शाखा का उल्लेख नीचे किया जाता है :—

१. गौतमकृत—न्यायसूत्र।
२. वात्स्यायनकृत—न्यायसूत्र भाष्य
३ उद्योतकरकृत—न्यायवार्तिक
४. वाचस्पतिकृत—न्यायवार्तिकतात्पर्य टीका
५. उदयनाचार्यकृत—न्यायवार्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि
६. वर्द्धमानकृत—परिशुद्धिटीका (न्याय निबन्ध प्रकाश)
७. पद्मनाभकृत—न्याय निबन्ध प्रकाश टीका (वर्द्धमानेन्दु)

इसके अतिरिक्त न्यायदर्शन की अनेक शाखायें, उपशाखायें निकलीं जिनका वर्णन यहाँ अभीष्ट नहीं।

२. न्यायसूत्र और वात्स्यायन भाष्य

गौतमकृत न्यायसूत्र तथा वात्स्यायनकृत न्यायभाष्य में आयुर्वेद के अनेक प्रसंग मिलते हैं जिनका यहाँ क्रमशः उल्लेख किया जायगा।

प्रमाणलक्षण प्रकरण में उपमान प्रमाण का फल बतलाते हुये भाष्यकार ने कहा है कि "गौ जैसी है, वैसी ही नील गाय है" यह कहने पर जब गौ के समान पशु को देखते हैं तब उसकी गवयसंज्ञा है यह प्रतीति होती है। इस प्रकार संज्ञा और संज्ञी के सम्बन्ध की प्रतीति ही उपमान का प्रयोजन है।

"यथा गौरेवं गवयः इत्युपमाने प्रयुक्ते गवा समानधर्ममर्थमिन्द्रियार्थसन्निकर्षादुपलभमानोऽस्यगवयशब्दः संज्ञेति संज्ञासंज्ञिसंबन्धं प्रतिपद्यत इति।"

—वात्स्यायन भाष्य

इसे हृदयंगम कराने के लिए भाष्यकार ने आयुर्वेद में प्रयुक्त उपमान के उदाहरणों का आधार लिया है:—

"यथामुद्गस्तथा मुद्गपर्णी, यथा माषस्तथा माषपर्णीत्युपमाने प्रयुक्ते उपमानात् संज्ञासंज्ञिसंबन्धं प्रतिपद्यमानस्तामोषधीं भैषज्यायाहरति। एवमन्योऽप्युपमानस्य लोके विषयो बुभुत्सितव्य इति।" —वात्स्यायन भाष्य

जो मुद्गपर्णी तथा माषपर्णी ओषधियों का परिचय नहीं जानते, वे भी "जैसा मुद्ग है वैसी मुद्गपर्णी है" तथा "जैसा माष है, वैसी माषपर्णी है" इस उपमान का प्रयोग करने पर इन ओषधियों का परिचय प्राप्त कर लेते हैं और उन्हें लाकर औषध में उपयोग करते हैं। आयुर्वेद तथा लोक में शतशः सहस्रशः ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें उपमान के द्वारा अज्ञात पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। चिकित्साशास्त्र में अनेक अज्ञात रोगों की संज्ञा प्रसिद्धसाधर्म्यमूलक उपमान के आधार पर निर्धारित की गई है, यथा दण्डक, धनुःस्तम्भ आदि, किन्तु भाष्यकार ने अत्यन्त प्रचलित ओषधियों का उदाहरण ही पर्याप्त समझा। चरक ने लिखा है:—

"औपम्यं नाम यदन्येनान्यस्य सादृश्यमधिकृत्य प्रकाशनम्।
यथा दण्डेन दण्डकस्य, धनुषा धनुःस्तम्भस्य, इष्वासिनाऽऽरोग्यदस्येति॥"

—चरक विमान ८ अ०

अनेक टीकाकारों और लेखकों ने न्यायदर्शन के उपमान और चरक के औपम्य को अभिन्न मानकर उसकी व्याख्या की है, किन्तु यथार्थतः दोनों के स्वरूप में महान् अन्तर है जिसका विस्तृत निरूपण अन्तरंग विवेचन में किया जायगा। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि चरक ने उपमान को प्रमाणकोटि के अंतर्गत नहीं लिया है।

शब्दविशेषपरीक्षाप्रकरण में सूत्रकार ने "तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः" इस सूत्र के द्वारा पूर्वपक्ष उपस्थित किया है कि अनृत, व्याघात एवं पुनरुक्त दोषों की उपस्थिति के

कारण शब्द का प्रमाणत्व सिद्ध नहीं होता । इन दोषों का परिहार अग्रिम सूत्रों में सूत्रकार ने किया है और इस प्रकार शब्द प्रमाण है यह सिद्ध किया है, किंतु यह प्रश्न रह जाता है कि क्या दोषों के परिहार से ही शब्द का प्रमाणत्व सिद्ध होता है ? इसका उत्तर सूत्रकार देते हैं :—"नहीं, ऐसी बात नहीं है । इसके पक्ष में साधक युक्तियां भी हैं।" इस अवसर पर आयुर्वेद उनका अतीव सहायक सिद्ध हुआ । वह कहते हैं :—

"मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्"

न्यायसूत्र २।१।६८

शब्दप्रमाण दो प्रकार का माना गया है–दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ । दृष्टार्थ शब्द की यथार्थता प्रत्यक्ष देखने में आती है यथा आयुर्वेद, मंत्रशास्त्र तथा ज्योतिष के वचन लोक में प्रत्यक्ष सिद्ध होते हैं । इसे दृष्टार्थ या लौकिक वाक्य भी कहते हैं । इसके विपरीत, जिसका अर्थ ऐहलौकिक विषय से नहीं, अपितु पारलौकिक विषय से सम्बन्ध रखता है, अतः प्रत्यक्षविषयक न होकर अनुमेय होता है, उसे अदृष्टार्थ कहते हैं । वैदिक वाक्य प्रत्यक्षसिद्ध न होने के कारण अदृष्टार्थ कहलाते हैं ।

उपर्युक्त सूत्र में गौतम ने स्थालीपुलाकन्याय से दृष्टार्थ शब्द के आधार पर अदृष्टार्थ शब्द की प्रामाणिकता सिद्ध की है । उनका कहना है कि जिन आप्त ऋषियों ने दृष्टार्थ वाक्य कहे हैं, उन्होंने ही अदृष्टार्थ वाक्य भी कहे हैं । अतः जब हम एक को सत्य मानते हैं, तब फिर दूसरे को भी सत्य क्यों नहीं मानें ? जिस प्रकार मन्त्र शास्त्र और आयुर्वेद के वचन यथार्थ हैं उसी प्रकार वेदोक्त वचन भी यथार्थ होंगे, क्यों कि सभी आर्ष वचनों का उद्गम स्थान तो एक ही है ।

आयुर्वेद की प्रामाणिकता के स्वरूप के संबन्ध में भाष्यकार पूर्वपक्ष उठाते हैं :—किं पुनरायुर्वेदस्य प्रामाण्यम् ?

"यत्तदायुर्वेदेनोपदिश्यते इदं कृत्वेष्टमधिगच्छतीदं वर्जयित्वाऽनिष्टं जहाति, तस्यानुष्ठीयमानस्य तथाभावः सत्यार्थताऽविपर्ययः ।"

आयुर्वेद के जो उपदेश वचन है कि अमुक रीति से रहने पर मनुष्य स्वस्थ रहता है तथा अमुक प्रकार से निदान परिवर्जन करने पर रोगमुक्त होता है, उनके यथावत् पालने करने पर परिणाम भी तदनुकूल यथार्थ होता है । तदुपदिष्ट वचनों की प्रत्यक्षसिद्ध यथार्थता ही आयुर्वेद की प्रामाणिकता का स्वरूप है । उपर्युक्त वाक्य के दो मौलिक प्रयोजनों (स्वस्थ का स्वास्थ्य-रक्षण तथा रोगी का विकारप्रशमन) का भी सूक्ष्म संकेत भाष्यकार ने किया है ।

भाष्यकार आगे कहते हैं कि जिन लोगों ने पदार्थ धर्मों का साक्षात्कार किया है, जिनके हृदय में प्राणियों के प्रति दया है तथा यथार्थ तत्वों को प्रकाशित करने की इच्छा है, वे ही आप्त पुरुष हैं तथा उन्हीं के वचन प्रमाणभूत माने जाते हैं ।

"साक्षात्करणमर्थस्याप्तिः तया वर्त्तते इत्याप्तः ।" —वा० भाष्य

अर्थात्—पदार्थ का साक्षात्करण आप्ति है और उससे युक्त 'आप्त' कहलाते हैं । ऋषि,

आर्य तथा म्लेच्छ इन विभिन्न वर्गों में यह लक्षण समान रूप से घटित होता है। उन २ सम्प्रदायों में प्रचलित विभिन्न व्यवहारों का मूल होने से उन सब के प्रवर्त्तक पुरुषों की आप्तता सिद्ध होती है। अतः "आप्तं दोषक्षयं विदुः" ऐसा आप्त का लक्षण अव्याप्तिदुष्ट है, यह कुछ लोगों का मत है :—

"आप्तं दोषक्षयं विदुः" इति परोक्तमाप्तलक्षणमव्याप्ति दुष्टम्"

—खद्योत (न्यायभाष्य)

किन्तु बिना रज और तम दोषों का क्षय हुये न तो अर्थों का साक्षात्करण हो सकता है और न यथार्थ तत्वों का प्रकाशन ही सम्भव है, अतः उपर्युक्त अव्याप्ति निर्मूल है तथा उससे आप्त का लक्षण ही खण्डित होकर 'मूले कुठाराघातः' की नीति चरितार्थ करता है।

भाष्यकार व्याख्या करते हैं :—

दृष्टार्थेनाप्तोपदेशेनायुर्वेदेनादृष्टार्थो वेदभागोऽनुमातव्यः प्रमाणमिति। आप्तप्रामाण्यस्य हेतोः समानत्वादिति।"

आगे लिखते हैं :—

"द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुमानम्। य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनाम् इत्यायुर्वेदप्रामाण्यवद्वेदप्रामाण्यमनुमातव्यमिति।"

—वा० भाष्य०

आत्मसिद्धि प्रकरण में शरीरादि से व्यतिरिक्त आत्मा है, इसे सिद्ध करने के लिए सूत्रकार एक युक्ति देते हैं :—

"सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात्।" —न्या० ३।१।७

अर्थात्—वाम नेत्र से देखे हुये विषय को दक्षिण नेत्र से देख कर भी पहचान लेना इंद्रिय से अतिरिक्त आत्मा को सिद्ध करता है। पूर्वापर विज्ञान का एक विषयकप्रतिसन्धिज्ञान ही प्रत्यभिज्ञा कहलाती है, जिसमें प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों का सम्मिलित कार्य होता है। अतः उस ज्ञान का अधिष्ठान भी एक ही होता है। यदि इन्द्रियाँ चेतन मानी जायें तो उनमें पृथक् २ प्रत्यभिज्ञा भी माननी पड़ेगी, अतः विभिन्न इन्द्रियों से जन्य ज्ञान का एक अधिष्ठान नहीं होने से उनकी एकवाक्यता भी नहीं हो सकेगी और फलतः प्रत्यभिज्ञा असिद्ध हो जायगी। इसी तथ्य को सूत्रकार ने चक्षु का दृष्टान्त देकर समझाया है, यह किन्तु उपलक्षणमात्र है। दक्षिण और वाम दोनों नेत्रों में पृथक् २ चैतन्य होने से उनकी प्रत्यभिज्ञा भी स्वतन्त्र होगी, फलतः एक नेत्र से प्रत्यक्षीकृत विषय का प्रत्यभिज्ञान द्वितीय नेत्र से नहीं होगा। दोनों नेत्रों का अस्तित्व पृथक् २ होने से वे निरपेक्ष रूप से कार्य करेंगे। इसके विपरीत यदि हम ज्ञानाधिष्ठान कर्त्ता और भोक्ता आत्मा को मानते हैं तब इंद्रियाँ केवल साधनभूत होने से समस्त विषयों को आत्मा तक पहुँचाने का ही कार्य करती हैं। इस प्रकार एक ज्ञानाधिष्ठान होने से एक विषयकप्रत्यभिज्ञा भी सिद्ध हो जाती है। चरक ने भी इसे आत्मा का एक लिंग बतलाया है :—

"दृष्टस्य दक्षिणेनाक्ष्णा सव्येनावगमस्तथा।" —च० शा० १ अ०

इस प्रसंग में सूत्रकार ने यह सिद्ध किया है कि इन्द्रियों के अधिष्ठान दो हैं, जो तथ्य के नितांत अनुरूप है। बाह्य अधिष्ठान ही नहीं, अपितु आभ्यन्तर अधिष्ठान भी मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों में पृथक् २ स्थित हैं। तथापि इन दोनों अधिष्ठानों में उत्पन्न इन्द्रिय बुद्धि एक ही होती है। इस पर पूर्वपक्षी कहते हैं कि वस्तुतः चक्षु एक ही है, किन्तु मध्य में नासास्थि का व्यवधान होने से द्वित्व का आभास होता है।

"नैकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमानात्" —न्या० ३।१।८

"एकमिदं चक्षुर्मध्ये नासास्थिव्यवहितं तस्यान्तौ गृह्यमाणौ द्वित्वाभिमानं प्रयोजयतो मध्यव्यवहितस्य दीर्घस्येव।" —न्याय भाष्य

सूत्रकार इसका उत्तर देते हैं:—

"एकविनाशे द्वितीयाविनाशान्नैकत्वम्" —न्याय० ३।१।९

"एकस्मिन्नुपहते चोद्धृते वा चक्षुषि द्वितीयमवतिष्ठते चक्षुर्विषयग्रहणलिङ्ग तस्मादेकस्य व्यवधानानुपपत्तिः।" —भाष्य

अर्थात्—एक नेत्र के नष्ट हो जाने या निकाल लिये जाने पर भी दूसरा नेत्र यथावत् कार्य करता रहता है। यदि नेत्र एक ही रहता तो एक के नष्ट होने पर दूसरा भी नष्ट हो जाना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता। अतः चक्षु के एकत्व फलतः उपर्युक्त व्यवधान की बात युक्तिसंगत नहीं है।

पूर्वपक्षी पुनः आक्षेप करते हैं:—

"अवयवनाशेऽप्यवयव्युपलब्धेरहेतुः" न्या० ३।१।१०

"एकविनाशे द्वितीयाविनाशादित्यहेतुः। कस्मात्? वृक्षस्य हि कासुचिच्छाखासु छिन्नासूपलभ्यत एव वृक्षः।" —भाष्य

एक नेत्र के नष्ट होने पर द्वितीय नेत्र के नष्ट न होने से उसके एकत्व का खंडन नहीं होता, क्योंकि अवयव के नाश के बाद भी अवयवी बना रहता है। जिस प्रकार कुछ शाखाओं को काट देने पर भी वृक्ष की स्थिति बनी रहती है, उसी प्रकार एक नेत्र के नष्ट होने पर भी दूसरा नेत्र अनुपहत रह सकता है और फिर भी उसकी एकता खंडित नहीं होती।

सिद्धांतपक्षी इसका उत्तर देते हैं:—

"दृष्टविरोधादप्रतिषेधः" —न्या० ३।१।११

अर्थात्—"दृष्टान्त का विरोध होने से उपर्युक्त हेतु का खंडन नहीं होता।" भाष्यकार इस सूत्र की व्याख्या करते हुये निम्नांकित चार युक्तियाँ देते हैं:—

(१) "न कारणद्रव्यस्य विभागे कार्यद्रव्यमवतिष्ठते नित्यत्वप्रसंगात्। बहुष्ववयविषु यस्य कारणानि विभक्तानि तस्य विनाशः, येषां कारणान्यविभक्तानि तानि अवतिष्ठन्ते।"

अर्थात्—"कारणद्रव्य का विभाग होने पर कार्यद्रव्य की स्थिति नहीं रहती। यदि उसके बाद भी कार्य की स्थिति रहे तो वह नित्य हो जायगा। अतः अनेक अवयवी जहाँ पर हों, वहाँ

जिसके कारण का विभाग होगा उसका विनाश होगा और जिसका कारण अविभक्त रहेगा, उसकी सत्ता बनी रहेगी।"

इस प्रकार दोनों नेत्र पृथक् २ अवयवी हैं, अतः जिसके कारण का विभाग होगा, वही नेत्र नष्ट होगा दूसरा नहीं।

(२) अथवा दृश्यमानार्थविरोधः दृष्टान्तविरोधः। मृतस्य हि शिरःकपाले द्वावटौ नासास्थिव्यवहितौ चक्षुषः स्थाने भेदेन गृह्येते न चैतदेकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते संभवति।"

—वात्स्यायन

अर्थात् —"प्रत्यक्ष से भी पूर्वपक्षी की बात का विरोध हो जाता है। मृतशरीर के (छेदन करने पर) शिरःकपाल में नेत्र गोलक के स्थान में दो पृथक २ गर्त्त दिखलाई पड़ते हैं, जिनके बीच में नासास्थि का व्यवधान रहता है। एक नेत्र रहने पर ऐसा नहीं होता।"

(३) "अथ च एकविनाशस्यानियमाद् द्वाविमावर्थौ तौ च पृथगावरणोपघातौ अनुमीयेते विभिन्नाविति।"

—वात्स्यायन

अर्थात्—"दोनों का एक साथ विनाश नियत नहीं होने से, ये दोनों नेत्र पृथक् आवरण एवं उपघात वाले हैं, अतः उनकी विभिन्नता का अनुमान होता है।"

(४) "अवपीडनाच्चैकस्य चक्षुषो रश्मिविषयसन्निकर्षस्य भेदाद दृश्यभेद् इव गृह्यते तच्चैकत्वे विरुध्यते। अवपीड़ननिवृत्तौ चाभिन्नप्रतिसन्धानमिति तस्मादेकस्य व्यवधानुनपपत्तिः।"

—वात्स्यायन

अर्थात्—"एक नेत्र को दबाने पर रश्मि और विषय के सन्निकर्ष भेद से दृश्यभेद के समान प्रतीत होता है, नेत्र के एक होने पर ऐसा नहीं होना चाहिये। अवपीड़न हटाने के बाद पुनः अभिन्न मालूम पड़ता है। अतः नेत्र वस्तुतः दो ही हैं, एक में व्यवधान की कल्पना असंगत है।"

(क्रमशः)

—o—

वैद्य समाज के लिये स्वर्ण-अवसर
हमारे यहाँ के विशुद्ध आयुर्वैदिक वैज्ञानिक ढंग से बने हुए आयुर्वैदिक इंजेक्शनों को खरीद, दुःसाध्य एवं कठिन रोगों की चिकित्सा कर यश तथा धनोपार्जन कीजिए।
भारत में आयुर्वैदिक इंजेक्शनों की एकमात्र अनुसंधान-शाला—
श्री लक्ष्मी आयुर्वैदिक अनुसंधान भवन, बरुवा सागर (झांसी)।

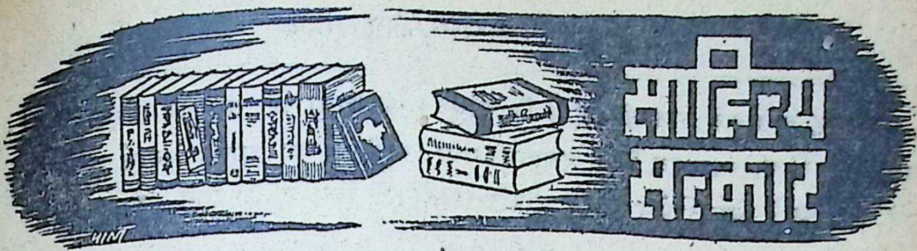

प्राणाचार्य (शिशु रोगांक) प्रधान सम्पादक—आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी । प्रकाशक—प्राणाचार्य भवन लिमिटड, विजयगढ़ (अलीगढ़) । पृष्ठ संख्या ३७९ । मूल्य ६ रु० ।

प्राकृत शिशु, विकृत शिशु, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, शिक्षण, शिशु-पालन, संरक्षण, सुप्रवृत्तियां, कुप्रवृत्तियां, बाल्यकाल, शिशुरोग, आर्ष ग्रन्थों में बालरोग, राज्यों में बालरोग, विदेशों के बाल-स्वास्थ्य तत्वों पर प्रकाश आदि कुछ शीर्षक हैं इस विशेषांक के । शिशुओं के स्वास्थ्य, उनके रोग व प्रतिकार के सम्बन्ध में कोई ऐसा विषय नहीं जिस पर इसमें प्रकाश न डाला गया हो । इस विशेषांक का मापदण्ड आयुर्वेद पत्रों के अन्य विशेषांकों से कहीं बढ़कर है । श्री त्रिवेदी जी एवं बांकेलाल जी—दोनों ही हमारी बधाई के पात्र हैं । वैद्यमात्र को इस प्रकार के सद् ग्रन्थों का अवश्य अवलोकन करना चाहिये ।

धन्वन्तरि—(इन्जैक्शन विज्ञानांक, प्रथम भाग) लेखक—श्री चौधरी तेजबहादुर सिंह मूल्य २) १६२ पृष्ठ के विशेषांक में लेखक महोदय ने इन्जैक्शन की आवश्यकता, उनके भेद और वर्णन, उपकरण, प्रतिकरण, ओषधियां तथा इन्जैक्शन उपयोगी द्रव्यों के निर्माण की विधि आदि का सुविस्तृत वर्णन किया है । इन्जैक्शन के शौकीन वैद्यों के लिए बहुत उपयोगी है ।

जय आयुर्वेद—(सम्मेलनांक) सम्पादक श्री क० माधवप्रसाद शास्त्री जोधपुर । राजस्थान प्रान्तीय सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन का सचित्र एवं विस्तृत वर्णन है ।

हिन्दी समाचार पत्र सूची (१८२६—१९२५) भाग १, लेखक—श्री वेंकटलाल ओझा - प्रकाशक-हिन्दी समाचार पत्र संग्रहालय, कसारट्टा रोड, हैदराबाद दक्षिण (२) मूल्य १।)

हिन्दी समाचार पत्रों का अकारादि क्रम में आधुनिक समाचार पत्र परिचय शास्त्र के अनुसार यह विवरण अपने ढंग का हिन्दी में पहला ही प्रकाशन एवं स्तुत्य प्रयत्न है । यह पुस्तिका हिन्दी समाचार पत्रों के इतिहास की रूपरेखा है जिसे लेखक ने वर्षों की कठिन मूक-साधना के बाद मूर्तरूप दिया है । उत्तर प्रदेश की सरकार ने ५००) का पारितोषिक देकर विद्वान् लेखक का उचित अभिनन्दन किया है । आशा है सूची के आगामी भाग शीघ्र प्रकाशित होंगे । एतत्सम्बन्धी सामग्री जिन सज्जनों के पास हो लेखक उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे ।

—पुरुषोत्तमदेव मुलतानी ।

प्रारम्भिक विज्ञान प्रथम भाग और द्वितीय भाग

लेखक आचार्य सुरेन्द्र मोहन बी० ए० । प्रकाशक —डी० ए० वी० कालेज प्रबन्ध कर्तृ सभा, जालन्धर ।

प्रथम भाग भौतिकी मूल्य १॥) द्वितीय भाग रसायन मूल्य २॥)

यह बात अब मान ली गई है कि आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व आधारभूत ज्ञान में विज्ञान की शिक्षा आवश्यक है । रसायन तथा भौतिकी का ज्ञान पदार्थ ज्ञान कहाता है और एक वैद्य के लिए विशेष रूप में औषधि निर्माता के लिए पदार्थ ज्ञान अनिवार्य है ।

आचार्य जी ने हिन्दी भाषा में इन दोनों पुस्तकों को लिख कर एक भारी कमी पूर्ण की है। इस समय हिन्दी भाषा में इस विषय पर अच्छे ग्रन्थ नहीं हैं । इस का सब से बड़ा कारण ऐसी पुस्तकों की मांग का अभाव है । इस पर भी ये दोनों पुस्तकें अच्छी बनी हैं और आयुर्वेद जगत् की एक त्रुटि को पूर्ण करती हैं ।

यद्यपि पुस्तकों में विषय क्रम को उचित रीति से न रख कर पदार्थ ज्ञान का चित्र स्पष्ट नहीं बनता तो भी हम आचार्य जी के इस प्रयास की सराहना करते हैं और आयुर्वेद विद्यालयों से सिफारिश करते हैं कि इस से लाभ उठावें । ये पुस्तकें, आयुर्वेद के विद्यार्थियों को रसायन तथा भौतिकी का प्रारम्भिक ज्ञान कराने के लिए, बहुत लाभकारी सिद्ध होंगी ।

—गुरुदत्त एम० एस० सी०

—०—

छप गई छप गई छप गई

सल्फ़ोनामाईड पद्धति (Sulphonamide Therapy)—वैद्य समाज जिस पुस्तक की वर्षों से आवश्यकता अनुभव कर रहा था वही सल्फोनामाईड पद्धति, जिस में लेखक ने सल्फोनामाईड क्या है ? उसके प्रत्येक रूपान्तर का पृथक् पृथक् वर्णन करके साथ ही उनसे होने वाले उपद्रवों तथा प्रभावों का वर्णन करके तुलनात्मक विवेचन भी किया है। इस पुस्तक के लेखक साहित्यायुर्वेदाचार्य देवकीनन्दन शर्मा साहित्यालंकार बी० ए० प्रभाकर स्वर्ण तथा रजत पदकान्वित हैं ।

डाक व्यय अलग मूल्य २।) प्र

प्रकाशक :—
आयुर्वेदाचार्य नानकचन्द वैद्य शास्त्री
शैलेन्दु पुस्तकालय
५७/११३ कन्दले कशां,
फतहपुरी, देहली ।

पुस्तक मिलने का पता :—
आयुर्वेदाचार्य दया प्रकाश शर्मा
इन्चार्ज **पबलिक फ्री हस्पताल**
मुहल्ला महेन्द्रूआं, जालन्धर सिटी ।

हमारा चिकित्सालय

एक नेत्र रोगी

लेखक--पं० वीरलभाया वैद्योपाध्याय छजपुर महरौली (दिल्ली)

[हमारे देश के वृक्ष स्वर्ण उगलने वाले हैं। हमारे खनिज लोहकाय तथा वज्रकाय बनाने वाले हैं। अदृष्ट गुप्तवीर्य औषधियों के समझने समझाने में एलोपैथी अभी बाल है। इसका प्रमाण इस लेख में पढ़िये।]

इतिवृत्त—सन् १९३१ की शरद् ऋतु में भवन ग्राम तहसील चकवाल जि० झेलम (इस समय पश्चिमी पाकिस्तान में) में मेरे मित्र श्री भीमसेनदत्त विशेष कष्टपूर्ण अवस्था में मेरे पास आये। उनकी आंख में "सिफलेटिक ग्लोकोमा" था जो आपरेशन साध्य नहीं था। उनकी पुतली में नाड़ी-व्रण जैसा रोग था और अनवरत विकृत जल प्रवाहित होता था। निदान-पंचक का ध्यान करके मैंने इसे वातोल्वण, कफ मध्य, पित्तहीन दृष्टिरोग निश्चित किया। मेरे मित्र के लिए शीत वायु सर्वथा असह्य थी। उसने पगड़ी के ऊपर एक और पगड़ी बांधी हुई थी। वाम नासिका सर्वथा बन्द थी। श्वास दुर्गन्धियुक्त था। कण्ठ स्वर मन्द था और शिर कफ पूर्ण था।

चिकित्सा—मैंने रोगी को निम्न चिकित्सा बतलाई:—

(१) भृंगराज स्वरस का प्रयोग प्रतिदिन सूर्योदय के १ घंटा बाद।

(२) गोमूत्र में घुली हुई चन्द्रोदय वर्तिकी रस-क्रिया—ताम्रशलाका से उसका शनैः-शनैः सहन सामर्थ्य तक नेत्र के मध्य भाग में परिमर्दन।

(३) रात्रि शयन से पूर्व चूर्ण त्रिफला-मुंडी नषी-भस्म-मधु युक्त १ तोला से ३ तोला तक प्राशन।

(४) भोजन सदा सात्विक और मिताहार।

(५) सूर्य किरण निर्वात स्थान में शिरपर १५ मिनट प्रतिदिन सेवन।

परिणाम—(१) विकृत कफ प्रतिदिन क्षीण होता गया। १ सप्ताह बाद सिर नंगा रखा जा सकता था।

(२) कफ स्राव कम होने लगा।

(३) रुद्ध नासिका स्वर चलने लगा।

(४) सात्विक भोजन से दोष-साम्य और सूर्य किरणों से सुप्त तन्तु जाग गये और प्राकृत कार्य करने लगे।

(५) जल प्रयोग द्वारा मूत्र अवयव ठीक प्रकार कार्य करने लगे।

भृंगराज के गुणों को एलोपैथिक चिकित्सक नहीं समझ सकते हैं।

जीवन झांकी

स्वर्गीय रस वैद्य ऊधवदास मोतीराम भाटिया

(ले०—महाराज दौलतराम ए० शर्मा आत्रि, मुलुन्द शिविर, थाना, बम्बई ।)

सिन्ध प्रान्त के कराची नगर में रसवैद्य ऊधवदास जी का जन्म सन् १८८९ में हुआ। प्रारम्भ से ही आपका वैद्यक की ओर झुकाव था । बड़े अखाड़े के गोसाईं श्री हरदेव पुरी जी के पास रहकर आपने विषोपविषों का शोधन मारण कर्म (फकीरी पद्धति से) सीखा था । कुछ समय बाद आपने कराची में श्री रत्नकला आयुर्वेदिक फार्मेसी तथा सिद्ध नागार्जुन रसायन शाला और रसशाला में पारद रस लिंग की विधिपूर्वक स्थापना आचार्य पं० परमानन्द शास्त्री द्वारा कराई और पारद संस्कार का कार्य आरम्भ किया । इस प्रकार रासायनिक कार्यों की ओर विशेष ध्यान देते हुए आपने स्वर्णगर्भित चन्द्रोदय (अन्तर्धूम) के निर्माण की सत्यता सिद्ध करदी । आपने यह विद्या काशी के प्रसिद्ध रसायनशास्त्री स्वर्गीय पं० कृष्णपाल शास्त्री से सन् १९४० में सीखी थी । उस समय बुभुक्षित पारद में १०० तोला रजत जारण आदि के प्रयोग द्वारा यह क्रिया मेरे सम्मुख की गई थी । वहां पर तैयार की गई चांदी तथा १०० तोला रजत जरित पारद अभी तक इन पंक्तियों के लेखक तथा स्वर्गीय ऊधवदास जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री टोपणदास जी के पास मौजूद हैं । जो सज्जन देखना चाहें, देख सकते हैं ।

काशी से वापस आने के बाद वैद्यराज जी ने अपनी सिद्ध नागार्जुन रसायन शाला में स्वर्ण गर्भित चन्द्रोदय बनाया तथा कई असाध्य रोगियों पर उसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया। देश का विभाजन होने पर आप बम्बई आये । २८-१० ४६ को काशी हिन्दु विश्वविद्यालय ने अपने आयुर्वेदिक विभाग के वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह को भेजा था जिन्होंने इस स्वर्ण गर्भित चन्द्रोदय की परीक्षा की । आपने भलीभांति जांच करके यह प्रामाणित किया कि इसके ऊर्ध्वभाग में स्वर्ण है । सन्तान इच्छुक व्यक्तियों के लिए आपने पुत्र वर्धमान रस तैयार किया था जिससे मेरे एक सुपरिचित मित्र आज पुत्रवान् है ।

रसवैद्य ऊधवदास की बड़ी इच्छा पारद के १८ संस्कार करने की थी और निखिल भारत आयुर्वेद महासम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष गोंडल के राजवैद्य श्री जीवराम कालीदास शास्त्री के साथ परामर्श करके इस योजना को मूर्त रूप दिया जाने वाला ही था कि क्रूर काल ने इन सब आशाओं पर तुषारपात कर दिया । ६२ वर्ष की आयु में वैद्यराज जी का मुलन्द शिविर बम्बई में १४ नवम्बर १९४९ सोमवार प्रातःकाल स्वर्गवास हो गया । आप अपने पीछे ४ पुत्र और ४ पुत्री छोड़ गये हैं जिनमें आपके ज्येष्ठ पुत्र टोपणदास जी ने मुलन्द में ही औषधालय खोल रखा है। आप अपने पिता के अधूरे कार्य को पूरा कर सकें—यह हमारी शुभ कामना है ।

—०—

ज्ञान विज्ञान

नमकीन जल का प्रयोग

भयंकर प्रदाह-जिससे मन पर धक्का लगता है—रक्तद्रव से अच्छा हो जाता है। परमाणु बम सदृश भयंकर संकट उपस्थित होने पर मुख द्वारा लिया गया नमकीन जल उतना ही लाभकारी है जितना रक्त द्रव। अमरीका के सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग ने सिफारिश की है कि प्रदाह इत्यादि की गम्भीर स्थिति उत्पन्न होने पर इसका प्रयोग किया जाना चाहिये। रोगी को जल पीने की शक्ति के सामर्थ्य के अनुसार प्रति सेर जल में १ चाय के चम्मच जितना निमक और खाने का सोडा मिला देना चाहिये। पहले कुछ दिन तक अन्य कोई पेय द्रव्य नहीं दिया जाता। संकट कालीन अवस्था के धक्के के अतिरिक्त, अन्य कारणों से भी रक्तद्रव की आवश्यकता है।

ध्वनि लहरियों का मस्तिष्क द्वारा अनुभव

मानवीय मस्तिष्क पर ध्वनि लहरियों का प्रभाव पड़ सकता है। अति प्रभावशाली लहरियों को मस्तिष्क कोष्ठकों में से गुजारा जाता है और मस्तिष्क द्रव्य कोई रुकावट पैदा नहीं करते। अमरीका की मास्साशुसट्स स्थित अन्वेषण संस्था ने ऐसी पद्धति आविष्कृत की है जिससे रोगी के सिर के एक ओर ध्वनि लहरी संचारक और दूसरी ओर ध्वनि ग्राहक उपकरण रख दिये जाते हैं और इस प्रकार मस्तिष्क में से जो ध्वनियां गुजरती हैं वे खोपड़ी में चिह्नित होती जाती हैं। इनका प्रभाव लगभग एक्सरे के समान होता है परन्तु इससे मस्तिष्क के कोष्ठकों को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती।

[४७२ पृष्ठ का शेष]

परिस्थितियां, शृङ्गार भाव तथा प्रतिमायें बना चुका है, वहां उसे इस वास्तविक जगत् की यदि कोई मूर्ति जो न उतनी सुन्दर हो सकती है, और जिसके साथ ही इस जगत् की परिस्थितियों की कटुता और झंझट भी लगे हुए हैं, तो वह व्यक्ति इस सत्य के भद्देपन से अपनी आंखें मूंद लेना चाहता है। न केवल उनसे उसे निराशा होती है, वरन् उसे उसके पाने के लिये संघर्ष अथवा पाकर भी जो परिस्थिति के उपयुक्त सावधानियां, जिम्मेवारियां और शिष्टाचार आदि निभाने पड़ते हैं, वे उसे दुर्गम और दुःखद मालूम पड़ते हैं। फल स्वरूप उसकी वासना तीव्र होते हुए भी मैथुन के अवसर पर शक्ति जागृत नहीं होती।

हस्त मैथुन से ही जो अपनी वासना शान्त करते रहे हों, उनके मानस में भी काल्पनिक चित्रणका राज्य होता है, यही कारण उनकी शक्ति को भी मैथुन के अवसर पर प्रभावित करता है।

यह स्वाभाविक है कि, ऐसे व्यक्ति दाम्पत्य जीवन के अपने आपको अयोग्य पायेंगे; क्योंकि उनकी भावनायें, अनुराग, आसक्तियां, वास्तविक यौन सम्बन्ध अनुकूल नहीं हैं।

(अपूर्ण) सर्वाधिकार सुरक्षित

जन-स्वास्थ्य

केला

(ले० डा० शिवप्रसाद त्रिवेदी, बम्बई)

[खाद्यान्न की कमी के दिनों में पोषण की दृष्टि से अनुपम और पृथ्वी पर बहुलता से उत्पन्न होने वाला, केवल धनियों के लिए नहीं किंतु निर्धनों के लिए भी सुलभ, गुण समृद्धि में सर्वोपरि और अत्यन्त लोकप्रिय फल केले का वर्णन नीचे पढ़िये । —सं०]

केले का मूल स्थान भारत और दक्षिण एशिया के देश हैं परन्तु भारत का स्थान अग्रिम है। केले की कई श्रेणियां हैं परन्तु उनमें सर्वोत्तम श्रेणी का भारत में ही सुलभ है। भारत, मलाया और जैमिका में केला खाद्य के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इन देशों में केले का प्रमुख स्थान है। गरीबों को तो इससे बड़ा सहारा मिलता है क्योंकि यह सुलभता से प्राप्य है।

केले में पोषक तत्त्व खूब हैं। आजकल की महार्घता के समय में इसका प्रचुर उपयोग हो सकता है। एक प्रसिद्ध बाल चिकित्सक के कथनानुसार कई बाल रोगों में केले की उपयोगिता है। संग्रहणी और अतिसार में भोजन निषिद्ध है पर उसमें केले का औषधि रूप से प्रयोग विहित है। आंतड़ियों के लिए केले का प्रयोग विशेष लाभकारी है। जिस व्यक्ति का शरीर अति स्थूल हो इसके प्रयोग से उसमें कमी आ जाती है। केले में यह गुण है कि वह शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्त्व की रक्षा कर अनावश्यक तत्त्वों का अपहार कर देता है। केले में कार्बोहाइड्रेट २० से २५ प्रतिशत होता है। जिन छोटे बच्चों को दूध दिया जाता है उनके लिए केले का प्रयोग भी किया जा सकता है। यदि केला हजम न हो तो उसके छिलके को सुखाकर, पीसकर और कपड़छान करके उसे स्वल्प मात्रा में दूध में इस प्रकार मिलाया जाय जिससे वह सुभीते के साथ पी सके। इससे बालक सुदृढ़ होता है और उसके दांत निकलने में कष्ट नहीं होता। एक ऐलोपैथिक डाक्टर के कथनानुसार "केला शर्करा, विटमिन और खनिज तत्त्व के लिए बालकों के लिए उत्तम है। अपूर्ण भोजन प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के लिए एक केला और एक प्याला दूध नियमित रूप से लेना श्रेयस्कर है।"

केले में तांबा, लोहा, मेगनीज, फोस्फोरस, केल्शियम के खनिज तत्त्व हैं। इनमें लोहे की मात्रा प्रचुरता के साथ होती है। इसलिए जिसके शरीर में लोह अंश न्यून हो, उसे केले का प्रयोग अधिकता से करना चाहिये। इसमें प्रोटीन तत्त्व कम हैं। इसकी पूर्ति दूध द्वारा की जाती है। इस प्रकार दूध–केला उत्तम भोजन है।

[शेष पृष्ठ ४७० पर

वैदिककालीन अगद तन्त्र

वैदिक काल में कौन से साँप थे ?

[ले०—श्री आचार्य नित्यानन्द, बिडला संस्कृत कालेज, पिलानी]

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में विष को स्थावर, जंगम, और कृत्रिम भेदों में विभक्त किया गया है। वैदिक कालीन अगदतंत्र की भी यही स्थिति थी। अगदतन्त्र के जंगम प्रकरण को लें, तो उसमें साँप को प्रधानता देनी पड़ेगी। वेदोत्तरकालीन अगदतन्त्र का भी यही हाल है। हमें हिंसक श्रेणी के जीवों में सर्प का उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिलता है।

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद् विश्वादगदङ् कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश।

(ऋग्वेद १०।१६।६)

कितने ही स्थानों पर सर्पवाचक अहि शब्द का प्रयोग किया गया है :—

ये आग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आवभूवुः येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम।

'सर्प' शब्द साँपों की गति विशेष का बोधक है। वैसे ही 'अहि' नाम भी उनके हिंसक-स्वभाव का द्योतक है। महर्षि यास्क ने अहि की निरुक्ति यों की है :—

"अहिरयनादेति अन्तरीक्षे, अयमपीतरो ऽहिरेतस्मादेव, निर्ह्रसित उपसर्ग आहन्तीति।"

निरुक्त (२-१७)।

उस समय कई किस्म के सर्पों का उल्लेख मिलता है। हमें सर्पों की प्रत्येक जाति पर अलग से संक्षिप्त विचार करना है।

दर्वी—सर्पों की इस जाति का वर्णन अथर्ववेद (१०-४-१३) में है। उत्तरकालीन आयुर्वेद में इस जाति को 'दर्वीकर' कहा गया है :—

दर्वीकरा मण्डलिनो राजीमन्तश्च पन्नगाः।
त्रिधा समासतो भौमा विभिद्यन्ते त्वनेकधा॥

—अष्टांगहृदय।

प्रतीत ऐसा होता है कि जिन सांपों का फन दर्वी (दर्वि = सूपचालन पात्रम् 'कुड़छी' इति लोके ख्यातम्) के समान था, उनको दर्वी कहा जाने लगा। इस प्रकार के नामकरण की आजकल भी प्रथा है।

श्वित्र—इस जाति के सर्पों का कई मंत्रों में उल्लेख है। वेदों के अतिरिक्त इस नाम का सर्पवाचक प्रयोग मुझे उपलब्ध नहीं है। महाभारत में 'श्वित्र' सर्पों का उल्लेख तो नहीं है, पर वहां जो 'अनील' गिना गया है, संभवतः वह इसी जाति का बोधक है। यह जाति रंग से सुफेद होती थी। रंग के आधार पर ही नामकरण किया गया है।

असित—वेद में जैसे श्वित्र को अलग गिन कर काले सांप को 'असित' कहा गया है, वै ही महाभारत में असित को 'नील' कहा गया है। नील को प्राधान्य देने का कारण इस जाति अत्यन्त विषैली होने का है। इसके फन पर एक विशेष चिह्न होता है। बाद के वाङ्मय में इ जाति के सर्पों पर विस्तृत विचार किया गया और उनकी उपजातियों का अलग नामकरण कि गया :—

अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मोऽथ तक्षकः।
कर्कोटः कुलिकः शंख इत्यष्टौ नागजातयः॥

अघाश्व—सांपों की कुछ जातियां अत्यन्त ज़हरीली होती थीं और कुछ सर्प निर्विष भी हो थे। अघाश्व जाति के सर्प जहरीले माने जाते थे और उसके काटे की दवा उस समय उपलब्ध थी महाभारत में इस जाति को 'अश्ववार' कहा गया है।

तिरश्चीराजि—जिन सांपों पर तिरछी रेखाएं होती थीं उनको तिरश्चीराजि कहा जाता था वैदिक साहित्य में ही इस जाति के लिए 'तिरश्च राजी' या 'तिरश्चनराजी' शब्दों का भी प्रयोग हो था। बाद के विषवैद्यों ने 'तिरश्ची' शब्द हटा दिया और वे इनको 'राजिमान' या 'राजिल' क लगे और जिन सर्पों पर बिलकुल रेखायें नहीं होती थीं, उनको 'अपराजित' कहने लगे।

पृदाकु—इस जाति के सर्प अजगर की तरह विशाल होते थे। ये जहरीले तो थे ही, किन्तु इ जाति की स्त्रियों में अधिक उग्रता थी। वेद में इनका अलग से उल्लेख है :—

इन्द्रो मेहिमन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम्।
—अथर्ववेद (१०-४-१

इस जाति के सर्प चूहों को भी बड़ी आसानी से निगल जाते थे। वास्तव में 'पृदा 'आखुपृद्' का बोधक है। वेदोत्तरकालीन अगदशास्त्रियों ने इस जाति को 'मूषकाद' कहा है।

अजगर—आश्चर्य की बात है कि आज की तरह सर्वसाधारण में प्रचलित अजगर शब्द वैदिक काल में भी विशालकाय सर्प का बोध होता था :—

शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्य रजसा येभ्यो अस्यति।
—अथर्ववेद (११-२-२

अजगर बकरे जैसे बड़े प्राणियों को भी सरलता से निगल जाते थे (अजेन=अजनेन श्वा बलेन अथवा अजमपि गिरन्ति, गृ निगरणे)।

कसर्णील—इस प्रकार के सांपों का रंग मटमैला होता था, ये रास्ते में भी लेट जाते थे जब मनुष्य जल्दी में होते, तो सर्प पर पैर पड़ जाता (कुत्सितायां सरण्यां=मार्गे, लीनं=श्लिष्टम्)।

स्वज—इस किस्म का भी अथर्ववेद के कई मंत्रों में उल्लेख है। वैसे तो सभी सर्पों लिपटने की स्वाभाविक शक्ति होती है, किन्तु स्वज में लिपट जाने की ताकत अधिक होती थी। इ आधार पर इस जाति को स्वज कहने लगे थे (स्वज-आलिंगने)।

तैमात—इस जाति का उल्लेख भी कई स्थानों पर है। तैमात गीले स्थानों में रहना प करते थे। इन का वर्ण पिंगल होता था :—

"असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च" अथर्ववेद ५।१३।६

दशोनसी—इस जाति के सर्प दंश से प्राणी को नष्ट कर देते थे।

इनके अतिरिक्त निम्न जातियों के सर्पों का भी उल्लेख है:—

१. सेरभ. २. सेरभक. ३. सेवृध. ४. सेवृधक. ५. रथर्वी. ६. कल्माषग्रीव. ७; करिक्रृत. ८. कनिक्रृत. ६. आलिगी. १०. विलिगी.

सही बात तो यह है कि सर्पों की अनगिनत किस्में हो सकती हैं। यदि सांप और सर्पिणी विजातीय हों, तो उनकी सन्तति अलग किस्म की होगी। इस वर्णसंकरता के कारण जातियां बढ़ती गई हैं। कितनी ही जातियां आज लुप्त हो गई होंगी और कितनी ही जातियां आज भी अपने लक्षणों से युक्त होंगी। वैदिक काल से बाद के साहित्य में परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिये अधिक चिन्तन की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव है, जबकि आजकी आयुर्वेदीय संस्थायें वैदिककालीन आयुर्वेद को एक अलग विषय के रूप में स्थान दें और इस विषय को परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाये।

(इस लेख के सर्वाधिकार सुरक्षित)

उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन

उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन की स्थायी समिति की बैठक २२ जुलाई १६५१ को श्री पं० सीतावर पन्त सभापति उ० प्र० वैद्य सम्मेलन के सभापतित्व में मुजफ्फरनगर में १३ मास के पश्चात् हुई जिसमें मंत्री पं० दयानिधि शर्मा ने आय-व्यय का व्यौरा, आडिटर की रिपोर्ट सहित, स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया। आडिटर महोदय ने हिसाब पर असन्तोष एवं आपत्ति प्रकट की। इस पर पर्याप्त वाद-विवाद हुआ। स्थायी समिति ने उसको स्वीकृत करने से इंकार करते हुए निम्न सदस्यों का एक कमिशन नियुक्त किया है जो फिर से हिसाब की जांच करके अपनी रिपोर्ट पेश करेगा।

१. श्री पं० बाबूरामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य सदस्य बोर्ड आफ इंडियन मेडिसन, उत्तर प्रदेश सहायक मंत्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

२. श्री पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र बी० ए०, बी० आई० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य, प्रिंसिपल—रामसहाय आयुर्वेदिक कालेज, मेरठ, सम्पादक, आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, नई दिल्ली, अर्थ मंत्री, उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन।

३. श्री पं० रामसिंह शर्मा, आयुर्वेदाचार्य दौराला, भू० पू० प्रधान मंत्री पंचपुरी वैद्य सभा हरिद्वार।

रामसहाय आयुर्वेदिक कालेज-मेरठ

यह कालेज बोर्ड आफ इंडियन मेडिसन यू० पी० से मान्य तथा सम्बन्धित है। इस वर्ष पंचम श्रेणी भी आरम्भ हो गई है। प्रवेश आरम्भ हो गया है जिसमें हाई स्कूल, इन्टर, प्रथमा, मध्यमा, प्रभाकर इत्यादि विद्यार्थी लिये जाते हैं। प्रवेशार्थी शीघ्रता करें।

प्रिंसिपल।

महिलाओं के लिए आयुर्वेद विद्यालय

श्री सम्पादक जी !

क्या यह भी कभी होगा जबकि कन्याओं के लिए आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना हो ताकि स्त्री जाति भी अपने को उन्नत कर सके । आज घर-घर में स्त्रियाँ रुग्ण ही रुग्ण दिखाई देती हैं । जो बेचारी प्रसव समय पर अधिक व्यय नहीं कर पाती वे अशिक्षित दाई से प्रसव करवाती हैं जिसके परिणाम स्वरूप अनेक शिशु अकाल ही में काल कवलित हो जाते हैं ! आयुर्वेद में धात्री विज्ञान पूर्ण होने पर भी आज निराशा दिखाई दे रही है । सुश्रुत चरक आदि ग्रन्थों में धात्री विज्ञान का पूर्ण वृत्तान्त है । आज भारत स्वतन्त्र है पर हमारे वैद्य गण क्यों चुप बैठे हैं ? यदि महिलाओं को आयुर्वेद का ज्ञान हो तो वे अपने अड़ोस-पड़ोस का दुःख दूर कर सकती हैं । इस क्षेत्र में अभी गिनी चुनी महिलायें ही दिखाई देती हैं । महिलायें लज्जावश अपना कष्ट पुरुषों से प्रकट नहीं करना चाहतीं । सरकारी अस्पतालों में जाती हैं तो उन्हें आपरेशन के लिए कहा जाता है । बेचारी नाम सुनते ही डर जाती हैं । फलतः उनके मन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, यह वही जानती हैं ।

ककराल (खुर्जा) — **वैद्या राजकुमारी सचदेव**

बहिन राजकुमारी के शुभ संकल्प एवं विचार सराहनीय हैं । महासम्मेलन दिल्ली में महिला आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना का प्रयत्न कर रहा है । गुलामी की जंजीरों से तो हम लोग छूट गये हैं परन्तु विदेशी दवाइयों की गुलामी से अभी हमारा छुटकारा नहीं हुआ । जब तक हमारी सरकार आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति स्वीकार नहीं करती तब तक हम जनता की उचित सेवा करने में अपने को अशक्त समझते हैं।

—सं० पत्रिका

पं० मुन्शीराम शर्मा जी के तीन प्रश्न

श्री सम्पादक जी !

हमारे आयुर्वेद के अङ्ग भी जीर्ण प्राय हो रहे हैं । आर्ष ग्रन्थों की ओर विद्वानों की अरुचि सी दिखाई दे रही है, नवीन रचनाओं की ओर आकर्षित हो रही है । अतः मूलभूत सिद्धान्त दिन-प्रतिदिन क्षीण होते जा रहे हैं । स्थाली पाक न्याय से कुछ एक शास्त्रीय लेख आपके समक्ष रख रहा हूँ ।

(१) चरक सूत्र स्थान अध्याय १२ में :—

"तच्छ्रुत्वा काप्यवचो भगवान् पुनर्वसुरात्रेय उवाच—सर्वं एव भवन्तः सम्यगाहुरन्यत्रैकान्तिक वचनात्, सर्वं एव खलु वातपित्तश्लेष्माणः प्रकृतिभुताः पुरुषमव्यापन्नेन्द्रियं बलवर्ण सुखोपपन्नमायुषा महतोपपादयन्ति सम्यगेवाचरिता धर्मार्थकामा इव निःश्रेयसेन महता पुरुषमिह वामुष्मिंश्च लोके, विकृतास्त्वेनं महता विपर्ययेणोपपादयन्ति ऋतवस्त्रय इव विकृतिमापन्ना लोकमशुभेनोपघातकाल इति।"

इस महर्षि चरक के पाठ की पदच्छेद युक्त व्याख्या करना, और कविराज श्री अत्रिदेवजी गुप्त विद्यालङ्कार जी ने इसी का भाषानुवाद किया है उस पर अनुमति दें क्या वह ठीक़ है ?

(२) शार्ङ्गधर संहिता पूर्व खण्ड द्वितीय अध्याय :—

"धराम्बुदमानलजल ज्वलनमाकाशमारुतैः।
वाय्वग्निदमानिलैर्भूतद्वयै रसभवः क्रमात् ॥"

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए चरक-सुश्रुतादि ग्रन्थों के भावाथ को देखें—क्या यह श्लोक चरक सुश्रुत के भावों से विरुद्ध है या अनुकूल है।

(३) माधव निदान यक्ष्मा निदान में :—

"ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम्।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥"

इस श्लोक की व्याख्या करें। तथा इस श्लोक में "ज्वरानुबन्धरहितम्" इस शब्द की व्याख्या करें।

वैद्य-बन्धुओं की सेवा में प्रार्थना है कि पूर्वोक्त चरक, शार्ङ्गधर, माधव निदान के इन श्लोकों की व्याख्या आगामी सम्मेलन-पत्रिका में भेजने की कृपा करें।

इससे इस विषय की शङ्कायें दूर होंगी तथा शास्त्रीय विषय पर शङ्कासमाधान का प्रसङ्ग सुचारु रूप से प्रत्येक विद्वान् वैद्य तथा आयुर्वेद में रुचि रखने वाले व्यक्ति के लिए लाभप्रद होगा।

भवदीय

भटिंडा

मुन्शीराम शर्मा आयुर्वेदाचार्य

प्रश्नों का उत्तर

[हमारी विशेष प्रार्थना पर श्री पं० विद्याधर जी विद्यालंकार आयुर्वेद शास्त्री भिषगाचार्य, प्रोफैसर गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज, हैदराबाद ने अपना अमूल्य समय देकर इन प्रश्नों का उत्तर हमें लिख भेजा है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं—सं०]

श्रीमान् वैद्य मुन्शीरामजी ने भटिण्डा से तीन प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर मैं अपनी तुच्छबुद्धि से यहां लिखता हूँ!

(प्रश्न १)

शार्ङ्गधर के २य अध्याय के "धराम्बुद्मानलजल" आदि श्लोक का अर्थ पूछा है तथा चरकादि ग्रन्थों के अनुकूल है वा नहीं, यह पूछा है।

इसका अर्थ करने से पूर्व चरक सूत्र स्थान २६वां अध्याय पहले अच्छी प्रकार से पढ़कर समझ लेना चाहिये तब संगति लगाने में अधिक कठिनता नहीं होगी। वहां पर "तेषां षण्णां रसानां सोमगुणातिरेकान्" इत्यादि सारा पाठ विस्तार से समझना चाहिये। शार्ङ्गधर ने जो लिखा है उस श्लोक का अर्थ नीचे लिखते हैं—

धरा (पृथ्वी) और अम्बु (जल) से मधुर रस उत्पन्न होता है। पृथ्वी और अग्नि से अम्ल रस उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जल और अग्नि से लवणरस, आकाश और वायु से चरपरा या कटु रस, वायु और अग्नि से कड़वा या तिक्तरस, पृथ्वी और वायु से कषाय रस उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार दो-दो महाभूतों से मिलकर छः रसों की उत्पत्ति हुई है। अंशांशीभाव के परिवर्त्तन से इनमें न्यूनाधिक रसता होने से अन्य मत भी ग्राह्य हो सकते हैं। हमें तो यह चरक मत से प्रतिकूल जान नहीं पड़ता। इसकी सूक्ष्मता तो योग से प्राप्त हुई दिव्यदृष्टि से ही या दिव्यरसना से ही जानी जा सकती है। हमारे जैसे प्राणी इसे केवल सूक्ष्म बुद्धि से ही जानने का श्रम कर सकते हैं। यह विषय प्रत्यक्ष होना कठिन प्रतीत होता है। हां नई साइंस इसे कभी शायद प्रत्यक्ष करके दिखा सके। अभी तक वे भी इसकी कोई मैशीन नहीं बना सके हैं।

(प्रश्न २)

आपने दूसरा प्रश्न माधव निदान यक्ष्मा में पढ़े हुए "ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम्। उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥ इसका अर्थ और "ज्वरानुबंध रहितं" की व्याख्या पूछी है। हमारा उत्तर इस प्रकार है—

श्लोक का अर्थ—"ज्वर का सम्बन्ध यदि सर्वथा न हो, रोगी बलवान हो तथा औषधक्रिया को सह सकता हो, जितेन्द्रिय हो, जाठराग्नि दीप्त हो, मांस सूख न गया हो तो उस यक्ष्मा रोगी की चिकित्सा करनी चाहिये॥" यदि ज्वर का सम्बन्ध रोगी से हो तो चिकित्सा न करे, क्योंकि वह नहीं बचेगा।

यह तो माधव पंडित के श्लोक का अर्थ हुआ। परन्तु यह श्लोक प्रक्षिप्त है क्योंकि यह श्लोक न तो चरक का है न सुश्रुत का और न ही वाग्भट का है। यह केवल भाव प्रकाश में है। वहीं से माधव निदान में लिया गया है। राजयक्ष्मा में ज्वर होता ही है। ज्वर के बिना यक्ष्मा नहीं होता। यदि माधव निदान का यह श्लोक ठीक मानें तो ज्वर ग्रस्त राजयक्ष्मा वाले रोगी की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये चरक में स्पष्ट लिखा है— "क्रोधो यक्ष्मा ज्वरो रोग एकोऽर्थोदुःखसंज्ञितः ॥ चरक अध्याय ८ श्लोक ११ देखो। यक्ष्मा का नाम ही ज्वर है। ज्वर का सम्बन्ध तो राजयक्ष्मा में अवश्यंभावी है। हां,

दोषभेद से वह न्यूनाधिक हो सकता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट्टादि सभी ने लिखा है—"सर्वैरर्धैस्त्रिभिर्वापि लिंगैर्मांसबलक्षये। युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा॥ चरक अ० ८। श्लोक ८६। अर्थात् ज्वरादि ११ लक्षण, या छः लक्षण या तीन लक्षण पूरे ज़ोर के प्रकट हो रहे हों परन्तु मांस और बल क्षीण न हुए हों तो राजयक्ष्मा के रोगी की चिकित्सा अवश्य ही करनी चाहिये। वह साध्य है, अच्छा हो जायेगा। परन्तु यदि मांस और बल क्षीण हो चुके हों तो फिर ११,६, या ३ लक्षण यदि पूरे ज़ोर वाले हों या न हों तो उसकी चिकित्सा न करे। इसीलिये चरक ने निदान स्थान के छठे अध्याय के अन्त में यह स्पष्ट कर दिया है "तत्रापरिक्षीणमांसशोणितो बलवान् जातारिष्टः सर्वैरपिशोषलिङ्गैरुपद्रुतः साध्योज्ञेयः," इत्यादि। अर्थात् यदि मांस तथा खून क्षीण न हो गये हों, रोगी बलवान हो अर्थात् बल से भी क्षीण न हो गया हो तो चाहे सब अरिष्ट लक्षण उत्पन्न हो गये हों तो भी यक्ष्मा का रोगी साध्य होता है अर्थात् अच्छा हो सकता है। इसे प्रत्यक्ष अनुभव करके भी हमने देखा है, इसीलिये हमने "योगरत्नाकर" की टीका करते हुए "परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः" इस यक्ष्मा के श्लोक का अर्थ यह किया था कि १००० दिन के बाद भी राजयक्ष्मा का रोगी जीता रहता है। अभिप्राय यही है कि ११, ६, ३ लक्षणों में सर्वत्र ज्वर एक आवश्यक लक्षण है तो भी उसकी चिकित्सा हो सकती है, यह सभी ऋषियों का मत है, हां मांसबल उस का क्षीण न हो गया हो।

ऐसी अवस्था में माधव पण्डित तथा भावमिश्र का "ज्वरानुबंधरहितम्" यह पाठ शुद्ध नहीं हो सकता। यह पाठ अनार्ष, असंगत, असंभाव्य तथा अव्यवहार्य है अतएव परित्याज्य है। संभव है किसी हस्तलेख के भावप्रकाश में यह पाठ प्रमादवश कोई लेखक लिख गया हो उसका बाद में प्रचलन हो गया हो। माधवजी ने भी वहीं से ले लिया हो। वास्तव में जो पाठ है वह नीचे लिखता हूँ—"महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम्। शूनमुष्कोदरंचैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत्॥ उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नवम्॥" देखिये सुश्रुत उत्तरतंत्र राजयक्ष्माप्रकरण २९,३० श्लोक। चरक ने भी यही पाठ माना है। वाग्भट्ट में भी यही पाठ है और योगरत्नाकर ने भी ऐसा ही पाठ संग्रह किया है। इसलिये माधव निदान का पाठ हमें तो असंगत अतएव अग्राह्य प्रतीत होता है। आगे विद्वज्जन स्वयं विचार कर सकते हैं। यहां "नरम्" तथा "नवम्" का पाठ भी विचारणीय है।

चौखम्बा संस्कृत सिरीज के सन् १९३५ ई० में छपे भाव प्रकाश में "ज्वरानुबन्धरहितम्" पाठ है परन्तु उसके टीकाकार पं० ब्रह्मशंकर शर्मा ने "ज्वरानुबन्धरहितं" पर एक अक्षर भी नहीं लिखा हां "आत्मवन्तं" का अर्थ "यत्नवन्तं धृतिमन्तं वा" अवश्य किया है जिसका वास्तविक अर्थ "जितेन्द्रियम्" है।

यह भी संभव है कि "ज्वरानुबंधरहितम्" का शुद्ध पाठ "ज्वरानुबंधसहितम्"

हो और लेखक के प्रसाद से 'स' के स्थान पर 'र' हो गया हो। इस पाठ में यह अभिप्राय होगा कि यक्ष्मा का वह रोगी साध्य एवं चिकित्स्य है जिसको ज्वर तो रहता हो पर उसके मांस और बल क्षीण न हुए हों, आदि। ऐसा अर्थ करने पर अन्य ग्रन्थों के लेख ष तात्पर्य से संगति बैठ जायगी और आक्षेप या शंका का स्थान न रहेगा। 'नरम्' के स्थान पर भी 'नवम्' पाठ अधिक उपयुक्त है।

(प्रश्न ३)

आपने तीसरे प्रश्न में चरक सूत्र स्थान १२ अध्याय के—"तच्छ्रुत्वा काप्यवचो भगवान् पुनर्वसुरात्रेय उवाच—सर्वएव०" इत्यादि पाठ की व्याख्या के लिये कहा है। इस विषय में हमारा निवेदन यही है कि आप श्री जयदेवजी विद्यालंकार आयुर्वेदाचार्य-कृत चरक के अनुवाद में इसका अर्थ देख लीजिये, जो यथाथ अनुवाद है। श्री अत्रिदेव जी गुप्त विद्यालंकार ने जो अर्थ किया है वह पुस्तक हमारे पास नहीं, न ही कहीं पास में प्राप्य है। अतएव हम इस विषय में कुछ भी मतामत प्रकट नहीं कर सकते॥

अन्त में हमारा निवेदन तथा प्रार्थना यह भी है कि विद्वान गुरुजनों से ऐसे पाठ पूछ कर उस पर सबको पूरा-पूरा विचार करना चाहिये। पल्लवग्राहिता से काम नहीं चला करता। पत्रों में सब बातों का न तो उत्तर ही दिया जा सकता है न उनके पास इतना स्थान ही सुरक्षित होता है। हमने यथामति उत्तर देने का यत्न किया है। विद्वज्जन इन विषयों पर अपने विचार प्रकट कर सकते हैं।

—०—

प्र० का० फोन नं० ५६३   स्थापित १८६२   तार—'इन्जेकशन' झांसी

देशमान्य—मिश्रा—आयुर्वेदिक इन्जेक्शन—भारतीय

द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेक्शन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेदिक इन्जेकशन विज्ञान पुस्तक, षष्ठ संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ॥=) नियमादि मुफ्त मंगायें।

सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २॥) पो० ।=)।

सर्वप्रथम आविष्कर्ता एवं एक मात्र निर्माता—

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू० पी०

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

स्थायी एवं कार्यकारिणी समिति के विशेषाधिवेशन का कार्य-विवरण

स्थान—महानन्द मिशन डिग्री कालेज, ग़ाज़ियाबाद।

समय – ता० ११—८—५१ दिन शनिवार, २॥ बजे अपराह्न से।

उपस्थिति—सर्वश्री शिवशर्मा (बम्बई), रामप्रसाद (पटियाला), ठाकुरदत्त शर्मा (देहरादून), कुन्दनलाल खेतल (देहली), धर्मस्वरूप रतूड़ी (देहरादून), प्रभुदयाल जोशी (देहली), भारतभूषण (हिसार), महाराव वृजेन्द्र विक्रमसिंह (मेरठ), सत्यव्रत प्रेमी (मेरठ), शिवनाथ शर्मा (देहली), दौलतराम शर्मा (देहली), नाथूराम मौद्गल्य (देहली), दयानिधि शर्मा (मेरठ), जगदीशप्रसाद शर्मा (देहली), शान्तिप्रसाद जैन (देहली), नारायणदत्त वैद्य (देहली), केशवप्रसाद आत्रेय (देहली), कैलाशचन्द्र अग्रवाल (देहली), प्रयागदत्त शास्त्री (आगरा), कृपाशङ्कर शास्त्री (ग़ाज़ियाबाद), ज्ञानचन्द दुआ (नई देहली), खुशवक्तराय भारद्वाज (शहादरा), स्वामी चेतनानन्द (देहली), ऋषिराम शास्त्री (अलवर), शिवचरणदत्त तिवारी (खेकड़ा), अम्बिकाचरण दीक्षित (आगरा), मोहनलाल शास्त्री (देहली), कृष्णगोपाल शास्त्री (कोटा), स्वामी गिरधरानन्द (डालमियां दादरी), स्वामी रामदास (देहली), देवराज मिश्र (अमृतसर), रामप्रताप अग्रवाल (देहली), परमानन्द तनेजा (देहली), दयानन्द राजपाल (नई देहली), दयानन्द शर्मा (देहली), नानकचन्द शर्मा (देहली), किशोरीलाल पुष्करणा (जालन्धर), गोविन्दसहायदत्त (देहली), प्रकाशनाथ तिवारी (जालन्धर). मदनलाल पुष्करणा (सूरजगढ़), हरिश्चरण (देहली), रामसिंह शर्मा (दौराला), टेकचन्द (नई देहली), शिवशर्मा द्विवेदी (अजमेर), नित्यानन्द आचार्य (पिलानी), कृष्णानन्द मिश्र (देवास), सुरेन्द्रमोहन आचार्य (देहली), सुदर्शनाचार्य (करनाल), रामस्वरूप कौशिक (जीरा), नवीनचन्द्र भारद्वाज (जगराओं). शिवराम (सरहिन्द), ए० पी० गौतम (उझान) किशोरीलाल शर्मा (फतहगढ़), महेशदत्त शर्मा (सरहिन्द), रामप्रताप शर्मा (सरहिन्द), बन्सरीलाल शर्मा (देहली), भुवनचन्द्र जोशी (देहली), चन्द्रकान्त दीक्षित (देहली), जीवानन्द शास्त्री (दौराला), दरियाईमल (नई देहली), लखवीरसिंह (देहली), रामस्वरुप चक्रवर्ती (देहली), रौनकराम लखनपाल (जालन्धर), सन्तसिंह (जालन्धर), ज्ञानी हरनामसिंह (बक्सर, मेरठ) पूर्णानन्द शर्मा (देहली), सत्यपाल (नई देहली), रामचन्द्र त्रिपाठी (देहली), अमृतलाल हंस (देहली), हरिकृष्ण वत्स (देहली), रामलाल मलहोत्रा (नई देहली), खुशालचन्द शर्मा (नई देहली), आशुतोष मजुमदार (नई देहली), माधवप्रसाद (जोधपुर), शिवदत्त शर्मा (परीक्षितगढ़, मेरठ), हीरालाल शास्त्री (फर्रुखाबाद), ब्रह्मस्वरूप (देहली), हंसराज वैद्य (देहली), रामदास (देहली), केदारनाथ (मोदीनगर), हरिदत्त शर्मा (मोदीनगर), बाबूराम मिश्र (हापुड़), घनानन्द पन्त (देहली), सरोजनी वैद्या (मेरठ), हरनाथ त्रिपाठी (कानपुर), रामप्यारे अवस्थी (कानपुर), जगन्नाथप्रसाद

शुक्ल (प्रयाग), सीतावर पन्त (नैनीताल), मुन्शीराम शर्मा (भटिण्डा), दुर्गाप्रसाद पाठ (विवार, हिसार), उपेन्द्रनाथदास (देहली), रामगोपाल शास्त्री (देहली), देशराज (देहली), हरिदत्त शास्त्री (जालन्धर), वैद्यनाथ सरकार (देहली), गणेशदत्त (मेरठ), बद्रीविशाल त्रिपाठी (कानपुर), मंगलदास स्वामी (जयपुर), ओंकारप्रसाद शर्मा (देहली), नन्दकिशोर पाठक (मथुरा), जयरामदास स्वामी (जयपुर), हरिरन्जन मजुमदार (बनारस), वि० सुब्रह्मण्यम् (श्री रंगम्), हरगोविन्द शर्मा (देहली), हरवंशलाल चोपड़ा (जालन्धर), राधाकृष्ण उपाध्याय (देहली), नित्यानन्द वर्मा (देहली), सोमदत्त (मेरठ), मोहनकृष्ण शर्मा (भिवानी), रामप्रसाद दीक्षि (सरदार शहर), स्वामी रामप्रकाश (कनखल), रामेश्वरसिंह कंवर (जालन्धर), यदुगोपाल गोस्वामी (देहली), लक्ष्मीनारायण मिश्र (मेरठ), स्वामी ईश्वरानन्द (बरनाला), रामप्रसाद शास्त्री (धुरी, बरनाला), मखनसिंह (देहली)।

विशेष :—उपरिलिखित नामों के अतिरिक्त स्थायी समिति की उपस्थिति के रजिस्टर प कुछ ऐसे महानुभावों ने भी हस्ताक्षर कर दिए थे जो कि स्थायी समिति के सदस्य नहीं थे, उन नाम यहां प्रकाशित नहीं किए जा रहे हैं।

कार्य विवरण—वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ

१. गताधिवेशन कार्य विवरण पढ़ा गया तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

२. तपसी बाबा, श्री डा० एन० एस० परांजपे, श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति तथा वै बनारसीदास कानपुर के असामयिक देहावसान पर निम्नांकित प्रस्ताव सभा ने खड़े होकर स्वीका किया एवं दिवंगत आत्माओं की पुण्यस्मृति में एक मिनट तक मौन धारण किया।

"निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति का यह अधिवेशन आयुर्वेद स्तम्भ वैद्य श्री तपसी बाबा डा० एन० एस० परांजपे, श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति, भूतपू स्वास्थ्य मन्त्रिणी, मद्रास राज्य, तथा वैद्य श्री बनारसीदास (कानपुर) के असामयिक देहावसा पर हार्दिक शोक प्रकट करता है तथा भगवान् से प्रार्थना करता है कि उनकी दिवंगत आत्मा सद्गति एवं शान्ति तथा उनके परिवार को इस महान् शोक को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

३. स्थायी समिति के जितने सदस्य महानुभावों की ओर से सम्मतिपत्र प्राप्त हु उनकी नामावली निम्नांकित है :—

नामावली—सर्व श्री वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य (अलमोड़ा), प्रतापसिंह (उदयपुर) हरिवक्श जोशी (कलकत्ता), ब्रह्मदत्त शर्मा (भुसावल), सत्यनारायण मिश्र (कानपुर), कृष्णान (कालेड़ा कृष्णगोपाल), विश्वम्भरदत्त शर्मा (मथुरा), गंगाधर शर्मा (सभापति विहार प्रान्ती वैद्य सभा, गया), वासुदेव शास्त्री (उज्जैन), बाघा जी के सोलंकी (मुन्द्रा), चुन्नीलाल रेवाशं (बड़ौदा), वंशीधर शर्मा (सदाबाद), दीनदयालु तिवारी (नागपुर), कृष्णपद भट्टाचार्य (झांसी महाशंकर नरोत्तम भट्ट (सभापति, निखिल कच्छ वैद्य महासभा, मुन्द्रा), हरिदास शास्त्री (जोधपुर सूर्यकान्त शर्मा (भगवतगढ़), मनोहरलाल (संगरूर), नाथूसिंह (कालेड़ा कृष्णगोपाल), स्वा हरिप्रकाश (धुरी), नारायणलाल तिवारी (मथुरा), कालिदास चट्टोपाध्याय (कलकत्ता), मोती

शर्मा (लोहसिम्बली), पन्नालाल राठी (पुरलिया), रा० स० वेदपाठक (बम्बई), जनार्दन शर्मा (रायगढ़), श्रीराम शर्मा (बम्बई), शालिग्राम (धुरी), मणिशंकर लचमीशंकर (नलिया), जगतसिंह शर्मा (धुरी),बिहारीलाल (संगरूर), रामदयाल त्रिपाठी (हरदा), शिवजी जेठाभाई शाह (मांडवी), दामोदराचार्य स्वामी (अहमदाबाद), हनुमानदास स्वामी (नापासर), जी० जी० वामनाचार्य (कोल्हापुर), दत्तात्रेय सांडू (बम्बई), सिद्धिशंकर शर्मा (शाहपुरा), पूर्णानन्द शास्त्री (श्री माधोपुर), एम० वैंकट शास्त्री (वेजवाड़ा), नाथूराम किशनदास (बुरहानपुर), ब्रजचन्द्र शर्मा (सतना), मदनलाल शिवहरे (संगरूर), शिवबालक मिश्र (हूंगोहटा), घासीराम (देवास), रामस्वरूप (मिमसा), बालमणि मिश्र (मौदहा), शम्भूनाथ पाण्डेय (कानपुर), जयानन्दनारायण मिश्र भट्टूरिया (हरिद्वार)।

४. ता० २९-४-५१ से ता० १०-८-५१ तक प्राप्त शुल्क सदस्यताएं निम्न प्रकार स्वीकार हुईं :—

आजीवन सदस्य

१. वैद्य श्री प्रेमचन्द शर्मा, सालवान
२. वैद्य श्री श्रीदयाल, देहली।
३. ,, दिनेशचन्द्र शर्मा, अजमेर।
४. ,, लखवीरसिंह, देहली।
५. ,, बी० डी० सुगन्ध, नई देहली।
६. ,, चक्रपाणि महन्त, देहली।
७. ,, प्रभुदयाल जोशी, देहली।
८. ,, बाबूराम मिश्र, हापुड़।
९. ,, ओंकार वैद्यरत्न, देहली।
१०. ,, शिवचरणदत्त तिवारी, खेकड़ा।
११. ,, नरेन्द्र शास्त्री, शामली।
१२. ,, गणपतिसिंह वर्मा, देहली।
१३. ,, रामप्रकाश स्वामी, कनखल।
१४. ,, सागरदत्त शर्मा, हरिद्वार।
१५. ,, हरिश्चन्द्र शर्मा मिश्र, कनखल।
१६. ,, रामसिंह शर्मा, दौराला।
१७. ,, देशराज कपूर, नई देहली।
१८. ,, विद्याधर, देहली शहादरा।
१९. ,, संतोषकुमारी, देहली शहादरा।
२०. ,, यशपाल, नई देहली।
२१. ,, नेत्रपाल शास्त्री, नई देहली।
२२. ,, दौलतराम शर्मा, देहली।
२३. ,, बलदेवराज, देहली।
२४. ,, खुशालचन्द्र, देहली।
२५. ,, प्रभुशरण जोशी, देहली।

मान्य सदस्य—४६ स्वीकृत हुए।

५. क. श्री तिलकराम शर्मा के विषय में स्थानिक संघ की ता० १० तथा ३० मई १९५१ की बैठकों का कार्य विवरण पढ़ा गया तथा निश्चय हुआ कि उनका विषय अन्तिम निर्णय के लिए श्री महासम्मेलन प्रधानमन्त्री जी को सौंप दिया जावे।

ख. स्थानिक संघ की ता० १५ जून १९५१ की बैठक का निम्नांकित कार्य विवरण पढ़ा गया तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ :—

कार्य विवरण—(अ) निश्चय हुआ कि इस वर्ष के विद्यापीठ के आधुनिक वेतन व्यय में १६५ रु० के व्यय की वृद्धि कर दी जावे।

(आ) निश्चय हुआ कि कार्यालय कर्मचारियों के निम्नांकित वेतनक्रम ग्रेड प्रयोग में लाकर उन्हें उन्नति दी जावे :—

वेतनक्रम (ग्रेड) :—

क. कार्यालयाध्यक्ष—हिन्दी इङ्गलिश बी० ए०, संस्कृत में शास्त्री अथवा तत्समान योग्यता, कार्यालय के कार्य का अनुभव ।

वेतन १५० रु०, १० रु०, ३०० रु० मासिक ।

ख. एकाउण्टैन्ट—शीघ्रलिपि लेखक-हिंदी-अंग्रेज़ी, टाइपिस्ट हिंदी-अंग्रेज़ी तथा एकाउन्ट्स।

वेतन १२५ रु०, ७ रु०, २५० रु० मासिक ।

ग. सीनियर क्लर्क—शास्त्री या तत्सम योग्यता, हिन्दी साहित्यरत्न तथा अंग्रेज़ी का अच्छा ज्ञान ।

वेतन १०० रु० ५ रु०, १७५ रु० मासिक ।

घ. जूनियर क्लर्क—हिन्दी, अंग्रेज़ी तथा कार्यालय में कार्य करने का ज्ञान, एकाउन्ट्स रखने का ज्ञान हो तो अच्छा है ।

वेतन ७५ रु०, ५ रु०, १५० रु० मासिक ।

च. वैतनिक सम्पादक—जर्नलिज्म का ज्ञान, हिन्दी अंग्रेज़ी तथा संस्कृत का ज्ञान ।

वेतन १०० रु०, ७ रु०, २५० रु० मासिक ।

छ. चपड़ासी—वेतन ३५ रु०, २ रु०, ६० रु० मासिक।

६. निश्चय हुआ कि महंगाई भत्ते में वृद्ध्यर्थ कार्यालय कर्मचारियों तथा भीमसिंह चपड़ासी के प्रार्थनापत्र उचित निर्णयार्थ स्थानिक संघ को सौंप दिए जावें ।

७. अतिरिक्त आनुमानिक व्यय—

निश्चय हुआ कि निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के सन् १९५० तथा ५१ वर्षीय आनुमानिक व्ययों में निम्न प्रकार वृद्धि कर दी जावे :—

मुद्रणालय तथा लेखन सामग्री	६०० रु०
वेतन व्यय	५०० रु०
डाक तथा तार व्यय	२०० रु०
केन्द्र तथा परीक्षा व्यय	२०० रु०
पारसल व्यय	१०० रु०
बिजली व्यय	२५ रु०

अतिरिक्त बजट की स्वीकृति के पश्चात् श्री प्रधानमन्त्रीजी ने कहा कि स्थायी समिति के गताधिवेशन के निश्चयानुसार नियमावली संशोधन में स्थायी समिति की अधिकार प्राप्ति के विषय पर दो बार एशोसियेशन्ज तथा सर्वोच्च न्यायालय के दो एडवोकेट्स से सम्मति प्राप्त की गई है । उक्त सम्मतियों पर विचार के पश्चात् वर्तमान विशेषाधिवेशन का विशेष विषय

"पण्डित कमेटी रिपोर्ट" विचारार्थ ले लिया जावे। कुछ सदस्यों ने कहा कि पण्डित कमेटी रिपोर्ट पर पहले विचार प्रारम्भ करना उपयुक्त है। इस पर मत लिए गए। पण्डित कमेटी रिपोर्ट पर पहले विचार करने के पक्ष में ५८ मत तथा नियमावली का विषय पहले ले लेने के पक्ष में ४९ मत आए जिसके फलस्वरूप पण्डित कमेटी रिपोर्ट पर भाषण प्रारम्भ हुए।

प्रेस कांफ्रेंस के लिए निश्चित समय के आ जाने के कारण पण्डित कमेटी रिपोर्ट के शेष विचार विषय-निर्वाचिनी समिति के लिए छोड़ दिया गया तथा सायंकाल ५ बजे के लगभग स्थायी समिति का अधिवेशन विसर्जित हुआ।

गुरुदत्त
प्रधानमन्त्री।

विषय निर्वाचिनी की बैठक

नि० भा० आयुर्वेद महा सम्मेलन के विशेषाधिवेशन की विषय निर्वाचिनी समिति तथा स्थायी समिति का सम्मिलित अधिवेशन ता १२ सितम्बर १९५१ प्रातः ९॥ बजे वैद्यरत्न श्री पं० शिव शर्मा जी की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ।

पण्डित कमेटी की रिपोर्ट के सम्बन्ध में विभिन्न वैद्य महानुभावों ने अपने विचार प्रकट किये। वैद्य श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कहा कि महासम्मेलन के अन्तर्गत एक समिति बनाई जाय जो आयुर्वेद में आत्मसात करने योग्य वस्तुओं की खोज करे। आचार्य नित्यानन्द सारस्वत ने कहा कि पाठ्यक्रम पुस्तकों में.कुछ परिवर्तन आवश्यक है ताकि जो चीजें हमारे शास्त्रों से लुप्त हो गई हैं उन्हें पुनः सम्मिलित किया जा सके। वैद्य श्री रघुवीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि वैद्य समाज को आगामी चुनाव में सक्रिय भाग लेना चाहिये तथा उन्हीं को मत देना चाहिये जो आयुर्वेदोन्नति के लिए वैद्य समाज को वचन दें। वैद्य ठाकुरदत्त शर्मा 'अमृत धारा' देहरादून ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। सर्व श्री वैद्य बद्रीविशाल त्रिपाठी, जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, केशव प्रसाद आत्रेय, स्वामी मंगलदास, श्री सीताराम भागवत, केदारनाथ, काशीराम, वेदव्रत शर्मा, श्याम सुन्दर, रघुवीर शरण शर्मा, किशोरी लाल, ओम्प्रकाश टंडन, चन्द्रशेखर शास्त्री, भारत भूषण, श्रीमती सरोजिनी वैद्या आदि महानुभावों ने अपने विचार प्रकट किये। अन्त में, इन प्रकट किये गये विचारों के आधार पर प्रस्ताव की समुचित रूप रेखा बनाने के लिए निम्नलिखित वैद्य महानुभावों की एक विधेयक समिति नियुक्त की गई :—

सर्व श्री वैद्य शिवशर्मा, गुरुदत्त, केशवप्रसाद आत्रेय, स्वामी मंगलदास, स्वामी जयराम दास, हरिदत्त शास्त्री, बद्रीविशाल त्रिपाठी, और गणेश प्रसाद सारस्वत। इस उप समिति द्वारा तैयार किया गया प्रस्ताव सायंकालीन खुले अधिवेशन में उपस्थित किया गया जिसका विवरण गत अंक में दिया जा चुका है।

—o—

[४५६ पृष्ठ का शेष]

केले में पुष्कल मात्रा में खाद्योज (विटामिन) हैं जिनमें अ, ब, स, द, ई विशेष रूप में हैं। मोसम्बी में स खाद्योज विशेष रूप से होता है। केले द्वारा मोसम्बी तुल्य ही 'स' खाद्योज मि सकता है। केले में 'अ' खाद्योज प्रभूत होता है जो दांतों के लिए लाभकारी है।

केले में उष्ण तत्त्व (केलोरी) उत्पादन शक्ति का प्राचुर्य है। १ पौं० केले में ४०० उष्ण तत्त्व (केलोरी) और बड़े केले में १०० उष्ण तत्त्व उत्पन्न करने की शक्ति है। पक्के के में १/४ भाग खांड होती है। मधुप्रमेह के रोगी के लिए केला अत्युपयोगी है। कच्चे केले में भाग स्टार्च होता है।

कीटाणु आक्रमण और धूल-मिट्टी से रक्षा करने के लिए प्रकृति ने केले के ऊपर मोटी छा लगा दी है।

प्राचीन आर्य केले का अनवरत और प्रभूत प्रयोग करते थे। भारत में आये एक विदेशी यात्री ने इसे "स्वर्ग का अँगूर" बताया है। इसकी उपयोगिता को जानकर ही यूरुप, अमरीका निवासी अपने आहार में इसे प्रमुख स्थान दे रहे हैं।

'Standard' आदर्श आयुर्वैदिक औषधियों
के लिए :-

प्रताप
अयुर्वैदिक
फार्मेसी
लिमिटिड
अमृतसर
को
सदा समरण रक्खें

उत्तरीय भारत की केवल यही एक फार्मेसी है जिसमें ठीक विधिवत आयुर्वैदिक रस, रसायन, भस्में आसव, अरिष्ट, चूर्ण, गुटिका, अवलेह, और घृत तैलादि समस्त औषधियां पूरे परिश्रम मेहनत और ईमानदारी से तय्यार की जाती हैं।

सूचिका भरण
प्रताप आयुर्वैदिक इन्जैकशन

फार्मेसी ने वर्षों के परिश्रम अनुसन्धान तथा भारी व्यय से आयुर्वैदिक इन्जैक्शन तय्यार किये हैं, जो शत प्रतिशत सफल सिद्ध हो रहे हैं।

हर प्रकार की आयुर्वैदिक औषधियों और इन्जैक्शनों का सूचीपत्र मंगाने का पता :-

प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड.
अमृतसर.

ब्रांचें :- ① आर्य्य समाज रोड करोल बाग देहली.
② तलाब बाज़ार लुधियाना.

कामावेग के विकारों की सम्प्राप्ति

(लेखक डा० बलदेव शर्मा आयुर्वेदाचार्य, शास्त्री, बी० ए०, एम० एन० एम० एस० (बर्लिन), एम० आई० पी० ए० (बियाना), ५२ मालरोड, महू (मध्य भारत)

(पत्रिका के गत मास के अंक में कामावेग की विकृति के तीन कारण बताये गये थे। अब उसी प्रसंग में, आगामी कारणों का वर्णन किया जाता है—सं०)

: ३ :

स्त्री दोष दर्शन

यह चौथा कारण स्त्री के प्रति किसी भी कारण से अरुचि या घृणा अथवा यूं कहिये स्त्री में दोषों का दिखाई देना है, जो ज्ञात या अज्ञात रूप से आजकल अधिकांश गृहस्थों में अपना प्रभाव रखता है। चिकित्सक यह बात ध्यान में रखें कि प्रत्येक व्यक्ति, जो काम शक्ति की निर्बलता से पीड़ित उनके पास आये, उसके सम्बन्ध में सबसे पहिले यही जानकारी उन्हें प्राप्त करनी चाहिये कि वह व्यक्ति अपनी स्त्री को पूर्ण रूप से पसन्द करता है अथवा उसे कई प्रकार के दोष अपनी स्त्री में खटकते हैं, उसे यथार्थ प्रेम है या प्रेम के नीचे छिपी हुई घृणा, विद्वेष, विरक्ति इत्यादि हैं।

इसी प्रकार यदि पत्नी के माता पिता या सम्बन्धियों से पुरुष का किसी कारणवश मन मुटाव हो जावे तो उसे अपनी पत्नी के लिये भी कुछ न कुछ विद्वेष की भावना का अनुभव होने लगता है। स्वयं पत्नी और पति में भी यदि कोई झगड़ा हो जाये तो उसके कारण भी एक दूसरे के लिये अरुचि सी उत्पन्न हो सकती है, चाहे वह कुछ ही समय के लिये हो। इसी प्रकार पुरुष को यदि अपनी स्त्री के प्रति दुराचार का सन्देह हो जाय अथवा वास्तव में उसे इस बारे में जानकारी प्राप्त हो जावे, तो घृणा इतनी प्रबल हो सकती है कि, स्त्री की मृत्यु की इच्छा का अंकुर मन में जन्म ले लेता है। यहां तक कि बच्चों की मृत्यु की भी कामना मन में उत्पन्न हो जाती है।

आदर्श पति-पत्नी के लिये यह भी आवश्यक है कि दोनों एक दूसरे के अभिमान को ऊंचा बनाये रखें, विशेष कर पारस्परिक योग्यता, व्यक्तित्व तथा शक्ति के बारे में।

स्त्री पुरुष में आत्मग्लानि की भावना भी निर्बलता उत्पादक है।

अरसज्ञत्व—यह पांचवा कारण है। इस का अर्थ है प्रणय के ज्ञान की शून्यता। मूल में शब्द हैं "नारियों के अरसज्ञत्व होने से"। वस्तुतः दोनों का रसज्ञ होना आवश्यक है।

"अरसज्ञत्व" अर्थात् विलास में रस का न आना, एक मानसिक विकार ही समझा जाना चाहिये, क्योंकि इस के मूल में, जो कारण प्रभाव करते रहते हैं, वे व्यक्ति-व्यक्ति के मानस के गहरे स्थलों में घर किये होते हैं। उनका अनुशीलन भी शेष कारणों की तरह आवश्यक है।

अभिचार—इसका अर्थ है प्रेम अथवा आसक्ति का अन्यत्र होना। यह भी एक ऐसा कारण है, जो कभी-कभी शक्ति हीन पुरुषों के अथवा विलास रस हीन स्त्रियों के मन पर अज्ञात रूप से अपना प्रभाव कर सकता है। साथ ही यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण कारण है, इसके विषय में अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

असेवन—यह सातवां कारण भी ऐसा कारण है, जिसका मानस पर कुंठनकारी प्रभाव होता है। असेवन का अर्थ मैथुन का न करना है, जो स्त्री या पुरुष चिरकाल तक मैथुन न करे। उसकी मैथुन के लिये इच्छा या शक्ति कुण्ठित हो जाती है, ऐसा स्वाभाविक ही प्रतीत होता है।

यहां ब्रह्मचर्य की महिमा का प्रश्न हमारे सामने आता है। हमारे पूर्वजों ने ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में इतना कुछ कहा कि हम ब्रह्मचर्य को किसी प्रकार की भी हानि करने वाला नहीं मान सकते। परन्तु पाठक सहज ही में इस शंका का उन्मूलन कर सकते हैं, यदि वे ब्रह्मचर्य के आध्यात्मिक प्रभाव को अन्य प्रभावों से पृथक् कर इस प्रश्न पर ध्यान दें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आध्यात्मिक शान्ति और उन्नति की साधना करने वालों के लिये ब्रह्मचर्य एक अमोघ शस्त्र है। विषयों की वासना को निर्बीज कर देना, मिटा देना, यही ब्रह्मचर्य साधकों का ध्येय होता है, तो फिर उससे मानस की इच्छा कुण्ठित हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य हो सकता है, और इच्छा के नाश होने से शक्ति का भी नाश अवश्यम्भावी है।

इसलिये हमे यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्मचर्य या वैसे ही मैथुन के चिरकाल तक न करने से, मानस पर ऐसा प्रभाव अवश्य होता है, जो मैथुन शक्ति को कुण्ठित कर देता है। जो तीन रूप धारण कर सकता है, क्योंकि पूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना में और किसी अन्य कारणवश मैथुन से वंचित रहने में अथवा मैथुन न करने में बड़ा अन्तर है।

१. एक प्रभाव तो व्यक्ति के मन से इस वासना को उन्मूलन कर देने वाला हो सकता है, वासना के अभाव में प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती, न रुचि, न रस, न शक्ति का उदय।

२. दूसरे प्रकार के प्रभाव में व्यक्ति की आसक्ति किसी स्वचित्रित काल्पनिक मूर्त्तियों पर केन्द्रित हो जाती है, जिनका वास्तविक रूप में फलित होना सम्भव ही नहीं होता, यह तब होता है, जब उपयुक्त विधि से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया जाता, तथा विवशतावश मैथुन का तो परित्याग किया जाता है, परन्तु मानसिक चिन्तन अथवा हस्त मैथुन इत्यादि का परित्याग नहीं हो सकता।

(३) जब मनुष्य के मन में ऐसी इच्छायें ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से निवास कर रही हों, जिनकी पूर्त्ति न हो, तो उन से संतप्त मन विवश होकर कल्पना की सहायता से ही ऐसी परिस्थितियों और व्यक्तियों का चिन्तन करने में लगा रहता है, जिन से उन इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है। यह मानसिक चिन्तन तथा काल्पनिक चित्रण ही ऐसे व्यक्ति के लिये एक मात्र सन्तोष का साधन रह जाता है। परिणाम यह होता है कि समय बीतने पर वह उन काल्पनिक दृश्यों और मूर्तियों का ही उपासक बन जाता है, जिनका वह चिरकाल से चिन्तन करता आया है। उसको उनसे इतना लगाव हो जाता है कि वह उनका चिन्तन इसी प्रकार करने लग पड़ता है, जैसे वह वास्तविक हो; अर्थात् काल्पनिक नहीं। उन काल्पनिक प्रतिमाओं के मनोवांछित उत्कर्ष तथा सौंदर्य के सामने वास्तविक संसार की मूर्तियों तथा प्रणय परिस्थितियां, उसे नीरस और कुरूप दिखाई देती हैं, जहां वह अपनी कल्पना में किसी रोक टोक के बिना उत्तम से उत्तम, कमनीय से कमनीय, प्रणय

(शेष पृष्ठ ४५५ पर)

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा हैं। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हज़ारों रुपये का काम देता है । व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के निरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हज़ार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसी उत्तम पुस्तक दूसरी नहीं है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।।।), डाक खर्च ।≈), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० ऐजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

विज्ञान और भारत

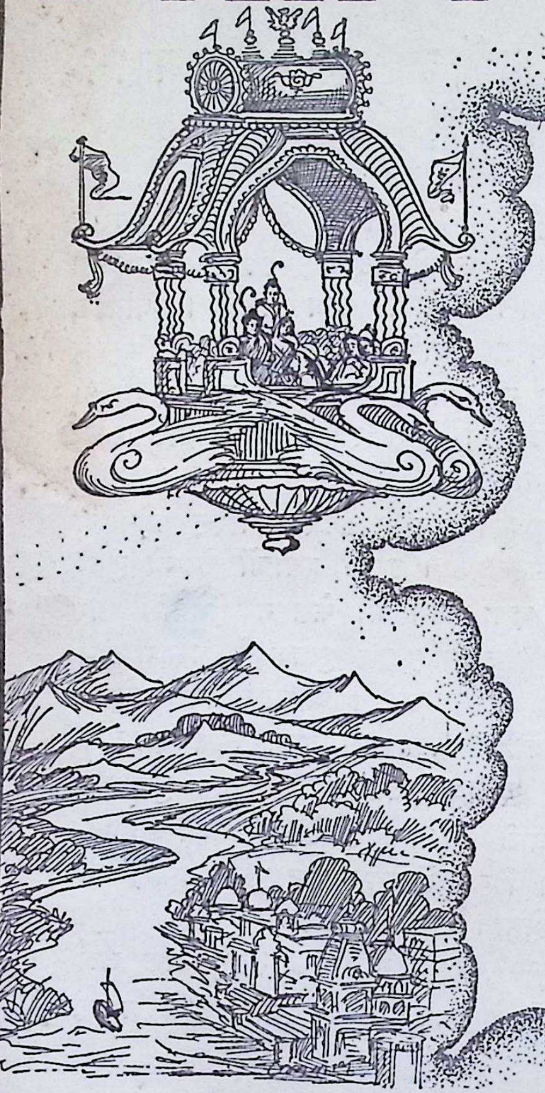

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. वर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लि०

पोस्ट—बक्स ५५४, कलकत्ता।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये [illegible] मुलतानी द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—न्यू इण्डिया प्रैस, नई दिल्ली।

अगस्त
१९५१

श्रावण
२००८

ॐ
आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

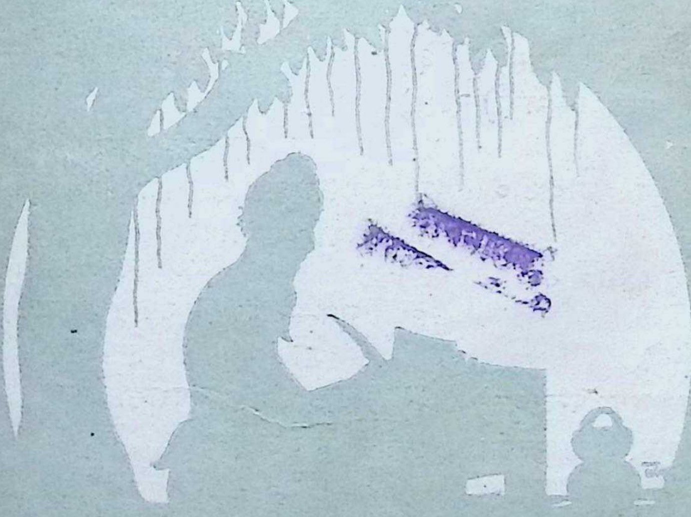

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०, बी० आई० एम० एस०

आयुर्वेद महासम्मेलन पुस्तक विक्रय विभाग

पुस्तकों का सूचीपत्र

चरक (जयदेव कृत भा० टी०)	३२)
,, (श्री अत्रिदेव कृत ,,)	३६)
,, संहिता (भागीरथी टिप्पणी)	७)
सुश्रुत संहिता भा० टी० सहित	२०)
सुश्रुत संहिता शारीर स्थान प्रभादर्पण	३)
,, ,, ,, ,, (डा० घाणेकर)	८)
भावप्रकाश विद्योतिनी भा० टी०	३०)
शाङ्गधर संहिता सुबोधिनी भा टी	६)
भावप्रकाश विद्योतिनी निघण्टु	७॥)
नाडीविज्ञान भा० टी	।–)
नाडी परीक्षा ,,	।–)
वाग्भट्ट अष्टांग हृदय वि० भा०टी०	१६)
वाग्भट्ट अष्टांग हृदय (सटिप्पणी)	५)
चक्रदत्त भा० टी०	१०)
रस तरंगिणी	१०)
कौमार भृत्य (प्रो० रघुवीर प्रसाद)	९)
सिद्धान्त निदान (२ भाग)	१०)
प्रत्यक्ष शारीरम् (संस्कृत)	२३॥)
(हिन्दी केवल प्रथम भाग)	६।)
हमारे शरीर की रचना (२ भाग)	२५॥।)
माधव निदान	४॥)
माधव निदान सुन्दरी भा० टी०	१२)
रस रत्न समुच्चय (मूल)	३॥)
रस रत्न समुच्चय भा० टी०	१५)
आरोग्यविधान	६)
रसेन्द्र सार संग्रह (वैद्य घनानन्द पन्त कृत)	११)

रसेन्द्रसार संग्रह (रसचन्द्रिका भा०टी०)	६)
व्यवहारायुर्वेद (वैद्य गणेशदत्त कृत)	५)
विषतन्त्र (,, ,, ,,)	३)
सरल व्यवहारायुर्वेद व विषविज्ञान	४)
भैषज्य रत्नावली विद्योतिनी भा.टा.	१३)
यन्त्रशास्त्र परिचय (आचार्य सुरेन्द्रमोहन कृत)	१॥)
त्रिदोष विज्ञान (क० उपेन्द्र नाथ कृत)	२।)
प्रतिसंस्कृत निदान चिकित्सा (वैद्य घनानन्द पन्त कृत)	१)
मर्मविज्ञान (सचित्र)	३॥)
Ayurveda Survey Dr. D. Narayan Rao.	४)
भारतीय रस पद्धति	१॥)
आयुर्वेद विज्ञानसार	१॥)
वैद्यक परिभाषा प्रदीप	१॥)
प्रारम्भिक भौतिकी	८)
,, रसायन सम्पूर्ण	४॥।)
सौश्रुति	८॥)
प्रारम्भिक उद्भिद शास्त्र	४॥)
पञ्चभूत विज्ञान (श्री उपेन्द्र नाथ कृत)	३)
स्वास्थ्य संहिता (नानक चन्द शास्त्री कृत)	२॥)
नव परिभाषा उपेन्द्रनाथ दास)	१॥।)
विद्यापीठ परीक्षा नियमावली	॥)
विद्यापीठ गत परीक्षा प्रश्न पत्र	

उपर्युक्त पुस्तकें मंगवाते समय पुस्तकों का मूल्य तथा डाक व्यय निम्नलिखित पते पर भेजें :—

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय ६०/८, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली।

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली ।

वर्ष ३७
अङ्क ८
नई दिल्ली, श्रावण २००८, अगस्त १९५१
मूल्य ॥)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ
१. अध्यक्ष का भाषण — ३७०
२. गोमूत्र और यूरिया (श्री सुरेन्द्रमोहन जी) — ३९३
३. वात, पित्त, कफ एकाकी द्रव्य हैं वा नहीं (श्री बन्सरीलाल साहनी) — ३९९
४. वेदान्तर्गत आयुर्वेद विषय (श्री रामगोपाल जी) — ४०३
५. कामावेग के विकारों की सम्प्राप्ति (डा० बलदेव शर्मा) — ४०८
६. सम्मेलन समाचार — ४१७

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

के

विशेषाधिवेशन के सभापति

आयुर्वेद शिरोमणि वैद्यरत्न पण्डित शिवशर्मा का भाषण

[पंडित समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का विशेषाधिवेशन गाजियाबाद में ११, १२, अगस्त को हुआ जिसमें सभापति महोदय ने निम्न भाषण दिया :—

“यह बात ध्यान देने योग्य है कि “वैज्ञानिक” मार्ग को ही एक मात्र सत्य का मार्ग समझने वाला व्यक्ति कभी भी कोई बड़ा वैज्ञानिक नहीं होता किन्तु मध्यम या अधम श्रेणी का वैज्ञानिक होता है । जितनी अधिक विद्या की प्राप्ति होगी सदा उतना ही अधिक विनय उसका परिणाम होगा । जिज्ञासु जिस प्रकाशके घेरेमें खड़ा है वह जितना विशाल होता चला जाएगा उतना ही उस प्रकाश केन्द्र से बाहर के अन्धकार का क्षेत्र भी बड़ा प्रतीत होगा। जो ज्ञात है वह विशाल अज्ञात के समक्ष अणुमात्र है। जो विद्वान् अपनी दृष्टि के परिमितत्व को पहिचानता है वह कैसे कह सकता है कि केवल वह अकेला ही अपने साथियों का पथ-प्रदर्शन करने की योग्यता रखता है । वह ऐसा कभी नहीं कहता प्रत्युत अपने साथी यात्रियों का जो दूसरे मार्ग के अनुयायी हैं स्वागत करता है”—डा० केन्नेथ वाकर (डायग्नोसिस आफ मैन)

मित्रवृन्द,

यह महत्वपूर्ण अधिवेशन विशेषतया हमारी उन कठिन समस्याओं पर विचार करने के लिये बुलाया गया है जो न केवल सुलझती ही नहीं, क्रमशः अधिकाधिक उलझती भी जा रही हैं।

सरकार आयुर्वेद का भविष्य उन्हीं डाक्टरों के हाथों में संभालती जा रही है जिन्होंने अपने जीवन में कभी भी अपनी आयुर्वेदानभिज्ञता अथवा आयुर्वेद-विरोध को छिपाने का प्रयत्न भी नहीं किया।

सरकारी आयुर्वेद विद्यालय अपने ऐलोपैथिक स्वामियों के नीचे अधोगति को प्राप्त होते ही जा रहे हैं। ऐसे डाक्टरों के बहिष्कार का कार्य जिन्होंने आयुर्वेद का गंभीर अध्ययन करके इसके प्रति श्रद्धा प्रगट की समाप्तप्राय हो चुका है । आयुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले जो भी अधिकार, उत्तरदायित्व अथवा मंत्रणा के पद थे उन पर से

शनैः शनैः एक-एक करके ये विद्वान् अलग कर दिये गये हैं और उनके स्थान सर्वथा भिन्न श्रेणी के व्यक्तियों से भरे जा रहे हैं।

केन्द्रीय सरकार की चिकित्सा सम्बन्धी नीति में एक नवीन तत्व का जन्म हुवा है। वह है गुप्तता, जो कि बृटिश राज्य में भी, जब कि आयुर्वेद प्रचार से उनके देश की आठ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की औषधों की आय खतरे में पड़ती थी, हमारे विरुद्ध प्रयुक्त नहीं की गई, और आयुर्वेद का विरोध (चोरी से न करके) खुला किया गया । इस प्रकार आयुर्वेद प्रचार बाधक आदेश भिन्न भिन्न राज्यों में गुप्त पत्रों द्वारा भेजे जा रहे है और इस कार्य से होनेवाली हानियोंका स्पष्टीकरण और उनपत्रों में लिखे गये असत्योंका खण्डन करने का अवसर जनसाधारण और चिकित्सक संप्रदाय को नहीं मिलता। कभी-कभी इन पत्रों में अन्यायपूर्ण दबाव डाले जाते हैं परन्तु उनकी समालोचना या विरोध खुला नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा विरोध करने वाले व्यक्ति पर गुप्त पत्र धारा के नियम के अनुसार सरकार अभियोग चला सकती है।

आधुनिक उपयोगी अंशों को सम्मिलित कर आयुर्वेद का अभीष्ट पाठ्यक्रम अभी तक भी तैयार नहीं हुआ है । इस क्षेत्र में अधिक धन व्यय करने का हौसला आयुर्वेद महामण्डल का भी नहीं पड़ता, केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग तो वैद्यों के हाथ में एक पैसा भी कभी नहीं देगा।

पुराने वैद्य सरकारी विद्यालयों के स्नातकों को अनभिज्ञ और अयोग्य समझते हैं। सरकारी आयुर्वेदिक कालिजों के स्नातक पुराने वैद्यों को अनपढ़ और निकम्मे समझ रहे हैं।

और अन्त में, उलट समिति अर्थात् वह समिति जिसका डाक्टर राजा और राजकुमारी अमृतकौर ने चोपड़ा कमिटीकी कड़वी लगने वाली सिफारिशों को उलटने के लिये निर्माण किया और विरोधालंकार से जिसका नाम 'पण्डित' कमिटी रखा गया, की सिफारिशें और हैल्थ मिनिस्टर्ज कान्फ्रेन्स के निर्णय दोनों मिलकर एक असम्भव सी परिस्थिति खड़ी कर देते हैं । इस परिस्थिति का स्पष्टीकरण मैं बम्बईराज्य वैद्यसम्मेलन के भाषण में निम्न शब्दों में कर चुका हूँ :—

"हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं कि ऐलोपैथी की शिक्षा का आदर्श ऊंचा कर दिया जाए परन्तु यदि आयुर्वेदिक चिकित्सिक से भी ऊंचे दर्जे के कार्य्य की आशा करनी है तो आयुर्वेदिक शिक्षा का आदर्श भी तो ऊंचा करना चाहिये । यदि उच्चकोटि के वैद्यों का निर्माण आपका ध्येय है तो आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम भी पांच वर्ष से कम नहीं लेगा। स्वास्थ्य सचिव कुछ ऐसा समझ बैठे हुए प्रतीत होते हैं कि आयुर्वेदाध्ययन में जाने वाले विद्यार्थी इतनी असाधारण और प्रखर बुद्धिवाले होंगे कि वह एलोपैथी और आयुर्वेद के पांच पांच वर्ष के दो पाठ्यक्रम केवल ५ वर्ष में ही पूर्ण कर लेंगे और डाक्टरी में जाने वाले विद्यार्थी ऐसे मूर्ख और खरमस्तिष्क होंगे कि

वह पाठ्यक्रम जिसे आयुर्वेद के छात्र ढाई वर्ष में समाप्त कर लेंगे यह लोग पांच वर्ष में पूरा करेंगे। मैं आयुर्वेद के छात्रों की ओर से स्वास्थ्य-सचिवों का उन्हें प्रतिभा के क्षेत्र में इतना ऊंचा स्थान प्रदान करने के लिये धन्यवाद करता हूँ। परन्तु मैं इन छात्रों को इतना प्रतिभाशाली समझने और ऐलोपैथिक छात्रों की बुद्धि की ऐसी विडम्बना करने में कोई प्रामाणिक हेतु नहीं देख पाता। इस समस्या की एक सुलझन तो यह है कि आयुर्वेदिक छात्रों का पाठ्यक्रम १० वर्ष का कर दिया जाए जिससे इस डाक्टरी पक्ष को यह सन्तोष हो जाएगा कि प्रवेशार्थियों के अभाव के कारण आयुर्वेदिक कालिजों को स्थायी रूप से बन्द किया जा सकेगा जिसकी आंशा ही शायद इन नीतियों की बुनियाद रही है। दूसरी सुलझन यह है कि आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम को उन्नत न करके इतना छोटा कर दिया जाय कि वह उस पांच-वर्ष के समय में बहुत कम समय ले। परन्तु वह अवस्था तो गत १०, १५ वर्षों से चल ही रही है फिर पाठ्यक्रम परिवर्त्तन का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि आयुर्वेदिक चिकित्सकों को योग्य बनाना इन लोगों का वास्तविक ध्येय है तो इनमें से किसी पथ पर भी चलें आगे मार्ग बन्द है। फिर इन प्रस्तावों को लेकर आगे बढ़ते ही चले जाना एक ही ही दिशा की ओर जाना है……

"सरकारी आयुर्वेदिक कालिजों की उपज विद्या और व्यवसाय के उस उच्चस्तर पर नहीं पहुंची जिस तक कि गुरु-शिष्य संप्रदाय की कृतियां चढ़ीं। यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से ठग्गी का आरोप पहली श्रेणी पर लगेगा, सच्ची विद्वत्ता और योग्यता का श्रेय पिछली श्रेणी को मिलेगा परन्तु सरकारी कानून पहले समूह को सम्मानित करता है और दूसरे को अपराधी ठहराता है। यह हमारे लिये एक दयनीय परिस्थिति खड़ी कर दी गई है कि या तो क्वैक (अयोग्य) बनो और सरकार से सम्मान लो अथवा योग्य बनो और अपराधी कहलाओ। इससे तो विद्यार्थी को चिकित्सा का लाइसेन्स प्राप्त करवाने के लिए सीधा ही डाक्टरी कालिजों में सच्ची और ऊंची डाक्टरी शिक्षा दिलवा कर सच्चा वैद्य बनाने के लिए घर पर स्वयं आयुर्वेदिक शिक्षा दे देना कहीं अधिक योग्यताजनक होगा इसकी अपेक्षा कि विद्यार्थी के जीवन का एक बड़ा भाग इन अर्द्धायुर्वेदिक और अर्द्ध एलोपैथिक संस्थाओं में, जिनमें आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा और मान का विशेष अभाव है व्यतीत करके नष्ट किया जाए। परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि उन वैद्यों की संख्या बहुत थोड़ी है जो एलोपैथिक कालिजों के स्नातकों को आयुर्वेद का पूर्ण भक्त फिर से बना लें।"

उपर्युक्त परिस्थितियों में से कुछ की व्याख्या अधिक विशद रूप में करने की आवश्यकता है।

राक्षस डाकू की शय्या।

ग्रीस के पुराने इतिहास में प्रोक्रस्टीज नामक एक डाकू की कथा है। यह यात्रियों को बहकाकर अपने घर ले आता था और उन्हें खूब पेटभर कर खिलाता पिलाता था। सन्देह न करने वाला अतिथि तब तक बहुत प्रसन्न रहता था जब तक वह सोने के लिए प्रोक्रस्टीज की प्रसिद्ध शय्या पर नहीं लेट जाता था। एक बार वह लेट गया तो प्रोक्रस्टीज आग्रह करता था कि उसकी लम्बाई शय्या की लम्बाई से न्यूनाधिक नहीं होनी चाहिए। यदि वह शय्या से छोटा होता था तो उसके पांव नीचे की ओर और सर ऊपर की ओर विरुद्ध दिशाओं में खेंचकर उसे शय्या समान लम्बा बना दिया जाता था। यदि वह शय्या से लम्बा होता था उसके सर और पांव की ओर से बराबर के अंश छिन्न करके उसे शय्या के समान छोटा बना दिया जाता था। कहा जाता है कि प्रोक्रस्टीज इस खेल में जिसमें कि अभागे अतिथि की सदा ही मृत्यु हो जाती थी विशेष आनन्द का अनुभव करता था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका सम्पूर्ण धन हथिया लेता था।

आरम्भ में तो प्रोक्रस्टीज का अभिनय केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग खेलने लगा था और एलोपैथी को डाकू की शय्या बना कर आयुर्वेद को छिन्न-भिन्न और खेंचतान करके उसके समाकार बनाने का प्रयत्न हो रहा था। परन्तु किन्हीं कारणों से जिनका स्पष्टीकरण मैं आगे चलकर करूंगा, सरकार ने तो अपनी नीति बिल्कुल ही बदल दी। परन्तु अपनी ओर से निस्सन्देह आयुर्वेद का भला चाहने वाले कुछ वैद्यों ने, जिनमें कि स्वयं अग्रणी विद्वान् भी सम्मिलित हैं आयुर्वेदिक सिद्धान्तों को एलोपैथिक सिद्धान्तों पर ठीक बैठाने के असाध्य लक्ष्य को इस आशा से अपना लिया कि ऐसा करने से कुछ पश्चिम प्रभाव पीडित झक्खी आयुर्वेद का समर्थन नहीं भी करेंगे तो शायद इसके अस्तित्व को कुछ अधिक सहन कर लेंगे।

उन विद्वान् वैद्यों की, जिनकी योग्यता का मेरे हृदय में गहरा आदर है, एक परिषद की कार्य्यवाही पढ़कर, जिसमें आयुर्वेद की परिभाषा को बलात् ऐलोपैथिक परिभाषा में घसीटने का प्रयत्न स्पष्ट ही दीखता था, मुझे बहुत विस्मय हुआ। परन्तु यही चरम सीमा नहीं थी वह दूसरे ही स्थलों पर थी जहां वे आयुर्वेदिक शब्द जिनके वैज्ञानिक अर्थाकार खेंचतान करने पर भी डाक्टरी डाकू की शय्या पर ठीक नहीं बैठते थे "चिन्त्य" खाते में डाल दिए जाते थे। दूसरे शब्दों में यूं कहिये कि जो आयुर्वेदिक अंश, वास्तव में अथवा कल्पना में ही, किसी डाक्टरी अंश से मिल जाते थे वे तो स्वीकृत और निश्चित सिद्धान्तों का स्थान पाने के अधिकारी बन जाते थे और जो एलोपैथिक सांचे से भिन्न आकार वाले थे उन्हें भविष्य में विचार करने के लिए अलग फैंक दिया जाता था। एलोपैथीकी विचार प्रणाली के पक्ष में आयुर्वेद से यह मानसिक त्याग-पत्र देना डाक्टरों और बुद्धिमानों के समक्ष आयुर्वेद को हास्यास्पद बनाने के अतिरिक्त अन्य किसी लक्ष्य की पूर्त्ति नहीं कर सकता।

इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिए कि (क) न केवल आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र में किन्तु गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र आदि चिकित्सा की अपेक्षा अधिक यथार्थ और अचूक होने का दावा करने वाली आधुनिक विद्याओं के सिद्धान्तों में भी कई बार असामंजस्य ही नहीं परस्पर खुला विरोध भी होता है। (ख) प्राचीन भारतीय आचार्यों ने भी भौतिक और अभौतिक व्याख्याओं को वैकल्पिक स्तरों और दृष्टिकोणों से किया है और ऐसा करने में परस्पर विरोध अवश्यंभावी नहीं है। (ग) यह सिद्धान्त कि सत्य मार्ग केवल एक मात्र हो सकता है स्वयं आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा ही घोर और सफल खण्डन का विषय बना हुवा है। (घ) एलोपैथी स्वयं अपना स्थान छोड़ कर आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की ओर फिर रही है। (ङ) जिन लोगों की झक और सनक पूरी करने के लिए आयुर्वेद की खेंचातानी की जा रही हैं कल को उनका स्थान दूसरे झक्खी ले सकते हैं जो इस दारुण अन्तर्राष्ट्रीयत्व के प्रति-क्रिया स्वरूप दारुणतर राष्ट्रीयता की नीति स्थापित कर दें।

इन भावों पर जरा और ध्यान कर लेना चाहिए।

क. आधुनिक विज्ञान में विकल्प और विरोध।

लार्ड केल्विन की यह घोषणा कि वह कोई भी ऐसा भाव समझने में असमर्थ थे जिसको वह यन्त्र रचना में परिणत न कर सकें उस गूढ़ विश्वास की द्योतक है जो १९ वीं शताब्दी के भौतिक वैज्ञानिकों के हृदय में भौतिक विज्ञान की सामर्थ्य पर था। परन्तु उसके पश्चात् पदार्थ विज्ञान उत्तरोत्तर गणित शास्त्र की अमूर्त्त राशियों का स्वरूप ग्रहण करता चला गया और केन्द्रीयाकर्षण (gravitation), काल और दिक् सम्बन्धी विचार तक समूल पलट गये। गणित और पदार्थ विज्ञान में अब बहुत से ऐसे हैं जो एक दूसरे के बिल्कुल ही विरोधी हैं। उदाहरणार्थ एक समय यह समझा जाता था कि अमर रेखागणितकार यूक्लिड (Euclid) के स्वतः सिद्ध नियम अनिवार्य्य विचारतत्व (necessities of thought) थे। परंतु, जैसा कि सलिवान ने लिखा है "आज से सौ वर्ष पूर्व लोबाशेफस्की (Lobachevsky) नामक एक रूस निवासी और बोलीयाई (Bolyai) नामक एक हंगेरियन ने स्वतन्त्र रूप से यह तथ्य जान लिया कि यूक्लिड का रेखा गणित अविवेच्य आवश्यकता का स्थान नहीं ले सकता। दो हजार वर्ष तक यूक्लिड के नियमों ने निर्विरोध राज्य किया। यह सब वैज्ञानिक मानते थे कि वह 'आवश्यक सत्य' थे, देवताओं के लिये भी उतने ही सत्य जितने कि मनुष्यों के लिये, बल्कि ईश्वर के लिये भी सत्य। उस समय के गणितशास्त्रज्ञ तक लोबाशेफस्की और बोलियाई को विक्षिप्त समझे। महान विद्वान् गॉस (Gauss) तक, जो स्वयं इसी नतीजे पर पहुँच चुका था, ने भी यह स्वीकार किया कि उसे अपना आविष्कार प्रकाशित करने का हौसला नहीं पड़ा...........शनैः शनैः मनुष्य की विचार शक्ति इन नवीन विचारों

को ग्रहण करने लगी..........यह स्पष्ट हो गया कि हम विज्ञान को किसी भी अकाट्य सिद्धान्त समूह से आरम्भ कर सकते हैं यदि वह सिद्धान्त परस्पर विरोधी न हों।" सलिवान लिखते हैं :—

इनमें से कुछ रेखागणित शास्त्र तो यूक्लिड से बहुत मिलते-जुलते हैं परन्तु कुछ तो बहुत ही अनोखे हैं.....हम वास्तविक भौतिक दिक् पर इनमें से कौनसा गणित प्रयोग में लायें ? उस दिक् पर जिसमें कि सूर्य्य और नक्षत्र और कोटिशः तारक विद्यमान हैं ? जब तक यह समझा जाता रहा कि यूक्लिड के गणित से भिन्न किसी दूसरे गणित के अस्तित्व की सम्भावना ही नहीं तब तक तो कोई दूसरा मार्ग ही नहीं था। परन्तु अब जबकि हम जानते हैं कि दूसरे रेखागणित संभव हैं यह प्रश्न पूछा जा सकता है । इस प्रश्न का निर्णय माप द्वारा ही हो सकता है। हमारे मापक यन्त्र छड़ियां और घड़ियां हो सकती हैं अथवा प्रकाश रश्मियां और थर्राते हुए परमाणु । उनके परीक्षित व्यवहार का शुद्धतम वर्णन किस रेखागणित द्वारा हो सकता है ? माप कर देखने पर ज्ञात हुआ कि रेखागणित का एक विशेष भेद जिसका आविष्कार एक जर्मन रेखागणितकार रीमान ने किया था परीक्षित तत्वों से विशेष सामंजस्य रखता है । आइन्स्टाइन ने इसको सबसे पहले समझा और उसने इस रेखागणित को प्रयुक्त कर विज्ञान क्षेत्र में महती सफलता प्राप्त की। वैज्ञानिकों को अब विश्वास हो गया है कि जिस दिक् में हमारा अस्तित्व है वह यूक्लिड के रेखागणित के नियमों पर नहीं चलती, रीमान के रेखागणित के नियमों पर चलती है ॥"

समय और स्थान की रक्षा के लिये मैं केवल दिग्दर्शन मात्र के लिये उन बहुतसे नियमों में से थोड़े से ही नियम यहां देता हूँ जो आधुनिक पदार्थ विज्ञान की मूल नींव होते हुए भी आधुनिक डाक्टरी कालिजों में पढ़ाये जाने वाले नियमों के बिल्कुल उलट हैं :—

दिक् का विस्तार असीमित नहीं—सीमित है। दो बिन्दुओं के बीच का न्यूनतम अन्तर ऋजु रेखा नहीं। एक त्रिकोण के तीनों कोण सम्मिलित होकर दो समकोण नहीं बनाते । प्रकाश की किरणें ऋजु रेखाओं में नहीं फैलतीं । जिस वस्तु पर प्रकाशरश्मि पड़ती है उस पर दबाव डालती है । सीमित और गोलाकार दिक् का आकार निरन्तर तेजी से बढ़ता जा रहा है। दिक् त्रैपारिमाणिक नहीं है। एक परमाणु का प्रभाव संपूर्ण विश्व पर रहता है । परमाणु में एलेक्ट्रॉन (परमाणु का अस्थिर शक्तिकण) प्रोटॉन (केन्द्रित स्थिर शक्ति समूह) के चारों ओर घूमते हुए बिना ही बीच के स्थान की यात्रा के एक मार्ग चक्र से दूसरे मार्ग चक्र में पहुँच जाता है। वैज्ञानिक मस्तिष्क की खलबली को पूर्ण करने के लिये आज के अग्रणी पदार्थ विज्ञानवेत्ताओं ने इस विद्युत्कण को

'स्वेच्छाचारिता' (free will) का गुण भी प्रदान कर दिया है जिससे निःशेष यन्त्रवाद का बिल्कुल ही नाश हो जाता है।

यदि सर आइजक न्यूटन कहीं आज के आइन्स्टाइन युग में आन पहुँचें तो उनके हृदय में क्या भाव उठेंगे ? जहां एक ओर वह यह देख कर प्रसन्न होंगे कि उनका केन्द्रीयाकर्षण सिद्धान्त "वैज्ञानिक" चिकित्सा प्रणाली के प्राथमिक पदार्थ विज्ञान के पाठ्यक्रम में आज भी श्रद्धा से पढ़ाया जाता है और परिश्रम से पढ़ा जाता है वहां यह देखकर खेद भी होगा कि सलिवान ने उनके महान आविष्कार को निम्न शब्दों में किस उदासीनता से रद्दी कर दिया।

> "दो सौ वर्ष तक न्यूटन के आकर्षण सिद्धान्त को 'सर्वथा अन्यून, पूर्णतया प्रतिपादित और सिद्ध वैज्ञानिक नियम" समझा गया। इसकी शुद्धता और पूर्णता एक कहावत बन गई। यह एक आदर्श बन गया जिसकी कसौटी पर अन्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों की परख होने लगी। बड़े से बड़े गणितकार सहमत थे कि न्यूटन का यह आविष्कार और इसकी पुष्टि मानुषी बुद्धि की चरम कृति थी । तो भी आज हम केन्द्रीयाकर्षण की व्याख्या सर्वथा भिन्न परिभाषा द्वारा करते हैं । इस विषय पर हमारा संपूर्ण दृष्टिकोण न्यूटन के दृष्टिकोण से जड़ से ही भिन्न है। केवल यही बात नहीं कि न्यूटन के सिद्धान्त को लागू करने से हम ऐसे नतीजे पर पहुँचते हैं जो कई अंशों में अवास्तविक और अशुद्ध हैं किन्तु वह विचार-प्रणाली ही जड़ और शाखा सहित उखाड़ फेंकी गई जिसकी नींव पर इस सिद्धान्त को खड़ा किया गया था।"

जन साधारण को तो छोड़िये, साधारण डाक्टरों को यह ज्ञात नहीं कि उनका पाठ्यक्रम बड़ी संख्या में ऐसे सिद्धान्तों से भरा पड़ा है जिनका खण्डन हुए वर्षों बीत गए हैं। न ही उन्हें यह पता चलता है कि उन्हें आधुनिक चिकित्सा की नवीन प्रवृत्तियों और नवीन दृष्टिकोण से कितना अनभिज्ञ रखा जाता है । एक एलोपैथ, जो कि मेरे पुराने और घनिष्ठ मित्र हैं, मद्रास शास्त्र चर्चा परिषद् में दिए गए मेरे एक भाषण का सारांश एक पत्र में पढ़ कर मुझ से उस विषय पर चर्चा करने लगे परन्तु अपने भौतिक विज्ञान के उस अंश से अनभिज्ञ होने के कारण जो प्रकृति वाद के समस्तर है वह इस विषय को ग्रहण न कर सके और मुझ पर यह वाक्य कस गए "तुम चालाकी करते हो। मेरे आधुनिक भौतिक शास्त्र के अज्ञान का अनुचित लाभ उठा रहे हो। मैं तुम्हारा लेख किसी भौतिक शास्त्र के आचार्य्य को भेजूँगा।"

परन्तु यदि हम विज्ञान की उन शाखाओं को अलग रखदें जिनकी दुहाई देते हुए भी डाक्टर जिनका सम्यक् अध्ययन नहीं करते तब भी उनके अपने पाठ्य ग्रन्थों में ही अनन्त वैकल्पिक सिद्धांत भरे पड़े हैं। उन्हें यह पढ़ाया जाता है कि पृथ्वी में गंभीर प्रवेश करने वाली प्रकाश रश्मियां दूरवर्त्ती तारकगणों के स्तर पर हो रहे द्रव्य निर्माण की उपज हैं। दूसरे सिद्धांत द्वारा इसी प्रकार की उपज का कारण द्रव्य नाश (annihilation of matter) बतलाया जाता है जो इसका पूर्ण उलट है । एक सिद्धांत के अनुसार अस्थिर विद्युत्कण तरङ्ग का गुण रखते हैं दूसरे सिद्धांत के अनुसार कणों ना। इनमें से एक सिद्धांत को भी नहीं त्याग सकते क्योंकि कुछ घटनाओं की व्याख्या पहले सिद्धांत द्वारा ही हो सकती है और अन्य घटनाओं की व्याख्या दूसरे द्वारा ही। विपरीत और विपरीतार्थकारी औषध के सिद्धांत के समान ही यह परिस्थिति है।

मनोविश्लेषण (मानसिक चिकित्सा) के क्षेत्र में परस्पर विरोधी सिद्धांतों पर आधारित चार संप्रदाय आधुनिक विज्ञान में बन गए हैं। इन फ्रायड, एडलर, यूँग और हैकल के विभिन्न संप्रदायों में पश्चिम के प्रतिभाशाली विद्वान् अपने-अपने पक्षों के समर्थन के लिए निरंतर विवाद करते रहते हैं । जीवशास्त्र की भी यही दशा है। आकस्मिक परिवर्त्तनों (mutations) के प्रश्न पर वाइसमान और लैमार्क के अनुयायी बराबर एक दूसरे का विरोध करते हैं।

एलोपैथी में परस्पर विरोध

चिकित्सा क्षेत्र में आधुनिकों का मतभेद अधिक ही कौतुक का विषय है। डाक्टर पी० वी० बेंजमिन, क्षय विशेषज्ञ, डाएरेक्टर जनरल आफ हैल्थ सर्विसिज, नई दिल्ली, बी० सी० जी० के० प्रामाणिक विद्वान्, लिखते हैं :—

"विभिन्न देशों का बीस वर्ष का संयुक्त और संगृहीत अनुभव यह सिद्ध करता है कि यह (अर्थात् बी० सी० जी०) प्रभावशाली और निरापद यक्ष्मानिरोधक उपचार है।"

इससे उलट डाक्टर डब्ल्यू. एच. ब्रैडले, सीनियर मैडिकल आफीसर, मिनिस्ट्री आफ हैल्थ, इङ्गलैण्ड लिखते हैं :—

"यक्ष्मा निरोध के लिए बी० सी० जी० का उपयोग अभी भी एक विवादास्पद विषय है और चिकित्सक वर्ग बीस वर्ष तक इसकी परीक्षा करने के अनन्तर भी इस प्रश्न पर अज्ञान के अन्धकार में पड़ा है कि यह उपचार कोई गुण रखता है कि नहीं"

अब कीजिए निर्णय कौन सच्चा है। जनता की रक्षा तो ईश्वर के हाथ में है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान का प्रवर्त्तक फ्रायड लिखता है कि हिस्टीरिया में जो डाक्टर औषध देता है (शारीरिक व्याधि समझकर) वह कोरा ठग है । मैं अभी तक किसी ऐसे डाक्टर को नहीं मिला जो इस अवस्था में औषध न खिलाता हो । अमेरिका में सल्फा औषधों का प्रयोग न्यून से न्यूनतर होता जा रहा है। भारतवर्ष में तो डाक्टर उन विषों को ऐसी प्रभूत मात्राओं में दे रहे हैं जैसे रोगियों से कोई बदला लेना हो। अपनी पुस्तक "औषधि शास्त्र में नवीन उन्नतियां" में राब्सन और कील औषधासहिष्णुता के सम्बन्ध में दो विचार लिखते हैं एक के अनुसार असहिष्णुता का सम्बन्ध असह्य औषध के गुण से ही है उसकी मात्रा के न्यूनाधिक्य से नहीं दूसरे के अनुसार मात्राऽऽधिक्य प्रतिक्रिया के आधिक्य में कारण है । उपवृक्क ग्रन्थि के एक बहिर्भाग के स्राव

के गुणों के सम्बन्ध में वह लिखते हैं "इसके प्रयोग से जो अनल्पसंख्यक फल प्राप्त हुए हैं उन सब की स्पष्ट व्याख्या करने वाला कोई सिद्धान्त नहीं है।" यहां चलते में उनका यह वाक्य लिख देना भी उचित होगा कि इस औषध (Cortisone or ACTH) को प्रयोग करने वाले रोगियों के व्रण और विद्रधियों का रोपण नहीं होता। यह केवल उन रोगियों और डाक्टरों को चेतावनी देने के लिए लिख दिया है जो बहुत उत्सुकता से इस औषध के भारत में पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे हैं (आगामी मास में वह नारवे से आ भी रही है)। एक अन्य औषध थायोयुरेसिल के सम्बन्ध में वह लिखते हैं कि "इसका और इसके अन्य योगों का प्रयोग थाइरायड क्रिया प्रकोप पर करने के संबन्ध में अभी बहुत विवाद चल रहा है।"

इन उदाहरणों का तो अन्त नहीं परन्तु इन्हें और बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। मैं यही कहना चाहता था कि आधुनिक विज्ञान अभी स्वयं किंकर्त्तव्यविमूढ़ है। इसकी इक्की दुक्की कृतियां अवश्य महत्वपूर्ण हैं। शल्य शास्त्र में इसने विस्मयजनक उन्नति की है। आयुर्वेद इस उन्नति का आदर करता है और इसे अपनाकर इससे पूर्ण लाभ उठाने को तैयार है। इंग्लिश विद्वान् कीथ ने हमारी प्रशंसा में कहा था "जो ज्ञान भी भारतवर्ष को प्राप्त हो उसे पाचन करके आत्मसात् कर लेने की इसकी शक्ति अद्भुत है।" परन्तु हमें आधुनिक विज्ञान की कमियों को नहीं भुलाना चाहिए। हम त्रिदोषानुसार अपनी सभी औषधों के गुण दोष से परिचित हैं। परन्तु डाक्टर अनन्त ऐसी औषधों, जैसे कि सुरंजान, स्ट्रैप्टोमाइसिन, पैनिसिलिन आदि का प्रयोग कर रहे हैं जिनके बारे में उन्हें यह ज्ञान नहीं कि वे लाभ किस क्रिया द्वारा करती हैं। पैल्यूड्रीन जैसी साधारण औषध का वर्णन करते समय भी लेखकों को इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना पड़ता है— "शरीर में यह किसी प्रकार बदल जाती है ..मैलेरिया नाशक क्रिया किसी प्रकार कीटाणु की आवश्यक क्रिया में रुकावट डालकर करती है।" एण्ड्रोजन और इस्ट्रोजन जैसी बहु प्रयुक्त औषधों के संबन्ध की भी यही कथा है "एण्ड्रोजन की क्रिया का रहस्य स्पष्टतया ज्ञात नहीं...इस्ट्रोजन की क्रिया का प्रकार तो इससे भी अंधकारपूर्ण है।" अन्य भी, इसी प्रकार, अनन्त तक।

मुझे खेद है कि इस विषय को मैं शायद उचित से अधिक समय दे गया हूं। परन्तु जो वैद्य आयुर्वेद के सिद्धान्तों का गात्र पीड़ित करके उन्हें एलोपैथी पर कसना चाहते हैं वह तथा हैल्थ मिनिस्टर और एलोपैथी के अन्य समर्थक भी यह प्रतिपादन करने में कम आग्रह नहीं करते कि एलोपैथिक औषध व्यवस्था अनुभव के बल पर नहीं (Non-empirical) केवल विज्ञान के बल पर की जाती है। इस ढकोसले की पोल खोलना अत्यावश्यक बन गया था।

ख. आयुर्वेद में वैकल्पिक सिद्धान्त

हमारे शास्त्र में इस प्रकार परस्पर विरोधी तो नहीं किन्तु ऐसे वैकल्पिक सिद्धांत

विद्यमान हैं जिनका समन्वय या सामंजस्य करने की कोई आवश्यकता नहीं । विपरीतार्थकारी औषध अपने स्थान पर दी जा सकती है और विपरीत अपने स्थान पर। क्रोध, लोभादि मानसिक भावों की व्याख्या राजसिक तामसिक गुणों द्वारा भी की जा सकती है, पैत्तिक आदि दोष क्रियाओं द्वारा भी । हमने सांख्य का वेदांत के साथ और न्याय का योग के साथ कभी सामंजस्य करने का प्रयत्न नहीं किया। चरक ने सृष्टि की उत्पत्ति में यदृच्छावाद भी गिना दिया (यद्यपि नास्तिकवाद होने के कारण उसका खण्डन भी किया) और ईश्वर संकल्प भी। यह आधुनिक विज्ञान के बड़े आचार्य्य सर जेम्ज जीन्ज के सिद्धांत का स्मरण दिलाता है कि संसार एक महान् गणितज्ञ के मस्तिष्क में एक विचार मात्र है।

ग. सत्य वैचित्र्य।

यह प्रकरण इस प्रश्न पर आजाता है कि सत्य एक ही है कि दो या अधिक सत्य भी हो सकते हैं। मैं इस भाषण के आरम्भ में ही डाक्टर केनेथ वाकर के शब्दों में इस प्रश्न का उत्तर दे चुका हूँ। कोई भी सिद्धांत समूह जिसकी उपयोगिता और परस्पर अविरुद्धता निश्चित है विज्ञान में सत्य के रूप में प्रयुक्त होने का पात्र है। उस शास्त्र के जानने वाले के लिए न्याय, सांख्य, वेदांत, एलोपैथी, होमियोपैथी, नैसर्गिक चिकित्सा, सभी सत्य हैं। सलिवान लिखते हैं कि यह याद रखना चाहिए कि सत्य से वैज्ञानिकों का वास्तविक अन्तिम अभिप्राय सुविधा से है। वैज्ञानिक सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अपने आपको कुछ भी समझें वास्तव में वह क्रिया साधक होते हैं।

घ. एलोपैथिक दृष्टिकोण में आयुर्वेदिक परिवर्त्तन।

ऐसे निश्चित चिह्न व्यक्त हो रहे हैं कि एलोपैथी ऐसे दृष्टिकोण की ओर बढ़ रही है जिसकी आयुर्वेद से विशेष समता है। इस काल के काय चिकित्सा और शल्य के कुछ अग्रणी नेताओं द्वारा लिखे गए ग्रन्थ, जैसे कि Man the Unknown, Diagnosis of Man, Meaning and Purpose, A Doctor Digresses, इत्यादि, एलोपैथी की अपेक्षा आयुर्वेद के बहुत समीप हैं। अलैक्सिस कैरल लिखता है :—

"चिकित्सा विज्ञान की उन्नति इससे नहीं होगी कि और भी विशाल और अच्छे आतुरालयों का निर्माण कर दिया जाए या औषध निर्माण के लिए और भी बड़ी और अच्छी रसायन शालायें खोल दी जाएं। इसकी उन्नति तो सर्वथा निर्भर है कल्पना शक्तिपर, रोगी के गंभीर निरीक्षण पर, प्रयोगशाला के सन्नाटे और शान्ति में प्रयोग और चिन्तन करने पर और अन्ततोगत्वा, रासायनिक रचना की रंगभूमि के पीछे जीवन के और मन के रहस्यों पर से पर्दा हटा देने पर।"

एक दूसरे स्थान पर वह कहता है "गणित, भौतिक और रस विज्ञान आवश्यक विज्ञान हैं परन्तु चेतन द्रव्यों की खोज में मूल प्रारंभिक विज्ञानों (basic sciences) का स्थान इन्हें प्राप्त नहीं हो सकता।" उसका यह आदेश कि "मानव जाति की दुष्ट

और पतित बड़ी संख्या के नियंत्रण और पथ प्रदर्शन के लिये सात्विक आहार-विहार द्वारा आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले तपस्वियों की एक अल्प संख्या बननी चाहिये" सर्वथा प्राचीन भारतीय सूझ है। एक आधुनिक अपनी कुत्ती या घोड़ी के सङ्ग के लिए कठिन परिश्रम और लंबी दौड़ धूप करके भी शुद्ध और ज्ञात वंश परंपरा वाले कुत्ते और घोड़े को ही प्राप्त करता है परन्तु स्वयं अपने सम्बन्ध में जीवन भर के साथी से नाता जोड़ते समय इस सिद्धान्त की अवहेलना कर कहीं भी गिर पड़ता है। इस विषय पर भी अलैक्सिस कैरल के विचार विशिष्ट रूप से प्राचीन भारतीय वंशशुद्धि की प्रथा के अनुसार हैं :—

> "निस्संदेह प्रेम को पवन सदृश स्वतन्त्रगति वाला समझा जा रहा है। परन्तु जब हम देखते हैं कि कई युवक धनवाली स्त्रियों पर ही आसक्त होते हैं और कई युवतियों का प्रेम धनाढ्य पुरुषों पर ही गिरता है तो प्रेम की स्वतन्त्र वृत्ति की विचित्रता पर से विश्वास हिल जाता है। यदि प्रेम के कान धन की बात सुन सकते हैं तो यह वंश स्वास्थ्य जैसे उपयोगी विचार के आगे भी झुक सकेगा।"

यह लेखक आधुनिक क्षेत्र से इतने दूर निकल गए हैं कि वह मनुष्यों का वर्गीकरण उनकी प्रकृतियों के अनुसार करने लगे हैं जो एक सर्वथा आयुर्वेदिक विचार प्रणाली है। अत्यधिक विशेज्ञता का विरोध करते हुए वह इसका लक्षण "न्यून-से-न्यून को अधिक से अधिक जानते जाना" इन शब्दों में करते हैं। "उपयोगी होने के लिये हमारा ज्ञान संक्षिप्त और प्रामाणिक होना चाहिए। जब एक विशेषज्ञ अपने जीवन के आरम्भ से ही अपने को शरीर के किसी सूक्ष्म अवयव के अध्ययन तक ही सीमित रखता है तो उसका शेष संपूर्ण शरीर का ज्ञान इतना न्यून रह जाता है कि उस न्यूनता के कारण वह उस भाग को भी पूर्णतया समझ नहीं सकता जिसका वह विशेषज्ञ है।" इस वाक्य की तुलना वास्तव में संक्षिप्त और सुघटित त्रिदोष प्रणाली की उपयोगिता और व्यापकता से कीजिये। सम्राट जॉर्ज के सर्जन डाक्टर केनेथ वाकर (जो रायल कालिज ऑफ सर्जन्स के हंटीरियन प्रोफेसर हैं) का यह लिखना स्वाभाविक ही है:—

> "आज जबकि भारत पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर चुका है उसे अपनी प्राचीन विज्ञान की निधि में से हमें बहुत कुछ प्रदान करना है।"

ङ. व्यक्तिगत सनकों का आदर अनावश्यक

यदि हम आयुर्वेद को डाक्टरी जामा पहना कर वर्तमान शासक समूह की सनक पूरी भी करदें तो हमारे पास कोई आश्वासन नहीं कि दूसरा समूह भिन्न दृष्टिकोण लिए अधिकार प्राप्त नहीं कर लेगा और आयुर्वेद के पुनः अपने मौलिक रूप में लाये जाने के लिये आज्ञा नहीं देगा जिससे कि यह भारतीय प्रकृति, स्वभाव, आहार और वातावरण के अनुकूल ही रहे! यह तो स्पष्ट सत्य है कि यदि भोर कमेटी के भूतपूर्व मन्त्री डा० राजा के स्थान पर सर आर. एन चोपड़ा डाएरेक्टर जनरल होते तो चोपड़ा

कमेटी के आदेश उलटने के लिए उलट कमेटी का कभी निर्माण न होता और चोपड़ा कमेटी की रिपोर्ट इस अनौचित्य से कभी रद्द न की जाती और इसके विरुद्ध गोप्य सरकारी पत्रों द्वारा आन्दोलन करके और दबाव डालकर एकपक्षीय गुप्त युद्ध कभी आरम्भ न होता। प्रत्युत वे आदेश अब कार्य्यरूप में परिणत हो रहे होते और हम उस निर्माण मार्ग पर अग्रसर हो रहे होते जिस पर प्रस्थान करने के लिये अब हमें फिर से योजनाएं बनाने का प्रयत्न करना पड़ रहा है। इसमें कोई संदेह ही नहीं कि आयुर्वेद सम्बन्धी सरकारी नीति पात्रता के विचार पर स्थिर नहीं किन्तु सामयिक अधिकारियों के झक्कीपन और सनक के अनुसार चलती है। हम अपने विज्ञान का स्वरूप आज अन्तर्राष्ट्रीयता के और कल राष्ट्रीयता के झक्की सिंहनादों के अनुसार निरन्तर बदलते नहीं रह सकते।

दोषविज्ञान अभी ऐलोपैथी की पहुँच से बाहर

दोष विज्ञान के व्यापक और सर्वग्राही गुण एलोपथिक रचना से बहुत दूर हैं। इसके अनुसार चेतन द्रव्य का सूक्ष्मतम भाग भी ऐसा नहीं जहां तीनों दोष इकट्ठे उपस्थित न हों चाहे उनका वैयक्तिक न्यूनाधिक्य कितना भी हो। आयुर्वेद का यह सिद्धांत स्थावर चेतना के लिए भी उतना ही सत्य है जितना कि जङ्गम चेतन समूह के लिए। श्री शिवतत्वरत्नाकर के वृक्षायुर्वेद पर्व में वृक्षों के शरीर और मन पर दोष क्रिया का प्रभाव अति स्पष्ट भाषा में निम्न श्लोकों में किया गया है :––

नराणामिव वृक्षाणां वातपित्तकफाः गदाः ।
संभवन्ति यतस्तस्मात्कुर्य्यात्तद्दोषनाशनम् ॥
कृशो दीर्घो लघू रूक्षो निद्राहीनोऽल्पचेतनः ।
न धत्ते फलपुष्पाणि वातप्रकृतिकस्तरुः ॥
आतपासहनः पाण्डुः शाखाहीनो मुहुर्यदि ।
अकालपाकः स्याच्छाखी स तु पित्तात्मकः कृशः ॥
सिद्धांतशाखादलश्शाखी सम्यक् पुष्पफलोज्ज्वलः ।
लतापरीतगात्रस्तु कफवान् परिमण्डलः ॥

त्रिदोष का भौतिक-शारीरिक-मानसिक जीव-धातु-क्रिया-समूह चेतन जगत् से सम्बन्ध रखने वाले अखिल भौतिक विश्व पर छाया रहता है––प्राणी की स्वस्थावस्था में भी और रुग्णावस्था में भी। अतएव त्रिदोष सिद्धांत के इक्के-दुक्के टुकड़े ही एलोपैथी के सम्पूर्ण ज्ञान के किसी २ स्थल से मिलते जुलते हैं। पूर्ण रूप से एक विज्ञान का दूसरे विज्ञान में समा जाना तब तक संभव नहीं होगा जब तक प्रयत्न को उलट नहीं दिया जायगा और एलोपैथी के उपयोगी भाग का त्रिदोष के व्यापक सिद्धांत में अन्तर्भाव नहीं किया जाएगा। मैं इस विषय को आगे चलकर और भी स्पष्ट करूंगा।

मैंने ऊपर त्रिदोष का अंग्रेज़ी अनुवाद भौतिक-शारीरिक-मानसिक जीव-धातु-

क्रिया-समूह किया है। इसके अनुसार 'पित्त' शब्द कहते ही जीव धारी से संबद्ध सम्पूर्ण भौतिक, शारीरिक और मानसिक (पैत्तिक) क्रियाक्षेत्र वा घटना क्षेत्र सामने आ जाता है जैसे कि धूप, अग्नि, प्रकाश, थाइराएड और उपवृक्कों के (उष्णवीर्य्य) स्राव, जठराग्नि दीपक रस (यह सब ही द्रव्य वास्तव में त्रैदोषिक होते हुए भी एक दोष के प्रबल बाहुल्य से व्यवहार में एकदोषमय ही माने जाते है), क्रोध, प्रकोप, शौर्य्य इत्यादि। ऐसे स्वरूप वाला पित्त उन प्रश्नों का विषय नहीं बन सकता जिनका ढंग ऐलोपैथिक है जैसे, क्या पित्त इस दीपक रस का नाम है या उस उत्तेजक स्राव का? यह रोग संप्राप्ति का द्योतक है कि शारीरिक क्रियाओं का? यह शक्ति है या द्रव्य? क्या यह शरीर में भिन्न द्रव्य है और ब्रह्माण्ड में भिन्न? क्या इसका आधार उदरस्थ पाचक रस हैं या क्रोधादि मानसिक भाव? क्या यह जंगम सृष्टि तक ही सीमित है अथवा स्थावर जीव में भी क्रियावान है? है तो क्या इन दो वर्गों में इसका एक ही स्वरूप है कि भिन्न स्वरूप? मुझे ये प्रश्न- निम्न श्रेणी के प्रश्नों से मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं कि मनुष्य मन है या शरीर? घी ठोस है या तरल, अथवा यदि जलाल-उ-द्दीन रूमी की प्रसिद्ध कथा के अनुसार अंधेरी कोठड़ी में हाथी को हाथ लगा आने वाले व्यक्तियों की बातचीत के अनुसार प्रश्न किया जाये, हाथी एक बड़ा कान है कि एक लम्बा दांत? एक मोटी टांग है कि लंबी पूंछ?

त्रिदोष तो जीवन की भांति एक तत्वसंयोग है। यदि आप एक जीव को मेज पर लिटाकर उसके अंग-प्रत्यंग अलग करके उसके जीवतत्व का विश्लेषण करना चाहेंगे तो जीव ही नहीं रहेगा जैसा कि एक बालक जब घड़ी की आवाज देखने के लिये उसे खोल कर उसके टुकड़े अलग करता हैं तो आवाज ही उड़ जाती है। त्रिदोष को जानने के लिये आवश्यक हैं कि इसको जीवतत्व के स्तर पर तत्वसंयोग के रूप में देखा जाये।

हमें बहुत लाभ होगा यदि हम अपनी समस्याओं को अनहत दृष्टि से देखें। ऐसा करने से बहुत से समय, शक्ति और द्रव्य की बचत होगी। जो लक्ष्य ग्राह्य है उसी के लिये प्रयत्न करना चाहिये। सब लोग वर्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं परन्तु जब रात को बिजली फेल हो जाती है तो कोई ईश्वर को यह कष्ट करने की प्रार्थना नहीं करता कि जब तक बिजली आती है तब तक के लिये जरा सूरज निकाल दे। यदि आपको दो पक्षों में बांट कर कोई यह कहे कि शास्त्रार्थ द्वारा निर्णय करके बतायें कि मुर्गी पहले हुई कि अण्डा, तो आप यह कार्य्य हाथ में लेने से इनकार कर देंगे क्योंकि कोटिवर्षपर्य्यन्त शास्त्रार्थ करके भी आप वहां ही खड़े होंगे जहां से विषयारंभ हुआ था। त्रिदोष सम्बन्धी चर्चाओं का सम्पूर्ण तो नहीं परन्तु कुछ अंश उपर्युक्त प्रयत्नों से समता रखता है और यह अतिशयोक्ति नहीं कि हमारे प्रयत्नों का प्रधान भाग यदि दूसरे और अधिक फलप्रद मार्ग पर नहीं डाला गया तो कोटि वर्षों के पश्चात् भी हम यही शास्त्रार्थ कर रहे होंगे और अपने लक्ष्य से उस दिन भी इतने ही दूर होंगे जितने कि आज हैं।

दो आवश्यक तथ्य

हमारे लिये, और सरकार और डाक्टरों के लिये भी यह दो आवश्यक सत्य पहिचानने आवश्यक हैं कि एक तो अभी तक यह सम्भव नहीं कि आयुर्वेद के सिद्धान्तों का समावेश संपूर्ण रूप से एलोपैथी में हो सके और दूसरे पौर्वात्य और पाश्चात्य विज्ञान की उपयोगी और उच्च कृतियों को दोनों विज्ञानों के समन्वय के रूप में एक स्थान पर लाने का एक ही मार्ग है वह यह कि ऐलोपैथी आयुर्वेद के व्यापक और सर्वग्राही आकार में समा जाये। क्योंकि जो एलोपैथी आज पढ़ाई जा रही है या चिकित्सा क्षेत्र में आई हुई है उसका दृष्टिकोण इतना सीमित है कि उसमें आयुर्वेद के अधिक खुले सिद्धान्त अंतर्भूत हो ही नहीं सकते। पहली बात को वैद्य भूले रहे और दूसरी को सरकार। इन निष्फल प्रयत्नों में इतनी शक्ति का व्यय करने के अनन्तर अब उनके लिये यह समझना आसान होना चाहिये कि सफलता की सम्भावना किस ओर है।

नीचे मैं दो उद्धरण दे रहा हूं एक उस वक्तव्य में से जो मैंने प्लैनिंग कमिशन की स्वास्थ्य परिषद् में विचारार्थ रक्खा था और दूसरा बम्बई राज्य वैद्य सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में से। पहला उद्धरण यह स्पष्ट करता है कि त्रिदोष की स्वतन्त्र व्याख्या इसकी ऐलोपैथिक व्याख्या की अपेक्षा कितनी अधिक ठोस और सन्तोषजनक है और दूसरा उद्धरण यह प्रमाणित करता है कि समन्वय एक ही प्रकार से सम्भव है जिसका अभी निर्देश किया है।

यदि एक कमरबन्द को जो पाजामे को अपने स्थान पर रखता है हम उसके वास्तविक स्वरूप में न देख कर उसे पतलून के बटनों का प्रतिनिधि कहेंगे तो ‘व्याख्याभेद” आरम्भ हो जायगा। दूसरा व्याख्याता आग्रह करेगा कि कमरबन्द बटनों का नहीं पेटी का प्रतिनिधि है। तब कोई अधिक साहसी शोधकार विचार की इससे भी ऊंची उड़ान करके कहेगा कि यह तो खड़े ब्रेसेज को लिटा कर उनका विशेष सरल प्रकार बना दिया गया है। तब चौथा विशेषज्ञ अपना मत प्रगट करेगा कि क्यों कि बक्सूए की धातु युद्ध के शस्त्र बनाने के काम में आ रही है इस लिए उनका स्थान इस रस्सी ने ग्रहण कर लिया है। अस्तु। अपने स्थान पर यह रस्सी न केवल एक सरल, बुद्धिग्राह्य, सुविधाजनक और निर्विवाद द्रव्य है बल्कि बटन, पेटी, ब्रेस और बक्सूए सब के सम्मिलित समूह से अकेली ही अधिक उपादेय है। तो भी यह परम उपादेय, निर्दोष और शान्तिमयी वस्तु विशेषज्ञों, अनुवादकों और शोधकारों की परम अनावश्यक कृपा से विवाद का अखाड़ा बन गई।

“ठीक इसी प्रकार ऐसे ही विशेषज्ञों, अनुवादकों और रिसर्च स्कालरों (शोधकारों) के हाथों बेचारे आयुर्वेद का विशेष पीड़न हुआ है। जब एक वैद्य दूसरे वैद्य से वातज्वर, वातातिसार, वातिक कास, वातिक संग्रहणी, वातिक श्वास रोग या वातार्श अथवा पैत्तिक ज्वर, पित्तातिसार आदि व्याधियों की चर्चा करता है तो

उन दोनों में और दोनों में ही क्या, सैकड़ों में भी, किसी को एक दूसरे का आशय समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती । परन्तु एक बार पित्त का अनुवाद (Bile, Body Heat, Metabolic Activity अथवा Themogenesis) आदि करना आरम्भ कीजिये तुरन्त ही बटन, पेटी, ब्रेस और बकल वाला कलह उठ खड़ा होगा।

"आइए जरा त्रिदोष का, बिना डाक्टरी परिभाषा की दल-दल में फंसे, सीधा इसके अपने स्वरूप में निरीक्षण करें :—

"एक व्यक्ति ५ ग्रेन क्विनाईन खाता है और उसे "सिन्कोनिज्म" (क्विनाईन विष जनित शिरोभ्रम, कर्णनाद, क्षुधानाश आदि उपद्रव-समूह) हो जाता है। दूसरे व्यक्ति का ३० ग्रेन क्विनाईन खाने पर भी कुछ नहीं बिगड़ता । दस लाख वैद्य एक ही बात कहेंगे कि पहला व्यक्ति वात प्रकृति था अतः वातिक औषध प्रतिकूल पड़ी। उसे सब ही वातवर्धक भाव प्रतिकूल पड़ेंगे, वह औषध (क्विनाईन, धत्तूर, निम्ब आदि) हों या आहार (स्नेहरहित रूक्ष भोजन), विहार (लंघन, अतिव्यायाम आदि) हो या मानसिक भाव (भय, शोक, काम आदि)। सिन्कोनिज्म की दोषानुसार चिकित्सा वातनाशक औषधान्नविहार और मनोवृत्तियों का सेवन है । जैसे शीत पानक, घृत, दुग्ध, विश्राम, तैलाभ्यङ्ग, प्रसन्नता, धैर्य्य, इत्यादि । परन्तु यही वातनाशक भाव जो वात-प्रकृति व्यक्ति के लिए हितकर हैं कफ प्रकृति के लिए हानिकर होंगे । इनके सेवन से उसमें मेद, गौरव, आलस्य बढ़ जाएंगे ।

"दूसरा उदाहरण लीजिये । एक स्वस्थ प्रतीत होने वाले व्यक्ति को मच्छर काटता है। उसे पहली ही बार में मैलेरिया हो जाता है। एक दूसरा व्यक्ति जिसका पहले जितना स्वस्थ होना भी आवश्यक नहीं मच्छर द्वारा बार-बार काटे जाने पर भी ज्वर-ग्रस्त नहीं होता। सब वैद्य बिना किसी "व्याख्या भेद" के एक ही मत देंगे कि प्रथम व्यक्ति पित्त प्रकृति है। और व्याधि भी पैत्तिक होने के कारण तद्दोषप्रधान व्यक्ति झट पकड़ा जाता है । दूसरे व्यक्ति का शरीर क्षेत्र पित्त प्रधान न होने के कारण एक पैत्तिक व्याधि उसमें शीघ्रता से घर नहीं कर सकती । इसका यह तात्पर्य नहीं कि आयुर्वेद कीटाणुवाद को स्वीकार नहीं करता या कीटाणु नाशक औषध व्यवहार में नहीं लाता । परन्तु आयुर्वेद की प्रधान पद्धति दोषप्रधान अथवा क्षेत्र परिवर्तक है । अतएव द्रोणपुष्पी, निंब, पर्पटक आदि पित्तहर औषधियों के हिम इतना बीज (कीटाणु) नाश करके नहीं जितना क्षेत्र (शरीरदोष) परिवर्तन द्वारा रोगी को स्वस्थ करते हैं ।

"(३) अब तीसरा प्रश्न उठता है । क्या इन अवस्थाओं की आधुनिक व्याख्याएं अधिक 'वैज्ञानिक" हैं ।

"प्रथम उदाहरण में वात-प्रकृति व्यक्ति को आधुनिक विज्ञान में क्विनाईन के प्रति Allergic अथवा Anaphylactic (अर्थात् औषधासहिष्णु) कहा गया है और दूसरे को क्विनाईन के प्रति अधिक Tolerance (सहिष्णुता वाला कहा

गया है। आयुर्वेदानुसार यह व्याख्याएं स्वेच्छाजनित अनाथासोक्तियाँ हैं जिनमें कोई क्रम, पद्धति या वैज्ञानिकता ढूंढना व्यर्थ है। इस प्रकार तो एक व्यक्ति को देवताओं का कृपापात्र और एक को ईश्वरीय शाप का शिकार कह देना भी काम चला सकता है। क्योंकि allergy, tolerance, idiosyncracy, anaphylaxis आदि शब्द न तो ऐसी व्याख्या से कम मनघड़न्त है न अधिक प्रकाशजनक अथवा ज्ञानप्रद।

"दूसरे उदाहरण में मैलेरिया उपसर्ग के प्रश्न पर दो भिन्न व्यक्तियों की प्राकृतिक रोग प्रवृत्ति (natural susceptibility) और प्राकृतिक रोग प्रतिबन्धि-की शक्ति (natural immunity) द्वारा की गई व्याख्या, बड़ी सरलता से, बिना कोई वैज्ञानिकता का अंश कम किए, दैवी प्रकोप और दैवी प्रसाद द्वारा व्याख्या में परिवर्तित की जा सकती है। आयुर्वेदिक चिकित्सक इस प्रकार के स्पष्टीकरणों को सर्वथा कपोलकल्पित और विज्ञान की दृष्टि से सर्वथा निराधार समझते हैं। इसके विपरीत आयुर्वेदिक दोषीय स्पष्टीकरण प्राकृतिक, क्रमबद्ध, सिद्धांतबद्ध और शास्त्रीय विज्ञान सम्मत हैं। उपर्युक्त ऐलोपैथिक व्याख्याओं को वैज्ञानिक कहने के लिये सांप्रदायिकता के अन्धविश्वास के साहस की आवश्यकता है और उसके सामने आयुर्वेदिक व्याख्या को अवैज्ञानिक कहने के लिये भी ऐसी ही धर्मान्धता का अवलंबन अनिवार्य है।

"जीवन की प्रत्येक अवस्था और गतिविधि पर 'त्रिदोष' का प्रभुत्व है। स्वास्थ्य और रोग पर, भोजन और लंघन पर, भावों और विचारों पर। अतएव चरक कहते है "नानौषधभूतं जगति किंचिद्द्रव्यं तिष्ठते।" अर्थात् संसार में कुछ भी नहीं जो औषध न हो—मीठा शब्द या कड़वी गाली, धूप में बैठना या पानी में डुबकी लगाना, सुख-मय या दुःखमय घटनाएं, जो कुछ भी शरीर या मन को प्रभावित कर सके उसमें औषधत्व है।"

समन्वय का प्रश्न

"ऐलोपैथी का तंग और बेलचक ढांचा ऐसा नहीं कि इसमें इतर विज्ञान के सिद्धांत सरलता से खप सकें। होमियोपैथी को जर्मनी, अमेरिका और अन्य कई पाश्चात्य देशों ने सम्मानित चिकित्सा प्रणाली घोषित किया हुआ है। यह शताब्दियों से ऐलोपैथी के साथ-साथ वहाँ चल रही है। बड़े-बड़े ऐलोपैथिक उपाधि प्राप्त डाक्टर कई बार ऐलोपैथी छोड़ कर होमियोपैथ बन गये हैं। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी अपने देश में अपने घर में ऐलोपैथी होमियोपैथी जैसी सरल चिकित्सा प्रणाली को हजम करके अपना अंग नहीं बना सकी। नैसर्गिक चिकित्सा के सम्बन्ध में भी ऐलोपैथी की यही कथा है। परन्तु आयुर्वेदिक प्रणाली के सिद्धांत

ऐसे खुले हैं कि कोई भी चिकित्सा प्रणाली ऐसी नहीं जिसके सिद्धांतों का अनायास ही और स्वाभाविकता से इसमें अन्तर्भाव न हो सके। उपशय का प्रथम सूत्र ही यह स्पष्ट कर देगा :—

हेतु व्याधि विपर्यस्त विपर्य्यस्तार्थकारिणाम्।
औषाधान्न विहाराणामुपयोगं सुखावहम्।
विद्यादुपशयं व्याधेः।

"इस सूत्र में जो नहीं है वह कहीं भी नहीं। कीटाणु विज्ञान, अंतस्स्रावविज्ञान, आहारविज्ञान, मानसिक चिकित्सा, कोई भी आधुनिक शास्त्र ऐसा नहीं जिसके समन्वय से एक भी आयुर्वेदिक सिद्धांत का खंडन हो या जो सिद्धांत रूपसे पहले ही आयुर्वेद का अंश न हो। उदाहरणार्थ आयुर्वेद ने १६ प्रकार के स्वेद लिखे हैं। समन्वय में हम लिख सकते हैं कि स्वेद १९ प्रकार के होते हैं और उनमें इन्फ्रारेडरे, अल्ट्रावायोलेटरे और डीप एक्सरे इन तीन रश्मियों को जोड़ सकते हैं, किसी वैद्यक सिद्धांत की क्षति नहीं होती। होमियोपैथी 'हेतु व्याधि विपर्यस्त विपर्य्यस्तार्थकारी' सूत्र का ही एक परिवर्द्धित संस्करण है। कीटाणु और कीटाणुनाशक द्रव्य स्वयं ही आयुर्वेद का तीन सहस्र वर्ष पुराना पाठ है। जहाँ 'जन्तवोऽणवः' और 'सौक्ष्म्यात्-भवन्त्यदृश्याः' पाठ हैं वहां आधुनिक जन्तु गणना और वर्गीकरण का समावेश स्वाभाविक और शास्त्र विरोधी होगा। पैनिसिलिन तथा अन्य लाभकारी विदेशी औषध जब तक आयुर्वेद के

प्रयोगः शमयेद्व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत्॥

इस सिद्धांत का विरोध न करें तब तक वैसे ही हमारे द्रव्य गुण का स्वाभाविक अङ्ग बन सकती हैं जैसे पारसीकयमानी बनी।

"कुछ डाक्टरी औषध इस नियम का भंग करती हैं उनको छोड़ दिया जा सकता है। नवीन व्याधियों का समावेश भी वैसे ही हो सकता है जैसे कि फिरंग रोग का भाव प्रकाश में हुआ। शरीर और शल्य आयुर्वेद से भिन्न नहीं हैं। आपने १९३८ की आयुर्वेदिक प्रदर्शनी में वह १२५ शल्य शस्त्र देखे होंगे जिन का प्रयोग आज से तीन हज़ार वर्ष पूर्व भारतवर्ष में था। उनकी संख्या बढ़ा कर समयोचित की जा सकती है। ईसा मसीह से ६०० वर्ष पूर्व सुश्रुत ने भारतवर्ष में शवच्छेद किया। पश्चिम में सर्वप्रथम शवच्छेद यूनान में इससे ३०० वर्ष पश्चात् हुआ। कोई शाखा विज्ञान की ऐसी नहीं जिसको पचाने के लिये आयुर्वेद को अपना वास्तविक स्वरूप जरा भी बदलना पड़े।

"परन्तु ऐलोपैथी की यह परिस्थिति नहीं। उदाहरणार्थ उपवृक्क ग्रंथि की क्रिया अथवा गलग्रंथि की क्रिया को पैत्तिक क्रिया कहना उचित ही है और एड्रीनलीन

और थाइरॉयड एक्स्ट्रैक्ट—जो कि इन्हीं ग्रंथियों की उपज हैं—को भी पैत्तिक स्राव या पैत्तिक द्रव्य कहना सर्वथा उचित और निर्भान्त है परन्तु पित्त जो कि एक भौतिक-शारीरिक-मानसिक जीव-धातु-क्रिया-समूह है किसी प्रकार भी एड्रीनल ग्लैंड या थाइरायड ग्लैंड में समाविष्ट नहीं हो सकता। धूप या गर्मी पैत्तिक क्रियाओं पर और थाइरायड की क्रिया पर एक ही प्रभाव डालती हैं। क्रोध पित्त वृद्धि भी करता है और अड्रीनल ग्रन्थियों की उत्तेजना करके रक्त में अड्रीनलीन की वृद्धि भी पित्तप्रकृति व्यक्ति और अड्रीनल विशिष्ट व्यक्ति दोनों क्रोधी होते हैं। पैत्तिक आहार और औषध उत्तेजक होते हैं अड्रीनलीन भी उत्तेजक है। इस प्रकार एक-दोषीय वर्ग के विभिन्न द्रव्यों के साम्य को आप कितना भी बढ़ाते चले जाइये। फल एक ही होगा। आयुर्वेद के विद्यार्थियों को यह पढ़ाना आसान होगा कि एड्रीनल ग्रन्थियाँ और थाइरायड ग्रंथि वास्तव में पैत्तिक ग्रंथियाँ हैं, पित्तनाशक औषधान्न विहार से उनका क्रियाह्रास होगा, पित्तवर्द्धक औषधान्न विहार से वह उत्तेजित होंगी और उनकी क्रिया में वृद्धि होगी। परन्तु यह कभी संभव नहीं होगा कि भौतिक (धूप, अग्नि आदि), शारीरिक (पाचक, भ्राजक आदि) और मानसिक (क्रोध, शौर्य आदि) क्रियाओं के संपूर्ण पैत्तिक क्षेत्र का समावेश तंग ऐलोपैथिक क्षेत्र में कहीं भी हो सके।

विशालतर क्षेत्र और उच्चतर समयोपयोगिता

आयुर्वेद की नैसर्गिक चिकित्सा अर्थात् पञ्चकर्म का लाभ व्याधि के सामान्य क्षेत्र से भी आगे तक पहुँचता है। अन्य कोई उपचार भी ऐसा नहीं जो इतने थोड़े समय में इतनी दृढ़ता से मनुष्य की स्वाभाविकी रोग-प्रतिबन्धिकी शक्ति का निर्माण करता हो। संसार में कहीं भी किसी प्रणाली में भी शरीर के निर्विषीकरण, शोधन और पुनर्निर्माण करने वाली ऐसी पद्धति नहीं। व्याधि और स्वास्थ्य में आधुनिक विषैली औषधों से होने वाले नाडीदौर्बल्य और बलक्षय आदि में यह विशेष लाभप्रद है। यदि अन्य किसी प्रयोजन के लिये नहीं तो आधुनिक चिकित्सा से होने वाली मन और शरीर की क्षति को दूर करने के लिये ही इस पद्धति को जीवित रखने की आवश्यकता है।

नवजात व्याधियों पर आयुर्वेद की प्रतिक्रिया और अवसर अनुकूलता बहुत विचित्र है। जब लगभग चौदहवीं शताब्दि में फिरंगियों ने भारतवर्ष में सिफिलिस का प्रवेश किया तो उनके आक्रमण के बाद लिखी गई पहली ही पुस्तक भाव प्रकाश में इस व्याधि का फिरंग रोग अर्थात् पोर्चुगीज की व्याधि के नाम से समावेश कर लिया गया। सर्वथा आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का अनुसरण करते हुए लेखक (काशी के भावमिश्र) ने इस व्याधि के निराकरण के लिये पारद और मल्ल के योग सुधानिधि रस का निर्माण किया! इसके सौ वर्ष से भी अधिक पीछे जाकर जर्मन

वैज्ञानिक ऐलरीख ने इसका कीटाणु अलग किया और यह खोज की कि मल्ल इसके नाश में सर्वोत्कृष्ट औषध है । यह उस समय की बात है जब इंग्लैण्ड में फिरंग को लार्ज पॉक्स़ (large pox) का नाम दिया जाता था ।

जब क्विनींन अपने साथ सिन्कोनिज्म (कर्णनाद, वाधिर्य्य, शिरोभ्रम, क्षीणता आदि) लाई तो सबसे पहले आयुर्वेद ने क्विनाइन विषजनित उपद्रवों की शान्ति के लिए घृत-दुग्ध का सर्वोत्कृष्ट उपचार आविष्कृत किया । यह आज भी इस उपद्रव में अन्य सब उपचारों से उत्कृष्ट है। अति विषैली आधुनिक औषधों से हृदय, वृक्क, यकृत, नाड़ी संस्थान तथा शरीर के अन्य अवयवों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव से बढ़ा हुवा रक्तचाप भी पंचकर्म द्वारा विश्राम और स्वेदाभ्यङ्गादि से ही ठीक होने लगा और आयुर्वेद की साधारण औषध सर्पगन्धाका निर्विवाद राज्य सभी डाक्टरों के व्यवस्था पत्रों पर रहा जबकि उनके द्रव्य गुणशास्त्र और चिकित्साग्रन्थ इसके नाम से भी परिचित नहीं थे।

आयुर्वेद का आग्रह है कि रोगी की व्ययस्था करते समय देश, काल, बल, वय, सत्व, सार आदि भावों पर पूर्ण विचार कर लिया जाए । व्याधियां भिन्न-भिन्न रोगियों में उसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करती हैं जैसे एक ही औषध भिन्न प्रकृतियों पर भिन्न प्रभाव दिखाती है। चरक का कथन है कि व्याधि, औषध और रुग्ण शरीर इन तीन के स्वभाव को ठीक रूप से जान लेना व्याधि का नाम जानने की अपेक्षा कहीं अच्छा है। एक ही जाति में एक ही व्याधि हजारों वर्षों के पश्चात् दूसरा रूप धारण कर सकती है। विसूचिका और कॉलरा यद्यपि एक ही व्याधि के दो नाम हैं परन्तु युग भेद से उनके वर्णनों में थोड़ा बहुत अन्तर आ ही गया है। डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार के निम्नलिखित वाक्य ध्यान देने योग्य हैं :—

“क्या विसूचिका कॉलरा का प्राथमिक पूर्वज है ? क्या व्याधि क्षेत्र में भी चेतन-क्षेत्र की भांति विकास द्वारा परिवर्त्तन होता है ? यह प्रश्न ऐसा है कि इसका उत्तर बहुत सावधानी और खोज के अनन्तर दिया जाना चाहिए । क्योंकि इसका उत्तर यदि हां में हुआ तो इससे रोग निरोध और रोग चिकित्सा के सामने एक सर्वथा नवीन क्षेत्र खड़ा हो जाएगा।” (कलकत्ता जर्नल ऑफ मैडिसिन, जून-जुलाई १८३३)।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आयुर्वेद की नव विकसित रोग दशाओं को तत्काल संभालने की योग्यता और जीवित रहने की सुदृढ़ क्षमता ही वह गुण हैं जिनके कारण कैरल और वाकर जैसे प्रख्यात पाश्चात्य चिकित्सक इसकी ओर आदर और आशा की दृष्टि से देखते हैं । इसकी रोग निरोधक और रोग निवारक शक्ति, इसकी अवसरानुकूलता और अज्ञात कारण व्याधियों पर ठीक उतरने का गुण, इसकी अनायास ही दूसरी प्रणालियों को अपने अंगीभूत कर लेने की योग्यता, इसका

रोग और स्वास्थ्य में संयुक्त शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक व्याख्या का प्रयोग इसे विज्ञान, चिकित्सा और समाज के क्षेत्र में एक विलक्षण प्रणाली के रूप में बहुत ऊंचा स्थान प्रदान करते हैं।

केन्द्रीय सरकार का अयुक्त व्यवहार

यह देखते हुए कि देश के भीतर और बाहर आयुर्वेद का कितना मान है आयुर्वेद के प्रश्न पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू और उनकी सरकार की स्थिति समझ में आना कठिन है। इस समय की सरकारी नीति कम से कम १७ ऐसी सरकारी कमेटियों की सिफारिशों के विरोध में चलाई जा रही है जिनकी सदस्यता में सदा डाक्टरों का ही प्रभूत आधिक्य रहा। आयुर्वेद विरोधी नीति की समर्थक वक्तृताओं की सदा एक ही टेक रहती है—आयुर्वेद का समर्थन केवल इस लिए नहीं किया जा सकता कि यह सस्ता है यद्यपि हम निरन्तर प्रतिरोध करते हैं कि हमको आयुर्वेद के लिये समर्थन केवल उसके सस्ते होने के बलपर नहीं चाहिये। हमने तो अपनी स्थिति आज से बहुत पहले १९३८ में महा-सम्मेलन के बम्बई के अधिवेशन में ही स्पष्ट कर दी थी जब यह निश्चय किया था कि—

> आयुर्वेद के पक्ष में ऐसे प्रमाण नहीं देंगे जैसे कि इसकी 'भारतीय उत्पत्ति', 'महान भूत,' 'धार्मिक पवित्रता,' 'सस्तापन,' 'राष्ट्रीय लाभ,' इत्यादि। यह इस लिये नहीं कि यह भाव सर्वथा भुला देने चाहियें या भुलाये जा सकते हैं परन्तु इसलिये कि कुछ व्यक्ति इन्हें अत्यधिक दोहराते हैं और दूसरे अत्यधिक अत्यधिक नापसन्द करते हैं।"

जिस भाषण से यह उद्धरण लिया गया है वह केवल अंग्रेजी में ही पांच संस्करणों में छपा। इसके अतिरिक्त जिन बहुत सी प्रान्तीय भाषाओं में छपा उन्हें छोड़ दीजिये। यह देखते हुए कि रेडियो विभाग और सरकारी प्रचार विभाग हमारे पास नहीं, इससे अधिक प्रचार हम इस स्पष्टीकरण का कर भी क्या सकते थे। जो प्रश्न हम लोग उठाते हैं उनको बराबर टालते रहना और जो प्रश्न हमने नहीं उठाए उनका स्वयं ही निरन्तर खण्डन करते रहना चिकित्सा को नीतिक्षेत्र में घसीट लाना है जो सर्वथा अन्याय है।

माननीय पण्डित नेहरू

मेरी तीव्र अभिलाषा है कि हमारे प्रधान सचिव पंडित जवाहरलाल नेहरू यह जान सकें कि यद्यपि उनकी महानता, उनकी सत्यप्रियता, उनके बलिदान और उनका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व हमारे लिये बल और गौरव के कारण हैं तो भी वह उन विषयों पर जो उनके ज्ञान के क्षेत्र से बाहर हैं अनजानी बातें कह कर उसी सत्य की जड़ खोदते हैं जिसकी रक्षा वह स्वयं करना चाहते हैं।

जो व्यक्ति अपनी आंखें खुली रख कर देखते हैं उनके लिये देश भर में प्रतिदिन ही आयुर्वेद की योग्यता और प्रामाणिकता का निरन्तर प्रदर्शन हो रहा है। केवल साधारण रोगी तक ही नहीं किन्तु आधुनिक उन्नति और 'अद्भुत' औषधों से की गई भीषण हानियों के शिकारों तक भी आयुर्वेद के शुभ फल की पूर्ण पहुँच है। वह शुभ फल "कुछ बहुत अच्छी पुरानी दवाइयों" के केवल मात्र प्रयोग से प्राप्त नहीं हो जाता जैसा कि मिनिस्टरों के भाषणों में प्रायः कहा जाता है किन्तु एक विशेष पद्धति द्वारा चिकित्सा करने से प्राप्त होता हैं। मैं यह कथन शीघ्र ही तीन ऐसे रोगियों के वर्णन द्वारा स्पष्ट करूंगा जिनमें बिना पद्धत्यनुसार चिकित्सा किये केवल अनुभूत औषध कुछ भी गुण नहीं कर सकती थी। इन दैनिक घटनाओं में "उन्नत" विज्ञान "अवनत" विज्ञान से क्यों पिछड़ता रहता है? वास्तव में वह अपनी आकर्षण शक्ति के सामने दूसरी प्रणाली को रोगी को रोक रखने ही क्यूं देता है? अब तक तो "उन्नति" को हमें इतना पीछे छोड़ जाना चाहिए था कि हम रोगी के ध्यान में भी नहीं आने चाहिएं। इसके विरुद्ध हम देखते हैं कि उच्च कोटि के डाक्टर तक भी प्रसन्नता से हमें वह आदर प्रदान करते हैं जो केवल हमारे कुछ नेता ही देने को तैयार नहीं होते। दिल्ली में जब गत आयुर्वेद महासम्मेलन हुआ उसमें जो जनता के लिये आयुर्वेद के स्पष्टीकरण के लिए खुले व्याख्यान हुए उनमें से एक व्याख्यान देने वाले वैद्य को भारतवर्ष में आए हुए एक अमरीकन डाक्टर ने जो उन दिनों दिल्ली में था और एक दिन एक भाषण सुन गया था अमरीका जाकर यह पत्र लिखा:—

> "मेरी यह प्रबल इच्छा है कि तुम्हारे संपर्क में रह कर आयुर्वेद के विकास और स्पष्टीकरण में तुम्हारी विचारधारा की अविमलता से लाभ उठाता रहूँ। इसी लिए नौ मास के बाहर के प्रवास से लौट कर दूसरे दिन ही मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ।
>
> "अंग्रेजी भाषा में अपना कोई भी साहित्य आप मुझे भेजेंगे तो उसका मूल्य तुरन्त ही आपको मिल जायगा क्योंकि इसी के लिए मैं लायड बैंक की हार्नबी रोड शाखा में अपना हिसाब छोड़ आया हूँ।" W.S.K., Ph. D., M. D.

एक दूसरे अमरीकन सज्जन, जो पाश्चात्य दर्शनशास्त्रों के आचार्य्य हैं और जिनकी दिलचस्पी केवल आयुर्वेद के दार्शनिक दृष्टिकोण में थी चिकित्सा क्षेत्र में नहीं (यदि ऐसा विभाजन सम्भव हो सकता हो) और जिनकी इस जिज्ञासा का कारण शायद दार्शनिक विद्वान् सर्जन कैरल और वाकर की पुस्तकों के आयुर्वेद की प्रशंसा करने वाले लेख थे, सीधे प्राचीन भारतीय विद्याओं के केन्द्र काशी में पहुँचे। वह कैसे जान सकते थे कि श्री नेहरूजी की काशी और राजा भोज अथवा प्राचीन भारत की राष्ट्रीय विद्याओं के अन्य संरक्षकों की काशी में कितना अन्तर है। इससे भी अधिक काम बिगाड़ने के लिए किसी ने उन्हें "आयुर्वेदिक" कालिज में भेज दिया। मुझे यह मालूम नहीं कि

पंडित जी इस बात को जानते हैं कि नहीं कि विदेशियों की आंखों में आयुर्वेद का महत्व गिराने के प्रयत्न में डाक्टर अधिकारियों के आदेशानुसार चलाये जाने वाले यह सरकारी आयुर्वेदिक कालिज मिनिस्टरों की निन्दात्मक वक्तृताओं से किसी प्रकार पीछे नहीं। यह सज्जन बहुत निराश होकर बम्बई पधारे और एक समाज सेवक से शिकायत की कि भारत वर्ष से बाहर के विद्वान् तो आयुर्वेद को बहुत कुछ समझते थे, यहां आकर देखा तो यह केवल एक ढकोसला निकला। सौभाग्यवश यह व्यक्ति उसे आयुर्वेद के संबंध में सरकार की पाश्चात्य मनोवृत्ति की वास्तविक परिस्थिति समझा सके और उसे सलाह दी कि वह यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टिटच्यूट के आयुर्वेद विभाग में जाकर वहां आने वाले वैद्यों से अपनी जिज्ञासा की पूर्ति करें। वह इन्स्टिटच्यूट में आए। फिर एक आयुर्वेद सम्मेलन में भी गए और उन्होंने प्रकृति-पुरुष सिद्धान्त तथा आयुर्वेद के सृष्टि संबन्धी कई सिद्धान्तों पर घण्टों चर्चा की। इस प्रकार सरकारी अधिकारियों के अज्ञानपूर्ण, सहानुभूति रहित, जल्दबाज और विचारहीन व्यवहार और सरकारी आयुर्वैदिक संस्थाओं की कृत्रिम अयोग्यता द्वारा एक विदेशी जिज्ञासु के मन में देश की विद्या के विरुद्ध डाले गए सर्वथा असत्य और अवांछित विचारों के निराकरण का कार्य इक्के-दुक्के व्यक्तियों ने संभाला।

एक इङ्गलिश महिला, डारोथिया चैप्लिन ने अपनी पुस्तक "हिन्दु चिकित्सा प्रणाली के कुछ पहलू' (Some Aspects of Hindu Medical Treatment) में यह बतला कर कि बहुत कम अन्य प्रणालियों के चिकित्सकों की प्रैक्टिस इतनी बड़ी होती है (जितनी कि वैद्यों की) यह प्रश्न पूछा है, "वह ऐसा किस प्रकार कर सकते हैं यदि वह रोगी को वह वस्तु न दे सकें जिसकी उसे सबसे अधिक मांग है। अर्थात् रोग निवृत्ति ?"

जरा अपने घर के समीप (और ईश्वर के समीप भी) आएं तो मैं पंडित जी को महात्मा गांधी के निम्नलिखित शब्द पढ़ाना चाहता हूं जो उनके उस पत्र से उद्धृत किए गए हैं जो उन्होंने आगाखान जेल से १८ फर्वरी १९४४ को इंस्पैक्टर जनरल आफ प्रिजन्ज, पूना को लिखा :—

"मैं यह सखेद कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि वैद्यराज और डाक्टरी महता की सेवाएं मुझे प्राप्त होने के लिए की गई मेरी प्रार्थना को स्वीकार करने में इतना सर्वथा परिहार्य्य विलंब न होता तो रोगिणी (श्री कस्तूरबा) की अवस्था कदाचित भय चिन्ह के इतनी समीप न होती जितनी कि आज है। मैं अच्छी प्रकार जानता हूं कि ईश्वरेच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होता परन्तु मनुष्य के पास जो फल उसे नजर आते हैं उनके सिवाए उस इच्छा के स्पष्टीकरण का अन्य कोई साधन नहीं।"

एलोपैथों द्वारा किए गए उपचार के इस विरोध का महत्व तब स्पष्ट होता है जब यह ध्यान में रखा जाए कि उपर्युक्त दोनों चिकित्सकों में एक भी ऐलोपैथ नहीं।

जिन तीन रोगियों की बात ऊपर कही थी उनकी कथा नीचे लिखता हूँ :--

१. एक पचास वर्ष से ऊपर की आयु का संन्यासी तीन वर्ष पहले घोड़े पर से गिरा। गिरने के दिन से उसकी मल त्याग करने की शक्ति नष्ट होगई। उसको वस्ति द्वारा प्रभूत जलीय द्रव्य लेने से ही मल त्याग होना था और वह प्रतिदिन वस्ति (अनीमा) लेता था। इसके अतिरिक्त उसे चोट के स्थान पर पीड़ा भी तीन वर्ष से ही निरंतर चली आ रही थी। उच्चतम आधुनिक चिकित्सा उसे अच्छा करने में असफल हो गई। मल को बाहर फेंकने वाले भाग में आने वाली नाड़ी की क्रिया नष्ट हो जाने के कारण दोष स्थायी हो गया है यह निर्णय दे दिया गया। केवल चौदह दिन की आयुर्वेदिक चिकित्सा ने (जिसमें प्रधान उपचार पंच कर्म के अनुसार पिण्डस्वेद था और उसके साथ के ही गन्धर्वहस्तादिक्वाथ, बृहद्वात चिन्तामणि आदि अन्य चिकित्सांश थे) उसकी पीड़ा शान्त कर दी। पन्द्रहवें दिन रोगी ने वस्ति का स्थायी रूप से त्याग कर दिया। 'इस रोगी का सम्पूर्ण वृत्त यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टिट्यूट में सुरक्षित है जहां रोग निदान और रोगी का स्वस्थ होना डाक्टरी विशेषज्ञों द्वारा ही रजिस्ट्रों में लिखा जाता है (अन्य प्रणालियां केवल चिकित्सा रिकार्ड करती हैं या अपनी सुविधा के लिए रोग निदान आदि भी)।

२. एक देवी, जिनको आजीवन विचर्चिका और शीतपित्त रही, की चिकित्सा एक्सरे द्वारा की गई। विचर्चिका को तो लाभ नहीं हुआ परन्तु जहां एक्सरे का संपर्क हुआ था वहां एक रोपण न होने वाला व्रण हो गया। भारत के उच्चतम चिकित्सा, शल्य और चर्म्मरोग के विशेषज्ञों के दीर्घकालीन प्रयत्न निष्फल हो गए। पाश्चात्य सिद्धांत के अनुसार एक्सरे द्वारा बाह्यस्तर (Epitheliun) जल जाने पर रोपण हो सकने वाले कोषाणु नष्ट हो जाते हैं और फिर व्रण रोपण संभव ही नहीं रहता। आयुर्वेदिक उपचार में यह व्रण लगभग दसवां भाग रह गया है। विचर्चिका सर्वथा निर्मूल हो गई है। इस रोगिणी का उपचार देश के उच्चतम डाक्टरों ने किया था, इसके ऊपर सब एण्टी बायोटिक (पेनिसिलिन, ओरियो माइसिन आदि) और सब एण्टी हिस्टामीन (बेनड्रिल आदि) बुरी तरह निष्फल हुए। रोगिणी को चर्मसन्धान (grafting) के लिए अमरीका भेजा जा रहा था और साथ में यह "आश्वासन" भी यहीं दे दिया था कि शायद सन्धान के अनन्तर नवीन चर्म्म गात्र को न पकड़ सके! इस चिकित्सा का प्रामाणिक वृत्त यूर्निवर्सल हैल्थ इन्स्टिटच्यूट के रिकार्ड के लिए तैयार किया जा रहा है।

३. आस्टिन पी० बम्बई के सब से फैशनेबल स्थान पर प्रैक्टिस करने वाले एक लोकप्रिय डाक्टर के १५ वर्षीय पुत्र को (१) श्वासरोग के तीव्र वेग पड़ते थे जिनपर अड्रीनलीन और एफेड्रीनीका प्रभाव पड़ना बिल्कुल बन्द हो गया था, (२) तीव्र ज्वर होता था जिसपर पेनिसिलिन कोई प्रभाव नहीं करती थी, (३) तीव्र पाण्डुरोग

(शेष पृष्ठ ४१० पर)

गोमूत्र और यूरिया
(COW'S URINE AND UREA)

[ले०—आचार्य सुरेन्द्रमोहन बी० ए०, करौलबाग, देहली]

[आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहने वालों की कमी नहीं है परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि एलोपैथी आयुर्वेद का अनुसरण कर रही है, यद्यपि एक विशेष मार्ग से। यह एक कटु सत्य है। एक समय था जब वैद्य शोथ रोग में लवण का निषेध करते थे और डाक्टर हंसते थे। पर, आज वे भी इस सत्यता को मानने लगे हैं कि शोथ में लवण देने से रक्त पतला होता है और शोथ बढ़ती है। "लवणोऽभिष्यन्दी" चरक के इस वाक्य का गूढ़ अभिप्राय विद्वान् लेखक के शब्दों में नीचे पढ़िये।]

गोमूत्र के प्रयोग से सभी वैद्य सुपरिचित हैं। यह तरल धातूपधातु, विषोपविषादि की शोधन क्रियाओं में बहुधा प्रयुक्त होता है। गोमूत्र कृमिनाशक (Antiseptic) होने से व्रणों के धावनार्थ, और कुष्ठ, कण्डू, पिड़िकादि में अन्य विशिष्ट औषधों के साथ मिलाकर लेपार्थ भी प्रयोग में लाया जाता है। किंचिदम्ल रस होने से व्रणों को कुछ लगता भी है। पूतिकर्ण वा कृमिकर्ण रोग में गोमूत्र से पिचकारी करके कर्ण में पुनः क्षारतैलादि का व्यवहार किया जाता है। इन सब कार्यों में गोमूत्र प्रातः काल का और प्रतिदिन ताज़ा लेना चाहिये। २—३ दिन तक पड़ा रहने से गोमूत्र दूषित हो जाता है। ग्रामों में वैद्य प्लीहा, यकृत् आदि की वृद्धि तथा उदररोग और शोथादि में रोगियों को गोमूत्र पिलाते हैं।

धातुशोधन विषयक निम्न प्रमाण सुविदित है :—

तैले तक्रे गवां मूत्रे कांजिकेऽथ कुलत्थजे।
तप्ततप्तानि सिंचेत तत्तद्द्रावे च सप्तधा।
एवं स्वर्णादिलौहानि शुद्धिमायान्त्यसंशयम् ॥

(रसेन्द्रसारसंग्रह)

तैल, तक्र, गोमूत्र और कुलत्थ की कांजी में पृथक्-पृथक् सात बार स्वर्णादि धातुओं को सुतप्त करके सिंचन करे। इस से यह धातु शुद्ध होकर गुणकारी होते हैं। तक्र, गोमूत्र और कांजी अम्ल (acidic) होने से धातुओं के मलों को लीन करके उन्हें शुद्ध (Free from impurities) कर देते हैं। तैल भी कई प्रकार के क्षारीय दोषों को लीन कर लेता है। धातुओं के मल सुतप्तावस्था में गोमूत्र आदि में शीघ्र विच्छिन्न होते हैं, अतः "तप्ततप्तानि सिंचेत" ऐसा आदेश किया।

विषशोधन

विषभागांश्चणकवत्स्थूलान् कृत्वा तु भाजने ।
तत्र गोमूत्रकं दत्त्वा प्रत्यहं नित्यनूतनम् ॥
शोषयेत् त्रिदिनादूर्ध्वं धृत्वा तीव्रातपे ततः ।
प्रयोगेषु प्रयुंजीत भागमानेन तद्विधम् ॥

(रसेन्द्र०)

विष (वत्सनाभ–Aconite) को खण्डित करके गोमूत्र में रखे। प्रतिदिन ताजा गोमूत्र डाले। पिछला फैंके दे वा मरिचादि तैल के पकाने में काम लावे। ३ दिन पश्चात् विष को जल से धोकर तीव्र धूप में शोषण करे। तब उसे चूर्ण करके व्यवहार करे।

गोमूत्र वत्सनाभ के उग्र विष को लीन कर लेता है, एवं शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण मृत्युंजय रस आदि में प्रयोग करने से स्वेद (Sweats) लाकर ज्वर को उतार देता है। गले को नहीं पकड़ता और हृदय को हानि नहीं पहुँचाता।

मण्डूरशोधन

दग्ध्वाक्षककाष्ठै र्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ।
विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण कुंभाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥

(रसेन्द्र०)

अक्षक (बिभीतक) के काष्ठ को जलाकर मण्डूर को सुतप्त करके गोमूत्र में आठ बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है। पुनः उसे सूक्ष्म करके मधुसहित चाटने से कुंभ-कामलादि यकृद्रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

गोमूत्रसार जो मण्डूर में मिला रहता है वही उसे अधिक गुणकारी बना देता है।

पुनर्नवादि मण्डूर

यह चरकोक्त महौषध सुविख्यात है। इस में भी कुछ विचारणीय बात है :–

पुनर्नवा त्रिवृद्व्योषविडंगं दारु चित्रकम् ।
कुष्ठं हरिद्रे त्रिफलादन्ती चव्यं कलिङ्गकाः ॥
कटुका पिप्पलीमूलं मुस्तं चेति पलोन्मितम् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाद्गोमूत्रे द्व्याढके पचेत् ॥
कोलवद्गुलिकाः कृत्वा तक्रेणालोड्य ना पिबेत् ।
ताः पाण्डुरोगान् प्लीहानमर्शांसि विषमज्वरम् ॥
श्वयथुं ग्रहणीदोषं हन्युः कुष्ठं क्रिमींस्तथा ॥

(च० चि० अ० १६)

इस पाठ में पुनर्नवादि २० द्रव्यों का समान चूर्ण अर्थात् १-१ तोला लेकर समस्त २० तोले मण्डूर भस्म (जो गोमूत्र, त्रिफलादि से शोधित, पुटित और सूक्ष्म चूर्णीकृत हो) द्विगुण अर्थात् ४० तोले ले। पहिले मण्डूर भस्म को अष्टगुण ताजा गोमूत्र में किसी लोहपात्र (कड़ाही) में मृदु आंच से पकावे। उसे लोहे की खुरपी से हिलाता रहे। जब गोमूत्र और मण्डूर आसन्नपाक हों, अर्थात् विलेपीवत् गाढ़े हो जावें, तो कड़ाही को नीचे उतार कर पुनर्नवादि चूर्ण २० तोले (उपर्युक्त २० द्रव्य) को उसमें डालकर मिला दें। शीत होने पर २४ घण्टे खरल करें, ताकि मण्डूर और अन्य द्रव्यों का सम्यक् मिश्रण हो जावे। जितना मर्दन करेंगे, उतना गुण बढ़ेगा—"मर्दनं गुणवर्धनम्।" मर्दन करते समय थोड़ासा जल डाल दें, तो वस्तुओं के मेल में सहायता होगी।

यह औषध यकृत् और प्लीहा के विकारों पाण्डु, कामला, कुंभकामला, अर्श, सर्वांग शोथ, उदर, ग्रहणी, रक्तविकारादि में १ से ४ रत्ती की मात्रा में छाछ, पुनर्नवाष्टक, क्वाथादि अनुपानों से दिन में १ वा २ बार दें। जिन बच्चों का उदर बढ़ा हुआ हो, उनके लिये भी यह परमौषध है।

यह वस्तुतः मण्डूर (लोहकिट्ट) और शुष्क गोमूत्र तथा पुनर्नवादि शोथघ्न वस्तुओं का योगविशेष है।

भैषज्यरत्नावली में पाठ प्रायः चरक से मिलता है। 'गोमूत्रे द्व्याढके पचेत्' के स्थान पर 'गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्ता' ऐसा पाठ मिलता है और यही आजकल सर्वसम्मत है। दोनों में भेद कुछ नहीं। अन्य मण्डूर के योग वज्रवटक मण्डूरादि भी इसी विधि से बनते हैं। गोमूत्र को जला नहीं देना चाहिये, अपितु गाढ़मात्र करके प्रक्षेप डालें।

गोमूत्र पर चरकमत

गव्यं सुमधुरं किंचिद्दोषघ्नं क्रिमिकुष्ठनुत्।
कण्डूलं शमयेत् पीतं सम्यग्दोषोदरे हितम्॥
(च० सू० अ० १)

यह गुण बाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकार के प्रयोगाश्रित हैं। पीने से उदररोगों में विशेषतः हितकर है। एवं चरक और सुश्रुत ने अवि (Sheep), अजा (Goat), महिषादि अनेक पशुओं के मूत्रों का गुणोल्लेख किया है।

मूत्रसामान्यगुणसंग्रहः

चरक ने मूत्रों के सामान्य गुण यूं लिखे हैं :—

उष्णं तीक्ष्णमथो रूक्षं कटुकं लवणान्वितम्।
मूत्रमुत्सादने युक्तं युक्तमालेपनेषु च।

युक्तमास्थापने मूत्रं युक्तं चापि विरेचने।
स्वेदेष्वपि च तद्युक्तमानाहेष्वगदेषु च।
उदरेष्वथ चार्शःसु गुल्मकुष्ठकिलासिषु॥
तद्युक्तमुपनाहेषु परिषेके तथैव च।
दीपनीयं विषघ्नं च क्रिमिघ्नं चोपदिश्यते॥
पाण्डुरोगोपसृष्टानामुत्तमं सर्वथोच्यते।
श्लेष्माणं शमयेत्पीतं मारुतं चानुलोमयेत॥
कर्षोत्पित्तमधोभागमित्यस्मिन् गुणसंग्रहः।

मुझे इसके अर्थ लिखने की आवश्यकता नहीं, पाठक चरक के इन वचनों को ध्यान से पढ़ें। विशेषतः पिछली तीन पंक्तियों पर ध्यान दें।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने मूत्र के गुणों पर कितना अनुसन्धान किया था। 'लवणान्वित' शब्द का अभिप्राय है 'लवणयुक्त'। यह लवण (Salt) वही है, जो मनुष्य व पशु आदि खाद्य द्वारा भीतर लेते हैं। वही वृक्कों द्वारा मूत्र में उत्सर्जन किया जाता है। कटुता यूरिकअम्ल (Uric Acid) के कारण है। इनके अतिरिक्त मूत्र का प्रधान द्रव्य यूरिया (Urea) है। वह भी कटु और तीक्ष्ण गुणयुक्त है।

नवीन मत

नव्य मतानुसार यदि मूत्र को किसी खुले पात्र में डाल दिया जाय, तो जो पिंगल वर्ण पदार्थ शेष रहता है, वह १०० भागों में प्रायः ४½ भाग है, अर्थात् मूत्र में जल ९५·४८ % और ठोस पदार्थ ४·५२ % होता है। इस घनीभूत मूत्र अथवा ठोस पदार्थ का पुनः रासायनिक विश्लेषण (Chemical Analysis) किया जावे, तो निम्न द्रव्य सिद्ध होंगे :—

यूरिया (Urea)	....	...	२·१५	प्रतिशत
यूरिकाम्ल (Uric acid)	...	...	·०३	"
लवण (Salt, Sodium chloride)		...	१·१६	"
चूर्ण (चूना, Lime)	...	...	·०१	"
अन्य पदार्थ	...	....	१·१७	"
		योग	४·५२	

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मूत्र में जल के अतिरिक्त यूरिया (Urea) ही प्रधान द्रव्य है। उस से न्यून लवण है, शेष अत्यल्प मात्रा में पाये जाते हैं। एवं मूत्र क्या है?

मूत्र	जल	९५·४८ %
	यूरियादि	४·५२ %

यूरिया (Urea) B. P.

अब इस यूरिया को B. P. (ब्रिटिश फार्मेकोपिया) में सम्मिलित कर दिया गया है। उसके गुण यों लिखे हैं :—

भौतिकगुण—वर्णरहित स्फटिक, स्वाद में लवण, ५ गुणा जल में घुलनशील। जब यूरिया को रासायनिक विधियों द्वारा मूत्र से पृथक् करते हैं तब यह स्फटिकाकार श्वेत द्रव्य के रूप में मिलता है। जल में शीघ्र घुलता है।

क्रिया

वृक्कों में से गुजरते हुए यूरिया एक अति मूत्रल पदार्थ की तरह क्रिया करता है, अर्थात् इस से मूत्र खुलकर आता है।

चिकित्सोपयोगी गुण

औषधवत् वृक्कशोथ में जहाँ सर्वांग शोथ हो जावे, वहाँ विशेष प्रयोग में लाया जाता है। मात्रा—१५ से ३० ग्राम तक प्रतिदिन। एक ग्राम १५ ग्रेन (७½ रत्ती वा १ माषा लगभग) के तुल्य है। १४–१५ माषे से ३० माषे (२½ तोले तक) यूरिया प्रतिदिन दिया जा सकता है। इसका अर्थ है लगभग एक सेर गोमूत्र का सार।

इसके प्रयोग से मूत्र खुल कर आता है और स्वास्थ्य ठीक हो जाता है।

उपर्युक्त गुण मैंने Materia Medica by Hale and White से उद्घृत किये हैं। यह डाक्टरों का सर्वमान्य ग्रन्थ अंग्रेजी निघण्टु है।

पश्चिमी विद्वानों ने यूरिया का केवल मूत्रल गुण जान कर शोथ में प्रयोग किया है, परन्तु हमारे शास्त्रकार कहीं इससे आगे बढ़ चुके थे। प्लीहा, यकृत्, अर्शः, ग्रहणी, पाण्डु आदि रोगों में गोमूत्र का प्रयोग करते थे। समय आयेगा, जब सम्पूर्ण चरकोक्त गुण डाक्टर मान जावेंगे। वस्तुतः दुर्बलता हमारे वैद्यों की है, जो अपनी चिकित्सा-शैली छोड़कर एलोपैथी के पीछे भागते हैं। हम देखते रहते हैं कि कौन सा नया आविष्कार पश्चिम से आता है, जिसे हम झपटकर प्रयोग में लावें और अपनी आय बढ़ावें। अपने चरकादि ग्रन्थों को बन्द करके हम रख छोड़ते हैं।

सामान्यं वृद्धिकारणम्

वृक्कशोथ (Nephritis) में मूत्र कम आता है, अतः मूत्र वा उसका सार (Urea) का प्रयोग करके मूत्र बढ़ाया जाता है। इसमें चरक का ही उपर्युक्त नियम कार्य करता है, अर्थात् समान द्रव्य से वृद्धि होती है। अन्य शब्दों में "मूत्रं मूत्रेण वर्धते।"

जो लोग गोमूत्र न पियें, उन्हें पुनर्नवादि मण्डूर वा तत्सम योग दिये जा सकते हैं। गोमूत्र में केशर मिलाकर भी कुछ वैद्य पिलाते हैं। पुनर्नवादि द्रव्य यूरिया से मिलकर उसे अधिक गुणकारी बनाते हैं।

एलोपैथी आयुर्वेद की ओर झुक रही है, परन्तु एक विशेष मार्ग से। कभी सम था, जब शोथ में वैद्य लवण का निषेध करते थे और डाक्टर हंस देते थे, परन्तु अ उनके आचार्यों को इसकी सत्यता का ज्ञान हो चुका है और वह मानते हैं, कि शोथ लवण देने से रक्त पतला होता है और शोथ बढ़ती है। चरक ने "लवणोऽभिष्यन्दी" ऐसा कहा है। इसका यही भाव है कि लवण जल बढ़ाता वा क्लेदजनक है। चरक वचनों को समझना चाहिये। हैजा में जहाँ रक्त गाढ़ा होता है, (Saline water, लवणजल) का प्रयोग करते हैं, वहाँ भी यही सिद्धान्त है। कई अंजनों में लवण पड़ता है। नेत्रों में लगाने से पानी निकलता वा नेत्रस्राव होता है। दाल, मांसादि में लव डालकर उबालने से वह शीघ्र पक जाते हैं अर्थात् मृदु हो जाते हैं। लवणभास्करादि के प्रयोग में आमाशय, अन्त्रादि का स्राव बढ़ता है। यह भाव "लवणोऽभिष्यन्दी" का है। नेत्रों में क्लेद होने से नेत्राभिष्यन्द (आँख का दुखना) कहलाता है।

'Standard' आदर्श आयुर्वैदिक औषधियों
के लिए :-

प्रताप
अयुर्वैदिक
फार्मेसी
लिमिटिड
अमृतसर
को
सदा स्मरण रक्खें

उत्तरीय भारत की केवल यही एक फार्मेसी है जिसमें ठीक विधिवत आयुर्वैदिक रस, रसायन, भस्में आसव, अरिष्ट, चूर्ण, गुटिका, अवलेह, और घृत तैलादि समस्त औषधियां पूरे परिश्रम मेहनत और ईमानदारी से तय्यार की जाती हैं।

सूचिका भरण
प्रताप आयुर्वैदिक इन्जैक्शन

फार्मेसी ने वर्षों के परिश्रम अनुसन्धान तथा भारी व्यय से आयुर्वैदिक इन्जैक्शन तय्यार किये हैं, जो शत प्रतिशत सफल सिद्ध हो रहे हैं।

हर प्रकार की आयुर्वैदिक औषधियों और इन्जैक्शनों का सूचीपत्र मंगाने का पता :-

प्रताप आयुर्वैदिक फार्मेसी लिमिटिड.
अमृतसर •

ब्रांचें :- ① आर्य्य समाज रोड करोल बाग देहली .
② तलाब बाजार लुधियाना .

शास्त्रचर्चा

वात पित्त कफ एकाकी द्रव्य हैं या नहीं ?

(लेखकः—बन्सरीलाल साहनी, आयुर्वेदाचार्य, करौल बाग, देहली)

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के पृष्ठ २३६ (मई मास) के शास्त्र—चर्चा स्तम्भ में श्रीयुत बी० डेग्वेकर महोदय का एक विद्वत्तापूर्ण तथा अत्यन्त महत्वशाली लेख दृष्टिगोचर हुआ। लेखक महोदय ने सम्पादक महोदय को इस पर अपने विचार प्रकट करने के लिये कहा है। सम्पादक महोदय ने, इससे पहले कि अपने विचार प्रकट करें, पाठकों के भाव जानने की इच्छा प्रकट की है। इस लिये इस विषय में यथा मति कुछ अपने भाव आप के सामने रखता हूं।

लेख का अवलोकन करते समय हमने “गुणोऽप्यस्ति दोषोऽप्यस्ति” इन दोनों बातों का आश्रय लिया है और देखा है कि गुण तो इस में बहुत ज्यादा हैं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। अब रही दूसरी बात दोषों की। वह यह कि :—

इस लेख में सब से अधिक हमें यह बात खटकी है कि विद्वान् लेखक ने पृष्ठ २३७ पंक्ति २० में महाभारत आदि ऐतिहासिक तथा अन्य पौराणिक ग्रन्थों के प्रति महान् अश्रद्धा प्रकट की है और उन्हें आयुर्वेदेतर कह दिया है। हो सकता है, लेखक महानुभाव की दृष्टि में ऐसा हो, परन्तु जहां तक हमने इतिहास पुराणादि ग्रन्थों का स्वाध्याय किया है हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि महाभारतादि ऐतिहासिक तथा अग्नि-गरुड़ादि पौराणिक ग्रन्थ कभी भी आयुर्वेदेतर नहीं कहे जा सकते, अपितु इन ग्रन्थों को आयुर्वेद तथा आयुर्वैदिक साहित्य का मूलस्रोत—आधारभूत जन्मदाता—ही कहना पड़ेगा। विद्वान् तथा उदार लेखक यदि मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें तो मैं उनका ध्यान आयुर्वेद में वर्णित अनेक कथाओं की ओर ले जाना चाहता हूँ, जिन का जन्म इन ही ग्रन्थों से हुआ है और कहीं से नहीं। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपाङ्ग कहा है। इतिहास पुराणादि ग्रन्थ वेदों का ही व्याख्यान मात्र हैं। अतः आयुर्वेद न तो वेदों से भिन्न हो सकता है और नहीं इतिहास पुराणादिकों से। आयुर्वैदिकसाहित्य में से यदि ऐतिहासिक तथा पौराणिक ग्रन्थों के वचन निकाल दिये जायें तो हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि आयुर्वेद की तिजौरी खाली की खाली ही रह जाये।

सब से पहले आप आयुर्वेद के महान् प्रवर्तक श्री धन्वन्तरि जी महाराज के जन्म तथा आयुर्वेद का प्रादुर्भाव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवों द्वारा तथा भारद्वाज, आत्रेय पुनर्वसु आदि महर्षियों की परम्परा द्वारा सृष्टि पर आना, चरक, सुश्रुत आदि द्वारा इस का प्रसार करना, अश्विनीकुमारों के अद्भुत चिकित्सा कार्य, दक्ष, चन्द्र-पूषा-च्यवन आदि का रोगों

से मुक्त होना, तथा ज्वरादि रोगों की उत्पत्ति की कथाएं, धातु-उपधातु-रस-उपरस-विष-उपविष रत्न-उपरत्न आदिकों की उत्पत्ति का वर्णन आप अपने शास्त्रों में देखें। वहां केवल संकेत अथवा संक्षेप से लिखा होगा। उनकी विस्तृत तथा मौलिक कथाएं आपको ऐतिहासिक तथा पौराणिक ग्रन्थों से ही लेनी पड़ेंगी अन्यथा इन के अतिरिक्त आपका आयुर्वैदिक साहित्य अपूर्ण ही रह जायेगा। इतना तो आपको मान लेने में कोई बाधा नहीं होगी। अब इसके आगे चलिये। प्रत्येक अक्षर आयुर्वेद का पुराणों से लिया गया है यह हमारी निश्चय पूर्वक प्रतिज्ञा है। हमने आयुर्वेद के ग्रन्थों का तथा पुराणों का समन्वयात्मक स्वाध्याय किया है और इसी स्वाध्याय के आधार पर यह प्रतिज्ञा कर रहे हैं। चरक, सुश्रुत ने कहीं कहीं छन्दों की रचना में भेद कर लिया है परन्तु भाव वैसा ही रखा है। वाग्भट ने तो बिना किसी परिवर्तन के अध्यायों के अध्याय आदि से लेकर अन्त तक वैसे ही रखे हैं। पुराणों में एक ही विषय का वर्णन भिन्न-भिन्न स्थानों पर आ जाता है। उसका कारण यह है कि वर्णन करते २ श्रोता के विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देते समय एक ही विषय के वर्णन में कुछ विराम आजाता है। हमारे ग्रन्थकारों ने तत्तद् विषय के उपयोगी श्लोकों का संग्रह एकत्रित कर अपने ग्रन्थों का निर्माण किया और विषयों का तत्तत्स्थान से लाकर संग्रह किया है इसीलिये उन्होंने अपने ग्रन्थों को अपनी कृति विशेष नहीं कहा अपितु "संहिता" कहा है।

वाग्भट आदिकों ने किस प्रकार संग्रह किया है उसको उदाहरणार्थ यहां लिखते हैं।—

सर्वरोगनिदानं च वक्ष्ये सुश्रुत तत्वतः।
आत्रेयाद्यैर्मुनिवरैः यथा पूर्वं मुदीरीतम् ॥१॥
रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधि विंकारो दुष्टआमयः।
यक्ष्मातङ्कगदाबाधाः शब्दाः पर्यायवाचिनः ॥२॥
निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशमस्तथा।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥३॥

निमित्त·········। निदान········· ॥४॥ उत्पित्सु·········। लिङ्गम········· ॥५॥
तदेव·········। संस्थानं········· ॥६॥ हेतु·········। औषधान्न ।.७॥

इत्यादि चौबीस श्लोकात्मक गरुड़पुराण के तीसरे खण्ड के १४६ अध्याय का अक्षरशः अनुकरण हैं। इसके पश्चात् अग्नि पुराण के २८० अध्याय का "धन्वन्तरिरुवाच········इत्यादि १—२, ३२, ३३, ४० से ४६ श्लोक अक्षरशः उद्धृत कर अपना एक अध्याय पूर्ण किया है। इसी प्रकार ज्वर निदान में अग्नि पुराण पूर्व खण्ड के १४७ अध्याय को ज्यों का त्यों उठा लिया है।

ज्वर चिकित्सा में क्रमशः—निम्नलिखित श्लोकों को उद्धृत किया है।

गरुड़ पुराण पूर्व खण्ड प्र० अंश अध्याय १७५ श्लोक १ से १८
,, ,, ,, ,, १७७ ,, ४१, ४२, ४३, ४४,
,, ,, ,, ,, १८३ ,, ११ से १४
,, ,, ,, ,, १८४ ,, ६ ...
,, ,, ,, ,, १८५ ,, ३४
,, ,, ,, ,, १८९ ,, ५, ६, १३
,, ,, ,, ,, १९० ,, ३१
,, ,, ,, ,, १९३ सम्पूर्ण
अग्नि पुराणे ज्वर चिकि० अध्याय २७९ श्लोक ८. ९. १०
२८३. ,, २.
२८९. १ से ७, १४ से १६
२९ से ३४

इसी प्रकार प्रत्येक रोग का समन्वयात्मक चित्रक हमारे पास है। यहां विस्तार भय से लिखना कठिन है। अतः यदि आप को जानने की इच्छा हुई तो हम फिर कभी पूर्ण रूप से आप की सेवा कर सकेंगे।

इतना लिखने का अभिप्राय केवल यह ही है कि आप ऐतिहासिक तथा पौराणिक साहित्य को, जो सब ज्ञान विज्ञान के मूल स्रोत वेदों की विस्तृत व्याख्या मात्र हैं, आयुर्वेदेतर (Non Technical) न कहें।

आपने "कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम्" इस महाभारत की उक्ति को आयुर्वेदेतर जानकर आयुर्वेद में वर्गीकरण का न होना सिद्ध किया है। परन्तु ऐसा नहीं। आयुर्वेद ने स्वयं ही सम्पूर्ण जगत् के 'अग्निषोमात्मक' दो वर्ग बना दिये हैं। यथा—"अग्निषोमीयमिदं जगत्"। अग्नि को पित्त भी कहा है। 'पित्तमेवाग्निः' इस लिये अग्नि वर्ग अथवा पित्त वर्ग एक ही अर्थ वाचक हैं। इस उक्ति के अनुसार जो कुछ भी संसार भर में है वह या तो पित्त वर्ग में आयेगा अथवा सोम (कफ) वर्ग में। कफ को सोम शब्द से भी कहा है। यथा "श्लेष्मा सोमः"। वनौषधियों में भी यही दो वर्ग शीतवीर्य तथा उष्णवीर्य नाम से कहे गये हैं। शरीरस्थ धातुएं भी इसी प्रकार इन दो वर्गों में अवश्य आ जाती हैं। कुछ धातुएं सोम गुण युक्त और कुछ पित्तगुण युक्त। अपने आयुर्वेद के साहित्य में भी इस के समर्थक वाक्य मिलते हैं यथा :—

रक्त में—"अतिरिक्ता गुणा रक्ते वह्नेः।" तथा "पित्तस्य शोणितसमानत्वात्"
रस तथा मेदा में—"मेदस्यपां रसे च"
अस्थि में—"अस्थि पृथिव्यनिलतेजसाम्।"
मज्जा और शुक्र में—"मज्जि शुक्रे च सोमस्य।"

मूत्र में—मूत्रे च शिखिनो गुणाः।"
आर्तव में—"भुवस्तथार्तवेत्वग्नेः।"
क्षीर में—"क्षीरे तथाम्भः।"
शुक्र में—"शुक्रं सौम्यं सितम्।"

यदि पूर्वोक्त वचन "कफ वर्गे……" आयुर्वेदेतर हैं इसलिये मान्य नहीं परन्तु यह तो आयुर्वेद के ही वचन हैं यह तो अवश्य मान्य होने चाहियें। यह वचन भी उन्हीं अर्थों का प्रतिपादन करते हैं अतः तत्सम होने से दोषों के एकाकी न होने को अवश्य सिद्ध करने में सहायक होंगे। और भी देखिये—ओज के गुणों का वर्णन करते हुए अपने ही शास्त्रकारों ने इन दोनों वर्गों का स्पष्ट वर्णन कर दिया है।

यथा :— अष्ट बिन्दुप्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम्।
अग्निषोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितं तु तत्॥

इन वचनों से तो दोनों वर्ग स्पष्ट रूप में सिद्ध हो रहे हैं। द्विरूपं शब्द कह कर दो ही वर्गों का निश्चय कराया है और अग्निषोमात्मक कह कर एक अग्निमय—पित्त वर्ग और दूसरा सोमात्मक—कफ वर्ग।

यह वचन तो स्पष्ट अपने ही शास्त्रों के हैं और आयुर्वेदेतर ग्रन्थों के वचनों को ही पुष्ट कर रहे हैं। ध्यान रहे कि यह आयुर्वैदिक ग्रन्थों में वर्णित शब्द भी पुराणों के ही हैं। और इस से पहले अपनी शास्त्र चर्चा परिषद में जिन शब्दों को आप स्वयं उद्धरण रूप दे चुके हैं अथवा दूसरे उद्धृत शब्दों को मान चुके हैं वह सब पुराणों के हैं। अतः "कफ वर्गे……" शब्दों को भी यथावत् प्रमाण ही मान कर अपने अर्थ की सिद्धि कर लेनी चाहिये। अर्थात् "वात पित्त कफ एकाकी द्रव्य नहीं।" ऐसा मत स्थिर कर लेना चाहिये।

प्र० का० फोन नं० ५६३ स्थापित १८६२ तार—'इन्जेकशन' झांसी

देशमान्य—मिश्रा—आयुर्वेदिक इन्जेक्शन-भारतीय

द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेक्शन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेदिक इन्जेक्शन विज्ञान पुस्तक, षष्ठ संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ॥=) नियमादि मुफ्त मंगायें।

सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २॥) पो० ।=)।

सर्वप्रथम आविष्कर्ता एवं एक मात्र निर्माता—

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू० पी०

वेदान्तर्गत आयुर्वेद विषय

(लेखकः—वैद्यभूषण पं० रामगोपाल शास्त्री मन्त्री नि. भा. विद्यापीठ दिल्ली)

सम्मेलन पत्रिका के जून मासांक में "वेदान्तर्गत रोग संग्रह" नामक मेरा लेख प्रकाशित हुआ था। इस अंक में वेदान्तर्गत आयुर्वेद विषय नाम से गवेषणापूर्ण लेख पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। मूलमन्त्र देने से कई सौ पृष्ठों की पुस्तक बन जाती है और साथ ही मूल वेद मन्त्रों के समझने में भी कठिनाई पड़ती है। इस कठिनाई को अनुभव कर के ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्व वेद के उन-उन स्थानों के पते लिख दिये हैं जिन के अध्ययन से इस ओर अनुसन्धान करने वालों को सुभीता हो। वैसे ये लेख रूक्ष से प्रतीत होते हैं क्योंकि इन में सब की रुचि नहीं; पर जो लोग आयुर्वेद के मूल की खोज करने के इच्छुक होंगे उनके लिये यह लेख बहुत ही उपयोगी हैं। यहां ऋ० से ऋग्वेद उस के मण्डल सूक्त और मन्त्रों के पते से जानें। य० से यजुर्वेद उस में अध्याय और मन्त्रों का पता है। अ० से अथर्ववेद उसमें पहला काण्ड, दूसरा सूक्त और तीसरा पता मन्त्र का जानें।

दीर्घायुष्यम् (दीर्घायु)

य० १२ । १००
य० ३४ । ५०-५२
अ० २ । १३ । १-५
अ० २ । २८ । १-५
,, ८ । १ । १-२१
,, ८ । २ । १-२८
,, १ । ३० । १-४
,, १ । ३५ । १-४
,, ६ । ४१ । १-३
,, २ । ४ । १-६
,, ३ । ११ । १-८
,, २ । ९ । १-५
,, ६ । ११० । १-३
,, ६ । ४७ । १-३
,, २ । २९ । १-७
,, ५ । ३० । १-१७
,, १९ । ६४ । १-४
,, १९ । ६७ । १-७
अ० ७ । ३२ । १
,, ७ । ३३ । १
,, ७ । ५३ । १-७
,, ६ । ७६ । १-४
,, १९ । ६३ । १
,, १९ । ६१ । १
,, १९ । ७० । १

ओषधि वर्णनम्

ऋ० ३ । ५७ । ३
अथर्व ३ । १८ । १-६
य० ५ । ४२-४३
य० २० । ४५
य० २१ । २१
य० २७ । २१
य० २८ । १०, ३३, ४३
,, २९ । १०, ३५
अथर्व ४ । १७ । १-८
,, ४ । १८ । १-८
,, ४ । १९ । १-८

अ० ७ । ६५ । १-३
,, ६ । ५९ । १-३
,, ६ । ९५ । १-३
,, ६ । १०९ । १-३
,, २ । २५ । १-५
,, ४ । १२ । १-७
,, ५ । ५ । १-९
,, ५ । ४ । १-१०
,, १९ । ३९ । १-१०
,, ६ । २१ १-३
,, ६ । १३६ । १-३
,, ६ । १३७ । १-३
,, ६ । १६ । १-४
,, ६ । ३० । १-३
ऋ० १ । ९० । ८
,, १० । ८५ । २-४
,, १ । ९१ । ६
अथर्व १ । ३४ । १-५

रोग चिकित्सा

अथर्व ६ ।-१४ । १-३
,, ६ । १०५ । १-३
,, १ । २२ । १-४
,, २ । ८ । १-५
,, ६ । १३८ । १-५
,, ७ । ७४ । १-४
,, ७ । ७६ । १-६
,, ६ । ८३ । १-४
,, १ । २३ । १-४
,, १ । २४ । १-४
,, १ । २५ । १-४
,, ७ । ११६ । १-२
,, ५ । २२ । १-१४
ऋ० २ । ५० । ११-१३

अथर्व ४ । १३ । १-७
,, १ । १७ । १-४
,, ६ । ४४ । १-३
,, ६ । ५२ । १-३
,, २ । ३ । १-६
,, १ । ३ । १-९
ऋ० १ । ९० । ६
,, १० । ९ । १-२३
अ० ८ । ७ । १-२८
,, ६ । ९६ । १-३
,, ४ । ९ । १-१०
,, ७ । ३० । १
,, ७ ; ७६ । १
,, १९ । ४५ । १-१०
,, १९ । ४४ । १-१०
य० ४ । १
,, ११ । ४७-४८
,, १२ । ७९
,, ३५ । ४
,, १८ । ३२-३४

दैवी ओषध

अ० ५ । २९ । १
ऋ० ८ । १८ । ८
य० २८ । ९
अ० ९ । ८३ । १
अ० ६ । १२४ । १
,, १ । २ । १
ऋ० २ । ३३ । १३

सामुद्रिकौषधम्

अ० ४ । १० । १

खनिजौषधम्

अ० ४ । ९ । ७
,, १ । १६ । २

प्राणिजौषधम्

अ० ३।७।१

यक्ष्म (रोग) नाशनम्

ऋ० १०।१६३।१–६
अथर्व ३।३१।१–११
,, ६।२०।१–३
,, ६।८५।१--३
,, ६।१२७।१–३
,, १।१२।१–४
,, ३।७।१–७
,, ६।९१।१–३
,, १९।३८।१–३
,, २०।९६।६–१०
,, ,, १७–२३
,, १२।२।१–५५
,, ९।८।१–२२
,, २।३३।१–७७

जल चिकित्सा

य० ६।१०, १३. ३०, ३१
य ६।१७, २२, २४, २७--२८
य० ८।२६
अथर्व ६।१२४।१–३
,, ७।८९।१–४
,, १।४।४
,, १।६।४
,, ६।२२।१–३
,, ६।२३।१–३
,, ६।२४।१–३
ऋ० ५।८३।१–१०
,, ७।१०१।१–६
,, ७।१०२।१–६
,, ७।१०३।१–१०
अथर्व ४।१५।१--१६
,, ७।१८।१--२
ऋ० ३।३३।१--१३
,, ७।५०।४
,, १०।७५।१–९
,, ७।६५।३
,, ७।६६।४--६
अ० ७।४०।१--२
ऋ० १।३।१०--१२
,, १।१६४।४९
,, २।३०।८
ऋ० २।४१।१६--१८
,, ६।६१।१--१४
अ० ६।५७।१--३
ऋ० १।२३।१६--२३
,, ७।४७।१--४
,, ७।४९।१--४
,, १०।९।१–९
,, १०।१७।१०–१४
,, १०।१९।१--८
,, १०।३०।१--१५
अ० १।३३।१--४
,, ३।१३।१--७
,, ७।३९।१
,, १९।२।१--५
,, १९।६९।१–४
य० १।१२, १३, २१, ३१
,, २।२, ३४
,, ४।१, १२
,, ५।११
,, १२।३५, ५५
,, १४।८
,, २०।१८--२०

वाजीकरणम्

अ० ४।४।१--८
,, ६।७२।१--३
,, ६।१०१।१--३

गर्भाधानम्

अ० ५।२५।१
,, ६।८१।१--३
,, ६।१७।१--४
,, ७।१११।१
,, ८।६।१--२६
,, २०।९६।११--१६
ऋ० ५।७८।५--९
,, ९।७४।५
अ० १।११।१--६
,, १९।४०।१--४
,, १।१।१--४
,, ६।१०८।१--५

मणिधारणम्

अ० ४।१०।१--७
,, ८।५।१--२२
,, १०।३।१--२५
,, १०।६।१--३५
,, १९।२८।१--१०
,, १९।२९।१--९
,, १९।३०।१--५
,, १९।३१।१--१४
,, १९।३४।१--१०
,, १९।३५।१--५
,, १९।३६।१--६
,, १९।४६।१--७

रक्षोघ्नम्

य० ५।२२
अ० ४।२०।१--९
अ० ६।७।१--३
,, १९।६६।१
,, १।७।१--७

विषनाशनम्

ऋ० १।१९१।१--१६
अ० ४।६।१--८
,, ४।७।१--७
,, ६।१००।१--३
,, १०।४।१--२६
,, ५।१३।१--११
,, ७।८८।१
,, ६।१२।१--३
,, ६।५६।१--३
,, ७।५६।१--८

क्रिमिनाशनम्

अ० २।३१।१--५
,, २।३२।१--६
,, १।८।१--४
,, १।२८।१--४
,, ४।२७।१--१२
,, ५।२३।१--१३
,, ५।२९।१--१५
,, ६।३२।१--३

कृत्यादूषणम् (घातक प्रयोगों को दूर करना)

अ० ५।१४।१--१३
,, ५।३१।१--१२
,, १०।१।१--३२
,, २।१४ १--६

पीडाविनाशनम्

अ० ६।२५।१--३

दुःस्वप्ननाशनम् (बुरे स्वप्नों का नाश)

अ० १६ । ६ । १--११
,, १६ । ५ । १--१०
,, १६ । ७ । १--१३
,, १६ । ८ । १--२७
,, १६ । ९ १--४
,, ७ । २३ । १
,, १५ । ५६ । १--६
,, १९ । ५७ । १--५
अथर्व ४ । ५ । १--७
,, ६ । ९० । १--३
ऋ० १ । १२० । १२
,, २ । २८ । १०
,, १ । १६४ । १--५

अथर्व ६ । ४५ । १--३
,, ६ । ४६ । १--३
,, ७ । १०० । १
,, ७ । १०१ । १
,, ७ । ६९ । १
,, ६ । ४३ । १--३
,, ५ । १६ । १--११
,, ५ । १५ । १--११
,, १ । २ । १--४
,, २ । ७ । १--५
,, १ । १८ । १--४
,, ६ । १३९ । १--५
,, ६ । १८ । १--३
,, ७ । ४५ । १--२
,, ६ । १११ । १--४

वैद्य समाज के लिये स्वर्ण-अवसर

हमारे यहाँ के विशुद्ध आयुर्वेदिक वैज्ञानिक ढंग से बने हुए आयुर्वेदिक इंजेक्शनों को खरीद, दुःसाध्य एवं कठिन रोगों की चिकित्सा कर यश तथा धनोपार्जन कीजिए।

भारत में आयुर्वेदिक इंजेक्शनों की एकमात्र अनुसंधान-शाला—

श्री लक्ष्मी आयुर्वेदिक अनुसंधान भवन, बरुवा सागर (झांसी)।

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)

गोंडल—काठियावाड़—सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे० के० शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४३ वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। ७५ पृष्ठ का हिन्दी सूचीपत्र मुफ्त। अंग्रेजी, गुजराती, उर्दू और भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों व ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपर्युक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

कामावेग के विकारों की सम्प्राप्ति

[ले०—डा० बलदेव शर्मा आयुर्वेदाचार्य, शास्त्री, बी० ए०, एम० एन० एम० एस० (बर्लिन), एम० आई० पी० ए० (वियाना) ४२, मालरोड, महू (मध्यभारत) ।]

(गतांक से आगे)

काम शक्ति की निर्बलता के कारण, चरक ऋषि के मतानुसार, गत अंक में निर्दिष्ट किये गये थे जिनमें प्रथम स्थान भय का है। इसके विविध रूप हैं। जैसे :—

"यह पाप कर्म है", "इसका परिणाम किसी न किसी रूप में ईश्वरीय कोप होगा", "मेरे पाप का लोगों को पता न चल जाये", "मेरे नाम पर धब्बा न आ जाये", "यह कुमारी है उसको गर्भ हो गया तो ?", "वीर्य नाश के कारण मेरा स्वास्थ्य, बल न क्षीण हो जाय" इत्यादि।

वीर्य नाश के कारण दुर्बल हो जाने का भय, प्रायः उन लोगों के मन में घर कर चुका होता है, जो ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य रक्षा के मतवाले होते हैं, प्रत्येक बिन्दु वीर्य पात उनके दिलों में एक क्षोभ सा उत्पन्न कर देता है। बहुत अधिक पुरुष हैं, जिनमें यही भय पौरुष शक्ति की निर्बलता का कारण होता है। एक बार उन्हें यह प्रतीत हुआ कि बस वे अपने पहिले हो चुके वीर्यनाश को विचार कर हताश हो जाते हैं और तभी से उनकी निर्बलता स्थिर हो जाती है।

धर्मनिष्ठ मनुष्यों में तो कई प्रकार की आस्थायें होती ही हैं; परन्तु स्वतन्त्र विचार के व्यक्तियों के हृदयों में भी बाल्यावस्था के जमे हुए कई प्रकार के भ्रम अज्ञात रूप से राज्य करते हैं। किसी गुरु वृद्ध का कहा हुआ वाक्य, किसी की दी हुई दुराशीष या अभिशाप अज्ञात रूप से चित्त में बने रहते हैं और अपना प्रभाव मूढ़ भ्रम के रूप में उत्पन्न करते हैं। जिन लोगों का चित्त परिवार में अधिक अनुरक्त होता है अथवा यूं कहिये कि माता पिता आदि में ही जिनका निर्बल मन सदा आश्रय ढूंढता है उनके मन में छिपे हुए इस प्रकार के भ्रम रूपी भय भी होते हैं।

परन्तु ऐसे भावों के व्यक्ति को तब तक स्वयं ज्ञान नहीं होता, जब तक कि निगूढ मानसिक भावों का भली प्रकार अन्वेषण नहीं किया जाता। यह अन्वेषण व्यक्ति स्वय भी कर सकता है, अथवा इस विज्ञान के जानने वाले विद्वान् की सहायता से भी हो सकता है।

अविश्वास—यह दूसरा कारण है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि पुरुष को अपनी शक्ति में अविश्वास हो तो अन्य कारणों के साथ यह भी एक और कारण हो जाता है जिससे उसकी शक्ति और भी कम हो जाती है। ऐसा अविश्वास प्रायः उस समय से मन में घर कर लेता है, जब से हस्त-मैथुन, वीर्य नाश इत्यादि के हानिकारक प्रभाव के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है। अथवा यदि किसी अन्य—भय, शोक, घबराहट, डर इत्यादि—कारण से अचानक ही पुरुष अपने आप को मैथुन में निर्बल पाता है, तो उस समय से अपनी शक्ति में अविश्वास उत्पन्न हो जाता है।

ऐसे पुरुषों में फिर से विश्वास तभी उत्पन्न हो सकता है, जब उनके उस अस्थायी कारण को ढूंढ निकाला जाय, जिससे कि उनकी निर्बलता का श्रीगणेश हुआ था। उन्हें यह भी समझाना

होगा कि यदि उस समय उन्हें उस अस्थायी कारण के प्रभाव का ध्यान होता, तो उनके मन में इस अविश्वास की नींव ही न बनती।

इन व्यक्तियों में यदि किसी प्रकार फिर से विश्वास उत्पन्न किया जा सके, तो उनमें एक नई शक्ति और नये जीवन का उदय हो सकता है और वे फिर से जवांमर्द बन सकते हैं। चिकित्सकों को चाहिये कि वे वीर्य-नाश, हस्त मैथुन इत्यादि के सम्बन्ध में उनके सामने डरावने चित्र न प्रदर्शित करें। उन्हें यह समझना चाहिये कि ऐसा करने से वह मनुष्यमात्र को एक बड़ी हानि पहुँचाते हैं। उन्हें इस बात का भी ज्ञान होना चाहिये कि "हस्त मैथुन किसी प्रकार भी हानिकारक है" यह सिद्धान्त वैज्ञानिक दृष्टि से बिलकुल असत्य प्रमाणित हो चुका है। हस्त मैथुन करने वालों में इसके बारे में एक पापमय भावना भी उत्पन्न कर दी जाती है, जो उन्हें मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार से रुग्ण बना देती है। यह भावना भी उनके मन से नष्ट कर देनी चाहिये। ऐसे व्यक्तियों में भी फिर से विश्वास उत्पन्न करने के लिये आवश्यक है कि, उन्हें चिकित्सक गण पुरुष की कामशक्ति के मानसिक मूल का तत्व समझायें। इसे समझाने के लिये यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि चाहे कितनी ही अधिक मात्रा में वीर्य नाश हो चुका हो, इससे कामशक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। केवल पुरुष के मन में अथवा बुद्धि में उस शक्ति पर रोक डालने वाली कोई भावना नहीं होनी चाहिये। वीर्य नाश की अति से उत्पन्न की हुई कमी केवल उपयुक्त भोजन और आराम से पूर्ण हो जाती है। विशेष पोषक पदार्थों और औषधियों की तो बिलकुल ही आवश्यकता नहीं होती। इससे स्पष्ट है कि जब अच्छे भोजन और पोषक औषधियों के सेवन करने से भी इस शक्ति की उचित जागृति न हो, तब यह समझ लेना चाहिये कि शक्तिहीनता का कोई मानसिक ही कारण है।

शोक—तीसरा मानसिक हेतु है, जिस से पुरुष या स्त्री की कामवृत्ति दब सकती है।

(अपूर्ण) (सर्वाधिकार सुरक्षित)

रक्त वर्द्धक, दोष-नाशक, पाचक, और शरीर वृद्धि करने वाली सम्पूर्ण शास्त्रीय स्वादु पेय औषध।

सीरप-सुपर-डी-सुकोलिन

क्षय, उरःक्षत, उर्द्धगत रक्तपित, जीर्ण कास, हृदयगत उष्माविरोध तथा शोष रोगों का थोड़े ही दिनों के सेवन से नाश करता है।

सुधा फार्मास्युटिकल वर्क्स ३१२३, गांधी रोड, अहमदाबाद

(३६२ पृष्ठ का शेष)

था जिसमें ऊंचे से ऊंचे आधुनिक उपचार जिस में कि दो बार कां रक्तदान भी सम्मिलित था किये जाने पर भी रक्तकणों की संख्या बीस लाख की गणना की ओर चल पड़ती थी (४) अत्यन्त तीव्र विचर्चिका (eczema) थी जिसमें कि सम्पूर्ण शिर धड़ और टांगों पर एक सूई के अग्रभाग जितना स्थान भी ऐसा नहीं था जो व्याधित न हो जिस से कि सम्पूर्ण शरीर का बाह्यभाग एक कोथयुक्त व्रण बन गया था जिसमें से गाढ़ा स्राव निरन्तर निकलता था। इस युवक बालक को इतने भिन्न कष्टों द्वारा एक काल में ही इस प्रकार पीड़ित देखकर कठोर हृदय डाक्टर भी एक बार तो करुणा से विह्वल हो उठते थे। यह कहने वालों को कि वैद्यों के पास कुछ अच्छे पुराने नुस्खे हैं, यह पहिचानने के लिए किसी विशेष गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता नहीं कि इस अत्यन्त उलझे हुए रोगी को स्वस्थ करने के लिये किसी नुस्खे की आवश्यकता नहीं थी बल्कि इसकी अवस्था पर गंभीर विचार और अंशांश कल्पना करते हुए एक क्रमवान पद्धति द्वारा समय-समय पर नवोत्पन्न अवस्थाओं को योग्यता से संभालते हुए ही इसकी नैया पार लगाई जा सकती थी। रोगी ने आयुर्वेदिक पद्धति के प्रति 'अद्भुत अनुकूलता प्रदर्शित की। उन व्याधियों में जो सर्वथा नवीन अथवा अज्ञात कारणों से उत्पन्न होने लगी हैं आयुर्वेद कितना प्रत्युत्पन्नमति है इसका विशिष्ट प्रदर्शन तब हुआ जब सम्पूर्ण उपद्रवों की संतोषजनक शांति होते-होते रोगी को गत रक्तदान के दिन से कोई एक डेढ़ महीना पश्चात् अकस्मात् हीमोलिटिक अनीमिया (विशिष्ट पाण्डु) हो गया। यह पाण्डु, जो आयुर्वेद के लिए एक सर्वथा नवीन रोग है (क्योंकि प्राचीन काल में रक्तदान चिकित्सा, अर्थात् दूसरे मनुष्यों के शरीरों से रक्त निकाल कर रोगी के शरीर में भरने की प्रथा—शायद वंश शुद्धि के ही आधार पर--भारत में नहीं थी) पहले बढ़ने से रोका गया और फिर सर्वथा त्रिदोष सिद्धान्तों के अनुसार ही चिकित्सा किए जाने पर सर्वथा निर्मूल किया गया। उस बालक का भार भी बढ़ गया और अब वह पूर्णतया स्वस्थ होकर प्रसन्नतापूर्वक स्कूल में अपने अध्ययन के लिए जाता है।

(पुनश्च) श्रीनेहरू से !

वास्तव में आज हमारी कठिनाई का कारण द्रव्य, प्रमाण अथवा पात्रता का अभाव नहीं है। वह तो केवल एकमात्र समस्या यह है कि उस मस्तिष्क में वास्तविक तत्व किस प्रकार पहुँचाएं जाएं जिसकी रक्षा दो अभेद्य व्यूह कर रहे हैं एक गहरा सांस्कृतिक पक्षपात जो पहले ही वहां विद्यमान है और दूसरे उचित अनुचित का विचार न करने वाले स्वार्थी डाक्टर पदाधिकारियों के सरकारी चक्कर जो उस मस्तिष्क को घेरे ही रखते हैं। स्कॉचमैन (स्कॉटलैण्ड निवासी) के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उसके मस्तिष्क में कोई हंसी की बात पहुँचाने का एक तरीका है कि उसकी खोपड़ी में शल्य क्रिया द्वारा एक खिड़की काटकर वह बात अन्दर रख दी जाए और ऊपर से खिड़की

रखकर पुनः टांके लगा कर बन्द कर दिया जाए। जिस व्यक्ति को यह उपाय सोचना पड़ा वह स्काचमैन के मस्तिष्क में हास्य पहुँचाने के लिये बिल्कुल भी इतना अधीर नहीं होगा जितना कि मैं माननीय पंडितजी के मस्तिष्क में आयुर्वेद सम्बन्धी तथ्य (और केवल तथ्य ही) पहुँचाने के लिये अधीर हूँ। मुझे सलाह दी गई है कि उनका ध्यान आकर्षित करने के लिये मुझे ऐसे प्रस्ताव सम्मेलन में पास कराने चाहिये जिनसे यह घोषणा की जासके कि आयुर्वेद का हिन्दूत्व से या प्राचीन भारतीय संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं। अथवा यह राष्ट्रीय विज्ञान नहीं, वास्तव में अन्तरराष्ट्रीयता का बीज है। अथवा धर्म इसका आधार नहीं है। ऐसी घोषणाएं किये जाने पर कुछ व्यक्ति यह आशा प्रकट करते हैं कि संभव है पंडित जी इस विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करने को तैयार हो जायें। एक अन्य सम्मति आई है कि हमें बार-बार यह घोषित नहीं करना चाहिये कि देश में हमारी संख्या डाक्टरों की संख्या से बड़ी है क्योंकि धर्म की नींव पर न खड़े किये गये (सेक्यूलर) राज्य की यह प्रथा होती है कि अल्पसंख्या को ऊपर उठाने के लिये बड़ी संख्या बलिदान दे और क्योंकि डाक्टर अल्प संख्या के हैं उनका पक्षपात करना ऐसे राज्य का कर्तव्य है। एक अन्य लेख द्वारा मेरे विरुद्ध यह शिकायत की गई है कि मैंने प्रधान सचिव के कार्य्यालय में निरन्तर प्रस्तावों के प्रवाह से बाढ़ नहीं ला दी क्योंकि योग्यता और कर्तव्य से चिल्लाहट और आन्दोलन का स्थान ऊंचा है। यह सब निरर्थकता को विवेक शून्यता की सीमा से भी परे ले जाना है। कौन से प्रस्ताव इतने अधिकारपुष्ट और आग्रहकारी होंगे जितने कि समय-समय पर बिठाई गई १७ सरकारी समितियों (जिनमें कि चोपड़ा समिति जैसी बड़ी समिति भी सम्मिलित है) के प्रायः सर्वसम्मत आदेश? यदि सरकार द्वारा इतनी महत्वपूर्ण कृतियां रद्दी की टोकरी में फेंकी जा सकती हैं तो हमारे प्रस्तावों की क्या गति होगी?

श्री पंडितजी से मैं यह प्रार्थना करता हूँ "ईश्वर के लिये आयुर्वेद के सम्बन्ध में एक बार वास्तविक तथ्य पूर्णरूप से जान लें। जब तक यह न हो सके, (केवल तभी-तक ही) अपनी वक्तृताओं में से आयुर्वेद का विषय निकाल दें और सलिवान के इस माननीय आदेश को स्मरण रखें कि

"महान् व्यक्ति जब उन विषयों पर वक्तृताएं दे जाते हैं जिनका उन्हें पूर्ण ज्ञान नहीं तो वह मानुषी उन्नति की एक क्षेत्र में बड़ी सहायता करने वाले होते हुए भी उसी उन्नति की प्रगति में अन्य क्षेत्र में बाधा डालते हैं।"

यह विचारणीय है कि आयुर्वेद के लिये ऐलोपैथिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त एलेक्सिस कैरल और केनेथ वाकर जैसे अग्रणी नेताओं को प्रभावित करना कठिन नहीं परन्तु इसके सक्रिय महत्व के आगे हमारे अन्तर्राष्ट्रीयता के भारतीय भक्त सर्वथा ठण्डे रहते हैं। अवश्य ही कहीं कुछ दोष है। कहां हो सकता है वह दोष?

स्वास्थ्य विभाग, आयुर्वेद स्वयं "क्वैकित"

श्रीराजकुमारी अमृतकौर से वैद्यों की मांग बड़ी नहीं। आपको क्वैकरी हटानी हो तो अवश्य हटाइये। हम स्वयं अपने मध्य में अविद्वत्ता और ठग्गी नहीं चाहते। परन्तु एक विज्ञान और एक चिकित्सक में जो अन्तर होता है वह तो साधारण बुद्धि भी समझ सकती है। यह जान सकना भी संभव होना चाहिए कि कौनसा अवसर विज्ञाननिर्माण संबन्धी बातचीत करने का है और कौनसा दुष्टों और ठगों को गालियां निकालने का। नैशनल प्लैनिंग कमिशन के उपाध्यक्ष के समक्ष एक प्रसिद्ध ऐलोपैथ भूल से (अथवा शायद सत्यप्रिय होने के कारण जान बूझकर ही) यह कह गए कि "प्रैक्टिस में डाक्टर तुम लोगों–वैद्यों–से बढ़कर क्वैक बन जाते हैं।" डाक्टर महोदय की यह स्वीकृति एलोपथी के विरोधी को यह अधिकार नहीं दे देती कि वह इस कथन के अवसर को भुलाकर समय असमय डाक्टरों के विरुद्ध ही नहीं बल्कि डाक्टरी के विरुद्ध भी निरन्तर कटुतापूर्ण आन्दोलन करने के लिए इसे बराबर दोहराता ही रहे। आयुर्वेद के विरुद्ध वास्तव में ऐसा ही व्यवहार किया जा रहा है। शास्त्रानभिज्ञ मिनिस्टरों को समझना चाहिए कि हमारे भाव उस समय क्या होते होंगे जब वह हमको त्रिदोष जैसे गहन विषयों पर भाषण देने आरम्भ कर देते हैं। टामस हार्डी यदि वैद्य होता तो चिल्ला उठता "हम इतने क्वैक (ठग) नहीं जितने क्विैकित (ठगित) हैं।"

डाक्टरों की रहस्यमयी शुभाकांक्षा

जो मैं कहने लगा हूँ वह संपूर्ण एलोपैथिक संप्रदाय पर आक्षेप नहीं। भारतवर्ष में बहुत से आधुनिक चिकित्सक ऐसे हैं जो किसी भी देश में समाज और व्यवसाय के लिये गौरव और सम्मान का कारण बन सकते हैं। परन्तु यहां एलोपैथिक हस्ताक्षेपियों का एक अन्य अत्यधिक क्रियावान् संप्रदाय है जिसकी भारतीय जनसाधारण के लिये चिंता और शुभ कामना इतनी गूढ़ है कि समझ में नहीं आती। इसी जनता में से कोई निर्धन रोगी मर रहा हो तो बिना पूरी और ऊँची फीस जेब में पड़े यह उसको भले ही प्राप्त न हों, रोगी की शारीरिक और मानसिक दशा अति भयावह और कष्टप्रद होने पर भी उसके यहां से आये हुए सम्बन्धियों से मीठा बोल तो क्या साधारण बात करने के लिये भी यह भले ही समय न दें; आतुरालयों की शय्याओं पर पड़े हुए उन रोगियों को जो इनकी मुट्ठी गरम न करते रहे भले ही यह बिना देखे बिगड़ने दें; चिकित्सा का कल्याणकारी व्यवसाय त्याग कर यह व्यापार, राजनीति और शासन के माया जाल में (यदि उधर की कुछ अधिक खेंच हो) भले ही जा फँसे; तदनन्तर झगड़ों में, पार्टी बाज़ी की गाली गिलौच में, और इस अभियोग और उस अभियोग को हटाने के प्रयत्न में—अर्थात् रोगियों और दुखियों की पीड़ा से पीड़ित होने को छोड़कर अन्य किसी भी कार्य्य में उनका समय भले ही व्यतीत हो; परन्तु एक बार सरकार आयुर्वेद

संबन्धी कोई कार्य्य या प्रस्ताव हाथ में तो ले तुरन्त ही देश के कोने-कोने से विज्ञान और जनसेवा के नारे लगाते हुए यह इस प्रकार दौड़कर आते हैं जैसे कि पीड़ित मनुष्य जाति की चिन्ता ही उनके जीवन की एकमात्र सच्ची कामना रही है। मिथ्या प्राणिदयाऽऽधिक्य के इन असाध्य दारुण वेगों का कुछ वर्णन मैंने बम्बई राज्य वैद्य सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में किया है जो शायद शीघ्र ही सम्मेलन पत्रिका में और जर्नल आफ आयुर्वेद में अंग्रेजी में आप देख सकेंगे।

हम श्रेष्ठतर नहीं

जो ऊपर कहा गया है उसका यह अर्थ नहीं कि हमने स्वयं कुछ विज्ञान अथवा देश की उनसे अच्छी सेवा की है। जब-जब भी कर्तव्य, दृढ़ता, विद्वत्ता और योग्यता की मांग हुई हम कसौटी पर पूरे नहीं उतरे। किसी सीमा तक जो व्यवहार हमारे साथ हो रहा है वह हमने मांग कर लिया है। एक भी आयुर्वेदघातक सरकारी पत्र ऐसा नहीं जिस पर डाक्टरों के हस्ताक्षरों के साथ-साथ किसी न किसी वैद्य के भी हस्ताक्षर न हों। देश के किसी राज्य में भी अपने लक्ष्य की पूर्ति की ओर वैद्यों में गंभीर, निस्वार्थ और सम्मिलित प्रयत्न नजर नहीं आते। थोड़ा ही समय हुआ मुझे एक ऐसे वैद्य सम्मेलन में उपस्थित होना पड़ा जो एक राज्य के भिन्न-भिन्न वैद्य मण्डलों ने मिल कर इस विशिष्ट लक्ष्य को मुख्य रखकर कि आयुर्वेद के पथ पर जब राजनैतिक अंधकार छा रहा हो उस समय पारस्परिक एकता अत्यावश्यक है किया था। आयुर्वेद पर इस घोर विपत्ति के समय भी वह एकता वैद्यों में न आ सकी। पदाधिकारी उन प्रस्तावों को लिये आराम से सो रहे हैं जो सम्मेलन में पास हुए थे। जो अति न्यून धन सम्मेलन के लिये एकत्रित हुआ था उस पर अनावश्यक कलह चल रहा है। कोई रचनात्मक, अथवा रचनानाशक भी, कार्य्य नहीं हो रहा है। सम्मेलन अपने पीछे केवल कुछ कटुताएं और असन्तोष छोड़ गया है। जो कार्य्यकर्ता काम नहीं करते उनकी अधिकार छोड़ने की कोई इच्छा नहीं होती। प्रत्येक प्रान्त में आयुर्वेदिक संस्थाओं की यही दशा है। पारस्परिक ईर्ष्याएं राज्य कर रही हैं। क्या करना है इस प्रश्न का कुछ भी महत्व नहीं। कौन करेगा इसी पर सारा ध्यान है। प्रस्तावों और सुझावों के पीछे प्रस्तावक और सुझाव देने वाले का कोई न कोई सम्बन्ध छुपा रहता है। स्वार्थ आगे है, विज्ञान और संप्रदाय पीछे हैं। हमारे सम्मेलनों और समितियों के अधिवेशनों में अनियन्त्रण अशांति और कोलाहल आयुर्वेद के हितचिन्तकों का हृदय अलग तोड़ते हैं और सामने आने वाले कार्य्य का नाश अलग करते हैं। बहुत कम वक्ता वास्तविक साहाय्य दान की धारणा से मंच पर आते हैं कई तो बोलने के आनन्द के लिये ही बोलते हैं। यदि आयुर्वेद के सच्चे अधिकारों की प्राप्ति के लिए युद्ध करना है तो प्रत्येक स्थल पर हमें अधिक दृढ़, अधिक निस्वार्थी और अधिक सुनियंत्रित रहना होगा।

पण्डित समिति की रिपोर्ट

पंडित समिति की रिपोर्ट एक छोटा सा पत्रक है जिसने चोपड़ा समिति के समन्वय संबन्धी निर्णय को वर्तमान स्वास्थ्य सचिव और डाएरैक्टर जनरल की इच्छानुसार उलट दिया है क्यूंकि, जैसा कि पहले कह आए हैं, समन्वय डाक्टरी के भविष्य के लिए हानिकर सिद्ध होता है। इसका पाठ्य क्रम भी वैसे ही "आयुर्वेद के स्नातक निर्माण करते रहने की गारण्टी है जैसे कि हमारी और स्वयं स्वनिर्माताओं की घोर निन्दा के विषय बने हुए हैं। जिस व्यक्ति का लक्ष्य एक उच्चकोटि का वैद्य बनना और अन्य प्रणालियों के अनुयायियों से प्रतियोगिता करना है उसके लिए इतना भारी एलोपैथी का "सहायक" कोर्स रखना सर्वथा निरर्थक है। आयुर्वेद की खोज का हम स्वागत करते हैं परन्तु तत्संबन्धी आदेश यदि आयुर्वेद विरोधी डाक्टरों के हाथों में पूर्त्ति के लिए दिए गए तो सर्वथा निष्फल हो जाएंगे। इस समिति की सिफारिशों पर मैं कोई आग्रहयुक्त सम्मति यहां नहीं देना चाहता। इस विषय पर खुले अधिवेशन में आप जब तक स्वतन्त्र विचार प्रकट न कर लें और एक दूसरे के विचार न सुन लें तब तक कोई स्थिर नीति निश्चित नहीं करनी चाहिए।

हमारे सामने कर्त्तव्य

हमारे सामने अब यह कर्त्तव्य है कि आयुर्वेद के महान और उपयोगी निधि की पूर्ण रक्षा करते हुए इसमें आधुनिक विज्ञान के संपूर्ण उपयोगी अंशों का अन्तर्भाव कर लें। जिस मार्ग पर चलकर यह समन्वय सफलता से पूर्ण हो सकता है उसका निर्देश मैंने "समन्वय का प्रश्न" नामक उद्धरण में पहले ही कर दिया है। शीघ्र कारिता के लोभ में हमें उपयुक्तता नहीं खो देनी चाहिये। तीन से चार वर्ष की कार्य्यावधि हमारे लिये पर्य्याप्त होनी चाहिये। आधुनिक विज्ञान ने जो उन्नति शारीर, शल्य और प्रसूति में की है उसके प्रकाश में इन विषयों में हमें अपने पाठ्य ग्रन्थ समयानुकूल बना लेने चाहियें। ऐसी औषधें जो आयुर्वेद के उपयोगिता और निरापदता के सिद्धान्तों का विरोध नहीं करतीं (जैसे पेनिसिलिन❀ आदि) ले लेनी चाहियें। दूसरी औषध जो आयुर्वेद सिद्धान्त विरोधी हैं जैसे कि सल्फाड्रग्ज वे त्याग देनी चाहियें।

इस प्रकार के पाठ्यग्रन्थों पर तो कार्य्य तुरन्त आरम्भ होना चाहिये। हमें अपनी पूर्णशक्ति इस ध्येय की प्राप्ति में लगानी चाहिये। अस्वस्थ और वृद्ध होते हुए

❀ जनता में साधुओं की दी हुई "दोहरी होने वाली" रोटी को रात को जल में भिगोने और दूसरे दिन प्रातः उस जल में मिले खमीर और फफूंदी की विलयन को रोगों में पिलाने की प्रथा पंजाब में प्रचलित है। यह खोज मनोरंजक होगी कि फफूंदी पेनिसिलिन है कि नहीं वह खमीर तो विटामिन बी है इसमें सन्देह नहीं।

श्री माननीय श्रीयादव जी त्रीकम जी आचार्य्य द्रव्य गुण शास्त्र पर कठिन और सफल परिश्रम कर रहे हैं । बूटियों और द्रव्यों का स्वरूप निश्चय भी अब करना चाहिये। वैद्यरत्न पंडित रामप्रसाद जी शर्म्मा और आचार्य्य सुरेन्द्रमोहन से प्रार्थना की जा सकती है कि वह इस सम्बन्ध में शिमले की पहाड़ियों की जड़ी-बूटियों की विशाल सम्पत्ति का मंथन करने का प्रयत्न करें। अन्य प्रान्तों में भी जहां खोज योग्य द्रव्य और उनके विद्वान् पास-पास हों यह प्रयत्न होना चाहिये । एक पाठ्यग्रन्थ प्रकृति पुरुषवाद, पंचमहाभूत वाद, त्रिदोष वाद, सप्तधातुवाद और रस गुण वीर्य्य विपाक प्रभाव वाद को लेकर सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में बनना चाहिये। यह ग्रन्थ कार्य्यावधि के अन्दर-अन्दर तैयार हो सकता है । आयुर्वेद में अन्तर्भूत होने के पश्चात् जो थोड़ा बहुत एलोपैथिक विज्ञान समाविष्ट न हो सकने के कारण बाहर रह जाये केवल एलोपैथी का वह भाग ही आयुर्वेदेतर पाठ्यग्रन्थ के रूप में आयुर्वेद के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में रखे जाने पर फिर विचार हो सकता है । यदि सरकारी आयुर्वेद विद्यालयों में यह पढ़ाना ही हो तो ग्रन्थ रूप में भी चल सकता है और कुछ लैक्चर देकर भी उस अनावश्यक विषय का दिग्दर्शन कराया जा सकता है । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह भाग केवल डाक्टरी के उन्हीं अंशों का होगा जो सर्वथा आयुर्वेद विरोधी हैं । इसका उपयोग भी वैद्यों के लिये कुछ नहीं होगा। यदि यह अंश पाठ्यक्रम में रहा तो केवल सरकारी ऐलोपैथिक अधिकारी वर्ग के आग्रह को पूरा करने के लिए ही रहेगा। हमें इस अनावश्यक थोप का विरोध करने का पूर्ण अधिकार होगा।

ऐसा प्रयत्न और क्रम सभी सरकारी और बिना सरकारी वर्गों की उचित इच्छा की पूर्त्ति कर देगा उन थोड़े से ध्वंसकों को छोड़ कर जिनका ध्येय ही व्यवसाय और विज्ञान के क्षेत्र से आयुर्वेद को बिल्कुल निर्मूल कर देना है । सरकार को और हमको उनकी उपेक्षा करना सीखना चाहिये। सरकार ने इनके हाथों में दस वर्ष से अधिक से सम्पूर्ण धन और अधिकार दे रखा है परन्तु यह कोई भी प्रशंसनीय कार्य्य न कर सके। यह असफलता ही इन्हें उपेक्षा का पात्र बना देती है । इस समय जो भिन्न क्षेत्रों से विरोधी मांगें उठ रही हैं उनके सन्तोष के लिये मुझे यही एक सफल और युक्त मार्ग प्रतीत होता है ।

मित्र वृन्द, हमारे पास समय अल्प है इसलिये जो कुछ मैं कह चुका हूँ उससे अधिक और कुछ नहीं कहूँगा । आपने जिस शान्ति से मेरी बात सुनी उसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूं और आशा करता हूँ कि सम्मेलन की विचारणाओं में भी आपसे मुझे ऐसी ही कृपा और सहयोग प्राप्त होंगे।

—o—

सूचना

यह भी सम्भव है कि "ज्वरानुबन्ध रहितम्" का शुद्ध पाठ "ज्वरानुबन्ध सहितम्" हो और लेखक के प्रमाद से 'स' के स्थान पर 'र' होगया हो। इस पाठ में यह अभिप्राय होगा कि यक्ष्मा का वह रोगी साध्य एवं चिकित्स्य है जिसको ज्वर तो रहता हो पर उसके मांस और बल क्षीण न हुए हों, आदि। ऐसा अर्थ करने पर अन्य ग्रन्थों के लेख व तात्पर्य से संगति बैठ जायगी और आक्षेप या शंका का स्थान न रहेगा। 'नरम्' के स्थान पर भो 'नवम्' पाठ अधिक उपयुक्त है।

पाँच सौ वर्ष पुराना माण्डूर

४०) प्रति मन शुद्ध ६०) प्रति मन भस्म ३०) सेर

शुद्ध संखिया सफेद—आठ आना तोला

शक्ति आयुर्वेद मन्दिर लिमिटेड—चौमू जयपुर

छप गई छप गई छप गई

सल्फ़ोनामाईड पद्धति (Sulphonamide Therapy)—वैद्य समाज जिस पुस्तक की वर्षों से आवश्यकता अनुभव कर रहा था वही सल्फोनामाईड पद्धति, जिस में लेखक ने सल्फोनामाईड क्या है? उसके प्रत्येक रूपान्तर का पृथक् पृथक् वर्णन करके साथ ही उनसे होने वाले उपद्रवों तथा प्रभावों का वर्णन करके तुलनात्मक विवेचन भी किया है। इस पुस्तक के लेखक साहित्यायुर्वेदाचार्य देवकीनन्दन शर्मा साहित्यालंकार बी० ए० प्रभाकर स्वर्ण तथा रजत पदकान्वित हैं।

डाक व्यय अलग मूल्य २॥) प्र

पुस्तक मिलने का पता :—
आयुर्वेदाचार्य दया प्रकाश शर्मा
इन्चार्ज पबलिक फ्री हस्पताल
मुहल्ला महेन्द्रूआं, जालन्धर सिटी।

प्रकाशक :—
आयुर्वेदाचार्य नानकचन्द वैद्य शास्त्री
शैलेन्दु पुस्तकालय
५७/११३ कन्दले कशां,
फतहपुरी, देहली।

महासम्मेलन के विशेषाधिवेशन की कार्यवाही ग़ाज़ियाबाद में स्वीकृत प्रस्ताव।

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के विशेषाधिवेशन का द्वितीय खुला अधिवेशन महानन्द मिशन कालेज में १२ सितम्बर १९५१ को अपराह्न ४ बजे स्वागत गान के अनन्तर आरम्भ हुआ।

केन्द्रीय सरकार के प्राकृतिक साधन तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के मन्त्री माननीय श्रीप्रकाश ने उक्त अधिवेशन का उद्घाटन किया। आपका भाषण अन्यत्र प्रकाशित है।

महासम्मेलन के प्रधान मन्त्री श्री गुरुदत्त जी ने मन्त्री महोदय का स्वागत करते हुए कहा कि सन् १९२१ से आज तक अंग्रेजी तथा हमारी सरकार ने आयुर्वेद की वैज्ञानिकता जानने के लिये लगभग १७ कमेटियां बनाई। इन सभी कमेटियों ने कहा कि आयुर्वेद वैज्ञानिक है और इसकी उन्नति करना सरकार का कर्तव्य है।।

सन् १९४७ में सरकार ने चोपड़ा कमेटी का निर्माण किया जिसने विस्तृत रूप से सरकार को बताया कि आयुर्वेद की उन्नति किस प्रकार की जानी चाहिये। चोपड़ा कमेटी के लिखे हुए एक अंश को लेकर एक अन्य कमेटी पण्डित कमेटी के नाम से बनी जिसमें आयुर्वेद में अन्वेषण तथा शिक्षा का विषय विचाराधीन था। नौ मास के पश्चात् इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट दी। आज इस सभा में हम उसी पण्डित कमेटी की रिपोर्ट पर विचार करने के लिये एकत्र हुए हैं। श्री गुरुदत्त जी ने आगे बताया कि महासम्मेलन का यह दृढ़ मत है कि आयुर्वेद ही एक ऐसा विज्ञान है जिसमें देश की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति होने की योग्यता है तथा इसमें संसार के सभी विज्ञानों का समावेश हो सकता है। यही सिद्धान्त मनुष्य की स्वास्थ्य रक्षा कर सकता है।

एलोपैथी चिकित्सा की आलोचना करते हुए सम्मेलन के प्रधान मन्त्री ने कहा कि आज यदि एक औषध का आविष्कार होता है वह ५—१० वर्ष तक चलती है परन्तु बाद में वही औषध निरर्थक सिद्ध हो जाती है। इसका कारण यह है कि उनके सिद्धान्त कीटाणुवाद पर अवलम्बित हैं। आयुर्वेद के सिद्धान्त सृष्टि के मूल तत्वों पर आश्रित है और इसी दृष्टिकोण को सम्मुख रखकर हमें पण्डित कमेटी की रिपोर्ट का विवेचन करना है।

तत्पश्चात् स्वागताध्यक्ष श्री वैद्य बाबूराम मिश्र (हापुड़) ने माननीय श्री प्रकाशजी का परिचय बड़े प्रभावशाली शब्दों में उपस्थित वैद्य समुदाय से कराया।

वैद्य रामेश्वरदत्त कौशिक रतनगढ़ को सन् १९५० की आयुर्वेदाचार्य पर क्षीमें।

सर्व प्रथम आने पर श्री ठाकुरदत्त शर्मा अमृतधारा ट्रस्ट द्वारा प्रदत्त स्वर्णपदक दिया गया।

तत्पश्चात् विषय निर्वाचिनी समिति द्वारा नियुक्त विधेयक समिति का पण्डित कमेटी रिपोर्ट सम्बन्धी प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित हुआ।

यह प्रस्ताव वैद्य श्री जयरामदास स्वामी ने उपस्थित किया जिसका अनुमोदन वैद्य केशवप्रसाद आत्रेय ने किया। इस पर सर्व श्री वैद्य रामविलास शारदा (दिल्ली) लक्ष्मीनारायण (मेरठ) चन्द्रशेखर शास्त्री (लुधियाना) जागेराम शर्मा (दिल्ली) शिवशर्मा द्विवेदी (अजमेर) बद्रीविशाल त्रिपाठी (कानपुर) ने संशोधन उपस्थित किये। तब सर्वसम्मति से निम्नलिखित संशोधित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ :—

यह सम्मेलन पण्डित कमेटी की सिफारिशों को उस ध्येय की पूर्ति में पूर्ण साधक नहीं समझता जिसके लिए इसका निर्माण हुआ था। इसलिए सरकार से अनुरोध है कि आयुर्वेद विज्ञान की वास्तविक उन्नति के लिए निम्नलिखित सुझावों के अनुसार कार्य में प्रवृत्त हों :—

१. आयुर्वेदानुसन्धान का संचालन आयुर्वेद के विद्वानों द्वारा किया जाय। आवश्यकता पर वह किसी भी विज्ञान के साधनों से सहायता ले सकते हैं।

२. भारतवर्ष की इस समय की आवश्यकताओं को देखते हुए अभी डिप्लोमा-कोर्स न हटाए जायं।

३. आयुर्वेद शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश योग्यता— (१) डिप्लोमाकोर्स के लिए प्रथमा या तत्सम परीक्षा अथवा विज्ञान एवं संस्कृत सहित मैट्रिक तथा (२) डिग्री कोर्स के लिए मध्यमा या तत्सम परीक्षा अथवा विशेष संस्कृत और विज्ञान सहित मैट्रिक रखी जाय।

सम्मेलन की यह भी सम्मति है कि सरकार को प्रथमा और मध्यमा में विज्ञान का विषय भी पाठ्यक्रम में रखना चाहिए।

४. आयुर्वेद शिक्षण संस्थाओं की शिक्षा आयुर्वेद प्रधान ही हो और एलोपैथिक चिकित्सा के न्यूनतम आवश्यक अंश ही पूरक रूप से पढ़ाए जांय तथा पाठन यथा सम्भव तुलनात्मक और सामंजस्यात्मक हो।

५. पण्डित कमेटी की सिफारिशों से यह व्यक्त होता है कि संस्कृत के विद्वानों के लिए आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के मार्ग में रुकावट आ सकती है। सम्मेलन का यह निश्चित मत है कि ऐसी कोई बाधा कदापि उपस्थित नहीं होनी चाहिए।

२. केन्द्रीय आयुर्वैदिक बोर्ड तथा आयुर्वैदिक विभाग की स्थापना।

आयुर्वेद महा सम्मेलन का यह विशेषाधिवेशन भारत सरकार से अनुरोध करता है कि आयुर्वेद विषय में ऐसी कमेटियों के बनाने की प्रथा जिनमें केवल ऐलोपेथीके

विद्वान् भरे रहते है, बन्द करे। इस विषय में आयुर्वेद महासम्मेलन की सम्मति से कार्य लें।

सम्मेलन का यह भी मत है कि आयुर्वेद की प्रगति को चलाने के लिए केन्द्र में एक केन्द्रीय आयुर्वैदिक बोर्ड और एक ऐसा आयुर्वेद का विभाग खोले जो इण्डियन मेडिकल कौंसिल के स्तर का हो और आयुर्वेद विषय में उसी प्रकार कार्य कर सके।

प्रस्तावक—वैद्य श्री रामगोपाल शास्त्री।
अनुमोदक—वैद्य श्री शिवनाथ शर्मा।

उपर्युक्त प्रस्तावों के पश्चात् अधिवेशनाध्यक्ष वैद्यरत्न प० शिवशर्मा तथा वैद्य श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी लखनऊ को स्वागत समिति की ओर से अभिनन्दन पत्र भेंट किये गये।

उपर्युक्त कार्यवाही के पश्चात् धन्यवाद आदि के साथ विशेषाधिवेशन का दूसरा अधिवेशन बड़े उत्साह के साथ समाप्त हुआ।

सूचना—स्थायी समिति का विवरण अगले अंक में प्रकाशित होगा। स्थानाभाव से इस अंक में प्रकाशित न हो सका।

विशेषाधिवेशन के स्वागताध्यक्ष आचार्य बाबूराम मिश्र आयुर्वेदाचार्य [हापुड़] का भाषण

प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए श्री मिश्र जी ने कहा :—राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लम्बे आन्दोलन के इतिहास में विशुद्ध राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के लिए जहां दूसरे वर्ग, अङ्गरेज तथा उसकी नौकरशाही से लड़ते रहे हैं वहां हमारा वैद्य वर्ग भी कंधे से कन्धा भिड़ाकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष करता रहा है। अब राष्ट्र निर्माण का समय है। हमारे राष्ट्र के सामने जहां दूसरी समस्यायें हैं, वहां राष्ट्रीय स्वास्थ्य तथा नारोगता की समस्या भी सबसे प्रमुख है। यह निर्विवाद सत्य है कि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति ऐलोपैथी; अङ्गरेज सरकार तथा हमारी स्वतन्त्र केन्द्रीय सरकार द्वारा संरक्षण प्राप्त होते हुए भी देश की स्वास्थ्य समस्या के विषय में असफल रही है और दूसरी ओर साधन विहीन होते हुए भी हमारी राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति, आयुर्वेद, देश की ८५ प्रतिशत जनता की सेवा करती है। चोपड़ा समिति की सिफारिशों को सरकार द्वारा ठुकराये जाने तथा पण्डित समिति की सिफारिशों की ओर निर्देश करते हुए श्री स्वागताध्यक्ष ने कहा कि इस रिपोर्ट में सबसे बड़ा दोष यह है कि आयुर्वेद सम्बन्ध जितने सरकारी कार्य-क्रम होंगे वह सभी वर्तमान डाइरेक्टर जनरल डा० राजा के निरीक्षण में होंगे जिनके आयुर्वेद विरोधी उग्र विचारों से वैद्य समुदाय भलि भांति परिचित है। आज आयुर्वेद में अन्वेषण की आवश्यकता को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करता है किन्तु उसकी रूप रेखा क्या हो, यह अभी विवादग्रस्त है। परन्तु अन्वेषण और भावी शिक्षा क्रम के बनाने में हमें बड़ा सतर्क रहना पड़ेगा। आयुर्वेद की चिकित्सा

पद्धति में विशेष अपनत्व है और हम इसे इसी के स्वाभाविक स्वरूप में रखकर ही उन्नति के पथ पर ले जा सकते हैं। अपने मूल सिद्धान्तों को त्याग कर केवल आधुनिक जीवाणुवाद को ही आधारभूत मानकर यदि हम इसका स्वरूप निर्माण करना चाहेंगे तो वह आयुर्वेद का विशुद्ध रूप न रहेगा वरन् ऐलोपेथी का प्रति रूप साहित्य होगा। आयुर्वेद के प्राचीन गौरव का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि आयुर्वेद सदैव प्रगतिशील चिकित्सा पद्धति के रूप में रहा है। समय समय पर इसके ओषधि कोष में ओषधियों की वृद्धि होती रही है। सम्राट अकबर के समय तथा आज से लगभग ४०० वर्ष पूर्व आचार्य भावमिश्र ने अनेक ग्रन्थों से भिन्न भिन्न विषयों का संग्रह करके एक ग्रन्थ भाव प्रकाश की रचना की थी और इसमें विशेषतः फिरङ्ग (Sphilis) को, जो भारतवर्ष में उस समय नवीन रोग था, वर्णन किया है। औषध शास्त्र में रेवत चीनी, चोंवे चीनी, सनाय आदि ओषधियों का जो उस काल में विदेशों से लाई गईं थी, उचित वर्णन मिलता है। उसी परम्परागत प्रगतिशील होने के कारण आज भी उन्नाव, तम्बाखू लाल मिरच, मक्का, आलू, टिमाटर तथा वंशलोचन आदि अनेकों ओषधियों का प्रयोग हम कर रहे हैं किंतु इससे आयुर्वेद के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। शास्त्र की आज्ञा भी है कि—

"तदेवयुक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते"

आयुर्वेद में भावी अनुसन्धान की रूप रेखा बनाने का कार्य बड़े उत्तरदायित्व का है क्योंकि उसका प्रभाव भविष्य में आयुर्वेद की उन्नति और अवनति का कारण हो सकता है। आयुर्वेद के त्रिदोष, व्याधि हेतु, लिङ्ग तथा धातु वैषम्य के आधार भूत वैज्ञानिक सिद्धान्त को मानकर ही आधुनिक ओषधियों पर तथा उन ओषधियों और रोगों पर जिनका शास्त्रों में वर्णन नहीं मिलता है अपने साहित्य को उन्नत किया जा सकता है। कुछ प्रसिद्ध पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा की गई आयुर्वेद प्रशंसा के उद्धरण देते हुए आपने अंत में कहा कि :—इन्होंने सत्यता पूर्वक आयुर्वेद की वैज्ञानिकता और गौरव को स्वीकार किया है। अब वैद्य समाज को संगठित होकर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाना चाहिये।

—०—

आयुर्वेद सर्वथा वैज्ञानिक है

श्री श्री प्रकाशजी का भाषण

["मैं आयुर्वेद को अपने देश की पुरातन संस्कृति का सुन्दर प्रतीक समझता हूँ। जब से समाज का संगठन हुआ है तबसे यही प्रयत्न रहा है कि मानव शारीरिक कष्टों से मुक्त हो जाय। इस विद्या का उपयोग इसी काम में किया जाता है कि किसी व्यक्ति को कोई शारीरिक रोग हो तो उसका निवारण किया जाय। यही कारण है कि हमारे वैद्य आज इतने लोकप्रिय हैं।"

इन शब्दों के साथ भारत सरकार के माननीय मन्त्री श्री श्रीप्रकाश जी ने गाजियाबाद में आयुर्वेद महासम्मेलन के विशेषाधिवेशन का उद्घाटन किया।

आपने कहा :—"हमारा शरीर व्याधियों का मन्दिर है कारण कि इसका कुछ ऐसा धर्म है कि इसे हर प्रकार का कष्ट लग जाता है। जो लोग इन व्याधियों को दूर करने का कार्य करते हैं उसने सर्वसाधारण का बहुत बड़ा लाभ होता है।

परन्तु मैं एक बात जानता हूँ और वह यह है कि हमारे देश का आयुर्वेद शास्त्र बहुत पुराना है और यदि हम अपनी पौराणिक गाथाओं का स्मरण करें तो हमें ऐसा बतलाया जाता है कि जब समुद्र मन्थन हुआ था तब भगवान् धन्वन्तरि त्रिकटु और त्रिफला लेकर आये थे और तब ही से यह चिकित्सा शास्त्र निकला। यह बात ठीक है कि आपको अन्य शास्त्रों की भांति इस शास्त्र को भी एक स्तर तक विकसित करना है।

आज के लोग यह समझते हैं कि आयुर्वेद शास्त्र वैज्ञानिक नहीं है और यह केवल अटकलपच्चू का खेल है। जो भाई ऐसा समझते हैं और जिनसे मुझे वार्तालाप करने का अवसर मिला है उनको मैंने यही कहा है कि वह शास्त्र जिसने मनुष्य की प्रकृति—वात, पित्त, कफ़—का अन्वेषण किया है वह कदापि अवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। हमारा शास्त्र केवल रोग को ही नहीं अपितु रोगी को भी देखता है। जिस शास्त्र में कई हजार कारण ज्वर के बतलाये गये हैं और जिस शास्त्र में यह बतलाया गया है कि रोग का कारण देखकर ही उसकी ओषधि करनी चाहिये वह कैसे अवैज्ञानिक कहा जा सकता है। चरक ने बताया है कि वैद्य को रोगी के पास जाकर जल्दी नहीं करनी चाहिये बल्कि उससे शान्ति से बातचीत करनी चाहिये! वैद्य का यह धर्म है कि रोगी को आश्वासन दें उसका हालचाल पूछे तथा उसे सांत्वना दें।

एक मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि रोगी वैद्य व डाक्टर को इस लिये नहीं बुलाता है कि वह उसकी दवा करेगा बल्कि इस लिये कि वह उसे अपना कष्ट सुनाना चाहता है। आज जो बात हमारे इस मनोवैज्ञानिक ने कही है वह हमारे चरक और सुश्रुत पहले से ही जानते थे। डाक्टर जल्दी में रहता है परन्तु वैद्य कभी जल्दी में नहीं रहता है बल्कि वैद्य को यह चिन्ता होती है कि उस रोगी का कष्ट किस प्रकार दूर करूं। इसी कारण मैं वैद्य को बहुत आदर की दृष्टि से देखता हूँ क्योंकि वह अपने पेशे में केवल धनोपार्जन का ही सिद्धान्त नहीं मानता बल्कि अपने कार्य को सेवा का कार्य मानता है।

आज यह प्रश्न है कि इस शस्त्र का जो कुछ ह्रास हुआ है वह कैसे दूर हो। मेरी समझ में एक तो यह बात है कि हम लोगों को गवर्नमेंट के ऊपर उतना आश्रित नहीं होना चाहिये जितना आजकल आश्रित होने का हम लोगों का अभ्यास हो रहा है। राज्य अथवा केन्द्र ने किसी कारण यदि कोई आपत्ति आपके ऊपर की हैं तो आप उसका विरोध अवश्य करें। परन्तु यदि आप यह आशा करें कि आयुर्वेद शास्त्र में विशेष प्रकार से गवर्नमेंट की ओर से अन्वेषण हो इसमें मुझे शंका प्रतीत होती है।

बहुतसी प्रादेशिक सरकारें, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश सरकार, इस बात की चिन्ता में है कि आयुर्वेद की उन्नति किस प्रकार से हो। फिर भी बहुत कुछ हमें अपने बल पर अवलम्बित होना पड़ेगा।

आयुर्वेद में अनुसंधान कार्य पर बल देते हुए आपने प्रामाणिक औषध निर्माण पर बल दिया। आपने व्यक्तिगत वैद्यों द्वारा औषध निर्माण को हानिकारक बताया। मैं नहीं जानता कि इसमें सम्मेलन की क्या राय है। मेरे विचार में सम्मिलित दवाखानों की आवश्यकता है।

चिकित्सा कार्य का महत्व बताते हुए आपने कहा कि चिकित्सा का एक ऐसा पेशा है जिसमें चिकित्सक को रोगी के यहां जाना पड़ता है। वह अमीर गरीब सबके यहां जाता है और इस प्रकार वह प्रत्येक की स्थिति से पूर्ण परिचित हो जाता है।

आयुर्वेद में भोजन पर जोर दिया गया है परन्तु ऐलोपेथी में ऐसी बात नहीं है। एक बार मुझे बहुत जोर की पेचिश होगई थी। डाक्टर ने कहा कि जो चाहो सो खा लेना परन्तु वैद्य ने भोजन निषेध पर बहुत जोर दिया। वैद्यों का यह कहना ठीक है कि विभिन्न समय और विभिन्न रोग में अमुक वस्तुओं का उपयोग करना चाहिये और अमुक प्रकार के आहार से परहेज करना चाहिये। भोजन के विभिन्न पदार्थों की गम्भीरता से समीक्षा होनी चाहिये। दिनचर्या, रात्रिचर्या और भोजन व्यवस्था पर आयुर्वेदिक दृष्टिकोण को पुष्ट करते हुए आपने कहा कि इस कार्य में वैद्य बहुत सहायक हो सकते हैं। अङ्गरेज परिवार में यदि कोई व्यक्ति समय से न आये तो उसे भोजन नहीं मिलता।

मैं आपके शास्त्र से अनभिज्ञ हूँ। परन्तु सभी शरीरधारियों को कभी न कभी चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है और इसी कारण प्रत्येक को इस शास्त्र के जानने की आवश्यकता पड़ती है। अतः मैं सब वैद्य बन्धुओं का अनुगृहीत हूँ कि वे चिकित्सा करके हमें रोगों से मुक्त करते हैं।

सूचना व प्रसार मन्त्री श्री दिवाकर का सन्देश

गाजियाबाद के विशेषाधिवेशन में उपस्थित न हो सकने पर खेद प्रकट करते हुए भारत सरकार के सूचना व प्रसार मन्त्री श्री दिवाकर ने अपने सन्देश में कहा है कि "आयुर्वेद मुझे प्यारा है और वर्तमान वैज्ञानिक स्तर पर इसका अन्वेषण किया जाना चाहिये।"

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठस्य १९५१ तमवर्षीयमवशिष्ट परीक्षाफलम्।

(आचार्य)

क्रमाङ्क ८० नीलाम्बरदत्त पन्त, द्वितीय श्रेणी।
" ७५ जी० वेंकटेश्वर शास्त्री (परिशिष्ट) शल्य०

(आ० विशारद)

क्रमाङ्क. ४५० शिवकुमार त्रिपाठी। तृतीय श्रेणी।

२४० विश्रामलाल जैन । उत्तीर्ण प्रथम खण्ड ।
" ५१० ब्रजनारायण त्रिपाठी । उत्तीर्ण प्र० खं० ।
" ५१३ दयाशंकर द्विवेदी । " "
" ५२१ किशोरीलाल मिश्र । " "
" ६०० सूर्यभान शर्मा । " "

(वैद्य विशारद)

" १४० मदनलाल । उत्तीर्ण प्र० खं० ।

(भिषक्)

क्रमाङ्क १९५ धनराज (उर्फ) वाबूलाल । उत्तीर्ण तृतीय श्रेणी ।
" ६६० विन्नकोटप्रसाद राव । " " "
" ३५३ कर्मसिंह । उत्तीर्ण प्रथम खंड ।
" ४१८ लालजीराम । " " "
" ५०२ गौरीशंकर पाण्डेय । " " "
" ५३२ श्रीधर मिश्र । " " "
" ५३४ देवदत्त उपाध्याय । " " "
" ६६१ चगन्ति सत्यनारायण परिशिष्ट शल्य०

जुलाई मासस्य महासम्मेलनपत्रिकायां प्रकाशितस्य

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठस्य १९५१ तमवर्षीयपरीक्षाफलस्य संशोधनम्

पृष्ठ	पंक्ति	क्रमाङ्क	नाम	अशुद्धम्	शुद्धम्
३४६	११	१३३	गोकुलेन्द्र शर्मा कौशल ।	प्र० खं० उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
३४६	१२	१३४	वन्शीधर शर्मा नरेड़ा	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
३४६	२९	१३५	युधिष्ठर शर्मा खाण्डल	कौमार परिशिष्ट	अनुत्तीर्ण
३४८	१५	५०८	परमेश्वरीदयाल	परमेश्वरीदयाल	परमेश्वरदयालु
३४८	१६	५१५	रामस्वरूप शर्मा	क्र० ५१५	क्र० ५११
३६०	१६	५१०	ब्रजनारायण त्रिपाठी	परिशिष्ट	प्र० खं० उत्तीर्ण
३६०	१६	१५३	दयाशंकर द्विवेदी	परिशिष्ट	प्र० खं० उत्तीर्ण
३६१	२४	७१	शिवप्रसाद शर्मा	द्वि० श्रेणी	प्रथम श्रेणी
३६२	२१	३३६	हेमशंकर ओझा	क्र० ३३६	क्र० ५३६
३६५	२५	२२५	लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी	क्र० २२५	क्र० २५५
३४९	७	२०९	बनवारीदास स्वामी	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
३६०	६	२११	धनीराम स्वामी	परिशिष्ट (द्रव्य०)	अनुत्तीर्ण
३६६	१८	६४०	माक्केपाडी सूर्यनारायण	द्वितीय	परिशिष्ट (द्रव्यगुण)

रामगोपाल शास्त्री विद्यापीठ मन्त्री

सम्पादकीय

संकल्प-समारोह

महासम्मेलन के इतिहास में यह पहला ही अवसर था कि वार्षिक अधिवेशन के स्थान पर विशेषाधिवेशन बुलाया गया हो। विशेष परिस्थितियां होने पर ही वैद्यसमाज ने ऐसा निश्चय किया था। समय थोड़ा होने पर भी स्वागत-समिति के अनथक प्रयत्न से सम्मेलन विशेष धूमधाम से सम्पन्न हो गया। उसका विस्तृत विवरण पाठक अन्यत्र 'पत्रिका' में पढ़ेंगे।

माननीय पं० शिवशर्मा जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आयुर्वेद पक्ष को बड़ी विद्वत्ता, प्रतिभा, और सरलता और सुन्दरता से पेश किया है। इतनी स्पष्टोक्ति के बाद भी यदि अधिकारी-गण हमारे पक्ष को न समझें या जान-बूझ कर उपेक्षा दर्शाएं तो उस अवस्था में स्थिति के गम्भीर रूप धारण करने का भय हो सकता है।

महासम्मेलन ने अपने प्रस्तावों में स्पष्टरूपेण पण्डित कमिटी की रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया है और शीघ्र ही केन्द्रीय आयुर्वेद बोर्ड की स्थापना की मांग की है।

इसी मास की ८ तारीख को हैद्राबाद में इण्डियन मैडिकल कौंसिल की कार्यकारिणी ने आयुर्वेद कालेजों में प्रवेशार्थियों की योग्यता निम्नतम एफ० एस० सी० निर्धारित की है और पठन-पाठन का मापदण्ड एम० बी० बी० एस० के समान हो ऐसा निश्चय किया है। उक्त कौंसिल में एक भी आयुर्वेदज्ञ के न होते हुए वैद्यसमाज इसे स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। किन्तु केन्द्रीय सरकार इस सम्बन्ध में अपनी नीति बदलेगी इसमें हमें सन्देह है लेकिन संगठन में बड़ा बल है। यदि वैद्यसमाज एक स्वर से, एक मत से अपनी मांग पर दृढ़ रहा तो दुनिया की कोई ताकत हमारी इच्छा के विपरीत कदम नहीं उठायगी। इस लिये प्रस्ताव पास करने के बाद हमें अपने को अधिक सुसंगठित होने का निश्चय करना है। श्री सभापति जी ने प्रान्तों में दलबन्दी तथा वैद्यों में पारस्परिक मनोमालिन्य का जो चित्र खींचा है वह अत्यन्त भयावह है और गंभीर स्थिति का द्योतक है। इस सम्बन्ध में हमें जागरूक होने की आवश्यकता है अन्यथा केन्द्रीय सरकार की मनोवृत्ति को देखते हुए हमें हमारी फूट ही ले डूबेगी।

इस लिए गाज़ियाबाद में पास हुए प्रस्तावों के साथ-साथ यदि हम संगठित होने का शुभ संकल्प कर लेंगे तो हमारी आवाज में बल होगा और महासम्मेलन के अधिकारियों के हाथ भी मज़बूत होंगे। उस अवस्था में महासम्मेलन के इतिहास में गाजियाबाद का विशेषाधिवेशन संकल्प-समोरोह के रूप में चिर-स्मरणीय रहेगा।

—पुरुषोत्तमदेव मुलतानी

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपये का काम देता है । व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के निरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हजार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसी उत्तम पुस्तक दूसरी नहीं है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।।।), डाक खर्च ।=), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० ऐजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

विज्ञान और भारत

यद्यपि इस बीसवी शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. वर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लि०
पोस्ट—बक्स ५५४, कलकत्ता।

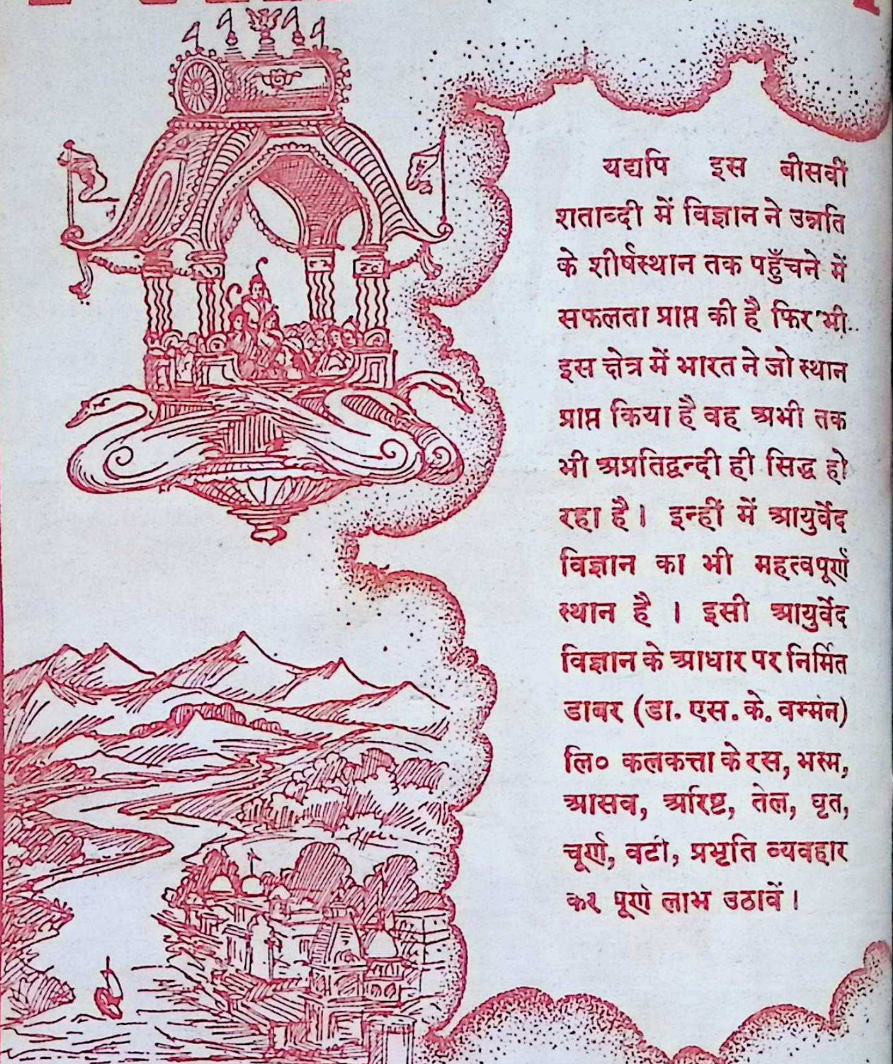

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—न्यू इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली।

आंत्रक्षय का एक रोगी

१

२

6-24

विज्ञापन के लिये स्थान खाली है

गुरुकुल-पत्रिक
गुरुकुल काँग

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार

सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, बी० ए०, बी० आई० एम० एस०

विज्ञान और भारत

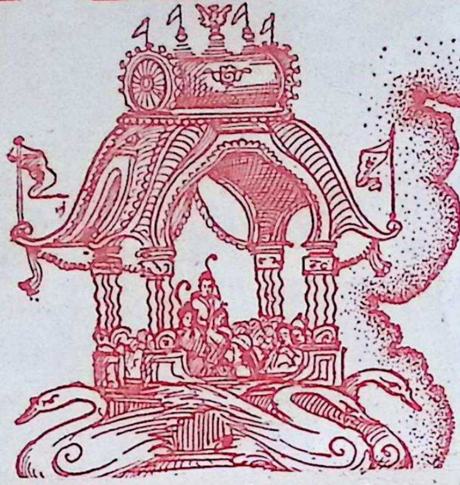

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्द्वी ही सिद्ध हो

४० वर्षानुभव सिद्ध व शास्त्रोक्त
औषध मंगा और व्यवहार कर

यश के भागी बनें।

◆

सूचीपत्र के लिए लिखें

मुलतानी आयुर्वेदिक फार्मेसी

मुख्य कार्यालय
कनाट सरकस,
नई देहली

शाखा
माई हीरां गेट
जालन्धर

आंत्रक्षय का एक रोगी

१

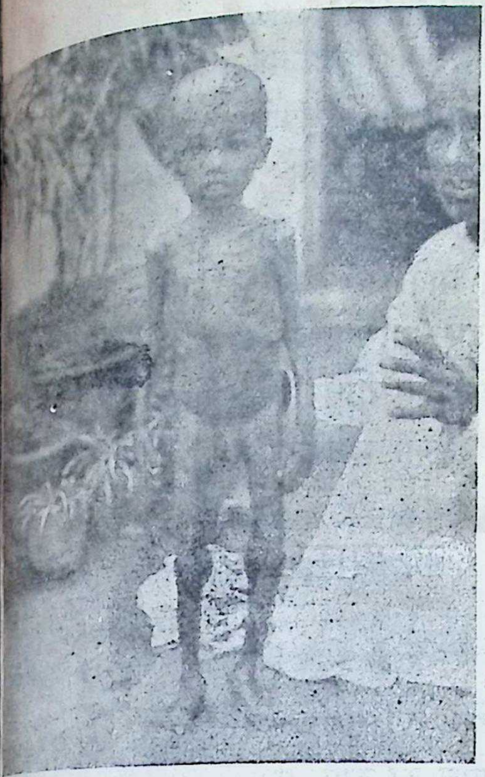

रोग की दशा में

२

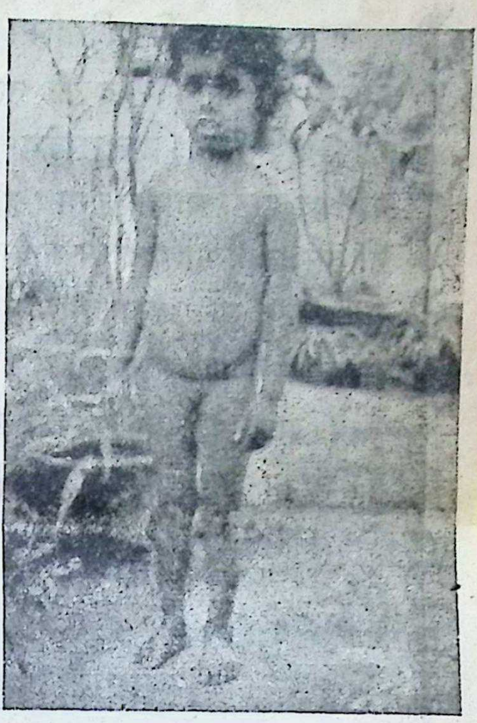

रोग से मुक्त होने पर

(विस्तृत विवरण पृष्ठ २४१ पर देखें)

प्र० का० फोन नं० ५६३ .स्थापित १८६२ तार—'इन्जेक्शन' झांसी

देशमान्य—मिश्रा—आयुर्वेदिक इन्जेक्शन—भारतीय

द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेक्शन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेदिक इन्जेक्सन विज्ञान पुस्तक, षष्ठम् संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ॥≈) नियमादि मुफ्त मंगायें।

सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २॥) पो०।≈)।

सर्वप्रथम आविष्कर्ता एवं एक मात्र निर्माता—

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू० पी०

नागपुर विश्वविद्यालय

आवश्यकता

नागपुर-विश्वविद्यालय में आयुर्वेदीय अन्वेषण के लिए आयुर्वेदज्ञ प्रोफेसर की जो आयुर्वेद की तत्व प्रणाली में विशेषज्ञ हो। वेतन ७०० रुपये प्रतिमास। उसे संस्कृत भाषा और प्राचीन पदार्थ विज्ञान से भी परिचित होना चाहिये। साथ ही यदि आधुनिक विज्ञान से भी परिचित हो तो उसे प्रथम मान्यता दी जावेगी। आवेदन-पत्र विश्वविद्यालय के कार्यालय प्राप्त किया जा सकता है। चुने हुए प्रार्थियों को अपने खर्च से बोर्ड से मिलने के लिये आना होगा। अनुचित साधनों से स्थान पाने की चेष्टा करने वालों के आवेदन-पत्रों पर विचार न किया जावेगा। प्रार्थना-पत्र की अंतिम तिथि ४ जून १९५१ है।

के. आर. पंडया, कुल-सचिव,
नागपुर विश्वविद्यालय।

अमृतधारा फार्मेसी लिमिटेड देहरादून

सर्व-शक्तिमान की कृपा से

अमृतधारा की स्वर्ण जयन्ती

९ मई सन् १९५१ ई० (परशुराम-जयन्ती) से ३१ मई (भद्रकाली एकादशी) तक मनाई जा रही है। यज्ञ होगा, कथा होगी, भाषण होंगे, शारीरिक व्यायाम और मुकाबले होंगे। बेबी शो होगा, फिर बड़े उत्सव में पारितोषक बाँटे जावेंगे। इन्ही दिनों में अमृतधारा फार्मेसी लिमिटेड की औषधियों में

२५ प्रतिशत की रियायत की जावेगी,

और अमृतधारा के ग्राहकों को १००००) रुपये के पारितोषक वितीर्ण होंगे। ३ पैसे का टिकट भेजकर औषधियों का सूचीपत्र और रियायत तथा पारितोषकों का ब्योरा शीघ्र मुफ्त मंगवा लें।

पत्र या तार का पताः—"अमृतधारा" १५ देहरादून

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥
यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली ।

वर्ष ३७
अङ्क ५
नई दिल्ली, वैशाख २००८, मई १९५१
एक प्रति ।)
वार्षिक ५)

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. आयुर्वेद में वैयक्तिक और सामूहिक स्वस्थवृत्त	(श्री पं० शिव शर्मा)	२२८
२. त्रिधातु-त्रिदोष	(डा० परांजपे)	२३३
३. वात, पित्त, कफ एकाकी द्रव्य हैं या नहीं ?	(श्री डेग्वेकर)	२३६
४. आयुर्वेद का अरब पर प्रभाव	(श्री पुरुषोत्तम मुलतानी)	२३८
५. हमारा चिकित्सालय	(श्री फठथार)	२४१
६. हृदग्रहः	(श्री राधावल्लभ पन्त)	२४३
७. आयुर्वेद में अनुसन्धान कार्य	(डा० प्रसादीलाल झा)	२४६
८. काली मिर्च का रोचक इतिहास	(श्री रामेश वेदी)	२४९
९. आयुर्वेद का भावी स्वरूप	(श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र)	२५४
१०. स्थायी समिति का विवरण		२५६
११. साहित्य-सत्कार		२७०
१२. आयुर्वेद-लोक		२७१

"आयुर्वेद में वैयक्तिक और सामूहिक स्वस्थवृत्त"

(लेखक—श्री पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य, बम्बई)

[११ से १४ अप्रैल तक गवर्नमेंट हाउस नई दिल्ली में प्लेनिंग कमीशन की स्वास्थ्य समिति (Healtb Panel) की बैठक हुई जिसमें भारत के विविध एलोपेथिक चिकित्सकों के तथा केन्द्रीय व प्रांतीय सरकारों के स्वास्थ्य विभाग के ५० केलगभग प्रतिनिधियों के अतिरिक्त वैद्य समाज के केसरी एक मात्र प्रतिनिधि श्री पं० शिवशर्मा जी ने सिंह नाद के रूप में अंग्रेज़ी में जो वक्तव्य पढ़ा था उसका हिन्दी अनुवाद हम नीचे प्रकाशित कर रहे हैं। पण्डितजी की ओजस्वी वाणी और लेखनी में कितना बल है उससे वैद्य समाज सुपरिचित हैं। उस वक्तव्य को सुन कर हमारी स्वास्थ्य मंत्रिणी तथा दूसरे डाक्टर मंत्रमुग्ध रह गये तथा उन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्तः करने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की जिसका विस्तृत विवरण बाद में पत्रिका में प्रकाशित किया जायगा।] (प्र० सं०)

"आज जब कि भारत पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करके मित्र राष्ट्रों के समूह में बराबरी का स्थान ले चुका है उसे अपने प्राचीन विज्ञान की निधि में से हमें (वैज्ञानिकों को) बहुत कुछ प्रदान करना है।" Dr. Kenneth walker.

वैयक्तिक और सामूहिक स्वस्थवृत्त पर यह कथन सर्वथा आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार है। स्वस्थवृत्त योजना का महत्व निर्भर होता है एक तो उसकी उपादेयता और क्षेत्रविस्तृति पर, और दूसरे उसे कार्यरूप देने के लिए व्यय होने वाले न्यूनतम आवश्यक समय, शक्ति और द्रव्य की मात्रा पर। जब क्रियात्व पर इतना आग्रह हो तो प्रधान विषय में किसी भी स्थल पर सिद्धांत प्रतिपादन का प्रयत्न करना अवाञ्छनीय प्रतीत होगा। तथापि जो सज्जन इस वक्तव्य द्वारा आयुर्वेद से प्रथम वार सम्पर्क में आने लगे हैं उनकी जिज्ञासा पूर्ति के लिए आयुर्वेदिक स्वस्थवृत्त का विषय आरम्भ करने से पहले अति संक्षेप में आयुर्वेद स्वरूपदर्शन करा देना उचित होगा।

आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ जीवन विज्ञान (Science of Life) है।

शरीर और जीव के योग को जीवन कहते हैं, जीवन और काल के योग को आयु और आयु के वेद (विज्ञान) को आयुर्वेद।

सजीव सृष्टि स्थावर और जंगम भेद से दो प्रकार की है। स्थावर के सम्बन्ध में यहां कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

आयुर्वेद का प्रयोजन धातु साम्यक्रिया (Maintainance of tissue normality) है।

समधातु समक्रिय प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनुष्य "स्वस्थ" है।

उस पुरुष का दुःख से संयोग होना "व्याधि" कहलाता है।

व्याधियां चार प्रकार की हैं आगन्तुक, शारीरिक, मानसिक और स्वाभाविक।

शस्त्र द्वारा कट जाना, भिड़ मक्षिका आदि का दंश, सांप, बिच्छू आदि का काटना, दुर्घटनाएं, छूत, क्षत आदि आगन्तुक व्याधियां हैं।

दोष (अन्तःस्रावादि) जन्य, आहार-विकार जन्य, अथवा शारीरिक क्रियाओं वा अवयवों में दोष आ जाने से जो व्याधियां होती हैं उन्हें शारीरिक रोग कहते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, भय, हिंसा आदि मानसिक विकारों को मानसिक रोग कहते हैं।

स्वाभाविक जन्म, मरण, भूख, प्यास, निद्रा, उपरिनिर्दिष्ट व्याधियों से सर्वथा स्वतन्त्र होते हुए भी स्वाभाविक रोग कहलाते हैं।

आगन्तुक रोग प्रायः शल्य साध्य हैं। ईसा मसीह से ६०० वर्ष पूर्व काशी में धन्वन्तरि सम्प्रदाय केवल शल्य चिकित्सा के लिए ही शिष्य स्वीकार करता था। उसके १००० मील ;उत्तर पश्चिम में, पुनर्वसु आत्रेय की अध्यक्षता में, तक्षशिला (Taxila) काय चिकित्सा के अध्ययन और अभ्यास का विश्वविख्यात केन्द्र बन गया था।

कायचिकित्सा के क्षेत्र में आयुर्वेद को अन्य सब चिकित्सा पद्धतियों से उन्नत और अग्रणी होने का दावा है। चिकित्सा का प्रारम्भिक सूत्र ही जिसके आधार पर बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे गए हैं संक्षेप में परन्तु स्पष्टतया रोग में चिकित्सा का पूर्ण विवरण दे देता है।

हेतुव्याधिविपर्य्यस्त विपर्य्यस्तार्थकारिणाम्।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥
विद्यादुपशमं व्याधेः॥

अर्थात् औषध, आहार और विहार, इनमें से एक या अधिक का व्याधि के, कारण के, या व्याधि और कारण दोनों के विपरीत प्रयोग अथवा समान परन्तु विपरीत फलकारी प्रयोग व्याधि का उपशम कहलाता है

यह ध्यान रखने योग्य हैं कि आयुर्वेद का यह प्रारम्भिक सूत्र ऐलोपैथी और होमियोपैथी के कई शताब्दियों से चले हुए "विपरीत" और "समान" औषध पद्धितियों के विवाद का दोनों की उपयुक्तता स्वीकार कर एकदम ही अन्त कर देता है।

औषध—आयुर्वेदिक औषधविज्ञान में औषध की छांट के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र है। केवल रेचकवामक योगों की संख्या हीं ६०० है ("अथ षड्विरेचनशतानि व्याख्यास्यामः")। यद्यपि संखिया, वत्सनाभ, अफीम आदि विषों का प्रयोग भी किया गया है और रस धातु आदि भी रोगी को देने की छूट है (केवल स्वर्ण योगों की संख्या ही १०० से ऊपर होगी) तो भी आयुर्वेदिक चिकित्सा का मुख्य भाग जड़ी-बूटियों और आहार-विहार द्वारा ही रोगी को लाभ पहुँचाता है। यदि निर्विष औषध का बहिष्कार अनिवार्य न हो तो आयुर्वेद को नैसर्गिक चिकित्सा की परमोन्नत सीमा कहा जा सकता है।

आहार—आयुर्वेदिक आहारविज्ञान शरीर और मन के लिए परमोत्तम है, स्वस्थावस्था में भी और रुग्णावस्था में भी। इस विषय पर इसी वक्तव्य में आगे चल कर प्रकाश डालेंगे।

विहार—विहार में अनेक प्रकार के व्रत, वमन, विरेचन, साधारण अथवा अनेक औषधसिद्ध तैल, घृत, वसा, उबटन आदिकों द्वारा अभ्यङ्ग, औषध सिद्ध क्वाथ, दुग्ध, घृत, तैल वसा आदिकों द्वारा अनुवासन निरुहण उत्तर वस्तियां, अथवा इन्हीं औषधिसिद्ध अथवा शुद्ध विविध द्रव्यों में अवस्थानुसार अवगाहन स्नानादि, योगासन, प्राणायाम, व्यायाम, स्थानवा ऋतुपरिवर्तन, नस्य, धूप अथवा कृत्रिम ऊष्मा द्वारा स्थानिक वा सर्वाङ्ग स्वेद (चरक ने स्वेद के १६ भिन्न प्रकारों का वर्णन किया है) इत्यादि अनेक क्रियाएं प्रयुक्त की गई हैं। शारीरिक के साथ-साथ मानसिक अशान्ति को दूर करने की कला को उचित महत्व दिया गया है।

मानसिक व्याधि की चिकित्सा ज्ञान, विज्ञान, धैर्य्य, स्मृति और समाधि द्वारा की गई है।

स्वाभाविक रोग की चिकित्सा मोक्ष है। चरक ने योग, वेदान्त आदि शास्त्रों के उन सिद्धान्तों की व्याख्या में पर्याप्त समय का व्यय किया है जो इस लक्ष्य की पूर्ति में सहायक माने गए हैं। यहां इस विषय की व्याख्या करना आवश्यक नहीं।

त्रिदोष

मुझे कहा गया है कि त्रिदोष की एक संक्षिप्त व्याख्या उन सदस्यों के लाभ के लिए कर दूं जो आयुर्वेदिक चिकित्सा के इस मूलाधाररूप सिद्धांत का परिचय करने के लिए वास्तव में उत्सुक हैं। मैं संक्षेप में केवल उन्हीं तीन प्रश्नों की व्याख्या यहां कर देता हूं जिनके उत्तर की आशा मुझ से की गई है:—

(१) क्या त्रिदोषसिद्धांत यूनान की "ह्यूमरल थ्यूरी" है ?

(२) क्या इस सिद्धांत में अर्थ भेद का दोष है जिसके कारण वैद्य त्रिदोष सिद्धांत की एक सर्वसम्मत व्याख्या स्वीकार करने में असमर्थ हैं ?

(३) क्या यह विश्वसनीय है कि इतना "जीर्ण" सिद्धांत नवीन "वैज्ञानिक" और "उन्नत" सिद्धांतों का प्रतिद्वन्दी बन सकता है ?

(१) प्रथम प्रश्न का उत्तर तो कई योग्य डाक्टर स्वयं दे चुके हैं और वह उत्तर प्रांतीय सरकारों और केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित (कोई सोलह-सत्रह) समितियां भी स्वीकार कर चुकी हैं। कैप्टेन जी श्रीनिवास मूर्ति, I. M. S., लिखते हैं, "दोषों के सम्बन्ध में पहले यह जानना आवश्यक नहीं कि वह क्या हैं किन्तु यह जानना आवश्यक है कि वह क्या नहीं। मैं यह पुनरुक्ति करना आवश्यक समझता हूँ कि दोष किसी प्रकार भी "ह्यूमर" नहीं—(मद्रास रिपोर्ट)। इससे पहिले डाक्टर गणनाथ सेन, एम० ए०, एल० एम० एस०, (कलकत्ता) ने यही बात बहुत स्पष्ट शब्दों में कही "दोष सिद्धांत पुरानी और त्यक्त ह्यूमरल थ्यूरी नहीं है।"

(२) क्या इसमें व्याख्याभेद का दोष है ? भारतवर्ष में आयुर्वेद की वैद्येतर समा-

लोचना के इतिहास और बृद्धि का ध्यानपूर्वक अवलोकन इस गौण तत्व को स्पष्ट कर देगा कि दोष सिद्धांत के विरुद्ध "व्याख्याभेद" का आरोप अत्यन्त नवजात है और अंग्रेज़ों के भारत से निकलने के पहिले कभी नहीं सुना गया। इस आरोप का जन्म भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही हुआ जब केन्द्रीय सरकार के डाक्टर शासकों ने सहसा हल्ला करके वैद्यों से आयुर्वेद की व्याख्या डाक्टरी परिभाषा में इस धमकी द्वारा मांगी कि यदि ऐसी व्याख्या उन्हें तुरन्त हस्तगत न हुई तो भारतीय स्वास्थ्य योजनाओं में आयुर्वेद का कोई स्थान ही नहीं रखा जायगा। इस हल्ले में यह अति महत्वपूर्ण और सर्वथा स्पष्ट सत्य सरकार की दृष्टि से ओझल हो गया कि यह "व्याख्या भेद" होता ही तब है जब व्याख्या डाक्टरी परिभाषा में करने का प्रयत्न किया जाता है।

यदि एक कमर बन्द को जो पाजामे को अपने स्थान पर रखता है हम उसके वास्तविक स्वरूप में न देख कर उसे पतलून के बटनों का प्रतिनिधि कहेंगे तो "व्याख्याभेद" आरम्भ हो जायगा। दूसरा व्याख्याता आग्रह करेगा कि कमरबन्ध बटनों का नहीं पेटी का प्रतिनिधि है। तब कोई अधिक साहसी शोधकार विचार की इससे भी ऊंची उड़ान करके कहेगा कि यह तो खड़े ब्रेसेज़ को लिटा कर उनका विशेष सरल प्रकार बना दिया गया है तब चौथा विशेषज्ञ अपना मत प्रगट करेगा कि क्योंकि बक्सूए की धातु युद्ध के शस्त्र बनाने के काम में आ रही है इस लिए उनका स्थान इस रस्सी ने ग्रहण कर लिया है। अस्तु। अपने स्थान पर रस्सी न केवल एक सरल, बुद्धिग्राह्य, सुविधाजनक और निर्विवाद द्रव्य है बल्कि बटन, पेटी, ब्रेस और बक्सूए सब के सम्मिलित समूह से अकेली ही अधिक उपादेय है। तो भी यह परम उपादेय, निर्दोष और शान्तिमयी वस्तु विशेषज्ञों, अनुवादकों और शोधकारों की परम अनावश्यक कृपा से विवाद का अखाड़ा बन गई।

ठीक इसी प्रकार ऐसे ही विशेषज्ञों अनुवादकों रिसर्च स्कालरों (शोधकारों) के हाथों बेचारे आयुर्वेद का विशेष पीड़न हुआ हैं : जब एक वैद्य दूसरे वैद्य से वातज्वर,वातातिसार,वातिक कास, वातिक संग्रहणी, वातिक श्वास रोग या वातार्श अथवा पैत्तिक ज्वर, पित्तातिसार आदि व्याधियों की चर्चा करता है तो उन दोनों में, और दोनों में ही क्या, सैकड़ों में भी, किसी को एक दूसरे का आशय समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। परन्तु एक बार पित्त का अनुवाद (Bile, Body Heat, Metabolic activity अथवा Thermogenesis) आदि करना आरम्भ कीजिए तुरन्त ही बटन, पेटी, ब्रेस और बकल वाला कलह उठ खड़ा होगा।

आइए जरा त्रिदोष का, बिना डाक्टरी परिभाषा की दल-दल में फंसे, सीधा इसके अपने स्वरूप में निरीक्षण करें :—

एक व्यक्ति ५ ग्रेन क्विनाईन खाता है और उसे "क्विन्कोनिज्म" (क्विनाईन बिष जनित शिरोभ्रम, कर्णनाद, क्षुधानाश आदि उपद्रवसमूह) हो जाता है। दूसरे व्यक्ति का ३० ग्रेन क्विनाईन खाने पर भी कुछ नहीं बिगड़ता। दस लाख वैद्य एक ही बात कहेंगे कि पहला व्यक्ति वात प्रकृति

था अतः वातिक औषध प्रतिकूल पड़ी। उसे सब ही वातवर्धक भाव प्रतिकूल पड़ेंगे, वह औषध (क्विनाईन, धत्तूर, निंब आदि) हों या आहार (स्नेहरहित रूक्षभोजन), विहार (लंघन, अतिव्यायाम आदि) हो या मानसिक भाव (भय, शोक, काम आदि)। सिन्कोनिज्म की दोषानुसार चिकित्सा वातनाशक औषधान्नविहार और मनोवृत्तियों का सेवन है। जैसे शीत पानक, घृत, दुग्ध, विश्राम, तैलाभ्यङ्ग, प्रसन्नता धैर्य, इत्यादि। परन्तु यही वातनाशक भाव जो वातप्रकृति व्यक्ति के लिए हितकर हैं कफप्रकृति के लिए हानिकर होंगे। इनके सेवन से उसमें मेद, गौरव, आलस्य बढ़जाएंगे।

दूसरा उदाहरण लीजिये। एक स्वस्थ प्रतीत होने वाले व्यक्ति को मच्छर काटता है। उसे पहली ही बार में मैलेरिया हो जाता है। एक दूसरा व्यक्ति जिसका पहले जितना स्वस्थ होना भी आवश्यक नहीं मच्छर द्वारा बार-बार काटे जाने पर भी ज्वर-ग्रस्त नहीं होता। सब वैद्य बिना किसी "व्याख्या भेद" के एक ही मत देंगे कि प्रथम व्यक्ति पित्त प्रकृति है। और व्याधि भी पैत्तिक होने के कारण तद्दोष प्रधान व्यक्ति झट पकड़ा जाता है। दूसरे व्यक्ति का शरीरक्षेत्र पित्तप्रधान न होने के कारण एक पैत्तिक व्याधि उसमें शीघ्रता से घर नहीं कर सकती। इसका यह तात्पर्य नहीं कि आयुर्वेद कीटाणुवाद को स्वीकार नहीं कर करता या कीटणुनाशक औषध व्यवहार में नहीं लाता। परन्तु आयुर्वेद की प्रधान-पद्धति दोष प्रधान अथवा क्षेत्र परिवर्तक है। अतएव द्रोणपुष्पी,, निंब, पर्पटक आदि पित्तहर औषधियों के हिम इतना बीज (कीटाणु) नाश करके नहीं जितना क्षेत्र (शरीरदोष) परिवर्तन द्वारा रोगी को स्वस्थ करते हैं।

(३) अब तीसरा प्रश्न उठता है। क्या इन अवस्थाओं की आधुनिक व्याख्याएं अधिक "वैज्ञानिक" हैं।

प्रथम उदाहरण में वातप्रकृति व्यक्ति को आधुनिक विज्ञान में क्विनाइन के प्रति Allergic अथवा Anaphylactsic (अर्थात् औषध सहिष्णु) कहा गया है और दूसरे को क्विनाइन के प्रति अधिक Tolerance (सहिष्णुता) वाला कहा गया है। आयुर्वेदानुसार यह व्याख्याएं स्वेच्छाजनित अनायासोक्तियाँ हैं जिनमें कोई क्रम, पद्धति या वैज्ञानिकता ढूंढना व्यर्थ है। इस प्रकार तो एक व्यक्ति को देवताओं का कृपापत्र और एक को ईश्वरीय शाप का शिकार कह देना भी काम चला सकता है। क्योंकि allergy, tolerance, idiosyncracy, anaphylaxis आदि शब्द न तो ऐसी व्याख्या से कम मनघड़न्त है न अधिक प्रकाशजनक अथवा ज्ञानप्रद।

दूसरे उदाहरण में मैलेरिया उपसर्ग के प्रश्न पर दो भिन्न व्यक्तियों की प्राकृतिक रोग प्रवृत्ति (natural Susceptibility) और प्राकृतिक रोग प्रतिबन्धिकी शक्ति (natural immunity) द्वारा की गई व्याख्या, बड़ी सरलता से, बिना कोई वैज्ञानिकता का अंश कम किए, दैवी प्रकोप और दैवी प्रसाद द्वारा व्याख्या में परिवर्तित की जा सकती है। आयुर्वेदिक चिकित्सक इस प्रकार के स्पष्टीकरणों को सर्वथा कपोलकल्पित और विज्ञान की दृष्टि से सर्वथा निराधार समझते हैं। इसके विपरीत आयुर्वेदिक दोषीय स्पष्टीकरण प्राकृतिक, क्रमबद्ध सिद्धांतबद्ध

(शेष पृष्ठ २६९ पर)

त्रिधातु-त्रिदोष

(स्वास्थ्य-रोग)

(लेखक—डा० एन० एस० परांजये बाबा साहब नागपुर)

[आप उन कुछ विद्वानों में से हैं जिन्होंने आयुर्वेद और एलोपेथी का गंभीर मंथन किया है। दीर्घकालीन स्वाध्याय के बाद आप जिन परिणामों पर पहुँचे हैं उन्हें इस लेख में प्रकट किया गया है। आगामी अंक में आपका त्रिदोष की सप्तावस्था पर एक लेख प्रकाशित हो रहा है]

निम्न प्रदत्त वर्णन चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट के लेखों पर आधारित है। आयुर्वेद का अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है "दोष धातु मलमूलंहि शरीरम्" शरीर द्रव्य के तीन भागों में से पहले भाग का सम्बन्ध त्रिधातु से है, दूसरे का धातु पट (Tissues) और तीसरे का अभिप्राय त्यक्तद्रव्य (Excretion) से है। पहले भाग का सम्बन्ध गवेषणा से है। विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत दोषों के निम्नांकित चित्रण से इनका ठीक परिचय हो सकता है।

त्रिधातु (स्वास्थ्य)

आयुर्वेद की आधुनिक चिकित्सा प्रणालि से तुलना करते समय कुछ बाधाओं का निराकरण आवश्यक है।

आयुर्वेद	आधुनिक
खाद्य = ६ भाग	= ३ भाग
पाचन = ३ रस	= ६ रस
पोषक = ३, कफ, पित्त, वात	= ३, मिष्ट, वसा, मांसल
स्वाद = ३, मधुर, अम्ल, कटु	= ३, तीखा, खट्टा, स्वाद रहित (उदासीन)

पट कोष (Tissue) की पुष्टि के लिए तीनों की आवश्यकता है। यद्यपि शरीर के विभिन्न सूक्ष्म कोशों के लिए इन तीनों के विभिन्न अंश चाहिये परन्तु समस्त सूक्ष्म कोषों को इन तीनों द्रव्यों की एक साथ आवश्यकता है और ये तीनों सब को पहुंचाये जाते हैं।

(२) तीनों पोषक द्रव्य समस्त शरीर में चक्कर लगाते हैं। इसलिए सब पटों के कार्य, आयुर्वेद के मतानुसार, वात, पित्त और कफ के नाम से वर्णित होते हैं।

शरीर आकृति—त्रिधातु

(१) त्रिदोष पांच भौतिक शरीर घटक हैं। वे स्थूल जगत के पंच महाभूतों द्वारा निर्मित हैं।

(२) आयुर्वेद में इनके विभिन्न रंग वर्णित हैं।

(३) दोषों का परिमाणात्मक वर्णन किया गया है ।

(४) दोषों के विभिन्न तौल कहे गये हैं ।

(५) इन्हें शरीर का भाग कहा गया है ।

(६) एक व अधिक इन्द्रिय ज्ञान गम्य हैं ।

(७) ये शरीर में स्थान रखते हैं ।

(८) शरीर के विभिन्न भागों में पांच विभिन्न आकृतियों के रूप में इनमें से प्रत्येक का वर्णन किया गया है ।

(९) इन्हें ग्रन्थि स्राव (Secretions) के रूप में वर्णित किया गया है ।

(१०) अन्न मार्ग में संघात रूप में और समस्त शरीर में अ-संघात रूप में इनका कार्य होता है ।

शारीर प्रकृति--त्रिधातु

(१) प्रमाण बद्ध आहार और शारीरिक व्यवहार से ये दोष स्वस्थ और उचित अनुपात में रहते हैं ।

(२) स्वास्थ्य की दृष्टि से आयुर्वेद में इन्हें धातु कहा गया है ।

(३) अन्नपाक के समय ये तीनों दोष अन्न मार्ग में ग्रन्थि स्राव के रूप में गिरते हैं ।

(४) भोजन पर वे तीन प्रकार से कार्य करते हैं और भोजन द्वारा पुष्टि प्राप्त करते हैं ।

(५) भलीभांति पुष्टि प्राप्त करने के बाद शरीर में उनका शोषण होता है ।

(६) इस प्रकार शोषण के बाद, वे समूचे शरीर में प्रसारित होते हैं और सप्त धातुओं को पुष्ट करते हैं ।

(७) सेन्द्रिय शरीर द्रव्य होने के कारण ये दोष शरीर के अन्य भागों के समान जीवित हैं ।

(८) शरीर के विभिन्न भागों के अनुसार प्रत्येक दोष के पांच प्रकार के उपविभाग हैं और विभिन्न स्थलों पर इनके विभिन्न कार्य हैं ।

(९) धातु और मल की अपेक्षा से ये स्वतंत्र हैं और पटों को पुष्ट करते हैं । इसलिए समूचे शरीर के अधिकांश कार्य इनके कारण होते हैं ।

(१०) पटों को पुष्ट करने के बाद पुनः ग्रन्थि स्राव के रूप में रहते हैं ।

शारीर-विकृति---त्रिदोष

(१) अप्रमाण भोजन और शारीरिक क्रियाओं से दोषों की समता नष्ट हो जाती है ।

(२) दोष विकृति बढ़ जाने से रोगांश प्रारम्भ हो जाता है जिसे व्याघात रोग कहते हैं ।

(३) इस विकार-वृद्धि से दोष प्रकोप प्रारम्भ होता है ।

(४) इसके बाद विकृत दोषों का प्रसार होता है ।

(५) ये विकृत दोष शरीर के अशक्त स्थानों को पकड़ते हैं।

(६) इस स्थान संश्रय से शरीर की आकृति पर प्रभाव पड़ने लगता है।

(७) इससे शोथ प्रारम्भ होता है।

(८) इसे विद्रधि (Abscess) वा फोड़ा कहते हैं।

(९) यह फोड़ा (Abscess) फट जाने से व्रण (Ulcer) बन जाता है।

(१०) यदि व्रण का उचित इलाज न किया जाय तब वह कोथ (Gangrene) बन जाता है। इसके फैल जाने से मृत्यु की संभावना होती है। कफ, पित्त और वात के इस विकृति चक्र में समस्त शरीर में क्रमशः २०, ४० और ८० लक्षण प्रकट होते हैं।

त्रिदोष—रोगावस्था

(१) समस्त पट कोषों को पुष्ट करने वाले त्रिधातु हैं। उनका बिगाड़ पटकोष कार्य को प्रभावित करता है और यदि यही अवस्था जारी रहे तब पट-आकृति पर प्रभाव पड़ता है जिससे समस्त प्रकार के शारीरिक रोग पैदा होते हैं।

(२) समस्त इलाजों का एक मात्र उद्देश्य इन विकृत पोषक तत्वों को सामान्य अवस्था में लाना है और इसके लिए आयुर्वेद द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न उपाय काम में लाये जाते हैं।

शारीर विकृति–निष्कृति

(१) नियमानुकूल आहार और शरीर व्यवहार से दोषों में समता आ जाती है।

(२) अपचन के कई लक्षण उपवास से दूर हो जाते हैं।

(३) वमन द्वारा कफ निकाल देने से आराम मिलता है।

(४) विरेचन देने से पित्त शान्ति होती है।

(५) अनीमा देने से वात शान्ति होती है।

(६) शोथ होने पर विभिन्न प्रकार के लेप, दोषों के अनुसार लगाने चाहियें।

(७) फोड़ा पक जाने पर तीनों दोषों के अनुसार चीर दिया जाता है।

(८) फोड़ा चीरने के फलस्वरूप व्रण हो जाता है और व्रण के स्राव का तीनों दोषों के अनुसार वर्णन होता है।

(९) दोषों के अनुसार कोथ की स्थिति (Gangrenous condition) वर्णित होती है और दोष अनुसार उसका सामूहिक निराकरण होता है।

(१०) विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार विभिन्न इलाज आवश्यक है, जैसे—पंचकर्म, वस्ती व अन्य औषधि।

इस लेख में दिये गये उपर्युक्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि आधुनिक चिकित्सा की दृष्टि से हमें किस दिशा में सोचने का प्रयत्न करना चाहिये।

शास्त्र चर्चा

वात पित्त कफ एकाकी द्रव्य हैं या नहीं ?

[लेखक—श्री वैद्य श्री वि० डेग्वेकर, एम० ए० एम० एस० सी० एल० एल्० बी जबलपुर]

शास्त्र चर्चा परिषद में विद्वान उपर्युक्त विषय पर सर्वसम्मत निर्णय नहीं दे सके हैं। इस सम्बन्ध में विद्वान लेखक के विचार हम पाठकों के सम्मुख रख रहे हैं। श्री डिग्वेकर ने इच्छा प्रकट की है कि हम भी अपने विचार प्रकट करें किन्तु इस सम्बन्ध में दूसरे विद्वानों द्वारा मत प्रकट करने के बाद ही हमारा कुछ लिखना उचित होगा। प्र० स०

पटना की शास्त्र चर्चा परिषद में यह प्रश्न उपस्थित हुआ था। आयुर्वेदीय सब ही ग्रंथों में इन तीनों शब्दों का एक वचनांत प्रयोग हर एक स्थान में पाया जाता है किन्तु बहुवचनांत प्रयोग कहीं भी नहीं पाया जाता। इस अन्वयव्यतिरेकात्मक नैय्यायिक प्रमाण से ही यह बात सिद्ध हो जानी चाहिये। किंतु इसके उत्तर में कहा जाता है कि यह एकवचनांत प्रयोग 'जातौएकवचनम्' इस साहित्यिक प्रयोग के समान आयुर्वेदीय शास्त्रों में किया गया है अतः वह एक वचन वर्ग बोधक है। एवं वात शब्द से 'वात वर्ग' के सब ही शारीर द्रव्यों का बोध होता है इत्यादि इत्यादि।

अतः इस विचारधारा का परीक्षण आयुर्वेदीय वाक्यों द्वारा करना उचित होगा।

(१) सुश्रुत निदान स्थान अध्याय १ श्लोक ११ इस प्रकार है :

यथाग्निः पंचधाभिन्नो नामस्थानात्मकर्मभिः।
भिन्नोऽनिलस्तथा ह्येको नामस्थानक्रियामयैः ॥११॥

इस पर. डल्लनाचार्य लिखते हैं। यथाऽग्निः पित्तग एक एव पाचक रंजकालोचक भ्राजक साधकेतिनाम्ना, स्थानेनामपक्वाशयादिना क्रियया अन्नपाचनादिकंच। आमयेनाम्लपाकादिना पंचविधः, एवमनिलोऽप्येकएव नामादिभिः पंचविधः।

इस अवतरण से स्पष्ट है कि यहां 'जातौ एकवचनम्' का न्याय शास्त्रकारों को अभिमत नहीं है। यदि होता तो 'एकः' शब्द प्रयोग कभी न किया गया होता। अनिल शब्द का एक वचनांत प्रयोग ही उसके एकत्व एवं एकाकी द्रव्यत्व का निश्चित बोधक होते हुए भी जब फिर भी 'एक ही' शब्द प्रयोग किया गया है तो वह इसी लिये कि कहीं 'जातौ एकवचनम्' समझ कर उस द्रव्य का अनेकत्व न गृहीत किया जावे। यदि ऐसा शास्त्र विरोधी अर्थ मान लिया जाय तो 'एकोहि' शब्द प्रयोग पूर्णतया व्यर्थ हो जाता है।

(२) एक ही द्रव्य एवं वस्तु को जब वह भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करती है तो भिन्न-भिन्न नाम दिये जाते हैं परन्तु केवल भिन्न नाम करण के कारण वह वस्तु भिन्न नहीं हो जाती।

अष्टांगहृदय सूत्रस्थान अध्याय १२ श्लोक ४ में :— प्राणादिभेदा त्पंचात्मा वायुः। यह वाक्य आया है। इसकी सर्वांगसुन्दर टीकामें अरुणदत्तजी लिखते हैं—

वायुरेकएव चलनस्वभावः सन् प्राणादिभिः प्राणोदान व्यानसमानापानैः, भेदात विशेषात् पंचात्मा पंचस्वभावः। यथैकोऽपि देवदत्तः यांयांक्रियांकरोति तदनुरूपामेवसंज्ञां लावकपाचकादि-कांलभते, तद्वद्वातादयः।

यहां पर टीकाकारों ने पंचात्मा का अर्थ पंचप्रकारः नहीं किया है किंतु पंचस्वभावः ऐसा किया हैं। अर्थात् जिस प्रकार एक ही देवदत्त जब भिन्न-भिन्न कार्य करने लगता तब उस कार्य के अनुसार उसे आवक पाचकादि भिन्न संज्ञा दी जाती है उसी प्रकार जब एक ही वायु विभिन्न स्थानों में जाकर विभिन्न कार्य करता है तब उसी को प्राणापानादि संज्ञाएं दी जाती हैं परन्तु उससे उस वस्तु या द्रव्य का एकाकित्व नष्ट नहीं होता। अतएव वात द्रव्य एकाकी ही हैं उसका वर्ग नहीं हैं।

सर्वांगसुन्दरा तथा हेमाद्री के आयुर्वेद रसायन में भी भेद का अर्थ विशेष तथा पंचात्मा का भी 'पंचविशेषः' ऐसा ही किया है पंचप्रकारः नहीं किया है।

(३) चरक सूत्रस्थान अ० १२ सूत्र ८ की टीका में चक्रदत्त कहते हैं प्राणाद्यात्मा प्राणादि-स्वरूपः। यहां भी 'आत्मा' का स्वरूप अर्थ किया है न कि प्रकार।

(४) आयुर्वेद की संहिताओं में (चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट) वातवर्ग, कफवर्ग आदि वर्गद्योतक शब्द कहीं पाये नहीं जाते। चरक में तो वात पित्त कफों के पांच पांच भिन्न स्वरूपों तक का वर्णन किया हुआ नहीं है। जब आयुर्वेदीय ग्रंथों तक में यह वर्गीकरण नहीं पाया जाता तब आयुर्वेदेतर भारतीय साहित्य में विशेषतः महाभारत सरीखे पौराणिक (non-technical) ग्रंथ का एक श्लोक—कफवर्गेभवेच्छुक्रं पित्तवर्गेचशोणितम्—आधार भूत लेकर एक अनायुर्वेदीय कल्पना आयुर्वेद में अंतर्भूत करना कहां तक योग्य माना जा सकता हैं। दूसरे इस वाक्य से तो सप्तधातुओं में से एक धातु कफवर्ग में तो दूसरी पित्तवर्ग में अंतर्भूत की जा सकती है ऐसा कहा गया है। तो क्या शुक्र भी एक प्रकार का कफ है अथवा शोणित भी एक प्रकार का पित्त है? यदि नहीं तो ऐसे वाक्य आयुर्वेदीय विज्ञान के निश्चय करने में कहां तक आधारभूत माने जा सकते हैं? आधुनिक ग्रंथकारों के किये हुए इस समर्थन को तब तक नहीं माना जा सकता जबतक त्रिदोष पद्धति के प्रवर्तक प्राचीन ग्रंथ कर्त्ता उसका प्रतिपादन करते हुए नहीं दृष्टिगोचर होते।

अनायुर्वेदीय विचारधारा आयुर्वेद पर जबरदस्ती लादने से आयुर्वेदीय उद्धार की तो आशा भी नहीं की जा सकती किन्तु आयुर्वेदीय सिद्धान्तों का नाश करने में सहायक होंगी।

आयुर्वेद का अरब पर प्रभाव

(लेखक—श्री पुरुषोत्तम देव मुलतानी, अयुर्वेदालंकार, घी मण्डी, पहाड़गंगज, नई दिल्ली)

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का अरब सभ्यता पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इस विख्यात मरस्थल के प्रसिद्ध राजा हारून-रशीद के गंम्भीर रुग्ण काल में, सर्वप्रथम भारत के सुयोग्य वैद्य माणिक्य को वहां आमन्त्रित किया गया जिसकी चिकित्सा से चमत्कारी प्रभाव हुआ। इसके बाद भारत अरब का सम्पर्क बढ़ता गया और वहाँ के खलीफाओं की प्रेरणा से चरक, सुश्रुत तथा अन्य आयुर्वेदिक ग्रन्थों का अरबी अनुवाद वहां ही विशेष सम्मान पूर्वक रखे गये भारतीय विद्वानों द्वारा किया गया। विद्वान् लेखक के शब्दों में इस प्रभाव का ब्यौरा पढ़िये।

विश्व के मानचित्र पर अरब देश सर्वाधिक दीर्घ प्रायद्वीप है। चिरकाल से इस का भारत के साथ निकट सम्पर्क रहा है। अरब अच्छे नाविक थे और उनकी नौकायें मध्यपूर्व में लंका और सुदूर पूर्व में जावा सुमात्रा तक जाती थीं। इन के लिए भारत समृद्धि, सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र था। भारतीय दर्शन और ज्योतिष का लोकोक्ति के सदृश उनमें प्रचार था। वे भारतीयों को अहल-अल-इल्म व अल-फलासफत कहते थे। प्रारम्भिक अरबी गानें व कवितायें भारतीय उपमाओं और अलंकारों से भरपूर हैं। भारत के तटवर्ती प्रदेश वहां की उपज व फलों से अरब निवासी पूर्ण परिचित थे। नारियल, कपूर और आम को उन्होंने भारत से उधार लिया। कुछ भारतीय वस्तुओं का वे अपनी औषधियों में प्रयोग भी करते थे। इस लिए, अरब का भारत के साथ प्राचीन कालिक सांस्कृतिक सम्बन्ध है और, साधारणत: प्रचलित यह धारण अशुद्ध है कि मुहम्द बो० अल० साफी के आक्रमण इसका प्रारम्भ हुआ है।

अरब के इतिहास में छठी शताब्दि का अंत युग परिवर्तन कारी था। इस काल में मुहम्मद का जन्म हुआ और इस व्यक्ति ने अरब वासियों के जीवन चरित्र, धर्म और विचारों में प्रबल परिवर्तन किये। इनकी मृत्यु के बाद चार सुयोग्य उत्तराधिकारी नियुक्त किये गये जिन पर मुहम्मद साहब का सन्देश अरब से बाहर फैलाने का दायित्व था। फलतः आधी सदी में इस्लाम चीन की सीमा से स्पेन तक गूंजने लगा। खलीफों के पतन के बाद उमाय्याद वंश के हाथ में शक्ति आई। इस समय अरब में रईसों का राज्य था और वे अपना प्रभुत्व विस्तृत करने में व्यस्त थे। सांस्कृतिक विषयों की ओर ध्यान देने का इन्हें कम अवकाश था। इनका शीघ्र पतन हुआ और इनके भग्नांशों पर अब्बासिदियों का साम्राज्य खड़ा हो गया जो विश्व में उस समय बड़ा शक्तिशाली था। इन्होंने सीरिया से राजधानी बदलकर ईरान की सीमा पर स्थापित की जो बाद में बगदाद के नाम से प्रसिद्ध हुई। अरबी रात्रि कथाओं में रोमांस के लिए यह नगर प्रसिद्ध हैं। सीरिया में रहते हुए अरबों का सम्बन्ध ग्रीक सभ्यता से हुआ और यहां पर

ही अतिसभ्य जातियों के साथ उनकी घनिष्टता बढ़ी, अर्थात् फारसी और हिन्दुओं से। इसलिए राजधानी परिवर्त्तन इस्लामी इतिहास में महत्त्वपूर्ण घटना है। फारसी शिष्टाचार और रीति-रिवाजों का बगदाद के दरबार में प्रचलन प्रारम्भ हुआ।

जिस समय अरबों ने विज्ञान दर्शन, ज्योतिष की ओर ध्यान दिया, उन्होंने उस समय अरस्तू, सुकरात, गालेन इत्यादि यूनानी लेखकों की रचनाओं को बड़ा उत्तम पाया और उसका पूर्ण परिश्रम के साथ अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार बगदाद का प्रासाद विज्ञान और कला का केन्द्र बन गया।

अबू-उसल बाह के कथनानुसार निम्नलिखित घटना से आयुर्वेद का प्रथम वार बगदाद के दरबार में प्रवेश हुआ और अरबों ने प्रथम वार मानवता के कल्याण के लिए आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के महत्व को समझा।

खलीफा हरूनअल-रशीद एक वार रोगी हुए। बगदाद के समस्त चिकित्सक निराश हो गये। एक दरबारी ने भारतीय चिकित्सा के प्रयोग का परामर्श दिया। उन दिनों भारतीय चिकित्सा का नाम विश्व विख्यात था। माणिक्य भारतीय को जिसे अरबी में मनकाह-अल-हिन्दी का नाम दिया गया है,—निमंत्रण भेजा गया। यह वैद्य बगदाद आया और इसने अपनी अपूर्व औषध से खलीफा को स्वस्थ कर दिया। सम्मान और धन से इसका सत्कार किया गया और इसे बगदाद के अस्पतालों और महाविद्यालयों का संचालक नियुक्त किया गया।

भारत के इस महान् वैद्य के प्रारम्भिक जीवन के बारे में हम कुछ नहीं जानते परन्तु बगदाद के दरबार में इसने जो गौरवपूर्ण कार्य किया, उसके लिए प्रत्येक भारतीय को अभिमान होना चाहिये। इस विषय पर हमारे मुख्य प्रमाण-स्रोत इब्न-अबी-उसे बाह ने दो घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे पाठकों को आयुर्वेद चिकित्सक की बुद्धिमत्ता और उत्तरदायित्व का ज्ञान होता है। पहली घटना के अनुसार माणिक्य ने बगदाद के बाजार में एक दवाई फरोश को दवाई बेचते देख—जिसे वह सर्वरोग नाशक बता रहा था—निर्भयतापूर्वक उसे ऊंठवैद्यकहा और इससे होने वाली मृत्यु के लिए खलीफा को दोषी ठहराया। माणिक्य ने कहा "खलीफा ने इससे इलाज क्यों नहीं करा लिया ? मुझे भारत से बुलाने की क्या आवश्यकता थी" दूसरी घटना के अनुसार हारून-अल-रशीद के भतीजे का इलाज एक दरबारी हकीम से न हो सकने के कारण भारतीय वैद्य को उसका इलाज सौंपा गया जिससे वह ठीक हो गया। कुछ समय बाद उस की मृत्यु का समाचार मिला जिससे खलीफा रो पड़े। श्मशान भूमि में जब इसे दफनाने का प्रबन्ध किया जा रहा था, उस समय भारतीय वैद्य ने खलीफा से कहा कि यह तो जीवित है और वैद्य ने तथाकथित मृत व्यक्ति की परीक्षा करने की आज्ञा मांगी। स्वीकृति मिलने पर भारतीय वैद्य ने अपने औषधालय से दवाई मंगवाई जिस के प्रयोग से वह नेत्र खोल कर देखने लगा और बोला—मेरी मीठी नींद में विघ्न क्यों डाला गया ? मैं बड़ा अच्छा स्वप्न देख रहा था।

हारून के इस भतीजे का नाम इब्राहीम था जो बाद में मिश्र और फिलस्तीन का शासक बना और खलीफा अल-महदी की पुत्री से इसका विवाह हुआ था।

बगदाद के अल-बारामाका कुलका वहां के राजप्रासाद के साथ गहरा सम्बन्ध था। इस कुल ने एक से एक बढ़िया मंत्री दिये जिन्होंने इस्लामी इतिहास और सभ्यता में उज्ज्वल कार्य किया। इस कुलने भारत की सभ्यता और धर्म का अध्ययन करने के लिए एक व्यक्ति भारत भेजा था जिसका वृत्तान्त हिजरी पश्चात् २४६ सन् में याकूब-अल-खिंदी ने लिखा और प्रसिद्ध इब्न-अल-नदीम ने इसे देखा। इस लेखक के कथनानुसार, बारामाका कुल ने कई भारतीय वैद्यों को बगदाद के दरबार में आमन्त्रित किया था जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—मर्माकर, फाल सारहल, सदबार और बाबलाह-अल-हिन्दो, माणिक्य और सालेह के अतिरिक्त दाहन नामक एक अन्य वैद्य था जो बड़ा विद्वान् था और जिसने चिकित्सा सम्बन्धी कई पुस्तकों का अनुवाद किया और उसे बगदाद के चिकित्सा महा-विद्यालय का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

बगदाद के राजप्रासाद में अन्य प्रसिद्ध चिकित्सक, अबु-उसयबाह के कथनानुसार, कनकाह (सम्भवतः कनक) था जो इस अरब लेखक के अनुसार, भारत का सर्वप्रथम वैद्य और दार्शनिक था। इसने अरबी में संस्कृत से ६ पुस्तकों का अनुवाद किया था। इस के अतिरिक्त, अबु-उसमबाह ने निम्न लिखित वैद्यों का भी बगदाद दरबार में होना बताया है—बाखर, राहाह, सुख, दाहेर अनकर, जनकाल, अनदी, जारी जभार। इनकी पुस्तकें अरबी में अनूदित की गईं। इसी प्रकार चरक और सुश्रुत सहिताओं का भी अरबी में अनुवाद किया गया। जांच से पता लगा हैं कि उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त १५ अन्य पुस्तकें अरबी और फारसी में अनूदित की गईं जिन में बाल-रोग, सर्प और विष चिकित्सा, गर्भिणी और स्त्री रोग, मानसिक रोग तथा अन्य भयंकर रोगों का वर्णन किया गया है। कई भारतीय वैद्यों के नाम अरबी भाषा में जाकर इस प्रकार अपभ्रंश हो गये हैं कि उनका हिन्दी में लिखना और उनका पूर्वरूप जानना बड़ा कठिन है। इस प्रकार के नामों की संख्या एक दर्जन से अधिक है।

अरब चिकित्सा शास्त्र के आधार यद्यपि ग्रीक विद्वान् हैं पर आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति ने उसमें क्रान्ति पैदा कर दी। जिसे आज मुसलिम चिकित्सा शास्त्र कहा जाता है वह ग्रीस की देन नहीं है, जैसा कि पाश्चात्य लेखक कहते हैं परन्तु वह ग्रीस और भारतीय आयुर्वेद पद्धति का सम्मिश्रण है।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

मतदाता-सूची

प्रकाशित हो चुकी है जिसमें १५०० से भी अधिक वैद्यों के नाम पते सहित संगृहीत हैं। औषध-विक्रेताओं के विशेष काम की चीज़ है। १) रु० भेजकर शीघ्र प्राप्त कर लें।

हमारा चिकित्सालय

[इस नए स्तम्भ में ज्ञान-वृद्ध एवं वयोवृद्ध वैद्यों के चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव प्रतिमास प्रकाशित होंगे। धर्मार्थ चिकित्सालयों के अध्यक्ष एवं आतुरालयों के प्रधान चिकित्सक भी यदि अपने यहां के कष्टसाध्य एवं दुःसाध्य रोगियों के चिकित्सा सम्बन्धी विवरण हमें लिख भेजें तो हम उन्हें सहर्ष प्रकाशित करेंगे। प्र० सं०]

आंत्रक्षय का रोगी

[लेखक—श्री एन० आर० फटथार एस० ए० वैद्य शाला बैंगलौर]

रोगी का इतिवृत्त—दिसम्बर १९४६ के अन्तिम सप्ताह में कृष्णमूर्ति नामक पंचवर्षीय बालक मेरे पास लाया गया। रोगी का तापमान प्रातः ९६.५° फ० और रात्रि को १००° के लगभग रहता था तथा ५—६ दस्त प्रतिदिन आते थे। अत्यन्त दुर्बल होने से अंग-प्रत्यंग संचालन में असमर्थ था। उसके पिता के कथनानुसार बम्बई के एक प्रमुख एम० बी० बी० एस० डाक्टर ने ९० दिन तक इस बालक का इलाज किया था। परन्तु, सर्वथा निष्फल! न दस्त रुके और न तापमान नारमल हुआ। इस रोगी को हाथ में लेने में पहले मुझे संकोच हुआ किन्तु उसके पिता के प्रबल आग्रह को टाल न सका। भगवान् धन्वन्तरी का स्मरण करके रोगी की चिकित्सा प्रारम्भ कर दी जिसका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है। (मुख पृष्ठ के भीतर चित्र देखें)

सर्वप्रथम दस्तों को बन्द करने के लिए अतिविषा, पाठा, वचा को जला कर प्राप्त किया हुआ कोयला, जायफल और माजूफल इन पांच द्रव्यों को ६—६ माशा समभाग लेकर शिला पर थोड़ा सा जल डाल कर पिसवा लिया। पिसने के पश्चात् यह पेस्ट की तरह हो गई। अब इस पेस्ट को ६ रत्ती की मात्रा में लेकर थोड़े से गर्म पानी में घोल कर तथा थोड़ी सी चीनी मिला कर रोगी को प्रातः सायं पिलाना आरम्भ किया। तीन दिन के प्रयोग के पश्चात दस्त कम हो गए अर्थात् ५ - ६ के स्थान में २—३ प्रतिदिन आने लग गए। लाभ होते देखकर उसी औषधि का प्रयोग जारी रखा, दस दिन के पश्चात् मल ठीक आने लग गया, तथा तापमान भी ९८° फ० हो गया।

रोगी का भोजन

उपर्युक्त औषधि-काल में लाजाओं (इसे शायद मराठी में मुरमुरा कहते हैं) को पीस कर पाउडर बना लिया गया और उस पाऊडर से हल्की सी कांजी तय्यार कर ली गई। इस कांजी में थोड़ा सा दूध और चीनी मिला कर रोगी को पीने के लिए दी गई।

२. दस्त रुक जाने के पश्चात् शोथनाश के लिए निम्नलिखित औषधि आरम्भ कर दी गई :—

पुनर्नवासव ३० बूंद
लोहासव १० बूंद } भोजनोत्तर दोनों समय
जल ४ बूंद

यह दो सप्ताह तक जारी रखी गई । इस काल में बालक थोड़ा २ बोलने लग गया और उसमें उठने बैठने की शक्ति भी आ गई ।

३. उपरिलिखित लाभ देखने के पश्चात् औषधि की मात्रा (पुनर्नवास व तथा लोहआसव) द्विगुण कर दी गई । अब बालक की पाचन शक्ति और भी बढ़ गई, अतः जल में थोड़ा सा नमक डालकर उबाले हुए चावल खाने की अनुमति भी दे दी गई । इसी दौरान में शोथ बहुत ही कम होगया, बालक में कुछ और शक्ति आगई और वह कभी २ दीवार का सहारा ले कर खड़ा भी होने लग गया । चित्र संख्या २ में रोगी की उसी अवस्था को दिखाया गया है । (मुख पृष्ठ के भीतर चित्र देखें)

अब रोगी के स्वास्थ्य को साधारणतः उन्नत करने के विचार से 'अंगूरासव' खाने के बाद रोगी को दी । इसके अतिरिक्त निम्नलिखित योग एक भाग घृत और दो भाग मधु के साथ प्रातः सायं आरम्भ किया गया :—

मण्डूरसिन्दूर शतपुठी—२ रत्ती
सत्व गुलबेल—२ रत्ती

इसके दो सप्ताह के प्रयोग से बालक के स्वास्थ्य में यथेष्ट उन्नति हो गई और अब वह किसी की सहायता से चलने भी लग गया ।

अन्त में रोगी की औषधि और पथ्य में परिवर्तन कर दिया गया और उसे १ रत्ती लोहभस्म तथा १ रत्ती गुलबेल सत्व मधु और घृत के साथ दोनों समय भोजन के पश्चात् दिया गया। साथ ही अंगूर का मधु भी प्रातः सायं जारी रक्खा गया । भोजन में चावल तथा दाल का पानी रोगी को दिया गया ।

उपर्युक्त औषधि देने से बालक स्वतंत्रतः चलने के योग्य होगया ।

अब बालक स्वस्थ होगया था और चिकित्सा की कोई आवश्यकता न रह गई थी। अतः एक विशेषरूप से तैयार की हुई शक्ति वर्धक औषधि अश्वगन्ध अवलेह बालक को देकर उसकी छुट्टी कर दी गई । इसके एक मास अथवा चिकित्सा से ४ मास के उपरान्त बालक का स्वास्थ्य जिस अवस्था में था उसे चित्र संख्या २ में देखें ।

हृद्ग्रहः (उत्कट हृदयावरण प्रदाहः)

[ले० वैद्य राधावल्लभ पन्त भिषगाचार्य धन्वन्तरि २६ बाजार, लेन, नई दिल्ली]

हृदय एक सौत्रिक तन्तु के आवरण से ढका रहता है। यह आवरण एक थैली के समान होता है जिसके भीतर हृदय रहता है जिसे हृदय कोष या हृदयावरण कहते हैं। आवरण का भीतरी पृष्ठ वहुत चिकना और चमकदार होता है और सदा ही तरल से कुछ भीगा रहता है। भीगे रहने के कारण ही फुफ्फुस व महाप्राचीरापेशी से किसी प्रकार रगड़ नहीं खाता। इसके अतिरिक्त हृदय के भीतर की तरफ एक आवरण होता है इसे हृदन्तरावरण कहते हैं।

हृदय के आवरण में प्रदाह होने से इसको हृदयावरण प्रदाह कहते हैं। साधारणतः हृदयावरण प्रदाह किसी रोग के साथ पाया जाता है अर्थात् रोग का उपसर्ग होता है जैसे तरुण आमवात हो तो हृदयावरण प्रदाह हो सकता है।

उत्पत्ति कारण

(१) तरुण आमवात बिशेषतः बच्चों में आमवात हो तो उसके साथ हृदयावरण प्रदाह होता है। हृदयावरण प्रदाह आमवात से पूर्व दिखाई देता है।

(२) वृक्क रोगों में, वातरक्त, स्कर्वी, मधुमेह आदि से भी हृदयावरण प्रदाह हो सकता है।

(३) प्रसूतज्वर।

(४) क्षयज हृदयावरण प्रदाह।

(५) बाईं ओर श्वसनक फुफ्फुसावरण में अग्रसर हो हृदयावरण में प्रदाह कर सकता है।

हृदयावरण प्रदाह तीन प्रकार का होता है।

(१) शुष्कावस्था—हृदयावरण में केवल प्रदाह होता है जल नहीं होता।

(२) सजलावस्था—हृदयावरण में रस या जल तथा तन्तु या दो की उत्पत्ति हो सकती है या केवल रक्त या पूय एकत्रित हो सकता है।

(३) संसक्तावस्था—इसमें हृदयावरण हृदय के साथ संलग्न हो जाता है।

लक्षण

उपरोक्त सब रोगों में प्रथम हृदयावरण को देखना चाहिये क्योंकि हृदयावरण प्रदाह के रहते हुए भी उसके कोई लक्षण नहीं दिखाई देते। जैसे वृक्कप्रदाह में हृदयावरण प्रदाह होते हुए भी हृदयावरण प्रदाह के कोई लक्षण नहीं प्रकट होते। यहां प्रथम हृदय की परीक्षा करनी चाहिये। साधारणतः हृदय में तीव्रार्त्ति तोद (हृच्छूल) होना हृदयावरण प्रदाह का एक प्रधान लक्षण है। यह बड़ा भयङ्कर होता है और छाती से बांये हाथ तक फैलता है। कौड़ी के नीचे दबाने पर रोगी को हृदय में वहुत कष्ट होता है। हृदयावरण प्रदाह का एक और लक्षण श्वासप्रश्वास में कष्ट का होना है विशेषतः जब हृदयावरण में अधिक जल होता है। जल एकत्रित होने से पूर्व श्रवण

नलिका द्वारा परीक्षा करने पर घर्षण ध्वनि सुनाई देती है। मनःकम्प, नाड़ी द्रुत होती है और नाड़ी की गति स्वाभाविक नहीं होती।

चिकित्सा

चिकित्सा के चार सूत्र

(१) हृदय की द्रुत गति को कम कर प्रदाह को कम करना।

(२) हृच्छूल को दूर करना।

(३) हृदयावरण में जो रस एकत्रित होता है उसको शुष्क करना।

(४) अधिक परिमाणमें जल व पीप जमा होने पर हृदय पर दबाव पड़ता है। ऐसी अवस्था में शस्त्र क्रिया द्वारा इस रस व पीप को निकालना। रोगी को पूर्ण विश्राम कराना चाहिये। चिकित्सा में जलशोषक, मूत्रकारक, शोथहर, कोष्ठ शुद्धिकर औषधि का प्रयोग होता है। एकान्त स्थान में चुपचाप आराम करना। जिस रोग के कारण हृद्ग्रह हो उसकी चिकित्सा भी साथ चलनी चाहिये।

पथ्य—केवल दुग्ध तथा फलों का रस दें। इसमें शिलाजतु के योग लाभ करते है।

यदि आमवात जनित हृदयावरण प्रदाह हो तो जबतक सन्धियों की शोथ व पीड़ा कम न हो तब तक तृणगन्धावलेह, वातारिगुग्गुलु, रसोनपिण्ड आदि देवें।

प्रातः—रसोनपिण्ड २ माशा गरमजल या निर्गुण्डीकाथ से।

मध्याह्न—वातारिगुग्गुलु या बृहत्वात गजाङ्कुश।

सायं—चन्द्रप्रभा या आरोग्यवर्धन।

रात्रि को—तृणगन्धावलेह ३ माशा दूध या गरम जल से।

तृणगन्धावलेह—बुरादा शीशम ऽ।- मिर्चियागन्ध (अस्कर घास) १$\frac{१}{२}$ तोला। पितपापड़ा १$\frac{१}{२}$ तोला, सूरञ्जानशीरीं २$\frac{१}{२}$ तोला, सनाय ५ तोला मिश्री ऽ। इसका पाक बना कर बर्फी जमालें।

हृच्छूल के निमित्त—महावात राजरस $\frac{१}{४}$ रत्ती, निर्गुण्डी स्वरस या क्वाथ के साथ ईसफगोल ६ मासा मिला कर दें। महावातराजरस—धतूरे के बीज, गन्धक, पारद, लोह भस्म २-२ तोला, अभ्रकभस्म, दालचीनी, लौंग, जावित्री, जायफल, इलायची छोटी, भीमसेनी कपूर, कालीमिर्च, मकरध्वज १-१ तोला अहिफेन १२ तोला। सबको धतूरपत्ररस से घोट चणक प्रमाण बटी बनावें। महावात राजरस $\frac{१}{४}$ रत्ती मात्रा में ३ घण्टे के अन्तर से इसका प्रयोग करें जब तक कि पीड़ा में कमी न हो। इस औषधि से कब्ज होता है तदर्थ प्रत्येक मात्रा के साथ ईसफगोल ६ मासा मधुरविरेचन चूर्ण १ माशा मिला कर दूध या जल से दें। मधुरविरेचनचूर्ण—सौंफ २$\frac{१}{२}$ तोला, गंधक २$\frac{१}{२}$ तोला, मधुयष्टी २$\frac{१}{२}$ तोला, सनाय ७$\frac{१}{२}$ तोला, मिश्री १५ तोला। यह मधुरविरेचनचुर्ण है।

हृदयावरण प्रदाह को कम करने के लिये वक्षोस्थि के ऊपर ४-५ जौंकों का प्रयोग करना चाहिये। जब जोंक रक्त पी चुके तो गेहूँ की भूसी से सेंक करना चाहिये या फलालेन के कपड़े से सेंक कर पट्टी बांधने से भी लाभ होता है। हृच्छूल में—

$$\left.\begin{array}{r}\text{मृग श्रृङ्ग भस्म ४ रत्ती}\\ \text{जाती फलादि चूर्ण १ माशा}\end{array}\right\}\ \text{१ मात्रा}$$

३-३ घण्टे बाद १–१ मात्रा देने से भी लाभ होता है। जब सन्धियों की पीड़ा व शोथ कम हो जाय तब ज्वर के लिये सुदर्शन चूर्ण का प्रयोग करें।

जब हृदयावरण में अधिक जल हो तो इसको निकालने के सिये दशमूलक्काथ में पुनर्नवाश्वेत मिलाकर

चन्द्रप्रभा २ गोली } ४ मात्रा
यवक्षार ४ रत्ती }

दिन भर में देना चाहिए।

जीर्ण हृदयावरण प्रदाह मे निम्न प्रयोग करना चाहिये—

प्रातः—शिलाजतु ४ रत्ती पुनर्नवाष्टक या दशमूलक्काथ से दें।

मध्याह्न—चन्द्रप्रभा। सायं—यवक्षार ४ रत्ती।

रात्रि—आरोग्यवर्धनी ४ रत्ती।

हृदयावसाद लक्षण

१. नाड़ी क्षीण, द्रुत व सूत्रवत्।
२. मुख में व छाती में ओस की भांति स्वेद का आना।
३. हाथ पैरों का शीतल होना।
४. हृदय शब्द का भली प्रकार न सुनाई देना।
५. श्वास प्रश्वास का द्रुत होना।

इस अवस्था में निम्न व्यवस्था करनी चाहिये।

कनकासव १ तोला जल मिलाकर वसन्तकुसुमाकर २ रत्ती के साथ पुनः पुनः प्रयोग करें। इससे दुर्बल हृदय सबल होता है। कस्तूरी १ रत्ती पान के रस के साथ दें। या बृहत् कस्तूरीभैरव में कस्तूरी और मिला कर दें। हृदय को बलवान् बनाने के अन्य सिद्ध प्रयोगों का भी व्यवहार कर सकते हैं।

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)
गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र
निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे० के० शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४० वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। १५० पृष्ठ के बड़े सूचीपत्र का मूल्य आठ आना। छोटा सूचीपत्र मुफ्त। सब भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों तथा ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपर्युक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

आयुर्वेद में अनुसन्धान कार्य

(लेखक—श्री डा० प्रसादीलाल झा एल० एम० एस० कानपुर)

यह कार्य कठिन है। यह केवल आयुर्वेद शास्त्र के आचार्यों द्वारा ही सम्भव है। आयुर्वेद वेद का अंग है। आयुर्वेद का सम्बन्ध वेदों के मन्त्रों, उपनिषदों, निरुक्त, दर्शन, शास्त्रों, ज्योतिष तथा तन्त्र शास्त्र से भी है। आप सब विद्वान् हैं। उदाहरणों द्वारा इसको समझाने की आवश्यकता नहीं है।

अनुसन्धान कार्य-कर्ताओं से मेरी यह विनम्र प्रार्थना है, कि वे आयुर्वेद के प्रधान आधारभूत सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए ही शिक्षा तथा चिकित्सोपयोगी विभिन्न विषयों के अनुसन्धान कार्य में प्रवृत्त हों।

आयुर्वेद जीव सम्बन्धी विश्वव्यापी अपार शास्त्र है। उसके विश्वव्यापी सिद्धांत केवल पुरुषसंज्ञक मनुष्य के लिये ही उपयुक्त नहीं है, किन्तु वे प्राणी मात्र के लिये हैं। इसके मूल सिद्धान्तों के आधार पर स्थित शाश्वत मानव त्रिस्कन्ध आयुर्वेद के तुल्य पशु, पक्षी, वृक्ष, और क्रिमी आयुर्वेद की रचना भी विदेशों में की जा चुकी है।

आयुर्वेद के अनेक तन्त्रों का विश्वास योग्य अनुसन्धान केवल पुस्तकों द्वारा असम्भव है। उनकी परीक्षा के लिये विशेष सामग्री और साधनों की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के अनुसन्धान में धन और शास्त्रज्ञ तथा कर्मज्ञ दोनों प्रकार के विशेषज्ञों की आवश्यकता है। ऐसे तन्त्रों के कुछ उदाहरण ये हैं:—

शवच्छेद शल्यशालाक्यतन्त्र, मूढ़गर्भादि की चिकित्सा, ऐसे विषयों की पुनः जाँच के लिये उचित स्थान की आवश्यकता है। आयुर्वेद की पंचकर्मसिद्धि तथा कुटि प्रावेशिक चिकित्सा सम्बन्धी विषयों के अनुसन्धानार्थ विशेष गृहों तथा रमणीक पर्वतों या स्थानों में अनुभवी क्रियाकुशल चिकित्सकों की ज़रूरत है।

शास्त्रों की सहायता से तुलनात्मक अनुसन्धान

यह आयुर्वेद और यूरोपियन चिकित्सा शास्त्र तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले अनेक अन्य शास्त्रों द्वारा अनुसन्धान मन्द गति वाला, कठिन और उत्तरदायी कार्य है। इसके पहले प्रत्येक विषय को स्वयं समझने की आवश्यकता है, ऐसे अनुसन्धानी का कर्त्तव्य है कि दोनों प्रणालियों के शास्त्रों में समान और विशेष भावों का ठीक-ठीक पता लगावें। फिर उन्हीं के द्वारा प्रत्येक की वर्तमान दशा को भी मालूम करें। इनकी सहायता से आयुर्वेद की न्यूनता, श्रेष्ठता तथा वैज्ञानिकता का भी अनुमान हो सकता है। इस प्रकार के पूर्वज्ञान के बिना अंग्रेज़ी में वैज्ञानिक

ग्रंथों के अनुवादों को आयुर्वेद में अनुसन्धान के नाम से ग्रन्थ प्रकाशित करने से आयुर्वेद को हानि पहुँचेगी।

आयुर्वेद एक विशाल शास्त्र है । उसका प्रधान उद्देश्य चरक में सूत्रस्थान के प्रथम अध्याय में दिया गया है। मनुष्यों को दीर्घजीवी बनाना और उनको आरोग्य रखना, उनके जीवन के सब प्रकार के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उनको रोगों से मुक्त करना। ऐसे विचार अब योरोपियन विद्वान् भी अपने चिकित्सा शास्त्र उद्देश्यों के विषय में प्रकाशित कर रहे हैं।

आयुर्वेद के जीव सम्बन्धी विश्वव्यापी सिद्धान्त केवल मनुष्यों के लिए नहीं किन्तु प्राणी मात्र के लिए उपयोगी हैं और काम लाये जा सकते हैं।

इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर पशु, पक्षी, वृक्ष और क्रिमि आयुर्वेद का अनुसन्धान भी सम्भव है। पुराणों में गज और अश्व के रोगों की चिकित्सा भी मिलती है। महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन ने वृक्ष आयुर्वेद का नाम अपने एक भाषण में बताया था। आयुर्वेद में मनुष्यों की प्रकृति भेद के तुल्य पशु और क्रिमियों के भेद भी बताये गये हैं।

आयुर्वेद के व्याधि हेतुलिंग और औषध के विश्वव्यापक सिद्धान्तों में सब प्रकार की वर्तमान चिकित्सा विधियों या प्रणालियों के सिद्धान्त वर्तमान हैं। उदाहरणार्थ–एक विषैली औषधि के अतियोगों द्वारा उत्पन्न रोगों के लक्षणों के आधार पर समान लक्षण वाले रोगों की चिकित्सा उसी विषैली औषधि के हीन योगों द्वारा आयुर्वेदिक विपरीतार्थकरी रोग चिकित्सा, वर्तमान होमियोपैथी के समान है।

आयुर्वेद में अनुसन्धान कार्य कठिन भी है क्योंकि उसमें किसी एक विषय से सम्बन्ध रखने वाले आप्त वचन एक ही ग्रन्थ या स्थान में नहीं मिलते। उनकी खोज में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। इन प्रमाणों का भी अनुसन्धान काल में ही संग्रह करना आवश्यक है।

आयुर्वेद में अनुसन्धान कार्य बड़े उत्तरदायित्व का है। उसका प्रभाव भावी वैद्यों के यश और अपयश का हेतु होगा तथा भविष्य में आयुर्वेद की उन्नति या अवनति का भी हेतु हो सकता है। विभिन्न विषयों के वैज्ञानिक और पूर्ण अनुसन्धान आयुर्वेद की वैज्ञानिकता प्रमाणित करने के अतिरिक्त वे ही उसकी युक्तिव्यपाश्रय सूक्ष्म तथा वैज्ञानिक धातुसाम्यक्रिया चिकित्सा के आधार भी सिद्ध होंगे। अभी तक इस प्रकार के वैज्ञानिक तथा युक्तियुक्त चिकित्सा के प्रधान आधारों तथा युक्तियों का अन्य चिकित्सा शास्त्रों में अत्यन्ताभाव है। यूरोपियन भी स्वयं इस प्रकार के दोषों का अपनी माडर्न मैडिसिन में अनुभव करने लगे हैं। उन्हीं की चिकित्सा के आदर्श तथा दृष्टिकोण से भी केवल आयुर्वेद ही युक्तियुक्त और वैज्ञानिक चिकित्सा कहाने का हक़दार है।

आयुर्वेद के कुछ विषयों के अनुसन्धान में बहुत धन की आवश्यकता होगी और वे केवल शास्त्र के आधार पर ही असम्भव है। एक उदाहरण से ही यह बात समझ में आ सकती है। १८६८ ई० में अंग्रेज़ी सरकार ने भारतीय भेषज गुण सम्बन्धी इण्डियन फार्माकोपिया लंदन

(इंगलैण्ड) के इण्डिया आफिस से प्रकाशित कराई थी। १९३३ में कर्नल चोपड़ा की इन्डिजिनस ड्रग्स आफ इण्डिया भी बहुत खर्च से सरकार द्वारा ही प्रकाशित कराई गई। इस बीच में कई औषधियों के अन्य ग्रन्थ प्रकाशित हुए। यह कार्य वर्षों में अनेक डाक्टरों और कैमिस्टस् के परिश्रम से और लाखों रुपये के खर्च से किया जा सका। किन्तु आयुर्वेद के द्रव्यगुण रस वीर्य विपाकादि सम्बन्धी ज्ञान का इसमें लेश भी नहीं है। इनके द्वारा दोषों और रसों के सम्बन्ध ज्ञान पर आधारित विशेष युक्तियों से दोषों को घटा बढ़ा कर सूक्ष्म धातु-साम्यक्रिया चिकित्सा सर्वथा असंभव है। यह युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा (Rational treatment) आयुर्वेद की विशेष युक्तियों द्वारा प्रयोग की औषध द्वारा ही इष्ट फल देती हैं। इस प्रकार के यथेष्ट परिणाम योरोपियन युक्तियों के सुख से प्रयुक्त की हुई औषधियों द्वारा नहीं प्राप्त होते। योरोपियन निदान विधि से सूक्ष्म "धातुसाम्यम् और धातुवैषम्यम्" का ज्ञान अभी तक असम्भव है। उन विधियों द्वारा रोगों के उपद्रवों की उत्पत्ति के पूर्व रोग का ठीक-ठीक निश्चय भी नहीं हो सकता।

धातु-साम्यम् और धातु-वैषम्यम्, आज की साइन्टिफिक भाषा में लिविंग टिश्यू फ़िज़ियालोजी और पैथालोजी (Living cell or tissue physiology and pathology) कही जा सकती हैं। योरोपियन विद्वानों के वचन, मार्डन मैडिसिन में आयुर्वेद के सूक्ष्म धातु-साम्य और वैषम्य ज्ञान की अभी न्यूनता दिखाते हैं। अतः वे उसको स्वयं अभी अवैज्ञानिक बताते हैं। ऐसे सत्य वचन आयुर्वेद की धातुसाम्यक्रिया चिकित्सा की वैज्ञानिकता तथा आज भी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं।

नया आविष्कार

स्त्री पुरुष, बालक सब के लिये अत्युत्तम महौषधि

* नव रत्न रस *

यह हीरा, माणक, मोती आदि नवरत्नों और स्वर्ण के संयोजन से तैयार की हुई प्रक्रिया है। शरीरस्थ रस, रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, शुक्र-वीर्य धातु की शुद्धि और पुष्टि इस महौषधि के विशिष्ट कार्य हैं तथा नपुँसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल कर नव यौवन प्रदान करता है। स्त्रियों के गर्भाशय के शोथ, प्रदर, बार-बार गर्भपात, गर्भवती स्त्री के हाथ पैरों, पेड़ू में शोथ तथा पांडुता आदि नष्ट करता है। बंध्यत्व निवारणार्थ यह अपूर्व औषधि है। बालकों की अशक्त अस्थियों को बलवान् बना कर केलशियम और विटामिन की न्यूनता, दुग्धपान स्तनपान का अपचन आदि नष्ट करके बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। क्षय, जीर्ण ज्वर कास, श्वास, मधुमेह, मानसिक निर्बलता आदि में अत्युपयोगी है।

नवरत्न रस--निरोगी के लिये रसायन और रोगी के लिये पूर्ण स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है।

उँझा फार्मेसी लि०, उँझा (गुजरात)

काली मिर्च का रोचक इतिहास

[चौथी शती ईस्वी पूर्व से वर्तमान समय तक]

(लेखक श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, अध्यक्ष हिमालय हर्बल इन्स्टीच्यूट गुरुकुल कांगड़ी)

[गताँक से आगे]

किशमिश की तरह सुखाना—फ्रायर ओडोरिक (लगभग १३२१–२ ईस्वी पश्चात्) ने लिखा है कि 'मलाबार राज्य के अतिरिक्त यह संसार में कहीं नहीं पैदा हो रही) इसके पत्ते इवी के सदृश होते हैं।... फल इतने अधिक परिमाण में आते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है लताएँ टूट जायेंगी। ...... पकने पर फल हरे रंग के होते हैं और तोड़ कर अंगूर की तरह धूप में सुखा लिये जाते हैं।... ताजी मिरचों से एक प्रकार का आचार बनाया जाता है जिसे मैंने खाया है।'*

सांप लिपटी हुई लताएँ—फ्रायर ओडोरिक (१३२१–२ ईस्वी पश्चात्) ने मिरचों की रक्षा करने वाले सांपों का वर्णन किया है।† सर जोहन मैन्डेविल्ले के उल्लेखों में यह बात अधिक स्पष्ट है। 'उस देश की अधिक गरमी और मिरचों के कारण उस देश में सांपों और दूसरे कीड़ों की बहुत सी किस्में होती हैं और कुछ लोग कहते है कि जब हम मिरचें तोड़ने लगते हैं तो आग जला देते हैं, जिस से सांप जल जांय और भाग जांय।' सर जौन मैन्डेविल्ले कहते हैं कि 'यह बात गलत है।' क्योंकि, यदि वे फल धारण करने वाली लताओं को जला दें तो मिरचें जल जायेंगी और इस से उन के सब गुण नष्ट हो जायेंगे, जैसे कि दूसरी चीजों के बारे में होता है। ऐसा करने से उन्हें स्वयं ही बहुत हानि होगी और लगी हुई आग को वे कभी बुझा नहीं सकेंगे। लेकिन, सांपों से बचने के लिये वे अपने शरीर को घोंघे और दूसरी चीजों के रस से पोत लेते हैं। सांप और, दूसरे कीड़े इससे घृणा करते हैं और भाग जाते हैं।'

हीरे, जवाहरात और सोने जैसी बहुमूल्य चीजों की रक्षा करने के लिये नागदेवों की ख्याति बहुत सुनी जाती है। क्योंकि, काली मिरच भी बहुत मूल्यवान् चीज हो गई थी इस लिये लोकगाथाओं में इसके अधिष्ठातृ देव भी सांप मान लिये गये थे। वास्तव में यह बात सत्य नहीं है कि काली मिरच की लताओं पर सांप चिपटे रहते हैं।

कैटलन फ्रायर जार्डनस (१३२३–१३५० ईस्वी पश्चात्) ने कालों मिर्च के वर्णन में कोई नई बात नहीं लिखी। ❀

इब्न खुर्दादबाह (८६९–८८५) और इद्रिसि (१२ वीं सदी के मध्य में) जैसे मध्ययुग के अरबी लेखकों ने भी प्रायः इसी प्रकार का वर्णन दिया है।

❀ फारेन नोटिसेज़ आफ़ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १९३९, पृष्ठ १९३।

† देखें—फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १९३९, पृष्ठ २०६ और २१२।

नज़राने में मिर्चें

इङ्गलैण्ड में काली मिर्च के व्यापार का सब से पहला उल्लेख हमें एथलरेड (Ethelred) के कानूनों (९७८-१०१६) में मिलता है।* एक कानून बताता है कि बिलिङ्गस-ग्रेट (Billingsgate) में ईस्टर्लिङ्गस (Easterlings) अपने जहाज़ लाते हैं। लण्डन के साथ व्यापार करने के लिए दी गई सुविधा के कारण उन्हें क्रिसमिस और ईस्टर पर नज़राने में कुछ कपड़े पांच, जोड़े दस्ताने, दस पौंड काली मिर्च और दो बेरल सिरका देना चाहिए।

मिर्च के व्यापारियों का संगठन

मसालों का व्यापार करने वालों को मध्यकाल में काली मिर्च के नाम पर पिपरेरी (Piperarii) कहा जाता था।। अंग्रेज़ी में इन्हें पेपरर्स (Pepperers) और फ्रेंच में पॉयव्रीर्स Poivriers) या पेव्रीर्स (Pebriers) कहते थे। लण्डन में इन व्यापारियों का संगठन बहुत देर से है और यह दूसरे व्यापारिक संगठनों में सब से प्रधान था। यह बात दिलचस्प मालूम देगी कि लण्डन अब भी मिर्च के व्यापर का केन्द्र है। हैंनरी द्वितीय (११५४-११८९) के शासन काल में भी काली मिर्च के व्यापारियों की समिति का अस्तित्व बताया जाता है। ये बहुधा 'पंसारियों के संगठन' (ग्रोसर्स कम्पनी) के रूप में संगठित थे। मसालों, दवाओं, रंगने के पदार्थों तथा धातुओं के व्यापार पर भी इनका नियन्त्रण था।

मध्यकाल में मूल्य

इङ्गलैण्ड में इसे सब मसालों से अधिक पसन्द किया जाता था। पीर्स प्लामैन (Piers Plowman, ५, ३१०-१३) में एक पेटू भटियारन से पूछता है 'तुम्हारे पास गर्म मसाले हैं? काली मिर्च, एक पौंड लहसुन और सौंफ़ भी है या नहीं?' जैसे इनके बग़ैर वह उसके यहाँ खाना ही नहीं खायगा।

इङ्गलैण्ड में १२६३ और १३९९ के बीच में काली मिर्च का औसत मूल्य एक शिलिंग प्रति पौंड था। आजकल के ज़माने में वह एक शिलिंग लगभग आठ शिलिंग के बराबर बैठता है। रोगर्स के अनुसार १३५० और १३६० के बीच में यह प्रति पौंड दो शिलिंग (१६ शिलिंग) के करीब हो गया था। १६२० में इङ्गलैण्ड में काली मिर्च का भाव एक शिलिंग आठ पैंस प्रति पौंड था। व्यापारी लोग उन दिनों पूर्व से ढाई पैंस का एक पौंड मिर्च खरीदा करते थे (कमर्शियल पौलिसि औफ दि मुग़ल्स, डी० पन्त, १९३०, पृष्ठ २७५)।

१६२३ में इङ्गलैण्ड में दो लाख पौंड काली मिर्च गई थी। इसका $\frac{१}{१०}$वां भाग उसने बारह महीनों के अन्दर ही निर्यात कर दिया था। १६२३ में एक पौंड काली मिर्च पर पांच

---

*देखें: एन्शिएण्ट लॉज़ एण्ड इंस्टिट्यूट ऑफ़ इङ्गलैण्ड, जिल्द १, १८४०, पृष्ठ ३०१; रिकॉर्ड़ कमिशन द्वारा प्रकाशित।

शिलिंग कर देना पड़ता था। १८२३ में यह कम हो कर दो शिलिंग ६ पेंस प्रति पौंड रह गया था। १३७० में हम फ्रांस में काली मिर्च का मूल्य सात सौंस (Sons) छः दिनार (deniers) प्रति पौंड (=२१ फ्रांक ३० सेण्ट) पाते हैं और १५४२ में इसका मूल्य प्रति पौंड ग्यारह फ्रांक के बराबर था।

अंगूरलता से भेद

इब्न बतूता (१३३३-४५ ईस्वी पश्चात्) ने लिखा है कि 'मिर्च का पौदा अंगूरलता से मिलता है। वे इसे नारियल के वृक्षों के पास लगाते हैं। इनके चारों ओर अंगूरलता की तरह यह लिपट कर चढ़ जाती है। अंगुरलता से इसमें भेद केवल यही है कि इसमें आवेष्टन सूत्र (tendrils) नहीं होते। इसके पत्ते rue के समान होते हैं और कुछ bramble के पत्तों से ही मिलते हैं। मिर्च के पौदे पर फल के छोटे-छोटे गुच्छे लगते हैं। जब यह हरे होते हैं तो अबू-किलीनाह (अंगुर) से मिलते जुलते हैं। पतझड़ के आने पर वे मिर्चें तोड़ कर उन्हें चटाइयों पर धूप में सुखा देते हैं, जैसे कि अंगूरों को सुखाया जाता है। पूर्णतया सूख कर काले रंग का हो जाने पर वे इसे व्यापारियों को बेच देते हैं। हमारे देश में लोग समझते हैं कि इसके ऊपर की झुर्रियां इसे आग पर भूनने के कारण बनी होती हैं; परन्तु ऐसी बात नहीं है, ये केवल धूप के प्रभाव से बनी होती है। मैंने इसे कालीकट नगर में देखा है। हमारे देश में लोग जैसे ज्वार को मापते हैं उस तरह वहां के लोग मिर्च को बुशल से मापते है।*

कोलम् से सारे संसार को

जोहन दे मैरिग्नोलि (१३४७ ईस्वी पश्चात्) के अनुसार तो १३४७ में भी कोलम्बम् (कोलम्) नामक भद्रनगर सारे संसार के लिए काली मिर्च पैदा कर रहा था। इस यात्री ने भी काली मिर्च का वर्णन अन्य लेखकों के समान ही किया है। परन्तु इसने बताया है कि 'फल आरम्भ में जंगली अंगूर के गुच्छों के सदृश हरे रंग के और बाद में प्रायः हमारे अंगूरों के समान हो जाते हैं। उनके यहां एक लाल अंगूर भी होता है जिसे मैंने अपनी थाली में निचोड़ कर मसाले की तरह खाया है। पकने के बाद भी ये वृक्ष पर सूखने दिये जाते हैं। अत्यधिक गर्मी से ये सिकुड़ जाते हैं। छड़ी से सूखे गुच्छों को नीचे कपड़े में झाड़ लिया जाता है। इस प्रकार फसल इकट्ठी की जाती है।†

वीनिस निवासी निकोलो कोण्टी ने पन्द्रहवीं शती के आरम्भ में पचीस साल पूर्व में व्यतीत किये थे। इसने अन्य लेखकों की बातें ही काली मिर्च के वर्णन में दोहराई हैं। इसने सुमात्रा में भी पौधे को देखा था और यह भी इसे इबी के सदृश लिखता है।

---

* फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री, १९३९, पृष्ठ २३७।

† फौरन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री, १९३९, २८९।

हैज़े की दवा

गार्सियाद आटी ने देखा था कि भारतीय वैद्य मस्तिष्क से कफ का विवेचन करने के लिए, दांत की दर्द के लिए और हैज़े की दवा के रूप में काली मिर्च को ब़रतते हैं।

नेपल्स के जे० बी० पोर्टी ने १५८६ में काली मिर्च से एक तेल पृथक् किया था।

सौ प्रतिशत लाभ

टैवर्नीर ने देखा था कि मिर्च मुख्यतया ट्युटिकोरोन और कालीकट में बेची जाती है और कुछ रत्नागिरि तट पर राजापुर से भी आती है। वह कहता है कि मलाबार के लोगों से जो इन मिर्चें खरीदते हैं वे उन्हें मुद्रा के रूप में मूल्य नहीं देते परन्तु रुई, अफ़ीम आदि व्यापारिक वस्तुएं बदले में देते है। यह मिर्च वही हैं जो युरोप को निर्यात की जाती हैं। पांच सौ लिवर्स (livers) का मूल्व तो कुल अड़तीस रील्स (reals) ही होता है, पर व्यापारिक वस्तुओं के विनिमय में लेने पर वे शतप्रतिशत लाभ ले लेते हैं। एक लिवर १-१ पौंड के बराबर होता है। रील स्पेनिश सिक्का था जिसका मूल्य चांदी के ढुकत के बराबर था। उस समय के यह दो अकबरी रुपये था। इसका प्राक युद्धकालीन मूल्य प्राय: बारह रुपये बैठता है, और इन दिनों (१९५१) लगभग अड़तालीस रुपये। भारत में मिर्च का दाम बहुत चढ़ जाने पर भी आजकल यहां पर चौदह रुपये सेर मिल जाती है। टैवर्नीर ने पुर्तगालियों द्वारा कोचीन में रखे हुए एक बड़े गोदाम का भी ज़िक्र किया है जिसे 'काली मिर्च का घर' कहते हैं।

मुद्रा के रूप में

मध्ययुग में युरोप के अन्दर काली मिर्च बहुत अधिक पसन्द किया जाने वाला और सब मसालों से अधिक महत्वपूर्ण मसाला था। मुख्यतया मसाले के व्यापार के कारण ही जेनेवा, वीनिस और मध्य युरोप के व्यापारिक शहर इतने समृद्ध हो गये थे। मध्ययुग में व्यापारिक सरगर्मियाँ बहुत कुछ इस व्यापार के ऊपर निर्भर करती थी। एक जाति का दूसरो जाति से मेल-मिलाप बढ़ाने में इस व्यापार ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया था वह भुलाया नहीं जा सकता। जब कभी मुद्रा की कमो अनुभव की जाती थी तो काली मिर्च विनिमय का माध्यम बन जाया करती थी। चन्दे के रूप में इस मसाले को इकट्ठा किया जाता था।

किराये के बदले में

रोगर्स (एग्रिकल्चर एण्ड प्राइसेज़ इन इङ्गलैण्ड, जिल्द १, १८६६, पृष्ठ ६२६) ने बताया है कि मध्ययुग में किराये के बदले में काली मिर्चें (pepper rents) लेने की प्रथा साधारण बात हो गई थी। मालिक अपने आसामी के प्रति दयालुता का व्यवहार दिखाने के लिए उससे नियत समय के अन्दर काली मिर्च का एक निश्चित परिणाम, सामान्यतया एक पौंड, लेने के लिए सहमत हो जाता था। यह बताता है कि इस प्रिय मसाले के लिए कितनी चाह पैदा हो गई थी और जब बाज़ार में इसका मिलना अनिश्चित सा हो जाता था तो धनी लोग इसे प्राप्त करने के लिए कितने इच्छुक रहते थे।

पराजित राजाओं से

पराजित राजा सन्धि के रूप में या कर के रूप में काली मिर्चें दे दिया करते थे । गोथ्स (Goths) के राजा लेरिक ने ५०८ में जब रोम को घेर लिया था तो उसने शहर से मुआवज़े में जिन पदार्थों की मांग की थी उनमें पांच हज़ार पौंड सोना, तीस हज़ार पौंड चांदी और तीन हज़ार पौंड काली मिर्चें भी थीं। इस प्रकार और भी बहुत से उदाहरण गिनाये जा सकते हैं जिनसे इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि मध्यकाल में काली मिर्च ने कितना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था।

बढ़ई की चार दिन की मज़दूरी

रोगर्स की 'इङ्गलैण्ड में खेती और मूल्यों का इतिहास' दिखाती है कि पुर्तगालियों द्वारा केप वाला मार्ग तलाश करने के ठीक पहले ही एक पौंड मिर्च का मूल्य दो शिलिंग था जो एक बढ़ई की चार दिन की मज़दूरी बनती थी।

बिना आज्ञा खेती करने से प्राणदण्ड

मध्ययुग में काली मिर्च का ऊंचा मूल्य भी एक कारण था जिसने पुर्तगालियों को भारत का समुद्री रास्ता तलाश करने के लिए प्रेरित किया। १४९८ ईस्वो में उनका उद्देश्य सफल हुआ और केप ऑफ़ गुड होप से मार्ग खोज लेने पर मिर्च का मूल्य काफी गिर गया । भारत का काली मिर्च का व्यापार सम्भवतः सब से पुराना व्यापार है। पन्द्रहवीं सदी तक भारत के पश्चिमीय तट का इस व्यापार पर एकाधिपत्य रहा। १५९८ के लगभग इसकी खेती मलय द्वीप पुञ्ज के पश्चिमीय द्वीपों में फैल गई थी। पुर्तगालियों के भारत में आने पर सोलहवीं शती के अन्त तक पुर्तगाली राज्य का इस पर एकाधिपत्य रहा। लिस्खोटन का वर्णन पढ़ने से पता लगता है कि उस समय पुर्तगाली मलाबार तट पर स्थित प्रत्येक दुर्ग के लोगों के साथ निर्दिष्ट नियमानुसार मिर्च कारोबार करते थे। किसी को भी बिना आज्ञा उसकी खेती करने का अधिकार नहीं था और इस आज्ञा को भंग करने वाले को प्राणदण्ड मिलता था। सुदूर पूर्व में उसकी खेती फैल जाने पर मलाबार का एकाधिपत्य जाता रहा। उन्नीसवीं शती के आरम्भ में मलयद्वीप पुञ्ज के साथ स्पर्द्धा काफ़ी बढ़ने लगी और तब से भारत के निर्यात में काफ़ी कमी आ गई। फिर भी अब तक भारत की बन्दरगाहों से हर साल औसत लगभग ३२६००० पौंड मूल्य की काली मिर्च बाहर जाती रही है।

सबसे अधिक पैदावार

सबसे अधिक परिमाण में काली मिर्च सिंगापुर के पास पिनांग में रिऔव (Riouw) के द्वीप में और जोहोर में पैदा होती है। पूर्व में सिंगापुर मिर्च का बड़ा केन्द्र हैं। ग्रेट ब्रिटेन में सबसे अधिक मिर्च यहीं से जाती है।

मूल उत्पत्ति स्थान

यूल और बुर्नल (हाब्सन जाब्सन, १९०३, पृष्ठ ६९७) की सम्मति में इस लता का मूल स्थन मलाबार और ट्रावनकोर है। यहां से यह मलय देशों, विशेष करसुमात्रा, में पहुँची थी।—समाप्त

आयुर्वेद का भावी स्वरूप

(लेखक—कविराज लक्ष्मीनाराकण मिश्र, बी० ए० बी० आई० एम० एस०
प्रिंसिपल, रामसहाय आयुर्वेदिक कालेज, मेरठ)

आयुर्वेद के इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि १९ वींशताब्दि के पश्चात् कतिपय बाह्य तथा आभ्यन्तरिक कारणों से आयुर्वेद की प्रगति रुक सी गई है । इसी बीच यूरुप में पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति को अवसर प्राप्त हुआ जिससे वह उन्नति पथ पर अग्रसर होती रही । एलोपथी ने शरीर रचना, शरीर क्रिया, प्रसूति तन्त्र, बालतन्त्र, संक्रामक रोग, स्वास्थ्य विज्ञान, शल्यशास्त्र, शालाक्य, अगदतन्त्र आदि में असाधारण उन्नति की। आयुर्वेद में इन सब विषयों का विशद वर्णन है जिसका आधार पूर्णतः वैज्ञानिक है । परन्तु यह निस्सन्देह मानना होगा कि गत ९ सौ वर्षों में एलोपथी ने विशेष उन्नति की है। इस पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में जितना अंश सत्य, वैज्ञानिक और निर्दोष हैं उसे निः संकोच आयुर्वेद में सम्मिलित करने की उदारता आयुर्वेद के विद्वानों में होनी चाहिये । सीमित और दूषित मनोवृत्ति से काम नहीं चलेगा । चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य के शब्दों में प्रतियोगिता सत्य और सत्य के बीच नहीं किन्तु सत्य और असत्य के बीच होनी चाहिये । विज्ञान सत्य है और अविज्ञान असत्य है ।''

आयुर्वेद में सूत्ररूप से जो विषय प्रस्तुत हैं उन्हें निरन्तर अनुसंधान द्वारा विकसित एवं विस्तृत कर, उसमें से असंख्य अमूल्य रत्नों को जनता के सम्मुख लाने की आवश्यकता है। पाश्चात्य जगत में अनेकों आविष्कार आर्थिक भावना से तथा उनका उपयोग धनलोलुप एवं स्वार्थ परायण व्यक्तियों ने किया पर आयुर्वेद का मूल आधार परोपकार ही है । चिकित्सा की परिभाषा करते हुए आयुर्वेद में कहा गया है :—

या ह्युदीर्णं शमयतिनान्यं व्याधिं करोति च ।
सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥

इस कथन के अनुसार हमने ऐसी पद्धति ग्रहण करनी है जिससे रोगों का शमन हो तथा नवीन रोगों की उत्पत्ति न हो । वैद्यों के सम्मुख पुरातन भारतीय आदर्श होना चाहिये जो यह है :—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नपुनर्भवम् ।
कामये दुख संतप्तानां प्राणिना मार्त्तिनाशनम् ॥

अर्थात्—मैं राज्य, स्वर्ग व पुनर्जन्म के सुख को नहीं चाहता । मैं तो केवल दुख ग्रस्त प्राणियों का दुखनाश ही चाहता हूँ ।'' इस सम्बन्ध में निम्न परामर्श विद्वानों के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किये जाते हैं :—

(१) बृहद्त्रयी, अर्थात्, चरक, सुश्रुत व वाग्भट्ट संहिता का संकलन विषयानुसार होना चाहिये।

(२) शरीर रचना शास्त्र (Anotomy) का बृहद्-त्रयी से लेकर आधुनिक शरीर रचना शास्त्र के साथ सामंजस्य करके पुस्तक बनाई जाय।

(३) इसी प्रकार शारीर क्रिया विज्ञान (Physiology) और रोग निदान के सन्बन्ध में आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली को दृष्टि में रखते हुए गवेषणा कार्य किया जाय।

(४) चिकित्सा पूर्णतः आयुर्वेद पद्धति से त्रिदोष सिद्धान्त पर आश्रित होनी चाहिये।

(५) प्रसूति तन्त्र का विषय आयुर्वेद में अत्यल्प है जिसकी एलोपैथी द्वारा पूर्ति करना श्रेयस्कर होगा।

(६) आयुर्वेद के आधार पर बालरोग की चिकित्सा को पुनरुज्जीवित किया जाय।

(७) स्वास्थ्य विज्ञान और द्रव्य गुण शास्त्र को आधुनिक ढंग पर परिवर्तित करके उपस्थित किया जाय।

(८) शल्यशास्त्र (Surgery) के लिए हमें आधुनिक सर्जरी से लाभ उठाने में संकोच नहीं करना चाहिये।

इस प्रकार आयुर्वेद वास्तविक रूप में अष्टांग आयुर्वेद बन जायगा। लोकमत का समर्थन प्राप्त करने से हम राष्ट्रीय सरकार से भी सहायता की आशा कर सकने हैं।

Good News For English Knowing Vaidyas.

"The Journal of Ayurveda" has been taken over by the All India Ayurvedic Congress as its mouth-piece. The English-knowing Vaidya-samaj is, therefore, requested to subscribe to this paper in order to know the policy of the Mahasammelan and to help the Mahasammelan in propagating Ayurveda and the point of view of the Mahasammelan.

The new year begins with the January issue and the subscription from Vaidyas is Rs. 7/8 per annum and from students Rs. 5/- per annum. Intending subscribers are requested to write for it to :—

The General Secretary, **All India Ayurvedic Congress,**
90/8, Connaught Circus, New Delhi.

अमृतधारा तथा औषध नवरत्न से

पूरा औषधालय चलाइये, सब रोगों की चिकित्सा कीजिये

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्य, के ५० वर्षीय अनुभव के आधार पर ये औषधियां निर्मित हैं। अमृतधारा तो लगभग सब रोगों को खाने व लगाने से दूर भगाती है। औषध नवरत्न निम्न रोगों के वास्ते रामबाण का काम देते हैं।

१. शमकारक—पित्त वृद्धि और दूषित होने से जो भी रोग हो, इस से दूर करिये। रक्त कहीं से बहता हो बन्द हो जायेगा।

मूल्य ६४ गोली ४) रु०, १६ गोली १) रु०

२. याकूती नवरत्नी—ऊपर लिखित गर्मी के सब विकार दूर करने के अतिरिक्त हृदय मस्तिष्क यकृत को बल देती है। और मानसिक विकार के रोगों को दूर करती है। मूल्य ६४ गोली १०) रु०।

३. गुड़चक—वात तथा कफ के सर्व रोग नष्ट होते हैं।

मूल्य ६४ गोली ४) रु०, १६ गोली १) रु०।

४. हयात अफ़ज़ा—रक्त विकार दूर होकर रक्त शुद्ध होता है, और हृदय कम्प, यकृतशोथ, पाण्डु, कामलादि रोग नष्ट होते हैं।

मूल्य ६४ मात्रा २) रु०, १६ मात्रा ८ आ०

५. गोली अमृत—विरेचक है। और वात कफ के रोग नष्ट होते हैं।

मूल्य ६४ गोली २) रु०, १६ गोली ८ आ०।

६. गन्धार रस—मल बन्धक, अतिसार, संग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसार दूर करे। मूल्य १) रु०, नमूना ।)

७. अमृतचूर्ण—दांतों के वास्ते उत्तम मंजन, आँखों के वास्ते उत्तम अंजन, विषैले डंक पर उत्तम विषनाशक, नस्य लेने से शिर पीड़ा, प्रतिश्याय की चिकित्सा, बच्चों के रोगों की उत्तम औषधि, ज्वर, जूड़ीनिवारक।

मूल्य १० तोला २) रु०, २½ तोला ८ आ०।

८. शफावटी—विषैले ज्वर यथा शीतला, प्रसूत, मंथर, मलेरिया, टाईफाईड, पुरातन शिर शूल, प्रतिश्याय, मृगी आदि के वास्ते।

मूल्य ६४ गोली २) रु०, १६ गोली ८ आ०।

९. बलपूर वटी—हिस्टीरिया, मृगी, प्लेग, हैजा, भगन्दर, नासूर, खाये-गये या डंकादि से प्रवेश हुये और आतशक, सुज़ाक के विषों के विकार दूर होते हैं। मूल्य ६४ गोली ३) रु०, १६ गोली १२ आ०।

सब औषधियों की सेवन विधि साथ भेजी जावेगी।

धर्मार्थ औषधालय में अवश्य रखें

नवीन चिकित्सक केवल ये औषधियां रख कर योग्य वैद्य प्रसिद्ध हों

मिलने का पता:—अमृतधारा फार्मेसी लि०, देहरादून।

महासम्मेलन कार्यकारिणी एवं स्थायी समिति तथा विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के सम्मिलिताधिवेशन का कार्यविवरण

स्थान—मारवाड़ी औषधालय, किनारी बाज़ार, दिल्ली।

समय—ता० २९ अप्रैल १९५१, रविवार अपराह्न २ बजे।

उपस्थिति—सर्वश्री वैद्य हंसराज शर्मा (नाभा), गोवर्धनदास शर्मा (तपा, पेप्सु) किशोरीलाल (बरनाला), बाबूराम शर्मा (बरनाला), मामचन्द वत्स (रामराय), खरैतीलाल, (जींद), देशराज (दिल्ली), आशुतोष मजुमदार (दिल्ली), गणेशदत्त (मेरठ), रामस्वरूप चक्रवर्ती (बरगढ़-उड़ीसा), शंकरदत्त गौड़ (जबलपुर), कुन्दनलाल खेतल (फरीदकोट), जगदीशप्रसाद शर्मा (दिल्ली), प्रेमचन्द्र शास्त्री (दिल्ली), सत्यपाल (नई दिल्ली), रामगोपालाचार्य (मथुरा) केशवप्रसाद आत्रेय (दिल्ली), यादव आचार्य (बम्बई), घनानन्द पंत (दिल्ली), गुरुदत्त (नई दिल्ली) नारायण वैद्य (गाज़ियाबाद), मखनसिंह (दिल्ली), लखवीरसिंह (दिल्ली), लक्ष्मीनारायण (मेरठ), गुरुप्रसाद तिवारी (सीतापुर), ओंकारप्रसाद शर्मा (दिल्ली), कृष्णदत्त (सहारनपुर), जगदीशचन्द्र (सहारनपुर), मोहनलाल शास्त्री (दिल्ली), चिरंजीलाल शर्मा (इस्लामपुर), ओमप्रकाश (अजमेर), खजानचन्द (दिल्ली), रामगोपाल शास्त्री (दिल्ली) मुन्शीराम शर्मा (भटिंडा), खुशबख्तराय भारद्वाज (दिल्ली), दयानिधि शर्मा (मेरठ), सरोजनीदेवी (मेरठ), प्राणनाथ पुष्करणा (अमृतसर), हंसराज (दिल्ली), नानकचन्द शर्मा (दिल्ली), ऋषिराम शर्मा (अलवर), रामदास (दिल्ली), सुखदेवलाल नागीय (दिल्ली), भुवनचन्द्रन जोशी (दिल्ली), ओमप्रकाश (दिल्ली), आनन्दप्रकाश सेठी (दिल्ली), भानुदत्त मुलतानी (दिल्ली), शंकरदेव शर्मा (दिल्ली), रामचन्द्र शर्मा (दिल्ली), केदारनाथ शर्मा (मोदीनगर), दयानन्द शर्मा (दिल्ली), देवराज शास्त्री (अमृतसर), दयानन्द राजपाल (नई दिल्ली), सुखवीरसिंह (नई दिल्ली), गोविन्द सहाय (दिल्ली) हरनामदास (दिल्ली) धर्मेन्द्र (दिल्ली) रामनाथ योगी (दिल्ली) पुरुषोत्तमदेव मुलतानी (दिल्ली) मनोहरलाल (दिल्ली) नाथूराम मौद्गल (भिवानी) रामप्रताप अग्रवाल (दिल्ली) ठाकुरदत्त मुलतानी (नई दिल्ली) श्रीकृष्णदत्त (नई दिल्ली) ब्रह्मस्वरूप (दिल्ली) चन्द्रकान्त दीक्षित (दिल्ली) काशीनाथ शर्मा (दिल्ली) उपेन्द्रनाथदास (दिल्ली) नानकचन्द (दिल्ली) श्रीपति शर्मा (दिल्ली) कैलाशचन्द्र अग्रवाल (दिल्ली) पूर्णानन्द शर्मा (दिल्ली) नित्यानन्द वर्मा (दिल्ली) दरयाईमल (कोटला, दिल्ली) मंगलादत्त शर्मा (दिल्ली) परमानंद तनेजा (दिल्ली) धर्मपाल सेठ (दिल्ली) श्रीमती कान्ता सेठ (दिल्ली) बंसरीलाल सानी (दिल्ली) रामचन्द्र (दिल्ली) गौरीलाल चानना (दिल्ली) स्वामी चेतनानन्द (दिल्ली), सुरेन्द्रमोहन (दिल्ली)

रामलाल मलहोत्रा (नई दिल्ली); हरिकृष्ण सहगल (दिल्ली), प्रकाशचन्द्र (लहरागागा, पेप्सु) शिवनाथ शर्मा (दिल्ली) ज्ञानचन्द (जींद)।

निम्नलिखित महानुभावों की ओर से सम्मति पत्र प्राप्त हुए :—सर्व श्री वैद्य सन्तसिंह (जालंधर), वैद्यनाथ शर्मा (बगड़, जयपुर), जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल (प्रयाग), भुवनचन्द्र पराशर (संगरूर), किशोरी मोहन शास्त्री (कलकत्ता) लक्ष्मणदास (बरनाला पैप्सु)रमणिक लाल जेठालाल (मणिनगर) लक्ष्मीकान्त पुराणिक (नागपुर) घासीराम गणपतराय (देवास) कृष्ण मूर्ति वत्स (अमृतसर), ठाकुरदत्त (देहरादून) चन्दमणि प्रसाद (रीवां), कृष्णानन्द मिश्र (देवास) जगदीश्वर शर्मा (गोहाटी), रक्षपाल मिश्र (इन्दौर), रत्नचन्द्र (संगरूर, पेप्सु) रामेश्वरसिंह (जालंधर) पूर्णानन्द शास्त्री (श्री माधोपुर) विद्याविलास शुक्ल (नागपुर) वंशीधर मोहनलाल शर्मा (सरवाड़-अजमेर) डा० प्रतापसिंह (उदयपुर), जनार्दन शर्मा (रायगढ़), अनन्त शर्मा (अबोहर) जगतसिंह केसरी (बरनाला, पेप्सु) रामस्वरूप शर्मा (मीमसा, पेप्सु) प्रेमलाल भटनागर (दिल्ली), चरण तीर्थ (गोंडल, सौराष्ट्र) ख्याली राम (इन्दौर), डी० के० भारद्वाज (बैंगलोर), अम्बाशंकर (अहमदाबाद) शीवजी जेठाभाई शाह (मांडवी कच्छ) गुरूबरत शर्मा (रामगढ़, जयपुर), त्र्यम्बकशास्त्री (पूना), शिवशंकर पांडे (सागर) दुर्गाप्रसाद पाठक (हमीरपुर) अमरदत्त मिश्र (केकड़ी, अजमेर), चंचल बहन देसाई (बम्बई) सुखदास (जयपुर), नारायणलाल तिवारी (मथुरा) नाथूसिंह (मथुरा) शम्भुनाथ शास्त्री (कानपुर) लालमणि मिश्र (रगौल, हमीरपुर) सोमदेव शर्मा सारस्वत (लखनऊ), शोभालाल (हिंगनघाट) हरिश्चन्द्र (संगरूर), हरदयाल शर्मा (फतेहाबाद) मनोहरलाल (संगरूर), कृष्णानन्द (कालेका, अजमेर) ब्रह्मदत्त शर्मा (भुसावल) उदयचन्द्र (जोधपुर) यमुनाप्रसाद शर्मा (जब्बल पुर), मणिराम शर्मा (रत्नगढ़), सूर्यकांत शर्मा (भगवत गढ़) हरिप्रसाद (बड़ौह) वामनराव (बम्बई) गयाप्रसाद शास्त्री (हैदराबाद) कृष्ण गोपाल शास्त्री (कोटा) स्वामी ब्रह्मानन्द (लुधियाना)।

१—श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—गताधिवेशन कार्य विवरण पढ़ा गया और सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

शोक प्रस्ताव—(क) निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति का यह अधिवेशन आयुर्वेद के स्तम्भ सर्व श्री वैद्य गंगाधर शास्त्री गुणे अहमदनगर, मांगी लाल (दिल्ली) तथा नलिनी रंजन सेन कलकत्ता के असामयिक देहावसान पर हार्दिकशोक प्रकट करता है तथा भगवान् से प्रार्थना करता है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके परिवार को इस महान् शोक के सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

समस्त सभा ने खड़े होकर और २ मिनिट तक मौन रहकर इस शोक प्रस्ताव को स्वीकार किया।

(ख) निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति का यह अधिवेशन सर शंकरलाल के असामयिक देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करता है तथा भगवान् से

प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके परिवार को इस महान शोकके सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

प्रान्तीय सम्मेलन सम्बद्धता—(१) संयुक्त प्रान्तीय. वैद्य सम्मेलन, मेरठ। (२) बंगाल प्रान्तीय आयुर्वेद महामंडल, कलकत्ता। (३) इन्द्र प्रस्थीय वैद्य सभा, दिल्ली। (४) राजपूताना प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, जयपुर। (५) हैदराबाद राज्य आयुर्वेद महामण्डल, हैदराबाद। (६) महागुजरात वैद्य मंडल, बम्बई।

संस्था सम्बद्धता—(१) सूरत वैद्यसभा, सूरत। (२) अहमदाबाद वैद्यसभा अहमदाबाद। (३) आयुर्वेद चिकित्सक मंडल, बम्बई। (४) भरुच जिला वैद्य सभा. भरुच।

आजीवन सदस्य—सर्व श्री रामदयाल जींद, दुर्गादास भारद्वाज, फगवाड़ा, सुखदेव रामली, हडपावाद; आर० एन० महता, हरिद्वार, धर्मपाल सेठ, दिल्ली, भानुदत्त मुलतानी, दिल्ली, चन्द्रकान्त शर्मा वली गुलाम हुसेन, इन्द्रदास, जैतो, हरदयाल, फतेहाबाद, ओम्प्रकाश शर्मा, अजमेर, मदनमोहन पुष्करणा, अमृतसर, नाथूराम मौदगल्य, भिवानी, सुखदेवलाल नागिया, नई दिल्ली, ज्ञानचन्द, जींद, वेदप्रकाश अग्रवाल, अमृतसर, भोगीराम शास्त्री, आगरा, हरदयालु शर्मा, अमृतसर, लीलाधर शर्मा, गाजियाबाद, सुखराम प्रसाद, पटना, खैरातीलाल, जींद, महंगाराम, अमृतसर, हरीन्द्रदत्त शास्त्री, पटियाला, हंसराज शर्मा, नाभा, गोविन्द-चन्द्ररथ, बरगढ़, रामजीलाल शर्मा, गाजियाबाद, मोहनकृष्ण शर्मा, भिवानी, मंगलदत्त शर्मा, दिल्ली, पीर उत्तमनाथ, दिल्ली, गोयिन्द प्रसाद शर्मा, रामगढ़, हनुमत्सहाय, रामगढ़, श्याम-सुन्दर, रामगढ़, मोतीलाल शर्मा, रामगढ़, श्रीमती डा० कान्ता सेठ, दिल्ली, ऋषिराम महता, अमृतसर, अमीर सिंह, संगतमण्डी, खुशबख्तराय भारद्वाज, शाहदरा, केदारनाथ भार्गव, नूरमहल, पूर्णानन्द शास्त्री, माधोपुर, ऋषिराम शर्मा, अलवर, गोबिन्दराम, दिल्ली, विद्यासागर शर्मा, अमृतसर, रामधन शर्मा, आगरा, गोकलराम, नाभा, कृष्णमूर्ति वत्स अमृतसर, शिवशंकर सिंह, दरभंगा, यमुना प्रसाद शास्त्री, जब्बलपुर, गोपाल शास्त्री, नाभा, हंसराज नई दिल्ली, अनन्तराम शर्मा, अबोहर, अनन्त प्रसाद लक्ष्मी शंकर, भावनगर, नन्द किशोर पाठक, मथुरा, अमरनाथ आचार्य, मथुरा, गोपालदत्त, जयपुर, गिरधर शर्मा शास्त्री, अजमेर, हरिराम बराटे, भुसावल, यशवन्त शर्मा, नाभा, दयानन्द शर्मा, दिल्ली, कृष्ण लाल सहगल, जलालाबाद, सुखबीर सिंह, दिल्ली, कृपाशंकर शास्त्री, गाजियाबाद, सूरमचन्द, शिमला, श्रीमती शान्ता देवी शास्त्रिणी, दिल्ली, हरगोपाल शास्त्री, धुरी, सिद्धिशंकर शर्मा, शाहपुरा, रामप्रसाद, धुरी, भगवद्दत्त मुलतानी, नई दिल्ली, श्रीराम शर्मा, बम्बई, वैजनाथ कौशिक, भिवानी, चन्द्रमणि प्रसाद, रीवां, मोहनलाल शास्त्री, अमृतसर, शिवदेव चोमाल, फतहपुर, इन्दुशेखर भट्ट, भरतपुर, मातृदत्त शर्मा, भिवानी, पाटन जी रतन जी, बम्बई, शम्भुनाथ पांडे, कानपुर, शिव बालक मिश्र, इंगोहरा।

आश्रयदाता—स्वामी हरिदास शास्त्री, जोधपुर।

मान्यसदस्य—ता० २६-१-५१ से ता० २८-४-५१ तक १०३ मान्य सदस्यों को सदस्यता स्वीकृत हुई।

महा सम्मेलन का विशेषाधिवेशन—दिल्ली में महासम्मेलन के विशेषाधिवेशन बुलाने का विषय उपस्थित हुआ। उसी समय श्री चिरंजी लाल शर्मा (इस्लामपुर-जयपुर) ने महासम्मेलन के साधारण अधिवेशन का निमंत्रण उपस्थित किया तथा १५ दिन का समय मांगा ताकि वे उक्त निमंत्रण वैधानिक रूप में अपनी संस्था की ओर से भिजवा सकें।

उसी समय मोदीनगर निवासी श्रीकेदारनाथ शर्मा ने महासम्मेलन के विशेषाधिवेशन के लिए अपना निमंत्रण गाजियाबाद तहसील वैद्य सभा (जिला वैद्य सभा मेरठ) की ओर से उपस्थित किया तथा उक्त निमंत्रण वैधानिक रूप में सभा की ओर से भिजवाने के लिए एक सप्ताह का समय मांगा। उन्होंने यह भी वचन दिया कि वे उक्त सम्मेलन एक मास पश्चात् ही बुलाने का प्रयास करेंगे।

अन्त में निश्चय हुआ कि यदि उपर्युक्त निमंत्रण वैधानिक रूप में न प्राप्त हों तो प्रधान मन्त्री जी समस्त प्रान्तीय शाखाओं को एक पत्र भेजें जिसमें उन्हें निमंत्रण भेजने के लिए लिखा जाय। उन्हें पत्र में यह भी लिखा जाय कि उक्त सम्मेलन को बुलाने में प्रान्तीय संस्थाओं को अधिकार होगा कि वे प्रतिनिधियों से भोजन व्यय भी ले सकते हैं।

यदि उपर्युक्त कार्यवाही के पश्चात् भी कोई निमंत्रण प्राप्त न हो तो महासम्मेलन अपनी ओर से दिल्ली में विशेषाधिवेशन बुला सकेगा।

यह भी निश्चय हुआ कि विशेषाधिवेशन में स्थायी समिति के सदस्यों के अतिरिक्त बड़े प्रान्त १० तथा छोटे प्रान्त ५ प्रतिनिधियों को प्रत्येक प्रान्तीय सम्मेलन की कार्यकारिणी निर्वाचित करके भेजेगी।

यह भी निश्चय हुआ कि विशेषाधिवेशन दिवाली से पूर्व अवश्य कर लिया जाय।

उत्तर प्रदेश का मामला—निश्चय हुआ कि उत्तर प्रदेश आयुर्वेद महासम्मेलन के झगड़े को समाप्त करने का प्रयत्न करने के लिए निम्नलिखित महानुभावों की एक उपसमिति बनाई जाय जो अपनी रिपोर्ट स्थायी समिति के आगामी अधिवेशन में उपस्थित करे—
१—वैद्य केशो प्रसाद आत्रेय। २—आचार्य सुरेन्द्र मोहन। ३—वैद्य गुरुदत्त, संयोजक।

स्थानिक संघ के अधिवेशन का विवरण

स्थान—वैद्य श्री गुरुदत्त प्रधानमन्त्री नि० भा० आ० महासम्मेलन का चिकित्सालय ३०, ६० कनाट सरकस नई देहली।

समय—दि० ४,४,५१ बुधवार साढ़े तीन बजे अपराण्ह।

सभापति—वैद्य श्री धनानन्द पन्त।

उपस्थिति—१. वैद्य श्री स्वामी चेतनानन्द, २. श्री रामगोपाल शास्त्री, ३. श्री घनानन्द पन्त, ४. श्री रामचन्द्र शर्मा, ५. श्री आशुतोष मजूमदार, ६. श्री गुरुदत्त, ७. श्री वैद्यनाथ सरकार, ८. श्रीकेशवप्रसाद आत्रेय, ९. श्रीकैलाशचन्द्र, १०. श्री शान्ति प्रसाद, ११. श्री नानकचन्द्र शर्मा ।

विशेष निमन्त्रित—श्री पुरुषोत्तमदेव मुलतानी तथा श्री बाबा साहेब परांजपे ।

१ निश्चय हुआ कि श्री मनमोहनलाल गुप्त कार्यालयाध्यक्ष के रूप में अप्रैल ५१ से अस्थायी काल के लिये कार्य करेंगे तथा उन्हें १५ रु० मासिक इस अस्थायी कार्यवाहक पद का भत्ता दिया जायगा ।

२. श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार के विषय में निर्णय हुआ कि इन महानुभाव को ३ मास के लिये अस्थायी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त किया जाय । तथा वैतनिक सहायक सम्पादक के स्थान की पूर्ति के लिये विज्ञापन दिया जाय, तदनन्तर श्री दीनानाथ के आवेदन पत्र पर भी अन्य आवेदन पत्रों के साथ विचार किया जाय ।

३. श्री श्रीकृष्ण प्रभाकर के विषय में निश्चय हुआ कि उन्हें ३ मास के लिये चेतावनी दी जाय कि वे ३ मास के अन्दर अपना कार्य ठीक करें और इनकी स्थायी नियुक्ति पर ३ मास पश्चात् विचार किया जाय ।

४. श्री मोदप्रकाश शर्मा का विषय उपस्थित हुआ तथा उनके विषय पर निर्णय हुआ कि उन्हें १ अप्रैल ५१ से जुनियर कलर्क के ग्रेट में स्थायी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त किया जाय ।

५. श्री अशोक वर्धन कौशिक के विषय में निर्णय हुआ कि इन्हें ६ मास के लिये जूनियर कलर्क के ग्रेट में अस्थायी कार्यकर्ता के रूप में नियुक्त किया जाय ।

६. श्री आशुतोष जी ने अपने मकान में से कार्यालय को एक वर्ष के लिये निःशुल्क स्थान देने का वचन दिया था, वह वर्ष ३१ मई ५१ को समाप्त होने वाला है । अतएव कार्यालय के स्थान के विषय में उचित प्रबन्ध करने के विषय पर श्री शान्तिप्रसाद जैन श्री वैद्यनाथ सरकार तथा पं० रामगोपाल शास्त्री की एक उप समिति बना देने का निश्चय किया गया ।

गुरुदत्त
प्रधान मन्त्री

घनानन्द
प्रधान

विद्यापीठ के अधिवेशन का विवरण

स्थान—वैद्य श्री गुरुदत्त, प्रधानमन्त्री, नि० भा० आ० महासम्मेलन का चिकित्सालय, ९०,८ कनाट सरकस नई देहली ।

समय—दि० २०,४,५१ शुक्रवार साढ़े तीन बजे अपराह्न । सभापति वैद्य श्री घनानन्द जी पन्त । उपस्थिति श्री वैद्य ओंकारप्रसाद शर्मा, रामगोपाल शास्त्री, नानकचन्द शास्त्री, चेतनानन्द स्वामी, आशुतोष मजूमदार, वैद्यनाथ सरकार, शिवनाथ शर्मा, गुरुदत्त ।

दि० ४,४,५१ के स्थानिक संघ के अधिवेशन द्वारा कार्यालय स्थान के विषय पर नियुक्त उपसमिति का इतिवृत्त उपस्थित हुआ ।

इतिवृत्त :—उपसमिति का अधिवेशन दि० १६,४,५१ को सायं ३ बजे महासम्मे कार्यालय में हुआ। वैद्य श्री रामगोपाल शास्त्री तथा वैद्य श्री वैद्यनाथ सरकार अधिवेशन उपस्थित थे। सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि कार्यालय अभी कविराज श्री आशुतोष मजूमदा जी के स्थान पर ही रखा जाय, कारण कि इस समय अन्य स्थान मिलना बहुत ही कठिन है। यह निश्चय हुआ कि १२३ रु० प्रतिमास के हिसाब से किराया दिया जाय तो उचित है। त इसमें किराया सम्बन्धी अन्य सभी खर्चे सम्मिलित हैं।

उपर्युक्त इतिवृत्त पर बहुत विचार करने के पश्चात् श्री आशुतोष जी के किराये की रक लेने को तैयार न होने पर विषय स्थगित किया गया। यह निश्चय हुआ कि स्थानिक संघ को इस विषय में अंतिम निर्णय करने का पूर्ण अधिकार रहे जिससे समय के भीतर परिस्थिति के अनुकू कार्यालय का प्रबन्ध हो सके।

घनानन्द
सभापति

गुरुदत्त
प्रधान मंत्री

—स्थायी समिति के अधिवेशन में इस पर एक सदस्यके यह प्रश्न करने पर कि कार्यालय पहले स्थान से क्यों बदला गया, प्रधानमंत्री ने यह बताया कि वह स्थान अंधेरा, गंदा और शहर के दुर्गन्धि युक्त क्षेत्र में था। उसका किराया (१६५ रु० मासिक) बहुत अधिक था। साथ ही, वह शहर के ऐसे स्थान पर था जहाँ पदाधिकारियों का नित्य पहुंचना सुगम नहीं था।

इसके पश्चात् श्री प्रधानजी ने यह कहा कि हमें श्री आशुतोषजी का धन्यवाद करना चाहिये कि उन्होंने एक वर्ष तक महासम्मेलन से कोई किराया नहीं लिया।

शास्त्रचर्चा परिषद्—स्थायी समिति के गताधिवेशन द्वारा श्री रामनारायण जी शर्मा के द्वितीय शास्त्रचर्चा परिषद् के स्वीकृत निमन्त्रण को कार्यान्वित करने के लिये निश्चय हुआ कि द्वितीय शास्त्र चर्चा परिषद् का अधिवेशन जून मास १९५१ हरिद्वार में किया जावे।

यह भी निश्चय हुआ कि उक्त कार्य आयोजन के लिये वैद्य श्री रामरत्न जी पाठक को निर्वाचित किया जावे।

यह भी निश्चय हुआ कि यदि परिषद् में आने वाले महानुभावों को जून मास में परिषद् में भाग लेने में असुविधा हो तो उक्त सम्मेलन आगामी दिवाली के अवसर पर किया जावे।

अनुसंधान उपसमिति

श्री प्रधानजी ने सुझाव दिया कि आयुर्वेद में अनुसंधान करने की रूपरेखा बनाने वाली उपसमिति के उन सदस्यों को जिनकी ओर से कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुए हैं, पुनः स्मारक पत्र भेजा जाय तथा उक्त समिति की कार्यवाही की रिपोर्ट आगामी स्थायी समिति के अधिवेशन में उपस्थित की जाय।

नियमावलि विषयक प्रस्ताव

श्री मंगलदास स्वामी जयपुर का प्रस्ताव उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने यह आपत्ति

ाई कि नियमावलि संशोधन का अधिकार महासम्मेलन की स्थायी समिति को नहीं है अपितु ह कार्य महासम्मेलन के खुले अधिवेशन में उपस्थित होना चाहिये। इस पर श्री प्रधान मंत्री जी यह वक्तव्य दिया कि महासम्मेलन के मेमोरेंडम आफ एसोसिएशन की धारा सं० ५ के अनुसार ायी समिति को महासम्मेलन के समस्त विधि विधानों में परिवर्तन, परिवर्धन, संशोधन, रिवर्जन, हस्वीकरण या आंशिक परिवर्तन करने का पूर्ण अधिकार है। उन्होंने यह भी कहा कि हासम्मेलन नियमावलि नियम सं० ५६ (a) के ये शब्द = Subject to the Provision f the Soceities Registration Act XXI of 1860 and to the ondition contained in its Memorandum"—भी यह प्रगट करते हैं कि नियमावलि संशोधन के लिए स्थायी समिति का अधिकार सर्वोपरि है। यदि स्थायी समिति कुछ करे तो खुला अधिवेशन नियम परिवर्तन कर सकता है। परन्तु स्थायी समिति के नियम संशोधन का कार्य करने को खुला अधिवेशन रोक नहीं सकता।

उक्त विषय पर पर्याप्त वाद-विवाद के पश्चात् श्री प्रधानजी ने निम्नलिखित आदेश (Ruling) दिया :—

= संशोधित नियमावलि का विषय पुनः आगामी स्थायी समिति के अधिवेशन तक गित रखा जाय तथा इस सम्बन्ध में कार्यालय किसी कानूनी परामर्शदाता से नियमावलि के नुसार इस विषय की वैधानिकता अथवा अवैधानिकता पर परामर्श लेकर स्थायी समिति के गामी अधिवेशन में उपस्थित करे।

—निश्चय हुआ कि श्री तिलकराम शर्मा का विषय पुनः स्थानिक संघ में विचारार्थ प्रेषित कर दिया जाय।

—निश्चय हुआ कि श्री विष्णु शर्मा (पटियाला) का महासम्मेलन की आजीवन सदस्यता से त्याग पत्र स्वीकृत किया जाय।

—श्री प्रधानजी ने यह सुझाव रखा कि जाम नगर के आयुर्वैदिक कालेज में सरकार न्वेषण विभाग खोलने वाली है। अतः उस विभाग में दो आयुर्वेद विद्वान् महासम्लेन की ोर से अन्वेषण करने के लिए वहां भेजे जायें जिनका व्यय महासम्मेलन उठाये। इस पर स्थायी मिति ने सर्व सम्मति से यह निश्चय किया कि उक्त विषय प्रस्ताव के रूप में आगामी स्थायी मिति में रखा जाय।

निश्चय हुआ कि श्री शंकरदा जी पदे स्मारक कोष की धन राशि में ९००० रु० की न राशि भारत सरकार के १० वर्षीय ट्रेजरी सेविंग्ज़ डिपाजिट में जिसमें व्याज मिलता है जमा रा दिया जावे।

यह भी निश्चय हुआ कि उपर्युक्त एकाउण्ट खोलने तथा चालू रखने का अधिकार श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, श्री गुरुदत्त प्रधानमन्त्री तथा श्री रामगोपाल शास्त्री विद्या पीठ

मन्त्री को दिया जावे तथा उनमें से कोई दो महानुभाव एक साथ हस्ताक्षर करके एकाउण्ट चालू रख सकेंगे।

वैद्य श्री मुन्शीराम जी का उप समितियों के सम्बन्ध में प्रस्ताव उपस्थित हुआ तथा प्रधानमन्त्री जी ने अ५ना निम्न लिखित वक्तव्य दिया :—

वार्षिक अधिवेशन द्वारा निर्मित उप समितियां :—

१. आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थापित करने की योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिये ३१ सदस्यों की एक उपसमिति बनाई गई।

उपर्युक्त उपसमिति का प्रथमाधिवेशन दि० ७-५-५० को वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य के सभापतित्व में हुआ। उक्त अधिवेशन में धन संग्रह, भूमिप्राप्ति तथा जनमत पैदा करने पर विचार हुआ तथा निर्णय हुआ कि सर्व प्रथम भूमि प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। उक्त कार्य के लिये एक उप समिति का निर्माण हुआ।

उक्त उपसमिति ने देहली राज्य के चीफ कमिश्नर महोदय से भूमि प्राप्त करने के लिये पत्रव्यवहार किया तथा उक्त पत्रव्यवहार अभी भी चालू है।

उक्त योजना के अन्तर्गत ही महासम्मेलन ने श्री बनवारी लाल आयुर्वेद विद्यालय ट्रस्ट तथा श्री चुन्नीलाल श्यामसुन्दर ट्रस्ट से भी पत्रव्यवहार किया। श्री लेखराम आयुर्वेदिक कालेज, मेरठ के मन्त्री जी से भी बातचीत की गई तथा आज कल लाला सरदारीलाल जी मन्त्री मूलचन्द खैराती लाल ट्रस्ट से भी पत्र व्यवहार हो रहा है।

२. आयुर्वेदिक एण्ड युनानी तिब्बि कालेज देहली की अव्यवस्था को दूर करने के लिये सरकार से अनुरोध किया जाय कि वह इस संस्था को अपने हाथ में लेकर उसके उद्देश्यों के पालन की सुव्यवस्था का समुचित प्रबन्ध करें। इस कार्य के लिये एक उपसमिति बनाई गई।

उक्त प्रस्ताव की प्रतिलिपि स्थानीय सरकार को भी भेजी गई।

३. महासम्मेलन प्रकाशन के लिये एक मुद्रणालय स्थापन के विषय पर योजना बनाने के लिये एक उपसमिति बनाई गई।

उपर्युक्त कार्य के लिये महासम्मेलन ने एक लिमिटेड कम्पनी की योजना बनाई जिसे गत स्थायी समिति में स्वीकृत कराया जा चुका है। तथा अब इस सम्बन्ध में Memorandum and Article of company आदि बनाये जा रहे हैं।

स्थायी समिति का दि० ७-५-५० का अधिवेशन

१. आयुर्वेद में अनुसन्धान कार्य की रूपरेखा बनाने के लिये १२ सदस्यों की एक उप समिति बनाई गई तथा यह भी निश्चय हुआ कि उपर्युक्त उप समिति अपना इतिवृत्त ३ मास में तैयार करे और इसके प्रारम्भिक व्यय के लिये ५०० रु० स्वीकार हुआ।

इस कार्य को पूर्ण करने के लिये सदस्यों से पत्र व्यवहार किया गया तथा यह निश्चय हुआ कि एक शास्त्रचर्चा परिषद् का आयोजन किया जावे। वैद्य श्री रामनारायण जी पटना ने

भार श्री अपने ऊपर उठाने का वचन दिया तथा शास्त्रचर्चा परिषद् का प्रथम अधिवेशन म्बर १४-१२-५० से २-१-५१ तक पटना में वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य के सभा-पतित्व में हुआ। और उक्त परिषद् में बहुत से आवश्यक विषयों पर विचार करके निर्णय किये गये। उसी प्रकार शास्त्रचर्चा परिषद् का दूसरा अधिवेशन भी आगामी जून में होने की सम्भावना है।

२. आलोच्यग्रन्थ निर्माण की रूप-रेखा बनाने तथा इस कार्य के संचालन के लिये एक उपसमिति का निर्माण वैद्य श्री उपेन्द्रनाथ दास जी के संयोजकत्व में हुआ।

उक्त समिति ने भी विभिन्न विद्वानों से पत्र व्यवहार किया तथा अन्त में इस कार्य का वन्य शास्त्रचर्चा परिषद् के निर्णयों तक स्थगित रखा गया।

३. शास्त्रचर्चा परिषद् के आयोजन के लिये वैद्य श्री उपेन्द्रनाथ दास के संयोजकत्व में एक उपसमिति बनाई गई।

श्री उपेन्द्रनाथ दास जी द्वारा बाद में उक्त भार को वहन करने में असमर्थता प्रकट करने पर वैद्य श्री रामरक्ष पाठक संयोजक निर्वाचित हुए तथा परिषद् का अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

स्थायी समिति १६-७-५०

१. आयुर्वेद ही इस देश की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति बन सकती है। इस सत्य को सरकार एवं जन-साधारण पर व्यक्त करने के लिये एक मैमोरैण्डम बनाने के लिये १२ सदस्यों की एक उप समिति का निर्माण हुआ।

उपर्युक्त कार्य को पूर्ण करने के लिए समस्त सदस्यों से पत्र व्यवहार किया गया तथा उनसे प्रार्थना की गई कि वे उक्त विषय पर अपने वक्तव्य लिख कर महासम्मेलन कार्यालय में भेजें ताकि सब वक्तव्यों के सार ले एक मैमोरैण्डम तैयार किया जा सके।

परन्तु सदस्य महानुभावों ने इस कार्य में कोई सहयोग प्रदान नहीं किया, यद्यपि उन्हें इस सम्बन्ध में स्मृतिपत्र भी भेजे गये।

२. आयुर्वेद की रक्षार्थ जन-निर्वाचन से अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए ५ सदस्यों की एक उप-समिति का निर्माण हुआ। उक्त कार्य को सम्पन्न करने के लिये देश के विभिन्न राजनैतिक दलों से जो आगामी निर्वाचन में भाग लेंगे पत्र व्यवहार चल रहा है जिनसे पूछा गया है कि उनका आयुर्वेद के प्रति कैसा दृष्टिकोण है, ताकि आयुर्वेद महासम्मेलन निश्चय कर सके कि आगामी निर्वाचन में मतदाताओं को किस ओर प्रेरणा दी जाय।

३. बी० सी० जी० के टीके आदि विदेशी औषधियों के मिथ्या प्रचार तथा खण्डन के लिये ५ सदस्यों की एक उप समिति का निर्माण हुआ।

४. जर्नल आफ आयुर्वेद के विषय में अंतिम निर्णय करने का अधिकार ५ सदस्यों की एक उपसमिति को दिया गया जिसके निर्णय के अनुसार जर्नल आफ आयुर्वेद महासम्मेलन के तत्वावधान में प्रकाशित हो रहा है।

स्थायी समिति ३०, ८, ५०.

महासम्मेलन नियमावली संशोधन के लिये ५ सदस्यों की एक उपसमिति का निर्माण हुआ उक्त समिति ने अपने अनेकों अधिवेशन करे महासम्मेलन की नियमावली में गंभरीता पूर्वक विचार करके संशोधन किये जिसे महासम्मेलन की स्थायी समिति का गताधिवेशन स्वीकार कर चुका है।

स्थायी समिति २८, १, ५१.

अजमेर राज्य वैद्य सम्मेलन की सम्बद्धता के विषय में निर्णय करने का अधिकार ५ सदस्यों की एक उपसमिति को दिया गया। उक्त कार्य की पूर्ति के लिये पूर्ण प्रयत्न ज़ारी है तथा आशा है कि मई मास के भीतर अजमेर राज्य में दोनों पक्षों के सम्मिलताधिवेशन में पदाधिकारियों का निर्वाचन हो जावेगा।।

प्रस्ताव :—भारत के बिभिन्न राज्यों में स्वतंत्र देशीय चिकित्सा पद्धतियों के बोर्ड बन रहे हैं। इन बोर्डों में एक सूत्रता न होने के कारण और उनका किसी एक देशीय चिकित्सा विभाग के आधीन न होने के कारण उनके उद्देश्यों, नियमों और प्रगति के उपायों में परस्पर भिन्नता तथा विरोध का वीजारोपण अभी से होने लगा है।

आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति का यह दृढ़ मत है कि यह बोर्ड राज्यों की सरकारों की ओर से आयुर्वेद की उन्नति की ओर एक पग होते हुये भी आयुर्वेद जगत में भारी विषमता उत्पन्न करने वाला सिद्ध हो रहा है। राज्य-राज्य में आयुर्वेद चिकित्सकों, आयुर्वेद शिक्षा तथा आयुर्वेद संबंधी ज्ञान के स्तर में ऊंचनीच भेद भिन्नता और विरोध उत्पन्न करने वाला प्रतीत हो हो रहा है।

एक राज्य के चिकित्सकों का दूसरे राज्य में जाकर चिकित्सा करना कठिन हो रहा है शिक्षा के मापदण्ड में अन्तर होने से एक राज्य के चिकित्सक का दूसरे राज्य के चिकित्सक से विचार विनिमय कर सकना असम्भव हो रहा है।

इन तथा इसी प्रकार की अन्य कठिनाइयों का अनुभव कर आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति की यह बैठक भारत सरकार से यह अनुरोध करती है कि अविलम्ब भारत में एक केन्द्रीय आयुर्वेद विभाग Diretorate of Ayurved खोल दिया जाय जो समस्त भारत में आयुर्वेद चिकित्सकों के रजिस्ट्रेशन के नियम, आयुर्वेद शिक्षा तथा अन्वेषण में समता और तारतम्यता उत्पन्न कर सके। केन्द्रीय बोर्ड देशीय चिकित्सा सम्बन्धी समग्र नीति का निर्धारण करे और प्रान्तीय बोर्ड उसके अनुसार कार्य संचालन करे। प्रान्तीय बोर्ड अपने अपने प्रान्त की परिस्थिति के अनुसार केन्द्र द्वारा स्थापित सिद्धान्तों के अन्तर्गत रह कर कार्य करें। केन्द्रीय आयुर्वेद विभाग राज्यों के आयुर्वेदीय बोर्डों के प्रतिनिधियों से निर्माण किया जावे। साथ ही समस्त भारत के लिए एक ही आयुर्वेद चिकित्सक रजिस्टर निर्माण किया जावे।

यादवजी त्रिकमजी आचार्य
प्रधान

गुरुदत्त
प्रधानमंत्री

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यसमितेः

१६५१ वर्षीय द्वितीयाधिवेशनम् ।

नम्—मारवाड़ी औषधालयः (किनारी बाज़ार,) देहली ।

य—ति० २६—४—५१ सायं सप्तवादनतः ।

भापति—श्री मुन्शीराम शर्माणः (विद्यापीठोपाध्यक्षाः) ।

स्थितिः—सर्वश्री मुन्शीराम शर्मा (भटिण्डा), जगदीशप्रसाद शर्मा (देहली), शंकरदत्त गौडः (जबलपुर), रामगोपालाचार्यः (मथुरा), गणेशदत्त शास्त्री (मेरठ), धर्मेन्द्र शर्मा (देहली), सरोजनीदेवी (मेरठ), लक्ष्मीनारायण मिश्रः (मेरठ), शिवनाथ शर्मा (देहली)

म्मतिप्रेषकाः—वैद्य श्री शम्भुनाथ पाण्डेयः (कानपुरतः), हरिराम शर्मा (भुसावलतः), लक्ष्मणकुमारः (उज्जैनतः), प्रतापसिंह (उदयपुरतः), प्रभुदत्त शर्मा (सीकरतः), उदयचन्द्र (जोधपुरतः), रामस्वरूप शास्त्री (बम्बईतः), ब्रह्मदत्त शर्मा (भुसावलतः), मणिराम शर्मा (रतनगढ़तः), श्रीधरमायाधारी शास्त्री (अमृतसरतः), ब्रह्मानन्द स्वामी (अमृतसरतः), गयाप्रसाद शास्त्री (हैदराबादतः), नरहरि शर्मा, हरगोपाल शास्त्री (धुरीतः), वैद्यनाथ शर्मा (वगडतः) ।

१—गताधिवेशनस्य कार्यविवरणं आवितं सर्वसम्मत्या स्वीकृतञ्च ।

२—विद्यापीठनियमावलिसंशोधनसमितिनिर्माणे निश्चितंयत् निम्नलिखितानां सदस्य महानुभावनामेकोपसमितिर्नियुक्ता स्यात् ।

(१) विद्यापीठ-मंत्री, (२) आचार्य सुरेन्द्रमोहन, (३) क० उपेन्द्रनाथ दासः, (४) लक्ष्मीनारायण मिश्रः, (५) बंसरीलाल सानी ।

३—सम्मानित संस्थानिरीक्षणार्थं सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् पञ्चशतक (५०० रु०) मुद्राणां व्ययस्याधिकारः विद्यापीठमन्त्रिणे प्रदत्तःस्यात् ।

४—नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठपरीक्षादित्सूनां छात्राणां तिस्रः प्रतिकृतयः स्युः न वेति इत्यस्मिन् विषये विवादानन्तरं निर्णीतं यत् तिस्रः प्रतिकृतयः स्युः ।

५—प्रमाणपत्र प्रतिलिपि विषये सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् प्रतिलिप्यावेदनपत्रं द्वाभ्यां महासम्मेलना जीवनसदस्याभ्यां, गजटिड औफिसर इत्यनेन व प्रमाणितं स्यात् ।

६—प्रमाणपत्रसंशोधने निर्णीतं यत् अधोलिखितानां सद्स्यमहानुभावाना मेकोप समितिः स्यात् ।

(१) महासम्मेलन प्रधानः, (२) महासम्मेलन मंत्री, (३) विद्यापीठ-प्रधानः, (४) विद्या-

पीठ-मन्त्री, रामप्रताप अग्रवालः, धर्मेन्द्रनाथश्च ।

७—पाठ्यक्रमोपसमितिस्थापनाविषये सर्वसम्मत्या निर्णीतं यदधोलिखितानां सदस्य महोदयानामेकोपसमितिर्नियुक्ता स्यात् ।

(१) श्री उपेन्द्रनाथदासः, (२) आचार्य सुरेन्द्रमोहन; (३) बंसरीलाल सानी, (४) जगदीश प्रसाद शर्मा, (५) विद्यापीठ मंत्री, (६) धर्मपाल सेठ, (७) घनानन्द पन्त, (८) दयानिधि शर्मा ।

८—सशुल्क प्रश्नपत्रनिर्माण विषये निर्णीतं यत् सशुल्कप्रश्नपत्रविषयः आगामिन्यां कार्यकारिण्यां विमर्शनीयः ।

९—श्री स्वामी मंगलदास महोदयानां प्रस्तावेषु सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् निम्नलिखितानां सदस्य महोदयानामेकोपसमिति र्नियुक्ता स्यात् ।

(१) विद्यापीठ-मंत्री, (२) आचार्यः सुरेन्द्रमोहन बी० ए०, (६) क० उपेन्द्रनाथ दासः।

१०—वैद्य श्री मुन्शीराम शर्मणः प्रस्तावेषु विवादानन्तरं निर्णीतं यत् विद्यापीठ-परीक्षाणां समयः पूर्ववदेव स्यात् ।

११—वैद्य श्री घनानन्द पन्त विरिचितप्रतिनिदान चिकित्सा विषये निर्णीतं यत् पाठ्यक्रमोपसमितिरेव तस्मिन् विषये निर्णयं करिष्यति ।

१२—(क) स्नातक श्रेणी विषये सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् निम्नलिखितानां सदस्यमहोदयानामेकोपसमिति र्नियुक्ता स्यात् ।

(१) विद्यापीठ मंत्री, (२) महासम्मेलन प्रधान-मंत्री (३) शिवनाथशर्मा, (४) उपेन्द्रनाथ दासः (५) विश्वनाथ द्विवेदी (पीलीभीत) (६) रामप्रताप अग्रवालः ।

(ख) वैद्य महंगाराम महोदयस्य प्रमाणपत्र प्रतिलिपि आवेदनपत्र विषये निर्णीतं यदुक्तमहोदयस्य स्नातकसूच्यां नाम न अस्ति अतः तस्मै प्रमाणपत्र प्रतिलिपि दातुमशक्ताः।

श्री शंकरदेव गौड महोदयानां पत्रविषये विचारः समुपस्थितः तत्र अस्ति कश्चित वैद्यः यः विद्यापीठ मिथ्या प्रमाणपत्राणि विक्रीणाति तदिदं मिथ्या प्रमाणपत्रं सम्प्रति जबलपुर पुलिस विभागे विद्यते तद्विरुद्धं अभियोगश्चारब्ध अत्र निर्णीतं यत् विद्यापीठस्य प्रतिनिधित्वं श्रीशंकरदेव गौड़महोदयेभ्य समर्पणीयं एवा स्मिन्नभियोगे लिस विभागं सर्वथा साहाय्यंकुर्युः । अस्मिन्नभियोगे साहाय्यप्रदानार्थं यातायातार्थञ्च शतरुप्यकमितं व्ययः स्वीकृतः यथाकालं च तद्धनं श्री गौड़महोदयेभ्यः प्रदेयम् ।

सभापति महोदयानां धन्यवादंपुरः सरं रात्रौ नववादनसमये सभा विसर्जिता ।

रामगोपाल शास्त्री
विद्यापीठ मंत्री

(२३२ पृष्ठ का शेष)

और शास्त्रीय विज्ञान सम्मत हैं। उपयुक्त ऐलोपैथिक व्याख्याओं को वैज्ञानिक कहने के लिए साम्प्रदायिकता के अन्धविश्वास के साहस की आवश्यकता है और उसके सामने आयुर्वेदिक व्याख्या को अवैज्ञानिक कहने के लिए भी ऐसी ही धर्मान्धता का अवलंबन अनिवार्य है।

जीवन की प्रत्येक अवस्था और गतिविधि पर 'त्रिदोष' का प्रभुत्व है। स्वास्थ्य और रोग पर, भोजन और लंघन पर, भावों और विचारों पर। अत एव चरक कहते हैं "नानौषध भूतं जगति किंचिद्द्रव्यं तिष्ठते।" अर्थात् संसार में कुछ भी नहीं जो औषध न हो—मीठा शब्द या कड़वी गाली, धूप में बैठना या पानी में डुबकी लगाना, सुखमय या दुःखमय घटनाएं, जो कुछ भी शरीर या मन को प्रभावित कर सके उसमें औषधत्व है।

क्षेत्र को साम्यावस्था में लाना ही "त्रिदोष" चिकित्सा है। इस साम्य की भावी विषमता से रक्षा करना ही त्रैदोषिक स्वस्थवृत्त है। इस साम्य का दृढीकरण ही स्वास्थ्य के आदर्श को दृढ़ करना है। यही दोषानुसार वैयक्तिक सामूहिक और श्रमजीविकों का स्वस्थवृत्त है।

[संभव है कुछ सदस्यों की त्रिदोष सिद्धान्त को विस्तृत रूप में समझने की इच्छा उत्पन्न हो गई हो। ऐसी कोई मांग हुई तो विस्तृत व्याख्या सब सदस्यों को पहुँचा दी जाएगी।

(अपूर्ण)

आवश्यक सूचना

समस्त वैद्य बन्धु तथा छात्रगण ध्यान दें

महासम्मेलन कार्यालय ने यह अनुभव करते हुए कि अध्यापकों तथा छात्रों को नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की पाठ्य-क्रम की पुस्तकों तथा अन्य आयुर्वेदीय पुस्तकों के विभिन्न स्थानों से प्राप्त करने में बहुत कठिनाई होती है, महासम्मेलन के अन्तर्गत एक पुस्तक विभाग खोलनेका आयोजन किया है। समस्त पुस्तकोंके सूचीपत्र तथा अन्य सूचनाओं के लिए पत्रिका के आगामी अंक तक प्रतीक्षा करें।

गुरुदत्त
प्रधान मन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन
६०/C. कनाट सर्कस, नई देहली

साहित्यसत्कार

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो-दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं)

वैद्यक पद्धतियों का समन्वय—मूललेखक श्रीवैद्य बी० एस० परकुठवार, मुद्रक व प्रकाशक—श्री डा० एन० एस० परांजपे (बाबा साहब) नागपुर । पृष्ठ संख्या ६० । मूल्य १)

विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों का समन्वय सम्भव है या नहीं, इस सम्बन्ध में चिकित्सकों में अभी मतभेद हैं । हमारे विचार में आयुर्वेद में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों को अपने अन्दर आत्मसात् करने की असीम शक्ति है । इस विषय में पाश्चात्य चिकित्सक यदि जिज्ञासु भाव से आयुर्वेद के मूल भूत सिद्धान्तों का गम्भीर अध्ययन करेंगे तो वे भी अन्ततो गत्वा इसी निर्णय पर पहुँचेगे । इस दृष्टि से विचार मंथन के लिए विद्वान् लेखक की यह पुस्तिका बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी । साधारण वैद्यों को भी आयुर्वेद के सिद्धान्तों का सरल व सुबोध भाषा में ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसका अध्ययन करना चाहिये ।

भारतीय जीवाणु विज्ञान—लेखक श्री रघुवीर शरण शर्मा वैद्य, रसायनशाला, बुलन्द शहर । मूल्य १॥)

पाश्चात्य चिकित्सक जीवाणुओं को ही विभिन्न रोगों का एक मात्र कारण मानते हैं किन्तु आयुर्वेद मतानुसार त्रिदोष प्रकोप के अतिरिक्त जीवाणु भी रोग का एक कारण होता है । हमारे पूर्वज आचार्य इस सम्बन्ध में अनभिज्ञ नहीं थे अपितु सहस्रों वर्ष पूर्व उन्हें इसका सम्यक् ज्ञान था जिसका विस्तृत वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में देखने को मिलता है । उन सब उद्धरणों (References) के आधार पर विद्वान लेखक ने बड़ी ही सुन्दरता पूर्वक इस पुस्तक का सम्पादन किया है ।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने लेखक को ७००) का पुरस्कार देकर उनका उचित अभिनन्दन किया है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा के लिए भी यह पुस्तक स्वीकृत है । विद्यापीठ के छात्रों के लिए भी यह निःसंदेह उपयोगी हो सकती है—ऐसा हमारा मत है ।

हृदय विज्ञानम्—(सचित्र) लेखक व प्रकाशक आयुर्वेदाचार्य गणेशदत्त वैद्य शास्त्री, गुदड़ी बाजार, मेरठ । मूल्य ।=)

आयुर्वेद लोक

हैदराबाद राज्य वैद्य सम्मेलन

अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए श्री डा० एम० विश्वेश्वर शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ने आयुर्वेद के प्राचीन गौरव का दिग्दर्शन कराते हुए एक्सरे, सूक्ष्मदर्शक यंत्र आदि आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के वैद्यों द्वारा उपयोग किये जाने का समर्थन किया। आपने इस बात पर बल दिया कि वैद्यों को नवीनतम वैज्ञानिक सिद्धान्तों से परिचित होना चाहिये और इसके लिए विस्तृत गवेषणा कार्य आवश्यक है।

सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों में रजिस्ट्रेशन फीस को २५) से कम करके १०) किये जाने, २ सौ रु० से कम आयके वैद्यों को ३० रु० पेशा टैक्स से मुक्त किये जाने की मांग करते हुए श्री हकीम नारायणदास को "वैद्य सार्वभौम" की उपाधि दिये जाने का निश्चय किया गया। एक अन्य स्वीकृत प्रस्ताव में कहा गया कि आयुर्वेद शिक्षण पद्धति का निर्णय राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रियों के हाथ में न हो कर आयुर्वेद पंडितों के आधीन होना चाहिये। हैदराबाद के सरकारी आयुर्वेद कालेज को उस्मानिया विश्व विद्यालय के साथ सम्बद्ध किये जाने की भी मांग की गई।

हैदराबाद बोर्ड का पुनर्गठन

हैदराबाद राज्य के स्वायत्त शासन और स्वास्थ्य विभाग के मंत्री श्री फूलचन्द गांधी से हैदराबाद राज्य आयुर्वेद महामंडल के एक शिष्ठ मंडल ने भेंट की जिसमें श्री पं० गयाप्रसाद शास्त्री, श्री गोवर्धन शर्मा, श्री एस० सुब्बारा व तथा बाबा पूर्णदास सम्मिलित थे। शिष्टमंडल ने मंत्री महोदय के सम्मुख समस्त कठिनाइयाँ उपस्थित करते हुए राज्य में आयुर्वेद के प्रचार की मांग की। मंत्री महोदय ने राज्य में आयुर्वेद की उन्नति तथा परामर्श दाता बोर्ड के पुनर्गठिन करने का आश्वासन दिया।

मद्रास प्रान्तीय औषधि निर्माण संघ

विजय वाड़ा (किस्तना जिला) के राम मोहन राय निः शुल्क वाचनालय में ११ मार्च को

संस्कृत के ३५ श्लोकों में हिन्दी अनुवाद सहित हृदयावयव' हृत्कार्य, हृद्गति आदि पर सुन्दर निबन्ध हैं। —पुरुषोत्तमदेव मुलतानी

उपर्युक्त संघ का प्रथम अधिवेशन श्री आयुर्वेदाचार्य मुक्का माला वैंक्टा शास्त्री की अध्यक्षता में हुआ जिस में आसव और अरिष्टों पर लगाये गये सरकारी प्रतिबंध का विरोध करते हुए निश्चय किया गया कि आयुर्वेदीय ग्रन्थों की खोज करके ऐसे योग ढूंढकर प्रकाशित किये जायं जो औषध निर्माण संघों के लिए उपयोगी हो सकें।

वैद्य सभा जम्मू—की ओर से जम्मू काश्मीर राज्य के स्वास्थ्य विभाग के डायरक्टर कर्नल सर रामनाथ चोपड़ा के सम्मुख स्मृति पत्र उपस्थित किया गया जिसमें राज्य में वैद्यों की स्थिति उच्च करने की मांग की गई । चोपड़ा साहब ने कई शिकायतों को दूर करने का वचन दिया ।

दिल्ली आयुर्वेदिक यूनानीं बोर्ड—११ अप्रैल को उपर्युक्त बोर्ड की कार्य कारिणी समिति के निम्न सदस्य चुने गये (१) डा० खूबराम जाजोरिया (२) हकीम खली उल रहमान (३) डा० धर्मपाल सेठ (४) श्री वैद्यरत्न परमानन्द ।

—अहमद गढ वैद्य मंडल के अधिवेशन में मालेरकोटला तहसील वैद्य सभा का चुनाव हुआ जिसके पश्चात् एक प्रस्ताव द्वारा मांग की गई कि वैद्यों को डाक्टरों के समकक्ष समझा जाय।

—वैद्यमंडल तहसील धुरी के वार्षिक चुनाव में जगत सिंह शर्मा और स्वामी हरि प्रकाश क्रमशः प्रधान व मंत्री चुने गये । कार्यकारिणी के सदस्यों का भी चुनाव हुआ ।

—बरनाला वैद्य सभा के वार्षिक चुनाव में स्वामी हरि विष्णु दास जी तथा श्री ओमप्रकाश टंडन क्रमशः प्रधान व मंत्री निर्वाचित हुए ।

वैद्य मंडल जालंधर शहर—का चुनाव हुआ जिसमें सर्वसम्मति से कविराज श्री कुंवर रामेश्वर सिंह और श्री हरवंशलाल जी चोपड़ा क्रमशः प्रधान व मंत्री चुने गये । ११ वैद्यों की कार्य समिति बनाई गई तथा विज्ञान परिषद् गठित की गई ।

वैद्य समाज के लिये स्वर्ण-अवसर
हमारे यहाँ के विशुद्ध आयुर्वेदिक वैज्ञानिक ढंग से बने हुए आयुर्वेदिक इंजेक्शनों को खरीद, दुःसाध्य एवं कठिन रोगों की चिकित्सा कर यश तथा धनोपार्जन कीजिए।
भारत में आयुर्वेदिक इंजेक्शनों की एकमात्र अनुसंधान-शाला—
श्री लक्ष्मी आयुर्वेदिक अनुसंधान भवन, बरुवा सागर (झांसी)।

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हज़ारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के निरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होनेवाले, और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हज़ार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसी उत्तम पुस्तक दूसरी नहीं है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १॥।), डाक खर्च ।=), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० ऐजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

विज्ञान और भारत

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. वर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लि०

पोस्ट—बक्स ५५४, कलकत्ता।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—न्यू इण्डिया प्रैस, नई दिल्ली।

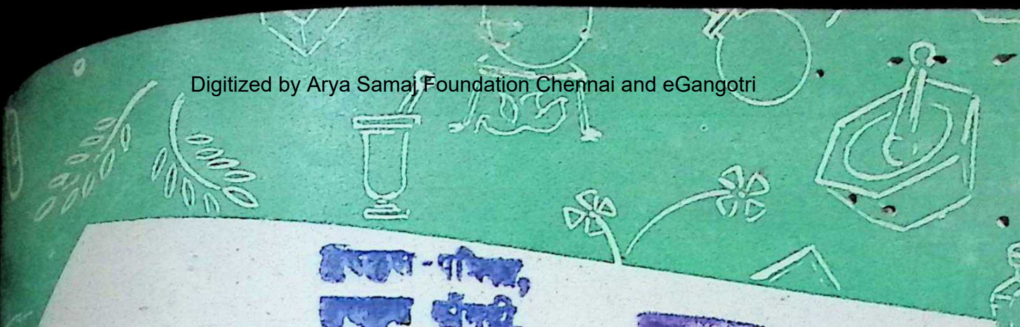

आयुर्वेद
महासम्मेलन
पत्रिका

चैत्र २००७
अप्रैल १९५१

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी.ए., बी.आई.एम.एस.

स्व० श्री गंगाधर शास्त्री गुणे

आप महासम्मेलन के नागपुर अधिवेशन (सन् १९३७) के सभापति थे। आपके निधन का समाचार पाठक गतांक में पढ़ चुके हैं। इस अंक में आपका जीवन परिचय दिया गया है। आशा है इससे पाठकों को प्रेरणा व स्फूर्ति का सन्देश मिलेगा। पाश्चात्य चिकित्सा के केन्द्र में आयुर्वेद की दुन्दुभि बजाने वाले मनीषि के स्वर्गवास से आयुर्वेद जगत अनाथ हो गया है। पत्रिका परिवार की ओर से उनके परिवार को समवेदना का सन्देश दिया गया है। भगवान् मृतात्मा को सद्गति प्रदान करे —प्र० सं०।

विषय-सूची

१. गुलाब के फूल (कविता) (श्रीमती सरोजिनी देवी नायडू) १७७
२. तुषारपात! (सम्पादकीय) (क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी) १७८
३. आयुर्वेद और सरकार (श्री गुरुदत्त) १८०
४. वसा द्वारा जले की चिकित्सा (श्री अत्रिदेव गुप्त) १८४
५. काली मिर्च का रोचक इतिहास (श्री रामेश बेदी) १८५
६ औषधि-कल्पना विज्ञान (श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत) १९३
७. नव्य आयुर्वेद का वाङ्मय (श्री जयचन्द्र विद्यालंकार) १९९
८. अपस्मार की चिकित्सा (श्री एम० आर० भट्ट) २०१
९. पायरिया की सफल चिकित्सा (श्री किशोरदास भागीरथ गुप्त) २०७
१०. बुढ़ापा कब और कैसे (श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा) २०९
११. साहित्य सत्कार २१३
१२. पाठकों के पत्र २१५
१३. आयुर्वेद-लोक २१७

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम्।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली।

वर्ष ३७
अङ्क ४

नई दिल्ली, चैत्र २००७, अप्रैल १९५१

एक प्रति ।|)
वार्षिक ५)

गुलाब के फूल

लेखिका—स्व० श्रीमती सरोजिनी देवी नायडू

गुलाब को देख कर कवि का हृदय आनन्द-विभोर हो उठता है। गुलाब के फूलों पर कितनी ही कवितायें लिखी गई हैं। किन्तु गुलाब के प्रति ऐसी अनन्य अनुरक्ति शायद ही किसी कवि ने इतनी तीव्रता से अभिव्यक्त की हो। गुलाब से प्रेम तो भारत के प्रधानमन्त्री श्रीयुत् पं० जवाहरलाल नेहरू को भी है। वे एक गुलाब के फूल को अपने कोट या अपनी अचकन में सदा टाँके रहते हैं। परन्तु श्रीमती सरोजिनी देवी अपनी मृत्यु के बाद भी गुलाब के फूलों से आवृत रहना चाहती हैं।

मुझे गुलाब की समाधि में अन्तर्हित कर दो,
मुझे गुलाब की ऐसी मदिरा में डुबो दो,
जिसे प्रत्येक प्रकार के गुलाब की पंखड़ी से
खींचा गया हो;
मेरे लिये गुलाब की चिता बनाओ,
मुझे गुलाब की आग में जला दो,
मुझे प्रेम के गुलाब का ताज पहना दो;

अनुवादक—श्री वंशीधर विद्यालंकार,

सम्पादकीय

तुषारपात !

चोपड़ा कमेटी की रिपोर्ट सरकार के पास पहुंचने के २ वर्ष बाद कमेटी की मुख्य सिफारिशों को ठुकरा कर भारत सरकार द्वारा पण्डित कमेटी की नियुक्ति पर उसी समय ही वैद्य समाज ने अपना असन्तोष प्रकट किया था। कमेटी के लिये विचारणीय विषय इतने सीमित कर दिये गये थे कि उन से चोपड़ा कमेटी से अधिक उत्तम योजना तैयार हो सकेगी, इसमें सबको सन्देह था।

पण्डित कमेटी ने गत मास अपनी रिपोर्ट सरकार को पेश कर दी है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी श्रीमती अमृतकौर ने संसद् में २७ मार्च को एक वक्तव्य भी दिया है। वैद्य समाज जो चिरकाल से इस सम्बन्ध में सरकारी नीति की घोषणा की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था, हमारे विचार में वह इन्हें पढ़ कर अत्यन्त निराश व दुःखी होगा क्योंकि उसके धैर्य की सीमा पहले ही टूट चुकी है और अब उस पर यह एक और तुषारपात है।

पण्डित कमेटी की रिपोर्ट तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग में अनुसन्धान का विषय है। इस सम्बन्ध में कमेटी का प्रस्ताव है कि जामनगर (सौराष्ट्र) इसके लिये सर्वोत्तम स्थान है क्योंकि वहाँ आयुर्वेद कालेज, फार्मेसी, पुस्तकालय, वनस्पति वाटिका तथा एलोपैथिक चिकित्सालय, सोलेरियम आदि सभी उपयोगी सामग्री पहिले से ही एकत्रित है और बिना अधिक खर्च के शीघ्र ही कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है। कमेटी के विचार में ६ सुयोग्य वैद्य और कुछ डाक्टर नियुक्त किये जायें जो १०० शय्या वाले चिकित्सालय में विभिन्न रोगियों की चिकित्सा के परिणाम स्वरूप अपने अनुसन्धान के विवरण पांच वर्ष में सरकार को पेश करें। उन परिणामों के आधार पर ही भविष्य में पाठ्य ग्रन्थ लिखे जायें तथा दूसरे सुधार घोषित किये जायें।

रिपोर्ट के दूसरे व तीसरे भाग में आयुर्वेद पठन-पाठन के सम्बन्ध में कमेटी के प्रस्ताव अधिकतर विगत स्वास्थ्य-मन्त्री सम्मेलन के प्रस्तावों से मेल खाते हैं जिनका वैद्य समाज पहिले ही घोर विरोध कर चुका है।

सबसे बड़ा दोष इस रिपोर्ट में यह है कि आयुर्वेद के सम्बन्ध में जो भी सरकारी कार्यवाही होगी वह वर्तमान डाइरेक्टर जनरल डा० राजा (जिनके आयुर्वेद

विरोधी उग्र विचारों से वैद्य समाज सुपरिचित है) के निरीक्षण में ही होगी। इस सम्बन्ध में चोपड़ा कमेटी का केन्द्र व प्रान्तों में 'आयुर्वेद डाईरेक्टोटेट' की स्थापना सम्बन्धी मुख्य सुझाव खटाई में डाल दिया गया है। दूसरा वर्तमान आयुर्वेद चिकित्सकों की सेवाओं से किस प्रकार जन-साधारण कुछ अधिक लाभ उठा सकें इस पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया है। कालेजों का up grading करके डिप्लोमा कोर्स समाप्त कर देने की राय दी गई है इससे भी हम सहमत नहीं हैं। समर्थ भारतीय भी चार वर्ष तक अपनी सन्तान को आयुर्वेद कालेज में पढ़ाने के लिए आर्थिक कठिनाई अनुभव करता है। पांच वर्ष के पाठ्य-क्रम से तो और भी कम विद्यार्थी इससे लाभ उठा सकेंगे।

हम पहिले भी केन्द्रीय सरकार की आयुर्वेद- विरोधी नीति का विरोध कर चुके हैं। हमारे विचार में एक तो सरकार आयुर्वेद को आश्रय देना ही नहीं चाहती ऐसा सरकार की पिछले तीन वर्ष की गतिविधि से स्पष्ट है। दूसरा पण्डित कमेटी की रिपोर्ट को आधार मान कर भी अनुसन्धान के लिए जामनगर आयुर्वेद कालेज को केवल एक लाख रुपये की नगण्य ग्राण्ट हमें कितना आगे ले जाएगी यह भी विचारणीय है।

तीसरा प्रधान मन्त्री तथा स्वास्थ्य मन्त्री के व्यक्तिगत आयुर्वेद-विरोधी विचार आयुर्वेद की प्रगति में सबसे बड़े बाधक हैं।

इस वर्ष के अन्त में देश भर में चुनाव होने वाले हैं। जनतन्त्र में जनता का ही राज्य वास्तव में होना चाहिये। महासम्मेलन के प्रधान मन्त्री इस सम्बन्ध में देश के विभिन्न राजनैतिक दलों से पत्र व्यवहार कर रहे हैं। जो भी दल आयुर्वेद को राज्याश्रय देने का वायदा करेगा उसे ही वैद्यसमाज सर्वसम्मति से अपना वोट देगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

ऐसी अवस्था में हमें निराश व निरुत्साह होने की आवश्यकता नहीं है। संगठन में बड़ा बल है। यदि अब भी वैद्यसमाज व्यक्तिगत दलबन्दी से ऊपर उठ कर सुसंगठित होकर आयुर्वेद को राज्याश्रय दिलाने के लिये अभी से जनता में उचित वातावरण पैदा करने का यत्न करे तो कोई कारण नहीं कि हम आयुर्वेद के पक्ष में प्रबल जनमत तैयार करके निकट भविष्य में ही आयुर्वेद को ही भारतीय चिकित्सा पद्धति घोषित कराने में अवश्य सफल सिद्ध न हों।

जय आयुर्वेद!

—पुरुषोत्तमदेव मुलतानी

आयुर्वेद और सरकार

(लेखक—श्री गुरुदत्त एम० एस-सी० प्रधान मन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, नई दिल्ली)

इस शताब्दी के आरम्भ में आयुर्वेद की ओर सरकार का ध्यान नहीं था। न तो विरोध था न ही किसी प्रकार का प्रोत्साहन। बहुत सी देशीय बातों को सरकार ऐसे छोड़े हुए थी जैसे उन का अस्तित्व था ही नहीं।

तब सरकार की दृष्टि में चिकित्सा पद्धति केवल ऐलोपैथी ही थी और ऐलोपैथिक डाक्टर ही चिकित्सक। इन्हीं को सरकार नौकरियां देती थी और इन्हीं को सरकार कर्म-चारियों की चिकित्सा के लिए उपयुक्त समझती थी। ऐलोपैथिक डाक्टरों के दिये प्रमाण-पत्र ही माननीय होते थे। इस पर भी आयुर्वेद चिकित्सा कार्य चलता था, बिना किसी की सहायता के, बिना किसी के पथ प्रदर्शन के और बिना किसी के संगठन के।

ऐसे समय में कुछ वैद्य महानुभावों ने भारत के वैद्य-समाज को संगठित करने का आयोजन किया। सन् १९०७ में नासिक में आयुर्वेद महासम्मेलन की नींव रखी गई। यद्यपि न राज्य का आश्रय था न ही देश के अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों का सहयोग, इस पर भी वैद्य समाज ने आयुर्वेद के प्रकाश के अर्थ संगठन करने का साहस किया। उस समय भी इन वैद्य महानुभावों के मन में दृढ़ निष्ठा थी कि आयुर्वेद एक उन्नत विज्ञान है और देश की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं के पूर्ण करने की शक्ति रखता है। यह विश्वास और ज्ञान उस समय के आयुर्वेद के विद्वानों में था। इस का भास उस समय के महासम्मेलन के प्रधानों से भाषणों से होता है।

सरकार ऐलोपैथिक डाक्टरों और ऐलोपैथिक विज्ञान की सहायता करती थी। यह इस कारण नहीं था कि ऐलोपैथिक विज्ञान ने आयुर्वेद से अधिक चातुर्य और संपूर्णता स्थापित कर दी थी। न ही इसका यह कारण था कि ऐलोपैथिक चिकित्सक देश में इतनी भारी संख्या में थे कि उनके बिना कार्य चल ही नहीं सकता था। इस सहायता और प्रोत्साहन में केवल मात्र कारण यह था कि यह चिकित्सा पद्धती इंगलैण्ड से आई थी और इस का ज्ञान जो कुछ भी था, अंग्रेज़ी भाषा में था। सरकार द्वारा ऐलोपैथिक चिकित्सकों की सहायता में अंग्रेज़ी औषधों का व्यापार भी एक भारी कारण था। सब से बड़ी बात यह थी कि ऐलोपैथिक डाक्टर अंग्रेज़ी पढ़े लिखे होने के कारण सरकारी अफसरों से मेल जोल रखते थे। प्रायः क्लबों के सदस्य होते और अपनी निजी मित्रता से अपने व्यवसाय में उन्नति करते रहते थे।

इसके विपरीत आयुर्वेद विज्ञान संस्कृत में था। इसको पढ़ने वाले अफ़सरों की भाषा नहीं जानते थे। इसके चिकित्सक अंग्रेज़ी औषधियों के व्यापार में सहायक नहीं थे और फिर बेचारे वैद्य क्लबों इत्यादि पाश्चात्य संस्कृति की प्रसारक संस्थाओं से अरुचि रखते थे। परिणाम में सरकार आयुर्वेद के विषय में कुछ जानती नहीं थी और यदि कुछ जानती थी तो इसके प्रोत्साहन में अपनी जाति का हित नहीं समझती थी।

इस कारण आयुर्वेद महासम्मेलन का कार्य अति कठिन था। इस पर भी इस संस्था के प्रचार ने लोगों को कुछ प्रेरित कर दिया और स्थान-स्थान पर आयुर्वेद विद्यालय, महाविद्यालय और चिकित्सालय खुलने आरम्भ हो गए। आयुर्वेद महासम्मेलन, अन्य सब ग़ैर सरकारी संस्थाओं की भान्ति, प्रेरक तो हो सका परन्तु संगठन में पूर्णता प्राप्त नहीं कर सका, परिणाम यह हुआ कि विद्यालय और महाविद्यालय तो खुले परन्तु न तो उनकी शिक्षा प्रणाली में ऐक्यता आ सकी और न ही कोई ऐसा नियन्त्रण बन सका जो इस शिक्षा प्रणाली को आयुर्वेद विरोधी होने से रोक सकता।

दो प्रकार की शिक्षण संस्थाएं खुल गईं। एक तो शुद्ध आयुर्वेद संस्थाएं जो प्राचीन पद्धति के अनुकूल कार्य करने लगीं और दूसरी वे जिन में ऐलोपैथिक ढंग पर शिक्षण होने लगा। कुछ काल तक दोनों प्रकार की संस्थाएं बिना किसी प्रकार के संघर्ष के कार्य करती रहीं, परन्तु दोनों में विरोध खड़ा हो जाना स्वाभाविक था।

जहाँ तक सरकार और ऐलोपैथिक चिकित्सकों का सम्बन्ध था, वे आयुर्वेद की ओर अन्यमनस्क भाव से देखते रहे। सरकार का दृष्टिकोण देशवासियों के हित अहित के आधार पर नहीं बनता था और ऐलोपैथिक डाक्टर सरकार के 'प्रिय एजेन्ट' होने के कारण सब प्रकार की सुख सुविधा से सम्पन्न थे। परन्तु १९२१ में राज्य में सुधारों ने पांसा पलटा। उस समय स्वास्थ्य विभाग प्रान्तों के पास चला गया और वहाँ पर भी यह विषय लोकमत के अधीन हो गया। स्वास्थ्यमन्त्री की मांगों पर धारा सभा के निर्वाचित सदस्य सम्मति देने के अधिकारी हो गए। स्वाभाविक रूप में स्वास्थ्य मन्त्रियों ने आयुर्वेद की ओर ध्यान दिया। इसमें ऐलोपैथिक डाक्टरों को अपना अस्तित्व मिटता प्रतीत हुआ।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में आयुर्वेद के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए जांच कमेटिएं बैठाई गयीं। इनसे ऐलोपैथिक डाक्टर भड़क उठे। उनके लिए यह एक नवीन बात थी। उस दिन तक वे भारत के चिकित्सा-जगत में निष्कंटक राज्य करते थे। सरकारी और गैर सरकारी कामों में उनके प्रमाण पत्र ही चलते थे। इस प्रकार बहुतेरे डाक्टर सहस्रों रुपये की वार्षिक आय करते थे। धनियों के पुत्र लाखों रुपये खर्च कर इस व्यवसाय में लगे थे। यह सब उत्कृष्टता कमेटियों के बैठने से जाती प्रतीत होने लगी। परिणाम यह हुआ कि डाक्टरों का आयुर्वेद विरोध आरम्भ हो गया। वे जांच कमेटियों में जा-जा कर आयुर्वेद की निन्दा करने लगे। आयुर्वेद का अ आ भी न जानने वाले उसको अवैज्ञानिक कहने लगे। वैद्यों को गन्दे अशिक्षित और धोखा देने वाले कहने लगे।

जाँच कमेटियों की रिपोर्टों पर इस निन्दा का प्रभाव हुआ और वे आयुर्वेद की उतनी स्पष्ट पोषक नहीं हो सकीं जितनी कि निष्पक्ष वातावरण में होतीं। इस पर भी १९२१ से लेकर १९४६ तक लगभग एक दर्जन जाँच कमैटियाँ बैठीं और सब की सब ने आयुर्वेद को वैज्ञानिक ठहराया और सरकार को इसकी सहायता करने का परामर्श दिया।

यह ठीक है कि कई ऐलोपैथिक डाक्टरों ने आयुर्वेद का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया और

वे जीवन पर्यन्त के लिए आयुर्वेद के पोषक हो गए, परन्तु ये प्रायः वे थे जो स्वतन्त्र रूप से चिकित्सा कार्य करते थे और जिनका सरकारी क्षेत्रों से सम्बन्ध नहीं था। वे डाक्टर जो सरकारी विभागों में नियुक्त थे, प्रायः आयुर्वेद के विरोधी रहे और उन्होंने जाँच कमेटियों के परामर्श के अनुसार कार्य नहीं होने दिया।

१९२१ से १९४६ तक के डाक्टरों के प्रचार का एक परिणाम तो यह हुआ कि आयुर्वेद की प्रगति जो राज्य में सुधार होने पर होनी चाहिये थी नहीं हो सकी, दूसरे डाक्टरों का प्रचार अंग्रेज़ी भाषा में होने पर अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों के मन भी आयुर्वेद के लिए कलुशित हो उठे।

१९४६ में स्वराज्य की परछाईं पड़ने लगीं। अगस्त मास के अन्त में भारत में अंतरिम सरकार बनी और श्री शफ़ात अहमद साहब ने प्रान्तों के स्वास्थ्य मन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया। केन्द्र सरकार का क्या आशय था कहना कठिन है, परन्तु इस सम्मेलन ने बहुमत से यह निर्णय किया कि सब प्रान्तों में और केन्द्र में भी आयुर्वेद स्वास्थ्य विभाग (Directorates of Health) खोले जावें। इन स्वास्थ्य विभागों के अधीन आयुर्वेद की शिक्षा और अन्वेषण कार्य किया जावे।

दुर्भाग्य से श्री शफ़ात अहमद साहब भारत की सरकार के सदस्य अधिक काल तक नहीं रह सके और उनके जाते ही उनके पीछे आने वाले स्वास्थ्य सदस्य राजा गज़नफ़र अली खां ने उक्त सम्मेलन के निर्णय को हटा कर देशीय चिकित्सा पद्धतियों के विषय में जांच करने के लिए चोपड़ा कमेटी की नियुक्ति कर दी। श्री शफ़ात अहमद साहब रहते तो क्या करते कहना कठिन है, पर इतना तो स्पष्ट है कि उनके उत्तराधिकारी श्री राजा गज़नफर अली खां और श्री राजकुमारी अमृतकौर ने आयुर्वेद को पनपने में सहायता नहीं दी, प्रत्युत इसका भरसक विरोध किया।

सरकारी विभाग के लिए अचम्भे की बात तो यह हुई कि चोपड़ा कमेटी में ऐलोपैथिक डाक्टरों का बहुमत होने पर भी और इस कमेटी के प्रधान पद पर एक डाक्टर के होने पर भी इस कमेटी ने आयुर्वेद की उन्नति के लिए राज्यों में और केन्द्र में आयुर्वेद विभाग खोले जाने की सिफारिश की और सरकार से इस विज्ञान में सहायता देने की सिफारिश की।

परन्तु भारत के वर्तमान स्वास्थ्य विभाग की हिमाक़त यह हुई है कि रिपोर्ट के निकलते ही इस का विरोध आरम्भ कर दिया। हमारे विचार में यह अनाधिकार चेष्टा थी। धनाभाव के कारण किसी कमेटी के निर्णयों को कार्य रूप न दिया जाना क्षम्य है, परन्तु सरकार द्वारा नियुक्त एक विशेषज्ञों की समिति की जांच का मंत्री द्वारा विरोध, जो उस विषय का विशेष विशेषज्ञ नहीं, उचित नहीं। यदि मंत्री अपने को विशेषज्ञों से अधिक ज्ञानवान समझता था तो जांच कमेटी की नियुक्ति के कुछ अर्थ नहीं थे। इस पर धन व्यय करना उचित नहीं था और यदि स्वास्थ्य विभाग के पथ-प्रदर्शन के लिए जांच कमेटी की नियुक्ति थी तो फिर उसे ग़लत कहने का अर्थ क्या हुआ।

यही बात केन्द्र के डायरैक्टर जैनरल आफ़ हैल्थ के विषय में भी कही जा सकती है। वर्तमान डायरैक्टर जैनरल आफ़ हैल्थ ने चोपड़ा कमेटी के सम्मुख अपना वक्तव्य दिया और कमेटी ने उस वक्तव्य पर विचार कर अपना परामर्श दे दिया। इस पर भी डायरैक्टर जैनरल आफ़ हैल्थ

ने यह लिखा कि यह परामर्श ग़लत है। व्यक्तिगत रूप में वह कुछ भी समझ सकता है परन्तु सरकारी अफसर होने के नाते उसे कमेटी के परामर्शों को कार्य रूप में लाने का यत्न करना ही चाहिये। उस रिपोर्ट के विरुद्ध, बिना पार्लियामैन्ट में विचार हुए, विरोध सर्वथा अनुचित है।

इस पर भी सरकार ने आयुर्वेद की शिक्षा और अन्वेषण के विषय में जांच के लिए एक कमेटी नियुक्त की। यह पंडित कमेटी के नाम से विख्यात हुई। परन्तु भारत के स्वास्थ्य विभाग ने इस की प्रतीक्षा किये बिना अंट संट आज्ञायें देनी आरम्भ कर दीं और फिर जब राज्यों की ओर से उन का विरोध आरम्भ हुआ तो स्वास्थ्य मंत्रियों का एक और सम्मेलन बुला पंडित कमेटी की रिपोर्ट लिखे जाने से पहिले आयुर्वेद की शिक्षा प्रणाली पर अपना मत प्रकट कर दिया। इन सब बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि आयुर्वेद के विषय में पक्षपात से काम लिया जा रहा है।

इस लेख के छपने के कुछ समय पूर्व पंडित कमेटी की रिपोर्ट पार्लियामैंट की मेज़ पर रख दी गई है। उसका सारांश पृष्ठ २१७ पर इस पत्रिका में दे दिया गया है। उसको पढ़ कर उस के विषय में पाठक स्वयं अपना मत बना सकते है। यह रिपोर्ट आयुर्वेद की गाड़ी को आगे चलावेगी अथवा उसकी प्रगति को रोक देगी यह एक गम्भीर विषय हैं। आयुर्वेद जगत शीघ्र ही इसपर अपना मत प्रकट करेगा। इस स्थान पर तो हम इतना जानना चाहते हैं कि पंडित कमेटी की रिपोर्ट अच्छी अथवा बुरी, जैसी भी हैं, क्या सरकार इस पर भी कार्य करने को तैयार है?

रिपोर्ट लिखने वालों ने यह सम्मति दी है कि जामनगर का विद्यालय अन्वेषण कार्य करने के लिए ले लिया जावे। उसके लेने से कार्य तुरंत आरम्भ हो सकता है। लाखों रुपये से बनी इमारत और एकत्रित किया सामान अनायास ही प्रयोग में आ सकता है। सरकार को केवल चालू खर्चे के लिए ही धन देना है और वह भी कुछ अधिक नहीं है। यदि इतना कुछ होने पर भी सरकार ने आनाकानी की तो हमारी उक्त कथित धारणा सिद्ध हो जावेगी।

आयुर्वेद महासम्मेलन इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार के विरोध का यत्न करना चाहता है। इस निमित्त महासम्मेलन के प्रधान मंत्री ने देश के राजनीतिक दलों को एक पत्र भेजा है कि आगामी चुनाव से पूर्व वे सब आयुर्वेद के विषय में अपना मत प्रदान करें। आयुर्वेद महासम्मेलन यह आश्वासन चाहता है कि देश के विशेषज्ञों के मत की अवहेलना न की जावे, जैसे कि भारत में अंग्रेज़ी सरकार और वर्तमान सरकार का स्वास्थ्य विभाग कर रहा है। यह आश्वासन सर्वथा उचित है।

हम चाहते हैं कि यदि किसी विषय के विशेषज्ञ सरकार से निर्मित कमेटी में बैठ भारत के राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति होने की सामर्थ्य रखने की सम्मति दें, तो फिर राजनीतिक दल इस का विरोध न कर सकें।

यदि यह आश्वासन नहीं दिया गया तो आयुर्वेद महासम्मेलन एक राजनीतिक दल न होते हुए भी, भावी सरकार के बनने में जनता के मत को प्रेरणा देगा।

वसा द्वारा जले की चिकित्सा

[लेखक - श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार भिषग्रत्न, काशी हिन्दु विश्व विद्यालय, बनारस]

संस्कृत साहित्य में हमें बन्दर को अस्तबल के समीप रखने का उल्लेख मिलता है। उदाहरणतः मृच्छकटिक में लिखा है :—

"अयमपरः पाटच्चरः इव दृढ़ रज्त्रायां बद्धः मन्दुरायां शाखामृगः" अर्थात् यह बन्दर वसन्त सेन के घर में अस्तबल में रखा जाता है। इसी प्रकार रत्नावली में भी हमें ऐसा ही विवरण मिलता है। पंचतन्त्र में जले के लिए बन्दर की वसा की बहुमूल्यता के सम्बन्ध में एक कथा दी गई है : अर्थात् रसोइयों और भेड़ में झगड़ा था एक बार एक रसोइये ने भेड़ के ऊपर आग डाल दी। वह भाग का अस्तबल मे जा पहुंची और वहाँ घास में आग लग जाने से कुछ घोड़े भी जल गए। पशु चिकित्सक ने घोड़े की चिकित्सा के लिए बन्दर की वसा की मांग की, क्योंकि वसा ही जले की एक मात्र चिकित्सा समझी जाती थी।

यह एक कहानी है। अब हम उपर्युक्त तथ्य पर चिकित्सा की दृष्टि से विचार करते है।

हमारे शरीर में अग्नि का नियन्त्रण वसा द्वारा होता है। अधिक वसायुक्त व्यक्ति अथवा पशु ग्रीष्म ऋतु में अधिक ताप का अनुभव करते हैं जैसे भैंस और सूअर। किन्तु स्वयं वसा का प्रभाव शीतल होता है। केवल वसा की परतें त्वचा द्वारा शरीर के श्वेद को बाहर आने में बाधा डालती हैं या रोकती हैं। यही कारण है शरीर में ताप बढ़ जाता है और अधिक वसा युक्त पशु या व्यक्ति को गरमी अधिक लगती है।

इसी नियम को हम जले की चिकित्सा पर भी लागू कर सकते हैं अर्थात् यदि हम वसा की एक तह को जली हुई त्वचा पर रख दें तो पानी का निकलना बन्द हो जायगा इससे त्वचा को आराम मालूम होता है। वसा का स्थानिक प्रभाव शीतल होता है अतः त्वचा की जलन में अत्यधिक लाभ दिखाई देता है। हम जानते हैं कि शल्य अथवा औषधि चिकित्सा में शरीर को या रोग ग्रस्त भाग को आराम देना अत्यन्त आवश्यक है। वसा की तह से त्वचा को आराम मिलता है।

आयुर्वेद में हम घृत या वसा का प्रयोग करते हैं। घृत भी एक प्रकार की वसा है। घृत विशुद्ध होना चाहिए अन्यथा उससे हानि होगी। घृत को और अधिक शीतल बनाने के लिए हम इसमें अन्य शीतवीर्य वस्तुएं जैसे यष्टिमधु, चन्दन और गेरू आदि मिला लेते हैं अथवा सौ बार या जितना अधिक सम्भव हो, शीतल जल से घृत को धो लेने हैं। इस क्रिया से शीतलता उत्पादक प्रभाव बढ़ जाता है। किन्तु पानी का निकलना रोकने वाली वस्तु वही रहती है। त्वचा के रोम छिद्र बन्द हो जाते हैं और त्वचा को पूर्ण विश्राम प्राप्त होता है, अन्य कार्य प्रकृति अपने आप कर लेती है।

यहां मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि विकासवाद की दृष्टि से बन्दर मनुष्य के बहुत अधिक समीप है। इसके अतिरिक्त कुछ कीटाणुओं जैसे राजक्ष्मा के कीटाणुओं का बन्दर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बन्दर को राजयक्ष्मा और अन्य संक्रामक रोग नहीं होते। इसीलिए 'पंच-तन्त्र' के पशु चिकित्सक और संस्कृत साहित्य के कवि बन्दर को सदा अस्तबल के समीप रखते थे जैसे कि यूनानी चिकित्सकों ने सूखा रोग से पीड़ित बालक या राजयक्ष्मा के रोगी के घर में कबूतरों के रखने की सिफारिश की है।

काली मिर्च का रोचक इतिहास

[चौथी शती ईस्वी पूर्व से वर्तमान समय तक]

लेखक—श्री रामेश बेदी, संचालक हिमालय हर्बल इन्स्टिट्यूट, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

काली मिर्च, सोंठ और पिप्पली ये तीन चरपरी चीज़ें त्रिकटु के नाम से भारतीय चिकित्सा में बहुत व्यापक रूप से उपयोग में आती हैं। काली मिर्च और पिप्पली के रंग और गुणों में बहुत समानता है। ये दोनों चीज़ें मसालों में एक दूसरे के स्थान पर भारत में तथा भारत के बाहर भी प्रयुक्त होती रही हैं। वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से भी ये दोनों एक ही गण की दो जातियों के पौदे हैं। ये दोनों द्रव्य जब पहले पहल विदेशियों की मण्डियों में बिकने गये तो लोगों ने समझा कि ये दोनों द्रव्य मिर्च के दो भेद हैं जिनमें से एक गोल है और दूसरा लम्बा। लाल मिर्च का ज्ञान उस समय तक संसार को नहीं हुआ था। काली मिर्च केवल भारत में ही पैदा होती थी। यहां से पिप्पली और काली मिर्च जिस-जिस देश को गई वहां के निवासियों ने संस्कृत के पिप्पली शब्द के आधार पर ही काली मिर्च का नाम रख दिया।

अरबी नाम का स्रोत–संस्कृत—अरबी में इसे फ़िल्-फ़िल् कहते हैं। पुरानी अरबी में क्योंकि प होता ही नहीं था इस लिये इस भाषा में पिप्पली का विकृत रूप फ़िल्-फ़िल् बन गया। मालाबार के प्रदेश में काली मिर्च बहुत पैदा की जाती थी इस लिये काली मिर्च के नाम पर ही इस प्रदेश को ईरानी और अरब के लोग 'बलाद-ए-फ़िल्-फ़िल्' कहने लगे थे।

यूरोपियन नामों का स्रोत–संस्कृत—फ्लुकिजर और हेन्बरी के अनुसार इसका आधुनिक अंग्रेज़ी नाम पेपर और इससे मिलते-जुलते दूसरी यूरोपियन भाषाओं के नाम संस्कृत पिप्पली शब्द से निकले हैं। पिप्पली के लकार में परिवर्तन रशियन लोगों ने किया होगा; जिनकी पुरानी भाषा में ल था ही नहीं। लैस्सन (१. २७८) ने प्रतिपादित किया था कि ग्रीक नाम पेपरी और लैटिन पाइपर सीधे भारतीय शब्द पिप्पली से ही बना लिये गये थे। लैटिन में काली मिर्च को पाइपर नाइग्रम (नाइग्रम = काली) और पिप्पली को पाइपर लौंगम (लौंगम = लम्बी) कहते हैं। समस्त संसार के वैज्ञानिकों में अब ये दोनों नाम अपना लिये गये हैं।

द्रविड़ भाषा के नाम भी संस्कृत से—मलयालम में काली मिर्च को आजकल नल्लमुलकु (नल्ल = शुद्ध, मुलकु = मिर्च) कोटि मुलकु (कोटि = लता) और कुरु मुलकु (कुरु = बीज) कहते हैं। सफ़ेद मिर्च को किलि मुलकु (किलि = पक्षी, पक्षियों द्वारा खाई जाने वाली मिर्च) और वेल्लमुलकु (वेल्ल = श्वेत) कहते हैं। तामिल में काली मिर्च के लिए मिलकु और लाल मिर्च के लिए मिलकाय् (काय् = फली, फली वाली मिर्च) शब्द हैं। काली मिर्च का आदि घर मालावार माना जाता है। यहां की मलयालम, तामिल आदि द्रवीड़ियन भाषाओं में मिर्च के मुलकु संस्कृत के मरिच या पिप्पली शब्द से कुछ भी साम्य नहीं है। यदि द्रवीड़ियन नाम प्राचीन

है तो यहां की मूल उपज ने समस्त संसार में फैलते हुए किसी भी भाषा के नामों को अपने नामों से ज़रा भी प्रभावित नहीं किया, यह विचारणीय बात है। पिप्पली का मालाबारी भाषाओं में नाम पिप्पली है। क्या यह भी सम्भव है कि संस्कृत के मिरच का च क तथा र ल में परिवर्तित हो गया हो और द्रवीडियन शब्द मरिच से निकले हों।

व्यापार का मुख्य पदार्थ—मनुष्य जाति को जिन मसालों का सबसे पहले ज्ञान हुआ उनमें कालीमिर्च भी एक है। दूसरे मसालों के व्यापार की प्राचीनता का इतिहास जितने विस्तार से दिखाया गया है उतने विस्तार से और सम्यक् रूप से कालीमिर्च का नहीं लिखा गया। आजकल खाण्ड, कॉफ़ी और रूई की तुलना में यह कम महत्व का द्रव्य प्रतीत होता है परन्तु बहुत सदियों तक यूरोप और भारत के बीच में यह व्यापार का मुख्य पदार्थ रही है।

चौथी शती ईस्वी पूर्व में—चौथी शती ईस्वी पूर्व में थिओफ्रेस्टस इसे दवा के रूप में जानता था। उसने दो प्रकार की मिर्चों का उल्लेख किया था। सम्भवतः उसकी ये दो क़िसमें वर्तमान समय की गोल मिर्च (कालीमिर्च) और लम्बी मिर्च (पिप्पली) हों।

उन्नीस करोड़ रुपये में मरिच विहार—श्री लंका के दुट्ठ गामणी नामक बौद्ध राजा (१०१–७७ ईस्वी पूर्व) 'संघ के लिये बिना रखे' कोई पदार्थ नहीं खाया करते थे। एक बार उन्होंने प्रातःकाल के भोजन में भूल से इस नियम का पालन किये बिना मिर्च खा ली। * इसके प्रायश्चित्त स्वरूप राजा ने भिक्षुओं के लिये एक बड़ा विहार बनवाया जिसका नाम मरिच-वट्टी विहार पड़ा। यह तीन साल में पूरा हुआ था। इसके उद्घाटन समारोह में एक लाख भिक्षु और नब्बे हज़ार भिक्षुणियों के सामने राजा ने कहा था, 'संघ को न देकर भूल से मैंने एक मिर्च खा ली थी। अपने दोष के लिए दण्ड स्वरूप यह सुन्दर विहार चैत्य बनवाया है। संघ इसे स्वीकार करे।' †मरिचवट्टी विहार पर राजा ने उन्नीस करोड़ रुपया खर्च किया था।‡

महावग्ग (पहली शती ईस्वी पूर्व) में इसे त्रिकटु के रूप में ज्वर और अजीर्ण में प्रयोग किया गया है। (६. १६. १)।

चरक, सुश्रुत और कश्यप आदि ने तो इस को चिकित्सा में बहुत विस्तृत रूप से प्रयोग किया है।

बाइबल में नहीं—हिब्रू की पुस्तकों में यह अज्ञात है। न ही गौस्पेल्स (सुसमाचार) के 'पुदीना, सौंफ़ और सोये' में इसको कोई स्थान प्राप्त है। हेरोडोटस ने इसके साथ क़िसी प्रकार की लोक-गाथा का सम्बन्ध नहीं दिखाया।

व्यापारियों से बड़ा कर—मिश्र के स्मारकों पर खुदी हुई चीजों में कालीमिर्च है कि नहीं यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। किन्तु टालमी युग (तीसरी शती से पहले शती ईस्वी पूर्व तक) में मिश्र सम्भवतः उसे समुद्रीय व्यापार द्वारा प्राप्त करने लगा था। मध्यकाल में जब

---

* महावंश, परिच्छेद २५, ११२–११५। † महावंश परिच्छेद २६, १६–१८।
‡ महावंश परिच्छेद २६, २३–२५।

काली मिर्च का मूल्य बहुत चढ़ गया था तब यह मिश्र होकर जाती थी और मिश्र के शासक उन लोगों से कर में बड़ी राशि वसूल किया करते थे जो काली मिर्च या दूसरे मसालों का व्यापार करते थे।

प्लीनी का रोचक वर्णन—प्लीनी (लगभग ७० ईस्वी पश्चात्) की सूचनाएं रोचक हैं। वह बताता है कि मञ्जरी एक खोल में पड़ी रहती है। यदि इसे स्वयं पककर फटने से पहले ही वृक्ष पर से तोड़ लिया जाय तो यह वह मसाला बनता है जिसे लम्बी मिर्च (पिप्पली) कहते हैं। परन्तु यदि ये पक जांय तो खोल फट जाता है, धीरे-धीरे दाने सफ़ेद होने लगते हैं। बाद में इन्हें धूप में सुखा देते हैं। इनका रंग बदल कर काला हो जाता है।···

अलेक्ज़ेण्ड्रिया के सरसों के दानों की लम्बी मिर्च (पिप्पली) में शीघ्र ही मिलावट कर दी जाती है, इसके एक पौण्ड का दाम १५ रोमन दिनार होता है। सफ़ेद सात दिनार की एक पौण्ड और काली चार दिनार की एक पौण्ड बिकती है। एक दिनार (डिनारियस) साढ़े सात आने के बराबर होता था। उसने आश्चर्य प्रकट किया था कि 'मानव जाति काली मिर्च को पता नहीं क्यों इतना बढ़िया द्रव्य समझती है जिसमें न तो मधुर स्वाद है और न ही वह देखने में अच्छी लगती है, चरपराहट के अतिरिक्त उसमें कोई अच्छा गुण भी तो नहीं !'

विनिमय में सोना—प्लीनी भारत में काली मिर्च की खेती, उसकी किस्में, संग्रह और उसमें लगने वाले एक रोग का (जिसमें दाने खोखले हो जाते हैं) वर्णन करता है। उस समय भी भारतीय इसकी कृषि में दक्ष थे। उन दिनों सोंठ, काली मिर्च और पिप्पली भारत से बाहर जाती थीं और बहुत अधिक दामों पर बिकती थीं। यह निर्यात व्यापार प्लीनी के समय इतना अधिक बढ़ गया था कि उसने इन महंगे मसालों को खरीदने में रोमन सोने के भारत में भारी निर्यात की शिकायत की थी। वह लिखता है कि 'दोनों किस्म की मिर्चों और सोंठ के बदले में हमें यहां सोना और चांदी देकर ये पदार्थ खरीदने पड़ते हैं।

मंगलौर और कालीकट से निर्यात—लगभग चौंसठ ईस्वी पश्चात् में लिखे गये, 'पेरिप्लस ऑफ़ दी एरिथ्रिलन सी' में बताया गया है कि काली मिर्च बकरे (Bacare) से निर्यात होती है। मुज़रिस और नेलकिंडा से यह जहाज़ों पर लादी जाती है। केवल इसी प्रदेश में यह बड़े पैमाने पर उगाई जाती है। पता लगाया गया है कि ये स्थान मालाबार तट पर मंगलौर और कालीकट के बीच में थे।

फलियों की तरह काली मिर्च के फल—डिओस्कोराइडिस (लगभग १०० ईस्वी पश्चात्) ने लिखा है कि इसके फल शुरू में फलियों की तरह लम्बे होते हैं और इस लम्बी मिर्च में ज्वार की तरह छोटे-छोटे दाने होते हैं। जो बाद में पूरी काली मिर्च बन जाती है। ऋतु आने पर यह फट जाती है और इसमें से एक गुच्छा निकलता है जिस पर छोटे-छोटे फल लगे रहते हैं। इनमें से जो कच्चे अंगूरों की तरह दाने रह जाते हैं उनकी सफ़ेद मिर्च बन जाती है। आंख के रोगों के लिए और जन्तुओं का विष नष्ट करने के लिए यह अत्युत्तम द्रव्य है।

जहाज़ों में तीन-चौथाई कालीमिर्च—रोम में मिर्च पर कर बहुत बढ़ गया था।

विन्सेन्ट (कॉमर्स एण्ड नेवीगेशन आफ़ दी एन्शिएण्टस, जिल्द २, पृष्ठ ४५८, १८०७) ने दिखाया है कि काली मिर्च और पिप्पली उन भारतीय मसालों में थे जिन पर १७६ ईस्वी पश्चात् के लगभग एलेग्ज़ेण्ड्रिया में रोमन चुंगी दी जाती थी। भारत और रोम के बीच यह व्यापार का मुख्य पदार्थ था। पश्चिम की ओर जाने वाले औसत लद्दू जहाज़ में शायद तीन चौथाई काली मिर्च भरी होती थी। रोमन रसोई की अत्यधिक मंहगी चीजों में यह एक थी।

उपहार में—सेन्ट सिल्वेस्टर के अधीन गिरजे को सम्राट कौन्स्टेन्टाइन (चौथी ईस्वी पश्चात्) द्वारा दिये गये उपहारों में मंहगे बरतन, सुगन्धित गोंदें, मसाले, लोबान, नड़ (nard) गूगल, बोल, दालचीनी, कपूर और मिरच थी।

संस्कृत काव्यों में—संस्कृत के कवियों में कालीदास (पांचवीं शती ईस्वी पश्चात्) ने कालीमिर्च के उत्पत्ति स्थान का वर्णन ठीक किया है। वे लिखते हैं कि 'दिग्विजय करते हुए मलयाचल की घाटी में रघु की सेनाओं ने जब पड़ाव डाला तो आस पास के मरिचवनों में हारीत पत्ती घूम रहे थे। [*]'

कैलाश में चकोरों का मिर्च चुगना—बाण (७ वीं शती) ने भी अपने नायक चन्द्रापीड़ की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में कैलाश और विन्ध्याटवी में कालीमिर्च का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि 'कैलाश के पूर्वोत्तर दिशा में एक छोटे वन के मध्यभाग में अच्छोद नाम के तालाब के दक्षिण से आते हुए संगीत को सुनकर वह घोड़े पर से उतरा। उस वन में चन्द्रापीड़ ने चकोरों को निर्भयता से मरिच के अंकुरों को खाते देखा।' [†]

कुररों का भोज़न—मिर्च के पत्ते—इसी तरह उसने विन्ध्याटवी में मद से मस्त कुरर पत्तियों के झुण्डों को मिरच के पत्ते को कुतरते हुए देखा। [‡]

इन प्रदेशों में मिर्च की उत्पत्ति स्वीकार करने में वनस्पति शास्त्र के विद्यार्थी को कोई आधार नहीं मिलता।

प्रियों के साथ मिर्च और मधु—राजशेखर (८८०-६२० ईस्वी पश्चात्) ने मिर्च की जन्म भूमि दक्षिण भारत लिखी है। [¶] वहां नगरों में द्रविड़ स्त्रियों का ताम्बूल खाने के बाद मिर्च चबाते हुये अपने प्रियों के साथ शहद की शराब पीना सामान्य बात रही होगी। [×]

---

[*] मारीचोद्भ्रान्त हारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः। —रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक ४६।

[†] अचकितचकरचुम्बितमरिचांकुरैः''पादपैः परिवृतं शूलपाणेः शून्यं सिद्धायतनमपश्यत्।
—कादम्बरी, पूर्वभाग, शिव सिद्धायतनम्।

[‡] मदकलकुररकुलदश्यमानमरिचपल्लवाः। —का०, पूर्वभाग, विन्ध्याटवीवर्णनम्।

[¶] आ मूलयष्टेः फणिवेष्टितानां सच्चन्दनानां जननन्दनानाम्।
कक्कोलकैलामरिचैयुतानां जातीतरूणां च स जंन्मभूमिः॥
—काव्य मीमांसा, अध्याय १७।

[×] पिबन्त्यास्वाद्यमरिचं ताम्बूलविशदैर्मुखैः।
प्रियाधरावदंशानि मधूनि द्रविड़ाङ्गनाः॥ —का. मी, अ. ८।

अनेक शराबों का घटक—सम्राट् चन्द्रगुप्त (३२—२९८ ईस्वी पूर्व) के समय मैरेय नामक एक शराब का प्रचलन था जिसे मेषशृङ्गी की छाल के काढ़े में मिर्च, पिप्पली और त्रिफला आदि को मिलाकर बनाया जाता था । *

रंग को निखारने वाली मेदक और प्रसन्ना नामक शराबों के भी मिर्च और पिप्पली घटक थे । †

आचार्यकौटिल्य (३००–२९८ ईस्वी पूर्व) ने कटुक वर्ग में मिर्च, पिप्पली और सोंठ आदि को गिनाया है । ‡ और उनके अर्थशास्त्र में इन द्रव्यों का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है ।

अंगूर लता के समान मिर्च की बेलें—कॉस्मस (क्रिश्चियन टोपोग्राफ़ी, ५३०–५५० ईस्वी पश्चात्) अपने पहले जीवन में एक व्यापारी था और बाद में साधु बन गया था । मालूम होता है कि वह मलाबार तट पर स्वयं गया था, या उसने किसी प्रत्यक्षदर्शी से काली मिर्च की सब अवस्थाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त किया था । शायद यह पहला व्यक्ति था जिसने इसके बारे में अधिक बातें बताई थीं । काली मिर्च का चित्र देते हुए कॉस्मस (५४५ शती) लिखता है–'यह मिर्च का वृक्ष है । अंगूर-लता की पतली शाखाओं की तरह इसका पौदा निर्बल और नाज़ुक होता है इस लिए प्रत्येक पौदा जंगल के किसी ऊंचे वृक्ष के चारों ओर लिपटा होता है । फल के प्रत्येक गुच्छे के ऊपर एक दुहरा खूब हरा पत्ता होता है जो रक्षा का कार्य करता है ।' इसका मूलदेश वह मले लिखता है । अरबी में बार का अर्थ तट होता है । प्रतीत होता है कि इस साधु पर्यटक ने मलाबार को ही मले कहा है ।

बारिश से रक्षा करने वाला पत्ता—इब्न खुर्दादबा (८७० शती) को समुद्रीय नाविकों ने बताया था कि 'मिर्च के प्रत्येक गुच्छे के ऊपर एक पत्ता होता है जो बारिश से इस की रक्षा करता है । वर्षा बन्द होने पर पत्ता एक पार्श्व में हट जाता है और यदि बारिश फिर होने लगे तो यह फल को फिर ढक लेता है ।'

मिर्च की मिलावट पर शूली—अलिफ लैला की कहानियों में एक हलवाई को मलाई में कालीमिर्च मिलाने के अपराध में शूली पर चढ़ने का दंड दिया गया है ।$

---

* मेषशृङ्गीत्वक् काथाभिषुतो गुलप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसम्भारस्त्रिफलायुक्तो वा मैरेयः । गुलयुक्तानां वा सर्वेषां त्रिफला सम्भारः । —कौटलीयम्, अर्थशास्त्रम्, अधिकरण २, अध्याय २५ ।

† पाठलोध्रतेजोवत्येलावालुकमधुकमधुरसाप्रियङ्गु दारुहरिद्रामरिचपिप्पलीनां च पाञ्चकर्षिकः सम्भारयोगो मेदकस्य प्रसन्नायाश्च । मधुकनिर्यूहयुक्ता कटशर्करा वर्णप्रसादनी च ।
—कौ. अ. अधि. २, अध्या. २५ ।

‡ पिप्पली मरिचशृङ्गिवेराजाजी किराततिक्तगौरसर्षपकुस्तुम्बुरूचोरकदमनकमरुवकशिग्रुकाण्डादिः कटुकवर्गः । —कौ० अ०, अधि. २, अध्या० १५ ।

$ अलिफ़ लैला, ब्रह्म प्रेस, इटावा, पृष्ठ २३४ ।

ठगी के लिये—कुतिया को काली मिर्च से भरा मांस का टुकड़ा खिला कर गुहसेन की पत्नी को डिगाने का असफल प्रयत्न करने की एक कहानी सोमदेव (लगभग १०७० ईस्वी पश्चात्) ने दी है। *

सफेद से काली—स्पेन के रब्बी बेन्ज़ामिन नामक यहूदी यात्री ने ११७० ईस्वी पश्चात् के लगभग यह विवरण दिया है—

'मिर्च पहले सफ़ेद होती है, परन्तु तोड़ने के बाद वे इसे बरतनों में रख कर इस पर गरम पानी डालते हैं, तब यह धूप में फैला कर सुखा ली जाती है जिससे कठोर तथा अधिक भारी हो जाती है। इस प्रक्रिया में यह काली हो जाती है।' †

उत्तर भारत में उत्पत्ति—मौण्टेकॉर्विनो (John of Montecorvino) १२९१ में पर्शिया के एक शहर टौरिस (Tauris) से भारत आया और तेरह मास यहां घूमा। वह लिखता है कि उत्तर भारत में 'कालीमिर्च का पौदा उगता है। यह पतला और अंगूर लता की तरह गांठदार होता है, वास्तव में यह अंगूरलता से बहुत मिलता है सिवाय इसके कि यह अधिक नाज़ुक होता है। ‡

बरफ़ की तरह सफ़ेद—मार्को पोलो (लगभग १२९३ ईस्वी पश्चात्) ने अपने यात्रा-विवरण में फ़िलिपाइन, मोलक्का आदि के द्वीप-समूहों के लिये लिखा था कि उन द्वीपों में बरफ़ की तरह सफ़ेद मिरच उगती है; और काली मिरच भी बड़े परिमाण में होती है। इन द्वीपों की बहुमूल्य चीजें, सोना, कीमती पत्थर और सब प्रकार के मसाले अचरज पैदा करते हैं। मोलक्का द्वीप-समूहों को तो अब भी मसाले के द्वीप (spice islands) कहते हैं। मार्को पोलो (जिल्द २, पृ० २७२) बताता है कि 'जावा का महान् द्वीप अत्यन्त समृद्धिशाली है जिस में काली मिरच, जायफल, जटामांसी, गैलिंगल, कवाबचीनी, लौंग और सब प्रकार के दूसरे मसाले पैदा होते हैं।' कोलम् या कोइलम् के महान् राज्य में 'सब जगह काली मिरच बड़े पैमाने पर बोई जाती है और मैं आप को बताता हूँ कि किस तरह। मिरच के वृक्ष जङ्गली नहीं होते परन्तु खेती किये जाते हैं। उन्हें नियमित रूप से बोया और सींचा जाता है। मई, जून, और जौलाई महीनों में मिरच इकट्ठी की जाती है।' ¶ एलि (Eli, वर्तमान कन्नानूर) के राज्य में मिरच, सोंठ और दूसरे मसाले पैदा किये जाते हैं (पृ० ३८५)

एक जहाज़ में छः हज़ार टोकरे—आज कल हम जैसे जहाज़ का परिमाण बताने के लिये कहते हैं कि यह जहाज़ इतने टन का है उसी तरह पहले चीनी जहाज़ों की समाई को बताने के लिए यह बताया जाता था कि इस में मिरच की कितनी टोकरियां आ जाती हैं। मार्को पोलो

---

*दि ओशन औफ़ स्टोरी, जिल्द १, पृष्ठ १५९ ।

†फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के, ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १९३९, पृष्ट १३५ ।

‡फॉरेन. नोटिसेज़ ऑफ़ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १९३९, पृष्ठ १८७ ।

¶ क. मार्को पोलो, जिल्द २, पृष्ठ ३७५ ।

ख. फॉरेन नोटिसेज़ ऑफ साउथ इण्डिया, के. ए. नीलकण्ठ शास्त्री, १९३९, पृष्ठ १८०।

वे ऐसे चीनी जहाज़ बताये हैं जिन में हांच हज़ार से छः हजार तक मिरच के टोकरे रख लिये जाते थे।

प्रतिदिन १२२ मन लागत—मेसर मार्को (१२७१—१२९५) को चीन के चुङ्गी के एक उच्च राजकीय अधिकारी ने बताया था कि किन्से (Kinsay) के शहर में प्रतिदिन खर्च होने वाली काली मिरच का परिमाण तैंतालिस भार था । प्रत्येक भार २२३ पौंड के बराबर होता था।

इस पर टिप्पणी करते हुए, कौर्डियर (१९२९) ने लिखा है कि चीनियों को मिरचें और इसी तरह के दूसरे मसालों को खाने की अधिक आदत अब बदल गई है। विलियम्स (मिडल किंगडम, जिल्द २, पृ० ४९, ४०८) के अनुसार चीनी लोग आज कल बहुत कम मसाले इस्तेमाल करते हैं। काली मिरच को तो वो ज्वरहर के तौर पर फाण्ट के रूप में बरतते हैं, और वह भी कुछ साल पहले की तुलना में ज्वरहर रूप में इसका प्रयोग बहुत कम हो गया है । इस पर यूले (Youle) लिखते हैं कि मिरच को न केवल डाक्टरों ने ही उपेक्षित कर दिया है परन्तु सामान्य लोगों में भी यह उपेक्षित हो गई है । एक या दो महीने पहले शहर में एक छाबड़ी वाले की दुकान पर से गुज़रते हुये मैंने एक लड़की गाहक को चिल्लाकर कहते हुए सुना, 'ठीक-ठीक बताओ कि तुमने इस में मिरच तो नहीं डाली !' उस लड़की ने काली मिरच की ही अनुपस्थिति चाही हो यह निश्चित नहीं कहा जा सकता । भारत में बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो छाबड़ी वाले से खाने की चीज़ खरीदते समय उसमें लाल मिरच न डली होने का निश्चय कर लिया करते हैं। इसी तरह उस लड़की ने भी सम्भवतः लाल मिरच के लिये ही पूछा हो।

सौ जहाज़ प्रतिदिन—दक्षिणीय चीन के एक पुराने बन्दरगाह ज़तोन से काली मिरच का व्यापार बहुत होता था। मार्को पोलो (जिल्द २, पृ० २३५) लिखता है कि युरोप के ईसाई देशों में भेजे जाने के लिये सिकन्दरिया (Alexandria, मिश्र का बन्दरगाह) या दूसरी जगहों पर यदि मिरच का एक जहाज आता है तो जतोन के बन्दरगाह में ऐसे सौ जहाज, और इससे भी अधिक आते हैं, क्योंकि यह संसार की सब से बड़े दो व्यापारिक बन्दरगाहों में से एक है।

चवालीस प्रतिशत कर—चीनी सम्राट् उस समय मिरच पर चवालीस प्रतिशतक, अगरू-काष्ठ, चन्दन और दूसरी अधिक जगह घेरने वाली चीजों पर चालीस प्रतिशतक कर लेता था।

चीन में एक लाख तेतीस हज़ार मन आयात—१५१५ में कोचीन से चीन के सम्बन्ध में लिखते हुए गिओवान्नी द एम्पोली (Giovanni d' Empoli) कहता है, इन भागों से जहाज वहां मसाले ले जाते हैं । चीन ने सुमात्रा से प्रति वर्ष साठ हज़ार कैन्टर (एक कैन्टर Canter = १३० पौंड) मिरच जाती है और कोचीन तथा मलाबार से पंद्रह या बीस हज़ार कैन्टर। एक कैन्टर की कीमत पन्द्रह से बीस दुकत (Ducats) तक थी। दुकत एक इटालियन सिक्का था जो सोने और चांदी दोनों का हुआ करता था । सोने का एक दुकत हमारे चार रुपये के बराबर और चांदी का दो अकबरी रुपये के बराबर होता था।

काली मिरच के अतिरिक्त सोंठ (१), जावित्री, जायफल, सुगन्धित पदार्थ, अगरु, मर्ख-मख, युरोपियन सोने के तार, मूंगे, ऊन, आदि भी चीन को जाते थे।

बारह सौ टन—१५१७ में गाल्वानो (Galvano) ने फ़र्नाओ पेरेज़ (Fernao perez) के चीन में साहसों का उल्लेख करते हुए कहा था, उसने पेसम (Pacem) में मिरच का एक जहाज़ लिया था, चीन में यह व्यापार का मुख्य पदार्थ था । मार्सडन के 'सुमात्रा के इतिहास' से स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी तक भी थोड़े बहुत परिमाण में यह चीन को भेजी जाती रही थी । सुमात्रा से ईस्ट इण्डीज़ कम्पनी के बग़ीचों से औसत बारह सौ टन निर्यात होती थी । इस में से अधिक परिमाण तो युरोप को जाता था और शेष चीन को चला जाता था ।

रोम-मिर्च की बड़ी मण्डी—सीरिया को यह फ़ारस की खाड़ी से टायर को जाने वाले व्यापारिक काफ़लों से मिलती थी । एशिया माइनर, सीरिया और मिश्र को जीतने के बाद रोमवासी इसे प्राप्त करने लगे थे और रोम इस के लिए बड़ी भारी मंडी बन गई थी । यह कल्पना युक्तिसंगत है कि बेबिलोनिया और फ़ारस की खाड़ी में मसालों में काली मिरच की मांग सामान्यतया अधिक थी, जैसे कि मिश्र में दालचीनी की अधिक मांग थी । डेरियस के अधीन पर्शियन साम्राज्य के विस्तार के साथ इस की मांग बहुत बढ़ गई थी । यह व्यापार समुद्र के रास्ते से था, ज़मीन के रास्ते नहीं । यह भी कहा जा सकता है कि रोम में काली मिरच की मांग पैदा होने से पहले चीन में इस की स्थिर मांग थी और यही कारण था कि दूसरी सदी ईस्वी पूर्व में और सम्भवत: इस से पहले भी मलाबार तट पर चीनी जहाज आया करते थे ।

अपूर्ण

प्र० का० फोन नं० ५६३ स्थापित १८६२ तार—'इन्जेक्शन' झांसी

देशमान्य—मिश्रा—आयुर्वेदिक इन्जेक्शन-भारतीय

द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेक्शन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेदिक इन्जेक्सन विज्ञान पुस्तक, षष्ठम् संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ॥=) नियमादि मुफ्त मंगायें ।

सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २॥) पो० ।=) ।

सर्वप्रथम आविष्कर्ता एवं एक मात्र निर्माता—

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू० पी०

औषधि-कल्पना विज्ञान

[लेखक—पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्यायुर्वेदाचार्य, ए० एम० एस०
लेक्चरार, फार्मेकालोजी डिपार्टमेंट, मेडिकल कालेज, लखनऊ]

जिस प्रकार एक वीर योद्धा के लिए उत्तम शस्त्रों की आवश्यकता संग्राम में विजय पाने के लिए होती है, उसी प्रकार एक उत्तम चिकित्सक को भी रोगों को नष्ट करने के लिए उत्तम औषधियों की आवश्यकता हुआ करती है और इसके लिये उसको औषधि-कल्पना-विज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है। अतएव हम आज पाठकों के सम्मुख चिकित्सकों के लिए परमोपयोगी इस औषधि-कल्पना-विज्ञान की रूप रेखा प्रस्तुत करते हैं।

औषधि-कल्पना शब्द का निर्वचन तथा औषधि तत्त्व—*ओस शब्द का अर्थ 'रस' है वह रस जिसमें होता है वह औषधि कहलाती है, प्रत्येक औषधि अपने रस द्वारा मनुष्यों को आरोग्य प्रदान करती है, यह दीपन† आदि गुणों से युक्त होने के कारण जठराग्नि‡ को प्रबल बनाती है, उस औषधि को रोग नाश करने में समर्थ बनाने के लिये उसकी कई प्रकार कल्पना (व्यवहारोपयोगी रचना या योजना) की जाती है और इस प्रकार की औषधियों का वास्तविक तत्त्व औषधि तत्त्व कहलाता है जो चार प्रकार का होता है।

पाश्चात्य मत से औषधि तत्त्व के भेद :—

१. औषधि द्रव्य तत्त्व (द्रव्यगुण विज्ञान या मैटेरिया मेडिका Materia medica)।
२. औषधि-कल्पना (औषधि द्रव्य संस्कार या फार्मेसी Pharmacy)।
३. स्वस्थ शरीर पर औषधि की क्रिया का ज्ञान (फार्मेकालोजी Pharmacology)।
४. रुग्ण शरीर पर औषधि की क्रिया का ज्ञान (थैराप्यूटिक्स Therapeutics)।

यह चतुर्थ भेद दो प्रकार का होता है :—(अ) परीक्षित आमयिक प्रयोग (इम्पीरिकल Empirical)।

---

* (ओस + धि)—ओसो नाम रसः सोऽस्यां धीयते यत्तदौषधिः।
ओसादारोग्यमाधत्ते तस्मादौषधिरौषधः॥ (काश्यप संहिता·खिल)

†औषध द्रव्यं संयोगं ब्रुवते दीपनादिकम्, (काश्यप-इन्द्रिय स्थान)

‡१. (उस + धा)—'उषं' दाहे इति धातुः, उषो वह्निस्तं धारयतीत्यौषधम्, २. (उषं) तं वह्निं जाठरं क्षीरादिकं (धयति) पाययतीति वा धेट् पाने तस्मिन् धीमति प्रोक्तं, यदग्नेर्बलमापादयतीत्यर्थः, नैरुक्तोऽत्र विधिरधिगन्तव्यः, औषधमोषधमोषधिरिति पर्यायाः, तदग्नेः स्थापनमेव दोषशमनं यथा—

तदौषधमिति प्रोक्तं यदग्नेः साम्य कारणम्।
तत्स्थिते दोष शमनं रोगाणां च विनाशनम्॥ (अष्टांग हृदय की दास कृत टीका)

(आ) युक्तियुक्त प्रयोग (Rational Therapeutics राशनल थैराप्यूटिक्स)।

हम इन उपयुक्त चार भेदों में से द्वितीय औषधि-कल्पना विज्ञान या फार्मेसी (Pharmacy) की रूप रेखा बताते हैं।

औषधि-कल्पना विज्ञान की आवश्यकता—जिस रूप में हमारी दैनिक चिकित्सा में औषधियाँ प्रयुक्त होती हैं वह उसी रूप में साधारणतया प्राप्त नहीं होती हैं, उनको उस रूप में आने से पूर्व कई प्रकार की कल्पनाओं (योजनाओं) का आश्रय लेना पड़ता है क्योंकि रोग की विभिन्न अवस्थाओं और रोगियों की विभिन्न प्रकृतियों को ध्यान में रख कर अनेक प्रकार की कल्पना वाली औषधियाँ ही प्रयुक्त होने पर लाभप्रद हुआ करती हैं*। इसके लिए औषधि-कल्पना विज्ञान की आवश्यकता होती है।

औषधि-कल्पना विज्ञान का प्रयोजन—इस औषधि-कल्पना विज्ञान (Pharmacy) का प्रयोजन, निश्चित रूप से रोगों को नष्ट करने की सामर्थ्य वाली गुणकारिणी औषधियों का निर्माण करना है।

औषधि-कल्पना की प्रारम्भिक तैयारी—औषधि-कल्पना (Pharmacy) का कार्य करने से पूर्व हमको निम्नलिखित बातों का विचार कर लेना चाहिए :—

(१) औषधि-कल्पना भवन (रसशाला या फार्मेसी)।
(२) औषधि-कल्पना के उपकरण (सामग्री)।
(३) औषधि-कल्पना में प्रयुक्त औषधि द्रव्य।

१. **औषधि-कल्पना भवन (रसशाला या फार्मेसी)**—औषधि-कल्पना (फार्मेसी) के भवन निर्माण में बहुत सोच कर सावधानी तथा दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए, क्योंकि इसका निर्माण बार-बार नहीं हो सकता है। इस लिए भविष्य में आने वाली सब प्रकार की असुविधाओं को ध्यान में रख कर "औषधि-कल्पना (फार्मेसी) भवन का निर्माण किया जाना चाहिए। औषधि-कल्पना भवन का निर्माण ऐसे स्थान पर करना चाहिए कि जो रेलवे स्टेशन, सड़क, पोस्ट आफिस, नगर तथा जंगल के समीप हो, जहाँ जल का उत्तम प्रबन्ध हो और सूर्य का प्रकाश तथा वायु का आवागमन भली-भाँति आसके' ऐसे सब ऋतुओं में सुखप्रद स्थान में औषधि-कल्पना (फार्मेसी) का भवन बनाना चाहिए। भवन के चारों ओर पक्की ईंटों की सीमा (चार दीवाल) बना देनी चाहिए और उस सीमा के अन्दर, भवन के चारों ओर एक छोटा सा उद्यान (बगीचा) होना चाहिए, जिसमें नित्य प्रति कार्य में आने वाली औषधियों के वृक्ष, लता तथा पौधे लगे रहें, क्योंकि प्रायः भावना देने के लिये ताज़ी हरी औषधियों की आवश्यकता औषधि-कल्पना के समय प्रति दिन हुआ करती है। यदि सम्भव हो तो उस भवन की सीमा में ही अथवा स्थान के अभाव में औषधि-कल्पना भवन के समीप ही औषधि निर्माता वैद्य तथा कुछ सहायक कर्मचारियों के लिए भी निवासस्थान (क्वार्टर) बना देने चाहिएं जिससे, औषधि-कल्पना के कार्य में सरलता रहे।

---

*बहुकल्पं बहुगुणं सम्पन्नं योग्यमौषधम् (अष्टांगहृदय, सूत्र, अ० १।२८)

औषधि-कल्पना के भवन में आने-जाने के लिए चार दरवाजे होने चाहियें, भवन के सब कमरों में झरोखे तथा खिड़कियाँ हों, धूआँ निकलने की चिमनी भी भट्टी आदि के कमरे में होनी चाहिए। अनेक प्रकार के पुट भी उसमें एक ओर बने हुए हों तथा दूसरी ओर अनेक प्रकार की भट्टियाँ और चूल्हे बने हुए हों। पानी के लिए कूआ या नल का प्रबन्ध अवश्य ही होना चाहिए। यदि सम्भव हो तो विद्युत् (बिजली) के प्रकाश का प्रबन्ध भी अवश्य ही कर लेना चाहिए और अपनी सामर्थ्य के अनुसार औषधि निर्माण में उपयोगी मशीनें भी औषधि-कल्पना भवन में लगवा लेनी चाहिएं।

२. औषधि-कल्पना के उपकरण (सामग्री)—औषधि-कल्पना भवन (फार्मेसी) में लौह, पत्थर* तथा काच के बड़े और छोटे खरल मूसल सहित पर्याप्त संख्या में होने चाहियें। पत्थर के खरलों में उरदिया, टोली, तामड़ा, सीमाऊ, कालापत्थर, संगमरमर, लालपत्थर आदि विविध पत्थरों के दृढ़ खरल हों। कुछ खरल पालिश किए होने चाहियें जिनमें मोती आदि घोटे जा सकें। पत्थर की शिलाएं (सिल) तथा बट्टे (मर्दन करने वाले) इमाम दस्ते, बारीक तथा मोटी चालनियाँ, सड़ांसी, लोहे की कलछियाँ, चम्मच, चमचियाँ, छोटी तथा बड़ी कलई की हुई कई कड़ाइयाँ, क्वाथ करने के छोटे तथा बड़े कलई किये हुये भगौना तथा डेग, भबका यंत्र, टिकिया और गोली बनाने की मशीन, बादाम आदि का तेल निकालने का यन्त्र, नींबू आदि का स्वरस निकालने का यन्त्र, अनेक प्रकार के छोटे बड़े वैज्ञानिक तथा देशी तराजू और उनके छोटे बड़े बाटों के सेट, तामचीनी के तसले (छोटे बड़े) प्याले, गिलास, भगौने, फिल्टर पेपर, कीप, रेगमाही, आतशी शीशियाँ तथा छोटी बड़ी अन्य शीशियाँ और जार, वैज्ञानिक थर्मामीटर तथा अन्य आवश्यक उपयोगी यन्त्र, दवाओं के सुखाने के जालीदार बक्स, आसव अरिष्टादि बनाने के लिये मिट्टी के चिकने बड़े बर्तन, चीनी मिट्टी के पेचदार वर्तन और सागवान की लकड़ी के बने हुये बड़े पीपे (ढोल, ड्रम), भिन्न-भिन्न प्रकार की मूषायें, विविध प्रकार के यंत्र, प्रतिदिन आवश्यक लवण वर्ग, क्षार वर्ग, तैल वर्ग, घृत, धातु, उपधातु, विष, उपविष, रत्न, उपरत्न, उपरस तथा पारद आदि आवश्यक वस्तुओं के और उपयोगी मारक व शोधक औषधियों के वर्ग भी तैयार रहने चाहियें।

औषधि-कल्पना में प्रयुक्त द्रव्य—औषधि कल्पना में १. जांगम, २. औद्भिद, ३. पार्थिव, यह *तीन प्रकार के द्रव्य प्रयुक्त होते हैं।

(१) जांगम (चलने वाले प्राणी मनुष्य पशु पक्षी आदि से प्राप्त होने वाले पदार्थ)।
(२) औद्भिद (पृथ्वी को फोड़ कर निकलने वाले वृक्ष पौदे लता आदि)।
(३) पार्थिव(पृथ्वी में से निकलने वाले सुवर्ण आदि)।

१—जांगम द्रव्यों का उपयोग तीन प्रकार से हुआ करता है।

(अ) जांगम प्राणी का उसी रूप में प्रयोग—जैसे जोक का प्रयोग।

---

*उरदिया पत्थर के खरल सवाई माधोपुर (जयपुर प्रांत) नगर में अच्छे बनते हैं और काले पत्थर के खरल 'गया' नगर में अच्छे बनते हैं।

*तत्पुनस्त्रिविधं प्रोक्तं जांगमौद्भिदपार्थिवम्। (चरक सूत्र अ० १।६८)

(आ) जीवित प्राणी के पदार्थ जैसे दूध, घृत, मूत्र, रुधिर आदि ।

(इ) मृत प्राणी के पदार्थ सींग, खुर, नाखून आदि ।

२—औद्भिद के चार भेद होते हैं—

(१) वनस्पति (फूल रहित फल वाले गूलर आदि) ।

(२) वृक्ष (फूल तथा फल वाले पेड़) ।

(३) लता (गिलोय आदि की बेल) ।

(४) औषधि (फल के पक जाने पर नष्ट हो जाने वाली जौ आदि) ।

३—पार्थिव—

सुवर्ण, चाँदी, ताम्र (तांबा), शिलाजीत आदि ।

इनमें से औद्भिद औषधि द्रव्यों का अत्यन्त अधिक प्रयोग होता है इस लिए उनके विषय में कुछ विशेष बातें स्मरण रखनी चाहिएं ।

उत्पत्ति स्थान तथा ऋतु आदि के कारण एक ही औषधि के गुणों में न्यूनाधिकता आ जाती है । इस लिये पहिले ग्राह्य उत्तम और अग्राह्य (निकृष्ट) औषधि की जानकारी होनी चाहिये ।

ग्राह्य औषधियां—रोग तथा वृद्धावस्था और शरीर की क्षीणता को दूर करके स्वास्थ्यप्रद एवं रसायन औषधियां अधिकतर शीतवीर्य होती हैं जो कि अधिकतर हिमालय पर्वत※ की चोटियों पर तथा उपत्यकाओं में उत्पन्न हुआ करती हैं इसी लिये चरक मुनि ने हिमालय पर्वत को सर्वश्रेष्ठ औषधियों का उत्पत्तिस्थान माना है । इसके अनन्तर विन्ध्याचल आदि अन्य पहाड़ों पर भी बहुत औषधियां उत्पन्न होती हैं इन पहाड़ों तथा वन उपवनों से यथाशक्ति हरी ताजी औषधियां विधिपूर्वक संग्रह करके औषधि निर्माण में डालनी चाहियें ।

अग्राह्य औषधियां—साँप बाँबी, निकृष्ट आनूप (जलवाला) स्थान, श्मशान, ऊसर और मार्ग के समीप में उत्पन्न हुई अथवा उसके आस-पास उत्पन्न हुई औषधियां, कोड़ों से खाई हुई, दावानल से जली हुई, अधिक वर्षा (बाढ़) के कारण सड़ी हुई, बर्फ में दबी हुई और पुरानी औषधियाँ औषधि निर्माण करने में ग्रहण नहीं करनी चाहियें ।

औषधियों के उपयोगी अंशों की संग्रह विधि—†औद्भिद वर्ग की औषधियों के निम्नलिखित अंश उपयोग में आते हैं उनका संग्रह काल नीचे लिखे प्रकार से है ।

मूल (जड़)—सौम्य औषधियों का मूल शिशिर ऋतु में और आग्नेय (गर्म) औषधियों का मूल ग्रीष्मऋतु में इकट्ठा करे, यह चरक मुनि का मत है । डा० हेल्डन का मत है कि पत्र सूख कर झड़ने के समय मूल लेने चाहियें । जिन मूलों को अधिक समय तक रखना हो उनको लाकर सुखा लेना चाहिये । बड़े मूल अधिकतर सरल मूल स्वयमेव शीघ्र सूख जाते हैं ।

※हिमवानौषधि भूमीना श्रेष्ठतमः । (चरक सूत्र अ० २५)

†मूलत्वक्सारनिर्यासनालस्वरसपल्लवाः । क्षाराक्षीरं फलं पुष्पं भस्म तैलानिकण्टकाः ॥
पत्राणि शुंगाः कन्दाश्च प्ररोहाश्चौद्भिदोगणः ॥ (रचक० सूत्र० अ० १)

कई मूलों को टुकड़े कर के सुखाना पड़ता है ।

शार्गंधर के मत में वट* (बरगद) आदि बहुत मोटी जड़ वाले वृक्षों की जड़ की छाल ग्रहण करें और बहुत सूक्ष्म जड़वाली औषधियों के सब अंग ग्रहण करने चाहियें ।

२. (त्वक् छाल)—शरद्ऋतु में, रंजक गुण रहित वृक्षों की त्वक् ग्रहण करनी चाहिये और रंजक गुण वाले वृक्षों और उनके मूल की छाल, पत्तों के पुष्ट और अच्छे होने के समय लेनी चाहिये । डाक्टर कार्तिकचन्द्रवसु का मत है कि "शीतकाल में वृक्ष की छाल घनी होती है और उसमें अधिक परिमाण में वीर्य पाया जाता है। जीवित अवस्था में वृक्ष की छाल निकाल लेने से उसकी छाल अपेक्षाकृत घनी होती है ।

३. सार—विजयसार आदि वृक्षों का सार (छाल उतार देने पर भीतर का ठोस काष्ट), हेमन्त ऋतु में लेना चाहिये ।

४. गोंद (Gum गम)—जवान वृक्ष का गोंद लेना चाहिये ।

५. नाल—युवा पौधे का नाल शीतकाल में लेना चाहिये ।

६ स्वरस—पूर्ण रस वाले पौधे तथा वृक्ष के पत्तों का स्वरस लेना चाहिये ।

७. पत्ते--ग्रीष्म ऋतु में फूल खिलने और फल लगने के बीच के समय में जब पत्ते चमकीले हों तब उनको ले ।

८. क्षार--पूर्ण रस और वीर्य वाले पौधे के पंचांग का क्षार बनाना चाहिये ।

९. क्षीर—युवा वृक्ष तथा पौधों का दूध शरद् ऋतु में लेना चाहिये ।

१०. फल—पकने पर फल लेना चाहिये ।

११. फूल—साधारणतया बसन्त ऋतु में फूल लेने चाहियें वैसे आवश्यकता होने पर प्रत्येक ऋतु में प्रातः और सायं फूल इकट्ठे करें । परन्तु यदि सुखाने के लिये लेने हों तो ओस या वर्षा के जल से भीगते ही ले लेने चाहियें । यदि सुगंध के लिये फूल लेने हों तो धूप निकलने से पहले ही लेने चाहियें । यदि फूलों को सुखा कर रखना हो तो तोड़ कर छाया में सुखा वर्तन में बन्द करके रख देने चाहियें ।

१२. तैल—युवा वृक्ष के खूब पके बीजों का तैल निकालना चाहिये ।

१३. कन्द—शरद्ऋतु में कन्द इकट्ठे करने चाहियें ।

१४. जटांकुर--वट आदि के जटांकुर युवावृक्ष के लेने चाहियें ।

साधारणतया शरद् ऋतु में औषधियों का संग्रह कर लेना उत्तम होता है । वमन और विरेचक की औषधियाँ वसन्त ऋतु में लेनी चाहियें ।

सब औषधियाँ ताजी हरी नवीन ही काम में लेनी चाहियें परन्तु वायविडंग, पिप्पली, अन्न, घृत, शहद और गुड़ एक वर्ष पुराना लेना चाहिये ।

औषधि कल्पना--उपर्युक्त औद्भिद औषिधियों की कल्पना में निम्नलिखित पन्न है ।

---

*न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः ।। (शार्गंधर)

महर्षि कश्यप* का मत—महर्षि कश्यप के मत में ७ प्रकार की औषधि कल्पना होती है—

(१) चूर्ण (२) शीतकषाय (हिम) (३) स्वरस (४) अभिषव (५) फाण्ट (६) कल्क (७) क्वाथ।

† सुश्रुत मुनि का मत--सुश्रुत मुनि के मत में ६ प्रकार की औषधि कल्पना हुआ करती है—

(१) क्षीर (२) स्वरस (३) कल्क (४) शृतकषाय (क्वाथ) (५) शीतकषाय (६) चूर्ण।

‡ चरक मुनि का मत—चरक मुनि के मत में ५ प्रकार की कषाय कल्पना के नाम से औषधि कल्पना मुख्यतया होती है।

(१) स्वरस (२) कल्क (३) शृत (क्वाथ) (४) शीतकषाय (हिम) (५) फांट।

अन्य तंत्रकारों का मत—कुछ तंत्रकार दश प्रकार की औषधि कल्पना मानते हैं—

(१) रस (२) क्वाथ (३) हिम (४) फाण्ट (५) कल्क (६) चूर्ण (७) विवर्तिका (८) लेह (९) स्नेह (घृत, तेल) (१०) सन्धान। इस प्रकार महर्षि कश्यप के मत में सात, सुश्रुत मुनि के मत में ६, चरक मुनि के मत में ५ और अन्य किसी तन्त्रकार¶ के मत में दश प्रकार की औषधि कल्पना का उल्लेख आयुर्वेद में मिलता है।

इनमें से चरक मुनि का मत ही युक्ति युक्त होने से प्रचलित रहा है महर्षि भेल तथा मध्यकालीन आचार्य +वाग्भट तथा ×शार्गंधर आदि ने भी ५ प्रकार की ही कषाय कल्पना मानी है और यही मत आज तक प्रचलित है।

---

*……………… ……सप्तधैव विभज्यते।
चूर्णं शीतकषायश्च स्वरसोऽभिषवस्तथा।
फांटः कल्कस्तथा क्वाथो यथावत्तं नियोजयेत। (काश्यय संहिता)

†क्षीरं रसः कल्क मथोकषायः शृतश्च शीतश्च तथैव चूर्णम्।
कल्पाः षडेते खलु भेषजानां यथोत्तरं ते लघवः प्रदिष्टाः॥ (सुश्रुत सूत्र अ० ४४|६१)

‡पंचविधं कषाय कल्पनमिति तद्यथा—स्वरसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टः कषाय इति।
(चरक सूत्र अ० ४|८)

¶रसः क्वाथो हिमः फाण्टः कल्कश्चूर्णं विवर्तिका। लेहः स्नेहोऽथ सन्धानं दशैता द्रव्य कल्पना॥
(अष्टांगहृदय कल्प अ० ६|८ हेमाद्रि टीका)

+ १—पंचविधस्तु भेषजानां कषायकल्पः।
निर्यासः कल्को निर्दूहः शीतः फाण्टश्चै ते यथापूर्वं बलिनः। (अष्टांग संग्रहः पल्पः अ० ८)
२—रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्चेति प्रकल्पना।
पंचधैव कषायाणां पूर्वं पूर्वं बलाधिकाः॥ (अष्टांग हृदय कल्प अ० ६|८|६)

× ३—अकातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्चहिमफाण्टकौ।
रोगः कषायाः पंचते लघवः स्युर्यथोत्तरम् :॥ (शार्गंधर)

सामयिक विचार

नव्य आयुर्वेद का वाङ्मय

[लेखक—श्री जयचन्द्र विद्यालंकार]

हमारे आयुर्वेद ने अब तक जो पाश्चात्य आयुर्वेद से पछाड़ नहीं खाई उसका कारण केवल जनता का अन्धविश्वास नहीं है। जहाँ तक शरीर की रचना और उसकी भीतरी कार्य-प्रक्रियाओं का प्रश्न है, उस सम्बन्ध में यदि हमारा आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान दो विरोधी बातें कहते हैं तो दोनों ठीक नहीं हो सकतीं। उस अंश में भारतीय आयुर्वेद को निरर्थक समझा जायगा। किन्तु त्रिदोष-सिद्धान्त जैसी अनेक स्थापनाएँ उसमें ऐसी हैं जो व्यवहार में बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं और जिन्हें आधुनिक विज्ञान स्पष्ट गलत नहीं कह सकता। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से उनकी ठीक-ठीक व्याख्या के लिए बड़े परिश्रम और मनन की आवश्यकता है। दूसरे जिस अंश में भारतीय आयुर्वेद की स्थापनाएँ गलत सिद्ध हो भी चुकी है उस अंश में भी उनका ऐतिहासिक मूल्य बहुत ही ऊँचा है, और आज विज्ञान के अध्ययन में विज्ञान के इतिहास पर बहुत बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जहाँ औषधियों के गुण और प्रभाव का प्रश्न आता है, वहाँ भारतीय भाषाओं के ग्रन्थों में यदि हम युरोपी ग्रन्थों का अनुवादमात्र करके केवल युरोपी औषधियों का विवेचन करें तो यह अत्यन्त अनुपयुक्त होगा। यदि हम अपने ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय आयुर्वेद को उद्धृतमात्र करते हुए भारतीय औषधियों के भी गुण लिख दें तो उससे आधुनिक जिज्ञासा की शान्ति नहीं होगी, कारण कि हमारे पुरखों ने उनके गुण अपने साधारण तजरबे के आधार पर लिखे थे, आज का विज्ञान औषधियों के गुण सूक्ष्म यन्त्रों और परीक्षणों से निश्चित करता है, अतः प्राचीन आयुर्वेद के तजरबे को आधुनिक साधनों से जांचे बिना उद्धृत करने में आज सार्थकता नहीं है।

आयुर्वेद के अन्तर्गत आहारशास्त्र (डायटिक्स) आजकल अत्यन्त प्रिय विषय है। आधुनिक आहारशास्त्र में विभिन्न भोजनों के पुष्टितत्वों (विटामिन) और उत्तापमान (केलोरिक वैल्यू) का हिसाब दिया जाता है। पर उपलब्ध ग्रन्थों में जिन खाद्यों की ऐसी छानबीन मिलती है वे सब युरोपी खाने के हैं। भारतीय भोजन की इस ढंग की छानबीन ही अभी नहीं हुई, और जो हुई भी है उसका ग्रन्थों में संकलन नहीं हुआ। इस दशा में युरोपी भाषाओं के इस विषय के ग्रन्थों का सीधा अनुवाद भारतीय भाषाओं में करने से भारतीय पाठकों के किस काम आयगा।

इससे यह परिणाम निकला कि भारतीय भाषाओं में यदि हम नव्य आयुर्वेद का वाङ्मय उपस्थित करना चाहते हैं, तो हमें प्राचीन आयुर्वेद की ऐतिहासिक तहबन्दी सावधानी से करनी होगी, भारतीय औषधियों के गुणों और प्रभावों के लिए अनेक परीक्षणालय स्थापित करने होंगे, उन परीक्षणालयों के परिणामों को प्रामाणिक रूप से दर्ज करने की परिपाटी चलानी होगी, और विदेशों की इस विषय की ज्ञान-प्रगति के साथ अपनी ज्ञान-प्रगति का बराबर सामन्जस्य करना होगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ३७वें अधिवेशन के अध्यक्षपद से दिए गए भाषण का एक अंश

Good News For English Knowing Vaidyas.

"The Journal of Ayurveda" has been taken over by the All India Ayurvedic Congress as its mouth-piece. The English-knowing Vaidya-samaj is, therefore, requested to subscribe to this paper in order to know the policy of the Mahasammelan and to help the Mahasammelan in propagating Ayurveda and the point of view of the Mahasammelan.

The new year begins with the January issue and the subscription from Vaidyas is Rs. 7/8 per annum and from students Rs. 5/- per annum. Intending subscribers are requested to write for it to :—

The General Secretary, **All India Ayurvedic Congress,**
90/8, Connaught Circus, New Delhi.

अत्यन्त सस्ती ! अत्यन्त सस्ती !!

शीघ्रता कीजिए, ऐसा अवसर फिर न मिलेगा।

हमारा कार्यालय भारत-पाक की सीमा पर होने से हम अपनी कुछ औषधियों का अधिक स्टाक शीघ्र विक्रय करना चाहते हैं। इस आशय से, अपनी लागत मात्र पर, इन औषधियों को दे रहे हैं।

नोट : इन भावों पर २० तोला से कम कोई औषधि न भेजी जावेगी। कम मंगाने पर सूची-पत्र के भाव लिए जावेंगे। स्टाक कम होते ही इन भावों पर बिक्री बन्द कर दी जावेगी। हमारा १ सेर ८० तोला का है। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त।

गन्धक शुद्ध आंवलासार १०) सेर
अभ्रक बज्र भस्म (६० पुटी) ६०) सेर
३० पुटी ४६) ,,
कपर्दिका भस्म ८) ,,
कुक्कटाण्डत्वक १८) ,,
त्रिवंग भस्म ४८) ,,
अभ्रक श्वेत भस्म १४) ,,

कान्त लोह भस्म २८) सेर
कसीस भस्म १०) ,,
गोदन्ती ,, ३॥।) ,,
चन्द्र प्रभा वटी ३०) ,,
प्रवाल भस्म ४८) ,,
प्रवाल चन्द्रपुटी ४८) ,,
वंग भस्म श्वेत ३६) ,,
मण्डूर ,, २०) ,,
मुक्ता शुक्ती भस्म १०) ,,

योगराज गुग्गल १५) सेर
रस सिन्दूर ६०) ,,
लोह भस्म २४) ,,
शंख ,, ७) ,,
भृङ्गराज भस्म १४) ,,
स्वर्ण माक्षिक भस्म २८) सेर
स्वर्ण वंग नं० १ ६०) ,,
स्वर्ण सिन्दूर ३) ,,

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स नं० १, जी० टी० रोड, अमृतसर।

केरलाचार्य के मत से—

अपस्मार की चिकित्सा

(लेखक—वैद्यगुरु एम० आर० भट, पी० एच-डी० जैप्पु, मंगलोर)

अपस्मार की चिकित्सा को केरलाचार्य ने औषध, अन्न और विहार की दृष्टि से तीन भागों में तथा नक्षत्रों की दृष्टि से सात भागों में विभक्त किया है।

१ सूर्य (पित्तापस्मार)—इस अवस्था में यह आवश्यक है कि चिकित्साक्रम ६ मास तक जारी रहे तथा चिकित्सा रविवार से प्रारम्भ हो। अगस्त्य, यष्टिमधु और लशुन का आन्तरिक और बाह्य प्रयोग करें। स्वर्ण भस्म या स्वर्ण मात्तिक भस्म देने से लाभ होगा। सप्ताह में एक बार विरेचन के लिए ऐरण्ड तैल देना चाहिए। रोग यदि पुराना हो तो प्रातः चार से छः बजे के बीच शीतल वेग युक्त जल में स्नान करना चाहिए। कबूतर और तीतर का मांस लाभदायक है। आहार के लिए बकरी का दूध विशेषतया उत्तम है। प्रत्येक स्थान पर पीतवर्ण को देखने से लाभ होगा। चन्द्रकान्तमणि तथा मोती धारण करें। प्रातः ६-७ के समय वटवृक्ष की पूजा तथा महागणपति मंत्रोपासना करें। गरम और उत्तेजक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। कुछ समय के अन्तर से अल्प मात्रा में भोजन करें। क्रोध चिड़चिड़ापन और मैथुन वर्जित हैं।

२ चन्द्र (वात कफापस्मार)--इसमें रोग का आक्रमण अमावस्या, पूर्णिमा तथा अष्टमी के दिन, सूर्यास्त, सूर्योदय, दोपहर तथा अर्धरात्रि के समय होता है तथा अधिक समय तक रहता है। इसकी चिकित्सा नवचन्द्रोदय (द्वितीया) अथवा पूर्णिमा के दिन प्रारम्भ होनी आवश्यक है तथा इसकी चिकित्सा ६ दिन तक की जाननी चाहिए। आक्रमण के एक दिवसपूर्व यपुस्ट द्वारा वमन करावें। करंज, पिप्पली, नवसागर और निम्ब का आन्तरिक और बाह्य प्रयोग करें। गन्धक और रजत भस्म भी अत्युत्तम हैं। प्रातः १० से १२ के बीच में तीव्र प्रवाहयुक्त जल में १॥ घन्टा (३॥ घड़ी) तक स्नान तथा पीने के लिए प्रायः गुनगुना पानी का प्रयोग करें। नवौढ़ा युवतियों का संसर्ग, गायन, खेल और नृत्य, श्वेत अथवा गहरा गुलाबी रंग से लाभ होता है। दिन में सोना हानिकर है। आहार में प्याज और मिर्च का खुला प्रयोग करें। दुर्गोपासना तथा समी वृक्ष की पूजा करनी चाहिए।

३ कूजा (अति पित्तापस्मार)—इसकी चिकित्सा रविवार से प्रारम्भ होनी आवश्यक है जो सात सप्ताह तक चलनी चाहिए। ऐरण्ड तैल द्वारा विरेचन करावें। आहार तथा औषध में तिक्त और कषाय रसों का विशेष ध्यान रक्खा जाए। निम्ब, जीरा और हरीतिकी का आन्तरिक और बाह्य प्रयोग करें। मंडूर, लोह, कान्तलोह भस्म का गंधक के साथ प्रयुक्त करना उत्तम है। सूर्यास्त और सूर्योदय से पूर्व वेगयुक्त शीतल जल में स्नान, प्रिय सुखदायक संगियों के बीच

निवासें, भद्रकाली उपासना तथा अश्वत्थ पूजा से लाभ होता है। हल्का हरा रंग देखना फलप्रद है। गोदुग्ध और घृत, पंचामृत, और हल्का भोजन करें। खट्टी और उत्तेजक वस्तुओं एवं सूर्यताप से सर्वदा बचें। किसी गाड़ी में न बैठें। व्याकुलता, चिन्ता, क्रोध आदि मनोविकारों का त्याग करें और मैथुन से बचें।

४ बुध (सन्निपातापस्मार)—-चिकित्सा किसी रविवार से प्रारम्भ होकर २ मास तक चलनी चाहिए। प्रति पांच दिन में एक दिन उपवास अवश्य करें। मकरध्वज, पारद, सिन्दूर, ताम्र सिन्दूर अत्युत्तम हैं। पारद या कज्जली भी लाभप्रद है। प्रवाहहीन नमक के जल में स्नान, चित्र-विचित्र हलके रंग, सर्पदन्त का धारण, श्वेत वस्त्र तथा चतुर्दिक श्वेत रंग का प्रदर्शन, तथा तित्तर के मांस से लाभ होता है। कृष्णोपासना तथा विल्ववृक्ष की पूजा करें। सूर्य और अग्नि से बचना चाहिए।

५ गुरु (कफापस्मार)—–इसमें निम्ब वृक्ष की जड़ से वमन करावें। वंग भस्म, इन्द्र वारुनी, इन्द्रयव, अशोक, त्रिकटु और मधु इन औषधियों का प्रयोग करें। पलाशपूजा तथा परब्रह्मोपासना, हलके नीललोहित, बेंगनी तथा नारंगी रंगों का दर्शन, दोपहर को नमक के तीव्र प्रवाह युक्त जल में स्नान, मणि धारण चिकित्सा में लाभ करते हैं। प्रतिदिन सुदर्शन हवन करना चाहिए। कबूतर का मांस अत्युत्तम है। चिकित्सा किसी वीरवार से प्रारम्भ होकर एक माह तक चलनी चाहिए।

६ शुक्र (कफ़वातापस्मार)—यष्टि मधु से वस्तिक्रिया करें। ब्राह्मी, यष्टिमधु, आम्र औदुम्बर और त्रिकटु का प्रयोग अत्यन्त लाभदायक है ताम्र भस्म अत्युत्तम है। बकरी का दूध और घृत सेवन करें। भोजन में भात लें। अपराह्न में वेगयुक्त नमक के जल में स्नान, लक्ष्मी उपासना तथा शमी वृक्ष पूजा, सुवर्ण वर्ण, तथा मुक्ता धारण अत्यन्त लाभप्रद हैं। आघात, चिन्ता तथा दुर्घटनाओं से बचना चाहिए। चिकित्सा शुक्रवार से शुरू होकर एक पक्ष तक चलनी चाहिए।

७ शनि (वातापस्मार)—–नागकेसर, विडंग, अजमोदा और पंचलवणों का आन्तरिक और बाह्य प्रयोग करना चाहिए। लोह भस्म, नाग भस्म उत्तम हैं। भोजन में गेहूं, तिल तैल और गो घृत का सेवन करें। तीव्र प्रवाहयुक्त जल में प्रातः तथा अपराह्न में स्नान, हल्का नीलवर्ण तित्तर का मांस, प्रतिदिन नागोपासना, शिवपूजा तथा अश्वत्थपूजा से लाभ होता है। नीलम और हाथी की पूंछ के बाल धारण करने चाहिएं। आघात, अप्रियस्थान, अग्नि तथा निशाभ्रमण का त्याग करें। चिकित्सा शनिवार से प्रारम्भ होकर १ वर्ष पर्यन्त जारी रहने से पूर्ण लाभ होता है।

चिकित्सा का निचोड़—केरलाचार्य द्वारा प्रयुक्त अपस्मार की चिकित्सा की निम्न विशेषताएं हैं:—

१. मंत्रोपासना (मनन और ज्ञान के लिए)।

२. पूजा (शक्ति के लिए) ।
३. औषध और आहार ।
४. विहार (निश्चत काल में स्नान आदि) ।

केरलाचार्य ने विशेषकर नमक के जल से स्नान, वर्ण, माणिक्य, मोती का धारण और उपासना पर अधिक बल दिया है। नमक का जल तीव्र वेगयुक्त होना चाहिए, चिकित्सा एक विशेष दिवस से प्रारम्भ होकर निर्धारित समय में समाप्त हो, प्रायः सूर्योदय के समय पंच महाभूतों की परिक्रमा द्वारा पूजा, ध्यान मगनता जिससे एकाग्रता-प्रदायक प्रवृत्तियों पर रोग का आक्रमण एवं अधिकार शीघ्र न हो सके आदि चिकित्सा के महत्वपूर्ण अंग हैं।

इन के साथ-साथ यह आवश्यक है कि रोगी में विश्वास उत्पन्न किया जाए। किसी हानि रहित औषधि के प्रयोग से और इस घोषणा से कि रोग का आक्रमण अब होगा ही नहीं, रोगी के विश्वास में वृद्धि की जा सकती है। '*Suggestion*' की आरोग्य साध्यता पर केरलाचार्य ने अत्यधिक बल दिया है। इसके अतिरिक्त सफल चिकित्सा के लिए निम्न बातों का ध्यान भी रखना चाहिए:—

१. जिस गृह में रोग का प्रथम बार आक्रमण हुआ हो उसे बदल देना चाहिए।

२. रोगी को अप्रिय सम्बन्धियों के बीच में न रहने दिया जाये।

३. रोगी को कभी निराश न होने दें और उसकी मानसिक दशा का अध्ययन कर मनोवैज्ञानिक उपायों का प्रयोग करना चाहिए।

४. ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि रोगी सदा उत्साहित रहे साथ ही उसे रोग निवृति का विश्वास दिलाते रहना चाहिए। रोग के आक्रमण के सम्बन्ध में रोगी से कभी वार्तालप न करे।

५. रोगी में अनथक एकाग्रता की वृद्धि हो, ऐसा यत्न करना चाहिए।

६. वार्तालाप में चिकित्सक को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने कहे हुए शब्दों का खण्डन तो नहीं कर रहा।

केरलाचार्य ने हृस्व गंगा में स्नान को महत्वपूर्ण बताया है जिससे यह स्पष्ट है कि उन्होंने इस पर आधुनिक भौतिक विज्ञान तथा चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से भी विचार किया है। यह सर्व विदित ही है कि नमक के जल में स्नान करने से रक्त में उत्तेजना आ जाती है। वह प्रसारक का कार्य करते हैं अर्थात् शरीर के किसी भी भाग में रक्त का अधिक संचय नहीं होने देते। अपस्मार की कुछ अवस्थाएं या तो अधिक रक्त-संचय या रक्त-शून्यता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती हैं। ऐसी अवस्था में खारीपन द्विविधरूप से रोग प्रतिरोधक का कार्य करता है। प्रथम शरीरक्रम को स्फूर्ति प्रदान करता है, दूसरे मस्तिष्क में उत्तेजना करने वाले कारणों से रक्षा करता है।

हृस्वगंगा, जिसमें केरलाचार्य ने स्नान करने की सिफारिश की है, कम गहरी तथा तीव्रवेग युक्त होती है। इस की इन दो विशेषताओं पर यदि हम उचित विचार करें, तो चिकित्सा की दृष्टि से इन्हें अत्यधिक मूलयवान पाएंगे। इसकी लहरों के वेग (यद्यपि यह सम्भव है वह इतनी तीव्र न हो) की समता विद्युत की अति वेगयुक्त धारा (जैसा कि Voilet Ray

System के विभिन्न बिजली के तार के छोरों electrods में प्रयुक्त होती है) से कर सकते हैं। स्नान करने वाले व्यक्ति को लहरों द्वारा प्रतिक्षण जो आघात प्राप्त होंगे वह, भिन्न-भिन्न अंशों में वेगयुक्त जल-प्रवाह की चिकित्सोपयोगिता को समझने की इच्छा करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए, एक मनोरंजक तथा शिक्षात्मक अध्ययन का विषय बन सकते हैं। यह क्रिया जिसे प्राकृतिक चिकित्सकों ने ओषजन-मय या (Oxegenation) वायुमय (Airation) करना कहा है, कोचीन राज्य की ह्रस्व गंगा में प्राकृतिक रूप से प्रतिक्षण ही होती रहती है। इसके अतिरिक्त इसके दोनों किनारों पर उगने वाली मूल्यवान औषधियों का प्रभाव भी इसकी धारा में मिश्रित होता रहता है।

अब हम केरलाचार्य द्वारा प्रतिपादित वर्ण, रत्न तथा मंत्रों द्वारा अपस्मार की चिकित्सा पर विचार करते हैं। सम्भव है ऐसे व्यक्ति जो ईश्वर को अज्ञेय समझते हैं, इसे केवल कल्पना की ही वस्तु समझते हों किन्तु उन्हें अपनी इस धारणा के आधार का स्पष्टीकरण तो करना ही होगा। क्या केवल युक्ति और विज्ञान के द्वारा ही मानवीय जीवन से सम्बन्धित सभी तथ्यों का निर्णय किया जाता है अथवा किया जा सकता है? मानवीय जीवन के विपुल अनुभवों और उनमें से कुछ में प्राप्त विरोधों ने उन सर्वोत्तम वैज्ञानिकों की भी आंखें खोल दी हैं, जो पदार्थ विज्ञान में एकता के केन्द्र (Centre of Harmony) की खोज करते करते, इच्छा अथवा अनिच्छा पूर्वक, अध्यात्मवादी एवं मनोवैज्ञानिक हो उठे हैं। ऐसी अवस्था में वर्ण, मंत्र, रत्न और धातु के विरुद्ध विवेकशून्यता का दोषारोपण उचितरूप से नहीं किया जा सकता। मानवीय अनुभव में यह आया है कि पदार्थ में न केवल भौतिक और रासायनिक गुण विद्यमान होते हैं बल्कि इसमें आकर्षक गुण भी होते हैं। प्रथम को यदि भौतिक तथा रासायनिक विधियों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है तो दूसरे को सजातीय वस्तुओं द्वारा उत्पन्न प्रभाव से समझा जा सकता है।

सर ओलिवर-लॉज जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक के हृदय में विभिन्न भौतिक तथा रासायनिक घटना-चक्रों में ऐक्य का ज्ञान प्राप्त करने की यही चाह विद्यमान थी जिसने उन्हें अध्यात्मवादी बना दिया। और आज भी सर सी० वी० रमन और प्रोफेसर शाह जैसे साहसी वैज्ञानिकों का यह कथन है कि भौतिकी तथा रसायन शास्त्र का स्पष्टीकरण हमें आपसे आप ही अध्यात्मवाद की ओर ले जाता है। पूर्वीय देशों के लिए यह कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है।

यह एक अति प्राचीन सत्य है, कि यह विश्व विभिन्न अंशों में स्पन्दित (Viberation) लौकिक शक्ति का केवल एक प्रत्यक्षरूप ही है और इसमें जो विभिन्नता या विषमता दृष्टिगोचर होती है, वह भी उसी शक्ति के विभिन्नांशों में स्पन्दन के प्रकार ही हैं (प्रतिप्रत्तिगुण वैशेषाद्वैषम्यं)। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय के स्थायी विस्तार क्षेत्र (Range) में भिन्नता है और विभिन्न इन्द्रियों के विस्तार क्षेत्र की सीमाओं द्वारा हमें जो उपलब्धि होती है वही इस (Perception) के ज्ञान का अर्थ है। नेत्र द्वारा चित्र और वर्ण, कान द्वारा शब्द, नासिका द्वारा घ्राण इत्यादि स्पन्दनों का ग्रहण किया जाता है। लन्दन के डा० सी० जी० सेन्डर डी० एस-सी० का कथन

है कि "एक साधारण और स्वस्थ तथा निश्चित और सन्तुलित अवस्था के व्यक्ति के मानसिक स्पन्दन अति महत्वपूर्ण होते हैं........। (असाधारण अवस्था में होने पर) शरीर के मानसिक स्पन्दनों, अस्थियों, नाड़ियों अथवा इन्द्रियों की रचना तथा कार्यको बदल सकते हैं और इस प्रकार उपचेतन मस्तिष्क को अपनी जीवनदायिनी तथा रोग निवारक शक्ति के उपयोग का उपयुक्त अवसर प्रदान करते हैं।"*

डा० अब्राम (सान फ्रांसिसको) ने तो रोग मापक (रोग को रिकार्ड करने वाले) एक यंत्र की खोज की है, जो न केवल प्रत्येक रोग के स्पन्दन-प्रभाव को ही रिकार्ड करता है, बल्कि रोग की दूषित रेडियो-क्रिया (Radio activity) को परिवर्तित अथवा नष्ट कर रोग का निवारण भी करता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह सिद्ध होता कि विस्तृत क्षेत्र (Vast range), स्पन्दन का सिद्धान्त—जो आयुर्वेद का आधार है स्वास्थ्य और रोग सम्बन्धी समस्याओं पर अपना प्रभाव रखता है। वर्ण-स्पन्दन, शब्द-स्पन्दन चिकित्सा-विज्ञान से बाहर की वस्तुएं नहीं हैं। क्यों? भारत में शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक कार्यों में वैदिककाल से इनका प्रयोग होता रहा है। यंत्र और तंत्र, जो क्रमशः शब्द और आकृति विज्ञान हैं, ने सर जान वुडरॉफ जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति को भी प्रभावित किया जिन्होंने मंत्र को उस शक्ति का लौकिक स्पन्दन कहा है जिसे एक ऋषि के पवित्र और पूर्ण श्रोत्रों द्वारा ग्रहण किया गया और शिष्य के सम्बन्धित श्रोत्रों को प्रदान किया गया।

इस लिए मंत्र न केवल सत्य है बल्कि बाह्य भौतिक पदार्थों से, जो स्वयं विश्व पुरुष (जो सम्पूर्ण सृष्टि में एकमात्र वास्तविक विचारक है) के रचनात्मक विचारों की सृष्टि है, कहीं अधिक सत्य है। मंत्र शब्द-ब्रह्म का प्रगट रूप है, ऐसा सर जान वुडरॉफ का कथन है।

सजातीय वस्तुओं में जो स्पन्दन विद्यमान रहता है उसकी कौन-सी शक्ति का मानव अर्थशास्त्र में प्रयोग किया जा सकता है, इस समस्या पर केवल पिछले तीस वर्षों से पाश्चात्यों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। मूल्यवान रत्नों के प्रभाव को पाश्चात्यों ने स्वीकार किया है।

सौर शक्ति, जिसे युगों पूर्व जीवन की एकता का केन्द्र (Centre of Life's Harmony) माना जा चुका है, आज केवल प्राकृतिक चिकिस्तकों द्वारा रोग निवारण में प्रयुक्त की जाती है। रोग निवारक के रूप में वर्ण और उसकी रेडियो-क्रियां शक्ति Radio-active power क्रोमोपैथी (chromo pathy) के नाम से प्रायः एक विज्ञान का रूप धारण करते जा रहे हैं। डिसडेल स्टाकर तथा सैन्डर जैसे डाक्टरों ने इस विचारधारा की एकनिष्ठ सेवा की है।

---

*"The vital are psychic vibration of the normal and healthy human being of a definite and even rate.. ....(when abnormal) they can alter the psychic vibrations of the body, change the structure of the organs, tissues, nerves or bones, alter functions and thereby often give the sub-conscious mind a better chance to exercise its restorative powers and to heal diseases."—Dr. C.G. Sander.

जल, सूर्य और वायु को पूर्णरूपेण अथवा इनके पृथक्-पृथक् घटक तत्वों का पदार्थ विज्ञान वेत्ताओं की सेवार्थ अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा है। किन्तु ऋग्वेद में जल को समस्त व्याधियों का परिहारक बताया गाया है जिससे शरीर के लिए औषधियों की आवश्यकता नहीं रहती। ऋग्वेद में यह भी कहा है, "सूर्य ने यह ज्ञान दिया है कि समस्त औषधियाँ और अग्नि जो विश्व की उपकारक हैं, जल में विद्यमान हैं। जल में आरोग्यतादायक सभी औषधियाँ हैं।"

रसन-क्रिया (Transpiration) के दौरान में वृक्षों द्वारा ऐसे वाष्पकणों (Vapours) का प्रक्षेप होता है, जिनकी यदि उनकी चिकित्सोपयोगिता का परिचय हो, तो सीधे ही प्रयोग किया जाए तो उनका रोग हर प्रभाव होता है। इस दशा में पाश्चात्य विद्वान् अब खोज कर रहे हैं। उनमें से कुछ का यह भी कथन है कि प्रत्येक वृक्ष का एक आकर्षण क्षेत्र भी होता है, जिनके विस्तार तथा गुणों में वृक्ष की जाति, अवस्था, आयु तथा उत्पत्ति-स्थान के अनुसार विभिन्नता होती है। इस सिद्धांत का अध्ययन अभी विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ही है। तब क्या भारतीयों के लिये यह सोचना केवल एक अन्धविश्वास ही होगा कि अश्वत्थ, पलाश, शमी, बिल्व, वट और औदुम्बर आदि वृक्षों में निश्चित दिनों तथा काल में विशिष्ट गुण विद्यमान रहते हैं?

विगत दो शताब्दियों में पश्चिम ने विज्ञान सम्बन्धी जो ज्ञान प्राप्त किया है यद्यपि वह अपने रूप में सुन्दर है, किन्तु क्या उसके आधार पर यह न्यायसंगत होगा कि हम युग-पुरातन मानवीय अनुभवों का मूल्यांकण करें और अन्धविश्वास कह कर उनका त्याग करदें अथवा यह अधिक वैज्ञानिक होगा कि धूमिल अतीत के उन अनुभवों को भक्ति की भावना (भले ही उसमें अज्ञेयवाद की भावना का मिश्रण हो) से समझाने का यत्न करें और नक्षत्र देश, काल, क्षेत्र, स्थान, वर्ण, संस्थाओं तथा समीपस्थ वायुमण्डल का निर्माण करने वाली सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में युगों से प्रतिपादित सत्य को देखें। वैद्यक शास्त्र को केवल भौतिक विज्ञान, विकृति-विज्ञान, निघण्टु और औषधि आदि तक ही सीमित समझना और इस आधारभूत सत्य की उपेक्षा करना कि इनसे संयुक्त व्यक्ति, स्पन्दन की क्रीड़ा मात्र से उत्पन्न, रक्षित, घटित अथवा विघटित इस विश्व की विपुलता में केवल एक सूक्ष्म बिन्दु मात्र है, जीवन के केन्द्रीय सत्य के साथ खिलवाड़ करना है।

मनुष्य की घटक शक्तियों के पूर्ण ज्ञान के बिना उसकी चिकित्सा करना असम्भव है। इसलिए भारतीय चिकित्सा विज्ञान 'आयुर्वेद' समस्त प्रणालियों का (जिनका पश्चिम में अभी उदय ही हो रहा है). सरताज है। यह शानदार नाम लिए हुए किसी एकांगी कला का ज्ञान नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण जीवन का ज्ञान है।

दन्तरोग विज्ञान

पायरिया की सफल चिकित्सा

(लेखक—दन्त वैद्य श्री किशोरदास भागीरथ गुप्त, १०२, फणसवाड़ी स्ट्रीट, वम्बई)

(फरवरी अंक से आगे)

दोष विचार

पायरिया (शीताद रोग) के उत्पत्तिकारक दोष—कफ-रक्त (पित्त) के विचार के साथ ही साथ "सक्रष्णानि" इस लक्षण द्वारा निर्दिष्ठ सांसर्गिक वात दोष का भी विचार करना ज़रूरी है। निदान समय ऐसा जो सुझाव किया गया है उसकी पुष्टि चिकित्सा के लिये प्रतिपादित "तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे संप्रशस्यते" इस वचन से स्पष्ट होती है। अतएव सांसर्गिक वात दोष व तज्जनित उपद्रवरूप "दंतशर्करा" रोग की चिकित्सा करना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है, क्योंकि उसकी प्रारंभिक जमावट का स्थान दांत और मसूड़े की संधि वाली जगह है। किन्तु शीताद रोग जनित व्रण के कारण जब मसूड़े दांत से पृथक् हो जाते हैं। तब दंतशर्करा की जमावट दांतों के मूल की तरफ, पृथक् हुये हुये मसूड़े और दांत के बीच वाले भाग में, हो जाती है। इसलिये व्रणरोपण चिकित्सा से प्रथम उसका वहां से छुड़ाना भी आवश्यक है। इसी लिये कपालिका (दंतशर्करा की बढ़ी हुई स्थिति) नाशक "लाक्षादि तैल" शीताद रोग व तज्जनित व्रणादि के लिए अत्यन्त उपयोगी बतलाया गया है। इस प्रकार परिस्थिति अनुसार मसूड़ों को हटाकर "अहिंसन्-अच्छिद्यन् दन्तमूलानि" दंतशर्करा को निकाल (उखेड़) डालना व वातशामक उपचार करना भी परमावश्यक है।

दूष्य विचार—पायरिया-रोग में दोष दृष्टि से गौण वात दोष की चिकित्सा करना जिस प्रकार परमावश्यक है ठीक उसी प्रकार दूष्यादि में मांसरक्त इन दोनों ही धातु के सारासारत्व के विचार के साथ साथ शुक्रधातु के सारासारत्व का सूक्ष्म विचार करना भी परमावश्यक कर्तव्य हो जाता है। क्योंकि इस धातु का प्रभाव, दांत स्वयं की बनावट और रचना, दोनों पर ही हुआ करता है। यथा—"स्निग्धसंहतश्वेतास्थिदन्तनखं" (सु. सू. अ. ३५।१६) "स्निग्धवृत्तसारसमसंहतशिखरदशनाः"—शुक्रसार (च. वि. अ. ८।१०९) इतना नहीं अपितु शुक्र स्वयं बीजरूप धातु होने से सब ही धातुओं की जननी है। इसलिये मांस-रक्तादि की क्षीणावस्था में उनकी उत्पत्ति और बलवृद्धि के लिये इसका पर्याप्त बलबान् सारवान् होना ज़रूरी है।

अन्तर्राष्ट्रीय समिति द्वारा स्वीकृत पायरिया के पांच कारणों में "वृद्धावस्था" को भी एक माना है। यद्यपि हम अपनी आयुर्वेदीय दृष्टि से वृद्धावस्था को उसकी उत्पत्ति का कारण नहीं करार देते तो भी, रोगोत्पत्ति के लिये सानुकूल भूमिका तैयार करने का एक साधन तो अवश्य स्वीकार करते हैं। ऐसी अवस्था में वृद्धावस्था—जरा के उपायों में शुक्रवृद्धिकर-वृष्य-औषधियों के सेवन की नितान्त आवश्यक्ता रहा करती है। अतएव पायरिया रोगग्रस्त व्यक्ति यदि शुक्र असार या

शुक्रक्षीण हुआ तो, उसकी वह अवस्था रोग निर्मूल करने वाली चिकित्सा निर्माण करने वाली सिद्ध होगी। एतदर्थ मांस रक्त दुष्टि नाशक औषध प्रयोग के साथ साथ आवश्यक्तानुसार सुवर्ण राजवंगेश्वर, वसंतकुसुमाकर आदि वृष्यौषधियों का उसको सेवन करवाना भी परमावश्यक कर्तव्य बन जाता है। सारांश कि किसी भी रोग की सफल चिकित्सा के लिये दूष्यादि का विचार करते समय शुक्र धातु जैसी सार्वदैहिक संबंध रखने वाली धातु के सारासारत्व का विचार किये बिना, जब हम अपने लक्ष सिद्धि की प्राप्ति नहीं कर सकते, तब शुक्र धातु से संबंधित दंत रचनागत पायरिया की चिकित्सा में सफल होना कैसे संभव हो सकता है ?

चरकाचार्य द्वारा सूचित मुख रोगों की सामान्य चिकित्सा का विशेष व रोगानुसार स्पष्टीकरण सुश्रुत संहिता में उपलब्ध होता है। उसमें सुश्रुताचार्य ने शीताद और दंतवेष्ठ दोनों ही रोगगत दुष्ट-रक्त की शुद्धि के लिये रक्तस्रुति की जिस प्रकार भार पूर्वक आज्ञा दी है, ठीक उसी प्रकार मांस-दुष्टी के निवारणार्थ वैसे ही उर्ध्वजगत भागों में से कफ दोष के संशोधनार्थ नस्य या नावन कर्म की भी परमावश्यक्ता बतलाई है। इतना ही नहीं, अपितु दंतमांस गत प्रायः सब ही रोगों में पृथक् पृथक् निदानगत अवस्थानुसार औषधियों से सिद्ध नस्य के प्रयोगों की सूचना भी दी है। इसलिये शीताद और दंतवेष्ठ दोनों को अन्य चिकित्साओं के साथ "नस्य या नावन" कर्म का किया जाना भी ज़रूरी है।

दोषों के संशोधन की दृष्टि से रक्तस्रुति और नस्य कर्म की आज्ञा तो शीताद और दंतवेष्ठ दोनों में दी गई है ही, किन्तु प्राधान्य दोष कफके प्रकोप की प्रबलता जब अधिक होती है तब गण्डूषादि द्वारा लाला के प्रसेक—संशोधन से मुखगत-स्थानिक-दोष की जो कमी होती है वह, और नस्य कर्म के द्वारा गर्दन के ऊपरी भागों में से दोष का विरेचन होकर होने वाली कमी वे दोनों ही मिलकर उसके प्रकोप के प्रमाण में जब अपर्याप्त होती हैं तब वमन विरेचन द्वारा भी दोषों को संशोधित करने की आवश्यक्ता प्रतीत होती है।

"उपकुश" जैसे "पित्तरक्त" जनित रोग में "परिदर" रोग के कारणरूप "पित्तरक्तकफ" दोषों में से कफ दोष का प्रकोप जहां गौणरूप वाला रहता है वहां भी जब, वमन विरेचन कराने की स्पष्ट आज्ञा है और जब परिदर की चिकित्सा शीताद के ही तुल्य करने का स्पष्टीकरण शास्त्र में उपलब्ध है" क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तं विचक्षणः। संशोध्योभयतः कार्यं शिरश्चोपकुशे तथा" ॥ (सु. चि.)। तब तो शीताद में भी दोष प्रकोप को प्रबलता के कारण या रुग्ण-प्रकृति का विचार कर हमें संशोधन या पंचकर्म-चिकित्सागत※ प्रायः सबही प्रधान प्रधान कर्मों का एक अथवा दूसरी रीति से आश्रय लेना स्वाभाविक हो जाता है व इस चिकित्सा का स्वरूप तो सार्वदैहिक है। इस प्रकार संबंधित दोष संशोधन की दृष्टि से और संबंधित धातुओं के बल की वृद्धि के लिये सार्वदैहिक चिकित्सा की परमावश्यकता स्वयं ही सिद्ध हो जाती है।

※हमारा वैद्य समाज पंचकर्म जैसी महान उपकारक संशोधीय चिकित्सा करने से भय खाता है। इसलिये बंबई जैसे शहर में तीन रोगियों के लिये और भावनगर (सौराष्ट्र) में ग्यारह रोगियों के लिये रहने खाने की सुविधा कर १४ रोगियों पर विधिवत् पंचकर्म चिकित्सा करने में दोनों ही समय हमें उनके घोर विरोध का सामना करना पड़ा। किंतु आशातीत परिणामों में एक ब्राह्मण युवति का जीवन नष्ट होने से बचाया गया।

बुढ़ापा कब और कैसे ?

लेखकः—कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य "अमृतधारा" देहरादून

सुश्रुत में भगवान धन्वन्तरि का वचन है

चतस्रो अवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्योवनं संपूर्णता किञ्चत्परिहाणिश्चे ति
आशोडशाद्वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः
सम्पूर्णता ततः किञ्चित्परिहाणिश्चे ति ॥

ऋषि दयानन्द ने अपनी पुस्तकों में इस वाक्य को उद्धृत किया है अर्थात् वह भी इसको मानते मालूम होते हैं कि ४० वर्ष की आयु के पश्चात् किञ्चित परिहाणि आरम्भ हो जाती है । परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह साधारणतया ठीक हो, पर सर्वथा मान्य नहीं है । यदि ऐसा होता तो आदित्य ब्रह्मचारी को ४८ वर्ष की आयु में विवाह करने की कैसे आज्ञा होती । बात यह है कि साधारण मनुष्य जिन के विवाह भी २४ वर्ष तक हो जाते हैं उनको ४० वर्ष के पश्चात् परिहाणि प्रतीत हो सकती है । परन्तु किञ्चित शब्द साथ लगाने से इतना स्पष्ट हो गया कि नाममात्र को परिहाणि होती है । एक व्यक्ति पहाड़ की चोटी पर चढ़ता है वहां पहुँच कर वह शीघ्र ही किसी ओर से नीचे उतरना आरम्भ कर देता है । दूसरा व्यक्ति ऊपर-ऊपर ही चोटियों पर भ्रमण करता है । ऐसे ही कई मनुष्य तो ४० वर्ष तक युवा अवस्था की चोटी पर पहुँच कर नीचे को भागना आरम्भ कर देते हैं परन्तु ऐसे भी हैं जो इस युवा अवस्था का चिरकाल तक आनन्द लेते हैं। इसी वास्ते वेदों में अनेक प्रार्थनाएं हैं कि १०० वर्ष तक हमारे सह अंग बलवान रहें, स्वस्थ रहें और यदि १०० वर्ष से अधिक भी जीवित रहें तो ऐसे ही जीवें । वैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि आयु के विचार से चाहे किसी को वृद्ध कहें वैसे वृद्धावस्था का कोई कारण नहीं है । हमारे शरीर से प्रमाणु हर समय निकलते और नये प्रमाणु आते रहते हैं । ३ वर्ष में समस्त शरीर हमारा नया होता है फिर बुढ़ापा कहां से आता है । वह कहते हैं, अधिकतर तो इसका कारण हमारे मन के विचार हैं । हम हमेशा यही सोचते रहते हैं कि बूढ़ा और कमज़ोर होना अनिवार्य है । हम दृढ़ विश्वास इस बात का करते नहीं कि हम सदा युवा भी रह सकते हैं । दूसरा कारण हमारे आहार विहार के दोष हैं । हम स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना आवश्यक नहीं समझते हैं । मन पर हमारा काबू नहीं होता यह चंचल मन जिधर ले जाता है उधर हम जाते हैं और रोगी होते हैं । हमारे शरीर में कई विष उत्पन्न हो जाते हैं जो कि हमारी शक्तियों को क्षीण करते जाते हैं । आजकल ४० वर्ष तो दूर रहे इससे बहुत पहिले परिहाणि आरम्भ हो जाती है और पचीस, तीस, पैंतीस वर्ष के ही वृद्ध हमको दिखाई देते हैं, और ऐसे भी तो हम में ही हैं जो ६०-७० वर्ष के युवा दिखाई देते हैं और वह अपने को युवा ही अनुभव भी करते हैं और सब कार्य युवकों की

तरह कर सकते हैं, किञ्चित अंतर हो भी जावे तब भी वृद्ध तो उनको नहीं कह सकते हैं। अंग्रेज़ीमें किसी मनुष्य को पूछा जावे कि तुम्हारी आयु क्या है। तो उस का उत्तर इस प्रकार होतर है I am thirty years old मैं तीस (या जितने भी हों) वर्ष ओल्ड हूँ। ओल्ड के अर्थ पुराने या वृद्ध के हैं। कई डाक्टरों ने इसको बुरा कहा है वह कहते हैं कि कहना चाहिये I am thrity years young. कि मैं ३७ वर्ष का युवक हूं। एक डाक्टर ६० वर्ष की आयु में यही कहा करता था कि मैं ६० वर्ष का युवक हूँ। ऊपर लिखित भूमिका से आप को पता लग जाना चाहिये कि वृद्धावस्था किसी आयु का नाम नहीं है प्रत्युत यह शारीरिक अवस्था का नाम है। जिन को स्वास्थ्य प्यारा है उनको अपनी मन की अवस्था ऐसी बनानी चाहिये कि मैं किसी आयु में भी इस अवस्था को नहीं पहुंचूंगा। यह बात असम्भव नहीं है यदि आरम्भ से ही बालक स्वास्थ्य के नियमों को सीख जावें और उनपर चलें तो वह आजीवन स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं और युवा रह सकते हैं। पूरी सावधानी न हुई, त्रुटियां होती रहीं तो भी जब से स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने लगे और मन की अवस्था को ठीक किया, उसी समय से शारीरिक उन्नति आरम्भ हो जावेगी और दिन प्रति दिन नीचे गिरता हुआ मनुष्य फिर ऊंचा उठता जाएगा। इसी वास्ते तो भगवान कृष्ण कहते हैं।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्माहि आत्मनो बंधुः आत्मैव रिपु आत्मनः।

ऐसी ही अवस्था का नाम सदा जवानी है और इसके उदाहरण भी मिलते हैं।

भीष्म पितामह जब महाभारत में युद्ध कर रहे थे और कोई भी योधा उनका सामना न कर सकता था, उस समय उनकी आयु का अनुमान १७९ वर्ष अनुसंधान करने वालों ने लगाया है। ऋषि दयानन्द को यदि विष बार-बार न दिया जाता तो उन की अवस्था में कोई अंतर नहीं हो सकता था। ५८ वर्ष की आयु तक वह जवानों से भी जवान थे। परन्तु प्रश्न तो यह है कि स्वास्थ्य रक्षा के नियम कौनसे हैं जिनपर चलकर बुढ़ापे को दूर रखा जा सकता है। नियम ऐसे होने चाहियें जिन पर सर्व-साधारण चल सकें। सूक्ष्म बातें पढ़ सुन कर तो दिमाग चकरा जाता है। निम्नलिखित चार नियम तो सदा ध्यान में रखने चाहियें।

१. ब्रह्मचर्य का पालन
२. व्यायाम।
३. सादा भोजन मन की प्रसन्नता से चबा-चबा कर खाना।
४. मानसिक शक्ति का प्रयोग।

स्वर्गीय श्री गंगाधर शास्त्री गुणे

(जीवन-झांकी)

आयुर्वेदशास्त्रकी आमरणान्त अविरत सेवा करने वाला एक महान् कर्मयोगी गत २० फरवरी को इस देश से चल बसा! पूना के बी. जे. मेडिकल कालेज के सुशिक्षित प्रोफेसर वर्ग, सुबुद्ध विद्यार्थी एवं शहर के प्रसिद्ध डाक्टर वर्ग के विज्ञानार्थं आयुर्वेदीय चिकित्सा के मूलगामी सिद्धान्तों का शास्त्रीय विवरण तथा श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करने के उद्देश्य से प्रतिदिन एक ऐसे बारह व्याख्यान देने की योजना बंबई सरकार द्वारा बनाई गयी थी तथा वैद्य पंचानन गुणेजी की उस कार्य के लिये नियुक्ति की गई थी। अतएव शास्त्री जी पूना पधारे थे। ता० १९ फरवरी को उनका तीसरा व्याख्यान होकर रात्रि ओ वे निद्रावश हुए। वही उनको अंतिम योगनिद्रा हुई। शास्त्रीजी का देहावसान एक रणांगण पर वीर के समान हुआ। आमरणांत शास्त्र सेवा करने वाले व्यक्ति को इस प्रकार कर्मयोग का आचरण करते हुए मृत्यु आना इससे अधिक कौनसी लालसा हो सकती है? ईश्वर उनके दिवंगत आत्मा को पूर्ण शांति देवे।

शास्त्री जी का जन्म कोल्हापुर संस्थान के आश्वी नगर में सन् १८८२ साल में हुआ। अंग्रेज़ी पांचवीं कक्षा तक अध्ययन करने के पश्चात् १८९७ में उन्हें प्लेग के फैलाव के कारण कोल्हापुर छोड़ना पड़ा। सन् १८९० से १९०४ तक उन्होंने पूना में रहकर वै. रंगनाथ शास्त्री वाकणकर जी के पास आयुर्वेद का संपूर्ण अध्ययन किया। १९०६ में अहमदनगर आकर वैद्य व्यवसाय को प्रारंभ किया। सन् १९१९ साल में उन्होंने डा० सप्तर्षि तथा स्वर्गस्थ माकण चंद मुथा के सहयोग से अहमदनगर में एक आयुर्वेद विद्यालय स्थापित किया। उसी वर्ष इसी संस्था से संबद्ध एक धर्मार्थ आयुर्वेद चिकित्सालय भी प्रारम्भ किया। लगभग उसी समय आप पर 'भिषग्विलास' मासिक के संपादकत्व का कार्य भार आ पड़ा ज़िसे आपने बड़ी ही प्रतिष्ठा एवं विद्वत्ता के साथ आमरणांत लगभग ३३ वर्ष चलाया। आपके स्थापन किये हुए विद्यालय से लगभग ५०० विद्यार्थी आजतक परीक्षोत्तीर्ण हो चुके हैं जो महाराष्ट्र तथा मध्य प्रान्त में एवं कर्नाटक में सफलतापूर्वक चिकित्सा कर रहे हैं। आपके विद्यालय को बंबई सरकार से ग्रांट भी मिलती है तथा विद्यालय में शवविच्छेद तथा शल्यतंत्र प्रसूतितंत्रादि के प्रात्यक्षिक शिक्षण की भी सर्व व्यवस्था है। शास्त्रीजी मिश्रशिक्षण के चाहने वाले थे अतः इस विद्यालय से उत्तीर्ण विद्यार्थी भी मिश्र चिकित्सा करने वाले होते हैं।

शास्त्री जी ने १९३८ साल के निखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन का अध्यक्ष स्थान मण्डित किया था। आपका आयुर्वेद के साथ ही योगशास्त्र, होमियोपैथी, बायोकेमिक पद्धति तथा ऐलोपैथिक ग्रंथों का भी पर्याप्त अध्ययन हुआ था। अतएव आपके लिखे हुए औषधि गुण धर्म शास्त्र ग्रंथ में इन सब शास्त्रों की छटा तथा समन्वय दिखाई देता है। 'आपको लेखन कार्य का बड़ा शौक था। अतएव आपने अनेक ग्रंथ लिखे हैं, चिकित्सा प्रबोध नाम का

ग्रंथ लिखने का उन्होंने थोड़े ही दिन पूर्व प्रारम्भ किया था। दुःखका विषय है कि उसको पूरा करने के पूर्व ही उन्हें संसार से चल देना पड़ा। हमें आशा है कि उनका यह अधूरा कार्य कोई उनका योग्य शिष्य अवश्य पूरा करेगा।

आप अनेक सम्मेलनों में उपस्थित होकर अपनी विचार धारा का प्रचार करते रहे। काशी के त्रिदोष तथा पंच महाभूत परिषद में आपने एतद् विषयक मत प्रदर्शित किये थे।

१९२८ साल में मंगलोर में कर्नाटक प्रांतीय वैद्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। उसके आप सभापति नियुक्त हुए थे। उस समय का आपका भाषण आपने तत्पश्चात् "An Introduction to Ayurveda or the fundamentals of Bio-phsycophathy. इस नाम से पुस्तक रूप में प्रसिद्ध किया है।

१९३८ साल में चालीस गाँव में जो महाराष्ट्र प्रान्तिक वैद्यसम्मेलन का अधिवेशन हुआ उसके भी आप अध्यक्ष थे।

आपने अहमदनगर में 'आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी' नाम की एक महान् औषधिशाला एक लाख रुपया की प्रायवेट लिमिटेड कम्पनी के रूप में लगभग १९२९ में प्रारम्भ की। पश्चात् यही कम्पनी पाँच लाख रुपया की पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में परिणत हुई। आज इस कारखाने की बिक्री सारे हिन्दुस्थान देश में विशेष प्रमाण में हो रही है।

बम्बई सरकार ने आयुर्वेद विषयक जाँच के लिए 'योधसमिति' मुकर्रर की थी उसके आप सभासद् थे, तथा इस कमेटी के कार्य के लिए अन्य सभासदों के साथ आपने सारे हिन्दुस्थान के आयुर्वेदीय संस्थाओं का परीक्षण किया। आप बम्बई प्रांतीय आयुर्वेदीय बोर्ड के सभासद थे।

प्रातःकाल ४ बजे नियत रूप से उठ कर वे पाठांतर तथा लेखन लगभग ३ घण्टे किया करते थे। स्नान, संध्या, नियमित व्यायाम तथा योगासन उनका नित्य कर्म होता था। ईश्वर ने उन्हें धन, यश, पुत्रपौत्रादि सब दिये थे तथा वे एक यशस्वी चिकित्सक थे।

श्री वैद्य भि० वि० डेग्वेकर (जबलपुर) के सौजन्य से

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन
मतदाता-सूची

प्रकाशित हो चुकी है जिसमें १५०० से भी अधिक वैद्यों के नाम पते सहित संग्रहीत हैं। औषध-विक्रेताओं के विशेष काम की चीज़ है। १) रु० भेजकर शीघ्र प्राप्त कर लें।

साहित्यसत्कार

[समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ आनी आवश्यक हैं]

सरल चिकित्सा विज्ञान--लेखक—आयुर्वेदीय विश्व कोषकार, श्री रामजीत सिंह वैद्य तथा हकीम । प्रकाशक–अध्यक्ष, आयुर्वेदीय अनुसंधान भवन, लोअर टाइन, चुनार (रायपुरी), मिर्जापुर। साईज ६ × ७, पृष्ठ संख्या २६४, मूल्य ७॥)

इस ग्रन्थ में अकारादि क्रम से प्रत्येक रोगों का वर्णन है। आयुर्वेद यूनानी व डाक्टरी चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगों के पर्याय, व्युत्पत्ति, निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण तथा चिकित्सा का निर्देश सरल सुबोध भाषा में है।

लेखक का प्रयत्न सराहनीय है किन्तु हमारे विचार में तीनों पद्धतियों के दिग्दर्शन के बजाए यदि एक ही पद्धति के अनुसार अथवा तीनों के समन्वयात्मक दृष्टि से रोगों का वर्णन तथा चिकित्सा लिखी जाती तो अधिक सुन्दर साहित्य का सृजन होता।

चरकमुनि—(प्रथम भाग)—लेखक तथा प्रकाशक—पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत, शास्त्री, प्रभाकर, साहित्यायुर्वेदाचार्य, फार्मेकालोजी विभाग, मेडिकल कालेज, लखनऊ। पृष्ठ संख्या ३० मूल्य ॥), डाकव्यय ।≥) पृथक्।

चरकमुनि की जीवनी के सम्बन्ध में इतना सुन्दर विशद वर्णन हिन्दी में पहली बार हमने देखा है। प्रोफेसर जी चरक पर विशद् व्याख्या लिखने जा रहे हैं उसकी प्रस्तावनारूप यह पुस्तिका है।

अनुभूत योगमाला (रजत जयन्ती अंक)--सम्पादक व प्रकाशक—चि० चू० पं० विश्वेश्वर दयालु वैद्यराज। वार्षिक मूल्य ४) रु० इस अंक का मूल्य २) रु०

पं० विश्वेश्वर दयालु जी ने अपना जीवन ही आयुर्वेद के निमित्त अर्पण कर रखा है। पिछले २५ वर्ष से 'अनुभूतयोगमाला' के द्वारा आयुर्वेद के साहित्य की भी शोभा वृद्धि आपने की है। अभी कुछ वर्ष पूर्व कुष्ट चिकित्साश्रम भी आपने खोला है। इस सब का विस्तृत वर्णन इस अंक में पढ़िए।

जय आयुर्वेद (राजस्थान अंक)--प्रधान सम्पादक श्री माधव प्रसाद शास्त्री। वर्ष १, अंक ६, ७।

छः मास हुए जय आयुर्वेद का प्रकाशन आरम्भ हुआ था—श्री शास्त्री जी के अनथक प्रयत्न से कुछ मास में ही इस पत्र ने राजस्थान के आयुर्वेद जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

इस अंक को 'राजस्थान अङ्क' नाम दिया गया है किन्तु अंक में अन्य विषयों पर भी प्रचुर सामग्री है। राजस्थान में आयुर्वेद की प्रगति के सम्बन्ध में अधिक विशद् और सुन्दर साहित्य अपेक्षित है।

आयुर्वेदीय यंत्र-शस्त्र परिचयः (सुश्रतवाग्भटाद्याश्रितः सचरित्रश्च)—लेखक श्री—सुरेन्द्रमोहन बी० ए०, भूतपूर्व अध्यक्ष, दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, लाहौर। तथा श्री सुरेन्द्रमोहन बी० ए०। प्रकाशक—इन्द्रायुर्वेद भवन, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग, नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या १२८, मूल्य १॥) प्रति। डाक व्यय पृथक।

आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए शल्यतन्त्र के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए सरल एवं सुबोध भाषा में संक्षिप्त व सचित्र यह पहली ही पुस्तिका हमारे देखने में आई है। पुस्तक के तीन अध्याय हैं। पहिले अध्याय में यंत्र परिचय है। द्वितीय में शस्त्र परिचय और तृतीय में चिकित्सक के प्रतिदिन काम आने वाले नवीन उपकरणों (स्तन्य चूषक, नासादर्शक, स्टेथिस्कोप आदि) का विवरण दिया गया है। कुल ८७ चित्र हैं। वैद्यों के लिए भी यह परिचय चिकित्सा में उपयोगी सिद्ध होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

आयुर्वेद मासिक—सम्पादक श्री —गौरीशंकर गुप्त। प्रकाशक— श्यामसुन्दर रसायनशाला, काशी। वार्षिक मूल्य ३), एक प्रति ।–)।

प्रथम वर्ष का प्रथम अंक हमारे सामने है। लेखों का संकलन सुन्दर तथा सामयिक है। श्री गौरीशंकर जी के सम्पादकत्व में आयुर्वेद उच्चकोटि के साहित्य का सृजनहार हो ऐसी हमारी शुभ कामना है।

—पुरुषोत्तमदेव मुलतानी।

वैद्य समाज के लिये स्वर्ण-अवसर
हमारे यहाँ के विशुद्ध आयुर्वेदिक वैज्ञानिक ढंग से बने हुए आयुर्वेदिक इंजेक्शनों को खरीद, दुःसाध्य एवं कठिन रोगों की चिकित्सा कर यश तथा धनोपार्जन कीजिए।
भारत में आयुर्वेदिक इंजेक्शनों की एकमात्र अनुसंधान-शाला—
श्री लक्ष्मी आयुर्वेदिक अनुसंधान भवन, बरुवा सागर (झांसी)।

पाठकों के पत्र

संपादक महोदय,

आपका पत्र पढ़ कर परम प्रसन्नता हुई। अनुभव सिद्धयोग प्रकाशित करने से वैद्यों का हुत उपकार होगा, पर लोग सुने सुनाये योग लिख देते हैं ऐसी दशा में प्रयोग अनुभव पर सिद्ध होने से हास्यास्पद होता है।

आप इन योगों को बना कर प्रयोग करने की व्यवस्था करें और व्यवहार से सिद्ध होने पर त्रिका में प्रकाशित करें, ऐसे प्रयोगों का बड़ा सम्मान होगा। यदि वर्तमान में यह सम्भव न तो पत्रिका के ग्राहकों को सूचित करें कि पत्रिका में प्रकाशित योगों का जो प्रयोग करें—वे ना अनुभव संपादक जी को पत्रिका में प्रकाशनार्थ सूचित करें।

दो योग जो महात्माओं से प्राप्त हुवे हैं ये सिद्ध योग है, वैद्य बन्धु इनका निर्माण कर भ उठावें। यह विषम्भक प्रयोग आशुफल-प्रद है पर सावधानी से विज्ञ वैद्य ही प्रयोग करें।

(१) शु० श्वेत संखिया १ तोला (२) शु० आंवलासार गंधक १ तोला (३) शु० तवकी ताल २ तोला (४) शु० मनसिला २ तोला (५) शु० कुचला १ तोला (६) वत्सनाभविष तोला। इन द्रव्यों को पोटली में बांध कर पांच सेर गो दुग्ध में दोला यन्त्र से शुद्ध करें ४ प्रहर मन्दाग्नि पर पाक करें।

फिर उष्णजल से प्रक्षालन कर छाया में सुखा लें। बाद में १ तोला लौंग, जावित्री १, ला, छोटी इलायची के बीज का चूर्ण १ तोला, अजवान का फूल १ तोला का उक्त मात्रा में र्ण मिलाकर बारीक सुरमा सा घोट लें। उत्तम घुटाई के बाद १२ तोला गौ घृत में मिलाकर जीव करलें फिर पाताल यंत्र से घृत टपका कांच के वर्तन में रखें, धातु का संपर्क जहाँ तक भव हो न होने दें, मात्रा १ से ६ विन्दु रोगी का बलाबल देखकर पान के साथ सेवन करावें। क्तिप्रद, अग्नि वर्धक।

यह घृत अर्शरोगियों का बड़ा उपकार करता है एक दो बूंद अर्श पर मर्दन करने से दना शमन करके अर्श नष्ट कर देता है। ४० दिन प्रयोग करें। घृत का अधिक सेवन रखें। ल, मिर्च, खटाई का परहेज रखें।

(२)

आंवलासार गंधक को दुग्ध में २५ बार शुद्ध कर उष्ण जल से प्रक्षालन कर बारीक पीस लें। तोला उक्त रीति से शुद्ध की हुई गंधक को १० तोला अर्क दुग्ध में दो सप्ताह तक घोटें अर्क ध के सूखने पर बारीक अर्क को मुर्गे के अंडे में ऊपर से छेद कर भरदें, और फिर कपड़े से ट कर ऊपर गेहूँ के आटे की पतली तह चढ़ा कर उबलते हुवे तैल के कड़ाह में डाल दें, तैल ना रहे कि जिससे अंडा पूरा डूब जावे। इस प्रकार १२ घन्टे की आंच दें। इस क्रिया से गंधक साथ अंडे की जर्दी पिंघल कर एक जीव हो जावेगी। बाद में स्वांग शीतल कर अंडे की ढोती को दूर कर द्रव को शीशी में भरलें। मात्रा १ से २ बूंद दूध आध पाव में मिला करदें, से शरीर में रक्त की शीघ्र अभिवृद्धि होने लगती है ४० दिन का योग। पथ्य में उष्ण द्रव्य-जित।

क० प्रतापसिंह, उदयपुर

दीर्घ जीवन

मनुष्य का शरीर सप्त धातुओं से विनिर्मित है—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा वीर्य इन सप्त धातुओं का बल ४० वर्ष तक विकसित होता है। हमारे शरीर की चार और अवस्थाएं हैं—प्रथम वृद्धि है जो शरीर को १६ वर्ष से १०५ वर्ष तक पहुंचाती है तथा सप्त धातुओं के बल को बढ़ाती है।

दूसरी अवस्था पच्चीसवें वर्ष के अन्त में छब्बीसवें वर्ष में प्रारम्भ होती है। तृतीय सम्पूर्ण अवस्था है। यह चालीसवें वर्ष तक शरीर की समस्त धातुओं की पुष्टि करती है। अन्तिम अवस्था किंचित परिहारिणी है। यह अवस्था शरीर की सब धातुओं को पूर्णता पर पहुंचाती है। इसके अनन्तर शरीर में जो धातु बढ़ती हैं वह शरीर में नहीं रहतीं। वे स्वप्नावस्था में वीर्यपात द्वारा निकल जाती हैं। अतएव चालीस वर्ष की पकी हुई आयु ही विवाह के योग्य आयु है। ४८वें वर्ष में विवाह करना सर्वोत्तम है।

ऊपर लिखित नियमों के अनुसार शरीर में वीर्य आदि सत्वों का संचय हो कर शरीर तैयार होने में जितने वर्ष लगते हैं उससे पाँच गुणी आयु मुख्यतः मनुष्य की होती है। इस प्रकार जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का यथायोग्य पालन करेगा और आठों प्रकार के मैथुनों से बचा रहेगा उसकी आयु १२५ वर्ष की होने की सम्भावना है।

सु० शा० स्थान, अ० ३५

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ तथा समस्त आयुर्वेदीय संस्थाओं की
शल्यशालाक्य परीक्षार्थ परमोयोगी ग्रन्थ
आयुर्वेदीय-यन्त्रशस्त्र-परिचय :

आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेन्द्रमोहन बी० ए०, भूततूर्व प्रिंसीपल, दयानन्दायुर्वेदिक कालेज, लाहौर द्वारा लिखित यह ग्रन्थ लगभग १०० चित्रों से युक्त छात्रों तथा वैद्यों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसमें नाना विध यन्त्रों और शस्त्रों का प्रयोग भली भाँति समझाया गया है। तथा परीक्षोपयोगी प्रश्न भी दिये गये हैं।

मूल्य—१।।), डाक से १।।।=)

बड़े-बड़े विद्वानों ने इस ग्रन्थ की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

मिलने का पताः—

१. श्री सत्येन्द्रनाथ बी० ए० (आनर्स) अध्यक्ष, इन्द्रायुर्वेद भवन,
हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग, देहली।
२. चौखंबा संस्कृत सीरीज़, बनारस।

आयुर्वेद-लोक

पण्डित कमेटी की रिपोर्ट, स्वास्थ्य मन्त्री व प्रधान मन्त्री का संसद् में वक्तव्य, प्रान्तों में आयुर्वेद की प्रगति, आयुर्वेद के विद्वानों को पुरस्कार-योजना, विद्यापीठ परीक्षाएं आदि।

पण्डित कमेटी की रिपोर्ट का सारांश

भारत सरकार ने दिसम्बर सन् १९४९ में आयुर्वेद में अनुसन्धान तथा शिक्षा पर रिपोर्ट देने के लिए ९ सदस्यों की एक कमेटी की नियुक्ति की थी जिनके नाम इस प्रकार हैं :—(१) डा० सी० जी० पण्डित (चेयरमेन), (२) डा० वी० सुब्रामन्यम (३) क० गणेशदत्त सारस्वत, (४) क० रामरक्ष पाठक, (५) डा० डी० एन० बनर्जी, (६) डा० बी० बी० योध, (७) डा० ए० एन० गोयले, (८) डा० जे० एन० राय, (९) एक यूनानी डाक्टर। यह कमेटी पण्डित कमेटी के नाम से विख्यात हुई। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट गत मास सरकार को पेश कर दी है जिसका सारांश निम्न लिखित है:—

१—यह तो स्पष्ट ही है कि देशी चिकित्सा पद्धतियों का उचित ज्ञान तब तक सम्भव नहीं है जब तक तत्सम्बन्धी एक अन्वेषणशाला का यथाशीघ्र निर्माण नहीं हो जाता। समिति के विचार में इस सिफारिश को कार्यरूप में परिणत करने की ओर सम्बन्धित अधिकारियों को सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए। हमारा विश्वास है जामनगर में हास्पिटल सम्बन्धी प्राप्त वर्तमान सुविधाओं को लेकर कार्य करने के लिए हमने जिन उच्च कर्मचारियों की सिफारिश की है उनमें से कुछ की नियुक्ति द्वारा इस दिशा में कार्य का सूत्रपात हो सकता है जिससे इस प्रतिवेदन के पैरा २६ में विस्तार पूर्वक वर्णित आवश्यक बातों पर कार्यारम्भ हो जाए। हम आशा करते हैं कि इस प्रकार के अन्वेषण केन्द्र की स्थापना में सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थाएं वर्तमान आर्थिक संकट की अवस्था में भी सहयोग देंगी।

२—देश की वर्तमान आयुर्वेदिक और यूनानी शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के तुरन्त सुधार की आवश्यकता की ओर हमने ध्यान आकृष्ट किया है। हमारा सुझाव है कि राज्य सरकारों को इन संस्थाओं के स्तर को ऊंचा करने के कार्य को प्राथमिकता देनी चाहिए और इस प्रकार की अन्य छोटी मोटी नवीन संस्थाओं की स्थापना के बजाय समस्त प्रस्तुत धन राशि इस

विशिष्ट कार्य के लिए दे देनी चाहिए। यह आवश्यक होगा कि इन संस्थाओं को विशेषकर प्रधान-प्रधान विषयों की शिक्षा सन्तोषजनक स्तर पर देने वाली संस्थाओं को रसायनशाला तथा हास्पिटल सम्बन्धी सभी सुविधाएं दी जाएं। समिति के विचार में आधुनिक विषयों के अध्यापकों को देशी चिकित्सा पद्धतियों का समुचित ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी जाए जिससे वह इन संस्थाओं के शिक्षण क्रम के सुधार में आवश्यक योगदान दे सकें।

३—इन संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिए आज कल से अधिक उच्च प्रारम्भिक प्रवेश-योग्यता पर जोर दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। समिति के विचार में चिकित्सा-विज्ञान में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिए कम से कम प्रारम्भिक योग्यता किसी सम्मानित विश्व-विद्यालय की साइंस में इन्टरमीडियेट (मेडिकल ग्रुप) होनी चाहिए और साथ ही देशी चिकित्सा पद्धतियों के विद्यार्थियों के लिए संस्कृत या अरबी का भी उचित ज्ञान होना चाहिए।

४—समिति यह जानती है कि वर्तमान आर्थिक-संकट के समय यह सम्भव है कि राज्य सरकारें इन सिफारिशों को अपने अपने क्षेत्रों में स्थित समस्त देशी चिकित्सा की संस्थाओं के सम्बन्ध में कार्यरूप में न ला सकें। हमारी यह राय है कि प्रत्येक राज्य सरकार कम से कम एक संस्था उपर्युक्त प्रकार से Up grading के लिए चुन ले।

५—समिति का यह निश्चित विचार है कि लाइसेन्सियेट कोर्स की शिक्षण संस्था से विद्यार्थी अथवा जनता को कोई लाभ नहीं होगा। हमारे विचार में ऐसी समस्त संस्थाओं में डिग्री स्टेण्डर्ड की ही शिक्षा दी जानी चाहिए।

६—हमने आयुर्वेदिक संस्थाओं में स्वीकृत्यर्थ एक विस्तृत पाठ्यक्रम भी दिया है। किन्तु यह पाठ्यक्रम सभी प्रकार से उपयुक्त है ऐसा दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सकता। समिति का विश्वास है कि उपर्युक्त प्रस्तावित केन्द्रीय अन्वेषणशाला के कार्य परिणामों के प्राप्त होने पर इस पाठ्यक्रम में और सुधार किया जा सकेगा। समिति यह जानती है कि ऐसी विचार धारा रखने वाले व्यक्ति भी हैं जो यह मानते हैं कि आधुनिक और देशी दोनों प्रकार की चिकित्सा-पद्धतियों की मिली-जुली शिक्षा से कोई लाभ नहीं होगा। वर्तमान में व्यवहृत सम्मिलित शिक्षा की प्रणाली के विरोध में जो आलोचना की जाती है समिति उसे भी जानती है। किन्तु वह यह अनुभव करती है कि वर्तमान अवस्था का ज्यों का त्यों रहने दिए जाना और भी अधिक खतरनाक होगा। समिति ने यह माना है कि जनता को यह मांग करने का अधिकार है कि चिकित्सा व्यवसाय में प्रविष्ट होने के विशेष ध्येय से शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को वह ज्ञान भी होना चाहिए जो आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा प्राप्त हो सकता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए समिति ने यह सुझाव रखा है कि देशी चिकित्सा पद्धतियों में शिक्षा देने वाली संस्थाओं में सम्मिलित शिक्षा प्रणाली का अनुसरण वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यक है।

७—समिति को अपने विचार-विनिमय की अन्तिम अवस्था में ही यूनानी पद्धति के एक

प्रतिनिधि सदस्य के विचारों का लाभ प्राप्त हुआ है। तो भी समिति द्वारा किए गए निश्चय यूनानी पद्धति पर भी समानरूप से लागू होंगे। हमारी सिफारिशों के प्रयोजक (Operative) भाग में यूनानी पद्धति की शिक्षा का कार्य आरम्भ होने के समय कुछ सुधार कर लेना आवश्यक होगा। दोनों अवस्थाओं में आयुर्वेदिक और यूनानी पद्धतियों की रूपरेखा लगभग एक जैसी ही होगी।

पण्डित कमेटी की रिपोर्ट पर अपना मत प्रकाश करने के लिए महासम्मेलन का एक विशेषाधिवेशन बुलाने पर विचार किया जा रहा है। उस अधिवेशन के स्थान और समय के सम्बन्ध में अभी कोई निश्चय नहीं किन्तु आशा की जाती है स्थायी समिति का आगामी अधिवेशन, जिसके अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में होने की सम्भावना है, इस सम्बन्ध में निश्चय करेगा।

संसद् में स्वास्थ्य मन्त्री व प्रधान मन्त्री का वक्तव्य

संसद् में स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुदान स्वीकृति के अवसर पर हुई बहस में डा० देवीसिंह ने स्वास्थ्य मन्त्रालय की मांगों पर भाषण देते हुए कहा कि देश आज़ाद होने पर लोगों को आशा थी कि पुरानी आयुर्वेदिक और तिब्बी प्रणाली को प्रोत्साहन मिलेगा, पर आज भी वही पुराना राग है। आयुर्वेद और तिब्बी प्रणाली सस्ती हैं और यहाँ के वातावरण के अनुकूल भी हैं। एलोपैथी में अनेक रोगों का निदान और दवायें भी नहीं हैं। स्वास्थ्य मन्त्रालय के बजट में आयुर्वेद और तिब्बी के लिए जो थोड़ी-सी रकम रखी गई है, वह प्रतीत होता है केवल हमारी सान्त्वना के लिए है।

श्री जांगड़े ने अपने भाषण में कहा कि जिन सिद्धांतों की हम बात करते थे उन्हें भी हम आज ठुकरा रहे हैं आयुर्वेद के लिए एक लाख रुपया दिया जाना उसका अपमान है। डाक्टर हमारा बहुत अधिक शोषण करता है। इंजेक्शनों पर होने वाले खर्च तथा तिब्बिया कालेज की दशा की चर्चा करते हुए आपने कहा कि इससे जनता के सामने सरकार की बदनामी हो रही है।

मद्रास के डा० वी० सुब्रमण्यम ने कहा कि आयुर्वेदिक औषधियों की खोज के लिए जामनगर कालेज के लिए एक लाख रुपये की रकम बहुत कम है। उसे बढ़ा कर ३ लाख कर दिया जाना चाहिए। दिल्ली तथा अन्य केन्द्र शासित क्षेत्रों में लड़कों को चिकित्सा-शिक्षा दी जाने की सुविधा होनी चाहिए।

स्वास्थ्य-मन्त्रिणी का उत्तर

बहस का उत्तर देते हुए स्वास्थ्य मन्त्रिणी ने कहा कि यह आरोप बिल्कुल गलत है कि सरकार आयुर्वेद तथा यूनानी पद्धति के लिए विकास के लिए कुछ नहीं कर रही है। देशी दवाइयों को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से जामनगर कालेज के लिये कुछ धन अलग कर दिया गया है। पर भारत आधुनिक चिकित्सा पद्धति में पीछे नहीं रह सकता। आधुनिक चिकित्सा पद्धति इस देश में विकास का आधार होनी चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो लोग हमें अयोग्य कह कर पुकारेंगे और आने वाली सन्तान हमें दोष देगी। सरकार आयुर्वेद तथा यूनानी पद्धतियों के विकास के

लिए प्रयत्नशील है तथा राज्य सरकारों को अपने-अपने क्षेत्रों में एक-एक कालेज स्थापित करने को कहा गया है।

सरकार चाहती है कि आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा की शिक्षा लेने वाले विद्यार्थी आधुनिक चिकित्सा का भी ज्ञान प्राप्त करें। धनाभाव से हम वह नहीं कर पा रहे हैं जो करना चाहते हैं।

श्री हरिविष्णु कामथ द्वारा उठाई गई एक आपत्ति का उत्तर देते हुए प्रधान मंत्री पं० नेहरू जी ने सदन को विश्वास दिलाया कि सरकार आयुर्वेदिक, यूनानी, होमियोपैथिक अथवा और किसी विषय पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करेगी। वह चाहती है कि जनता की भलाई के लिए प्रत्येक चीज का अधिक से अधिक सदुपयोग किया जाय।

श्री कामथ की शिकायत थी कि स्थायी समिति की एक सभा में एक उच्चाधिकारी ने आयुर्वेद के विरुद्ध कुछ अनुचित बात कही थी।

नेहरू जी ने कहा कि मैं नहीं जानता कि किस प्रसंग में ऐसा कहा गया है। सरकार का विचार है कि प्रत्येक बात पर वैज्ञानिक जांच की भावना से विचार किया जाय। इसमें संदेह नहीं कि इस देश में बहुत से ऐसे लोग हैं जोकि अपने को डाक्टर कहते हैं किन्तु उन्होंने न तो सरकारी शिक्षालयों में प्रशिक्षण प्राप्त किया है और न किसी दूसरे प्रकार से उस विषय की योग्यता हासिल की है।

प्रान्तीय समाचार

जम्मू और काश्मीर की हैल्थ कमेटी द्वारा आयुर्वेदिक और यूनानी औषधालयों को प्रत्येक से लाभ उठाने वाली जनता की संख्या के आधार पर तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है। प्रथम श्रेणी के औषधालय में किसी सम्मानित संस्था द्वारा चार वर्ष तक शिक्षा प्राप्त, द्वितीय श्रेणी में तीन वर्ष तक शिक्षा प्राप्त और तृतीय श्रेणी में चार वर्ष के सक्रिय अनुभव प्राप्त वैद्य हकीम होंगे। सरकार ने आगामी आर्थिक वर्ष से राजकीय हस्पतालों में नर्स तथा दाइयों की शिक्षा का भी निश्चय किया है।

मध्यभारत प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के ७वें अधिवेशन का उद्‌घाटन करते हुए मध्यभारत के प्रधान मन्त्री माननीय श्री तखतमल जैन ने कहा, "मध्यभारत सरकार आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की उन्नति तथा विस्तार के लिए सदा प्रयत्नशील रही है। वास्तव में सदा अपनी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के पुनरुद्धार को ही अपना ध्येय बनाना चाहिए।" आपने राज्य द्वारा आयुर्वेदोन्नति के लिए किए गए कार्यों का भी उल्लेख किया।

आगामी वर्ष के लिए श्री रामेश्वर शास्त्री सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

मध्यभारत से प्राप्त एक और समाचार से ज्ञात हुआ है कि प्रान्त में १८ नये आयुर्वेदिक औषधालय खोले गये हैं। यह औषधालय मध्यभारत के निर्माण के उपरान्त खोले गये १००

आयुर्वेदिक औषधालयों के अतिरिक्त हैं। १००० औषधि भण्डार खोलने तथा ग्रामों में दवाई वितरण की योजना को भी स्वीकार कर लिया गया है।

पटियाल राज्य संघ में सरकारी आयुर्वेद औषधालयों का उद्‌घाटन—पैप्सू सरकार ने अपनी स्वीकृत योजना के अनुसार पटियाला यूनियन के प्रत्येक जिले में तीन-तीन आयुर्वेदिक औषधालयों का उद्‌घाटन प्रारम्भ कर दिया है। लगभग ६ औषधालयों का उद्‌घाटन, आनरेबल मुख्य मन्त्री पैप्सू सरदार ज्ञानसिंह जी राड़ेवाला, तथा माननीय रामप्रसाद जी राज्यवैद्य पैप्सू एवं श्री कान्तीनारायण जी मिश्र उपराज्य वैद्य पैप्सू द्वारा हो चुका है शेष औषधालय खोले जा रहे हैं। आशा है यह योजना एक या दो सप्ताह में कार्यान्वित हो जावेगी।

आयुर्वेद विद्वानों को पुरस्कार की योजना

मदनमोहन आयुर्वेद अनुसन्धान पीठ देहली के प्रधान मन्त्री श्री आशुतोष मजुमदार सूचित करते हैं कि पीठ ने अपनी वार्षिक बैठक में यह निश्चय किया है कि प्रतिवर्ष १०००) रु० का पुरस्कार आयुर्वेद के उत्तम ग्रन्थ लेखक को दिया जायेगा। इस वर्ष बसन्त पञ्चमी पर यह पुरस्कार "शारीर क्रिया-विज्ञान" पर लिखी सर्वोत्तम पुस्तक पर दिया जायेगा। पीठ के पुस्तकालय से वैद्यगण अब लाभ उठा सकेंगे।

श्री गोविन्दराम सेकसरिया चेरीटी ट्रस्ट के मन्त्री सूचित करते हैं कि आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने के हेतु ट्रस्ट ने अपने इस वर्ष के बजट में निम्न प्रकार से २ पुरस्कार रखे हैं—

(१) १,०००) पारितोषिक नकद एक मुश्त उन वैद्य महानुभावों को दिया जावेगा जो किसी भी रोग पर ऐसी औषधि प्रस्तुत करें जो निर्दिष्ट रोग पर कम से कम ६० प्रतिशत कार्य करती हो और वह उसका (स्वतः का) अनुसन्धान कहा जा सकता हो।

(२) किसी भी ऐसे वैद्य को जिनकी अनुसन्धान कार्य में लगन हो किन्तु साधनों के अभाव में अपनी लगन की पूर्ति करने में असमर्थ हों तथा जिन्हें आयुर्वेदिक बोर्ड उक्त विषय का सत्पात्र प्रमाणित कर सके, ५०) प्रति मास घर बैठे दिया जावेगा।

निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ नई दिल्ली की परीक्षाएं इस वर्ष २६ मार्च से प्रारम्भ हो कर ३१ मार्च १९५१ को समाप्त हो गईं। देश भर में स्थित ५१ केन्द्रों में यह परीक्षाएं हुईं तथा लगभग २००० विद्यार्थियों ने इन परीक्षाओं में भाग लिया। आशा है परिणाम जुलाई मास के अन्त तक घोषित हो जायेगा।

लखनलाल पितृ नाम भगतराम, नायन (जयपुर) निवासी क्रमांक २६ आयुर्वेद विशारद द्वितीय खण्ड सन् १९५० वर्षीय परीक्षार्थी के सम्बन्ध में विद्यापीठ कार्यालय में यह सूचना प्राप्त हुई थी कि उपर्युक्त विद्यार्थी ने उत्तर पुस्तकें स्वयं न लिख कर किसी अन्य व्यक्ति से लिखवाई हैं। कार्यालय ने इस विषय में सब प्रकार से जांच करके लखनलाल को दोषी पाया है और उसे प्रमाणपत्र न देने का निश्चय किया है।

रामगोपाल शास्त्री विद्यापीठ मन्त्री

बोर्ड आफ इण्डियन मेडीसिन उत्तर प्रदेश की रजिस्ट्रेशन कमेटी के संयोजक सूचित करते हैं कि बोर्ड आफ इन्डियन मेडीसिन पैरा चार में तभी तक वैद्यों तथा हकीमों का रजिस्ट्रेशन करेगा जब तक सरकार द्वारा इन्डियन मेडीसिन एक्ट की धारा तीन लागू नहीं की जाती इसके बाद पैरा चार की रजिस्टरी बन्द हो जायेगी तथा जो वैद्य और हकीम रजिस्टर्ड नहीं हैं वह चिकित्सा का कार्य नहीं कर सकते ।

रजिस्टरी की सुविधा के लिये प्रत्येक जिले में उप समितियां बना दी गई हैं उसके द्वारा अस्वीकृत प्रार्थना पत्र की अपील रजिस्टर्ड बोर्ड आफ इन्डियन मेडीसिन को तथा इसके उपरान्त तीन माह के अन्दर फिर कोई अपील की जा सकती है ।

आयुर्वेद विज्ञानमाला— श्री पं० सोमदेव शर्मा सरस्वत, प्रोफेसर मेडिकल कालेज लखनऊ आयुर्वेद विज्ञानमाला नाम की एक ग्रन्थमाला प्रकाशित कर रहे हैं। इसमें अभिनवरसशास्त्र. सिद्धचिकित्सा, काय चिकित्सा, चरक विमर्श, पदार्थ विमर्श, आयुर्वेदीय इतिहास, रसशास्त्र शब्दकोष आदि मौलिक ग्रन्थ तथा रसकामधेनु आदि रस ग्रन्थों तथा काश्यपसंहिता और अष्टांग संग्रह आदि प्राचीन ग्रन्थों का सरल सुबोध एवं विस्तृत व्याख्यायुक्त अनुवाद राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रतिवर्ष एक या दो भाग प्रकाशित हुआ करेगा । इस सम्बन्ध में पाठक लेखक महोदय से पत्र व्यवहार करें ।

स्वास्थ्य सम्मेलन दिल्ली—श्री सनातनधर्म युवक मण्डल दिल्ली के तत्वावधान में कविराज मोहनलाल शास्त्री के संयोजकत्व में २९ मार्च को गांधी ग्राउण्ड में स्वास्थ्य सम्मेलन का अधिवेशन विशेष धूमधाम से हुआ । श्री डा० युद्धवीरसिंह चेयरमेन दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी ने इसका उद्घाटन किया । डा० एन० एस० परांजपे (नागपुर) इसके सभापति थे । कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी ने आयुर्वेद विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें दिल्ली में अ० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाने के निश्चय का स्वागत किया गया था और प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बी तथा भारतीय संस्कृति के प्रेमियों से आयुर्वेद महासम्मेलन की तात्कालिक २५ लाख रुपये की अपील की गई । इसके समर्थन में पं० भगवद्दत्त बी० ए०, कविराज उपेन्द्रनाथ दास, पं० रामगोपाल शास्त्री और पं० नानकचन्द जी के विद्वतापूर्ण भाषण हुए।

श्री पं० गुरुदत्त जी द्वारा पेश किए गए दूसरे प्रस्ताव में दिल्ली में बने आयुर्वेद और यूनानी बोर्ड के कानून पर असन्तोष प्रकट किया गया जिसके अनुसार देशी चिकित्सकों पर अनुचित प्रतिबन्ध लगाने की व्यवस्था की गई है।

नया आविष्कार

स्त्री पुरुष, बालक सब के लिये अत्युत्तम महौषधि

* नव रत्न रस *

यह हीरा, माणक, मोती आदि नवरत्नों और स्वर्ण के संयोजन से तैयार की हुई प्रक्रिया है। शरीरस्थ रस. रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, शुक्र-वीर्य धातु की शुद्धि और पुष्टि इस महौषधि के विशिष्ट कार्य हैं तथा नपुंसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल कर नव यौवन प्रदान करता है। स्त्रियों के गर्भाशय के शोथ, प्रदर, बार-बार गर्भपात, गर्भवती स्त्री के हाथ पैरों, पेडू में शोथ तथा पांडुता आदि नष्ट करता है। बंध्यत्व निवारणार्थ यह अपूर्व औषधि है। बालकों की अशक्त अस्थियों को बलवान् बना कर केलशियम और विटामिन की न्यूनता, दुग्धपान स्तनपान का अपचन आदि नष्ट करके बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। क्षय, जीर्ण ज्वर कास, श्वास, मधुमेह, मानसिक निर्बलता आदि में अत्युपयोगी है।

नवरत्न रस—निरोगी के लिये रसायन और रोगों के लिये पूर्ण स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है।

उँझा फार्मेसी लि०, उँझा (गुजरात)

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)

गोंडल—काठियावाड़—सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे० के० शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४० वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहतीं हैं। १५० पृष्ठ के बड़े सूचीपत्र का मूल्य आठ आना। छोटा सूचीपत्र मुफ्त। सब भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों तथा ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपर्युक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

अमृतधारा तथा औषध नवरत्न से

पूरा औषधालय चलाइये, सब रोगों की चिकित्सा कीजिये

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्य, के ५० वर्षीय अनुभव के आधार पर ये औषधियां निर्मित हैं। अमृतधारा तो लगभग सब रोगों को खाने व लगाने से दूर भगाती है। औषध नवरत्न निम्न रोगों के वास्ते रामबाण का काम देते हैं।

१. **शमकारक**—पित्त वृद्धि और दूषित होने से जो भी रोग हो, इस से दूर करिये। रक्त कहीं से बहता हो बन्द हो जायेगा।

मूल्य ६४ गोली ४) रु०, १६ गोली १) रु०

२. **याकूती नवरत्नी**—ऊपर लिखित गर्मी के सब विकार दूर करने के अतिरिक्त हृदय मस्तिष्क यकृत को बल देती है। और मानसिक विकार के रोगों को दूर करती है। मूल्य ६४ गोली १०) रु०।

३. **गुड़चक**—वात तथा कफ के सर्व रोग नष्ट होते हैं।

मूल्य ६४ गोली ४) रु०, १६ गोली १) रु०।

४. **हयात अफज़ा**—रक्त विकार दूर होकर रक्त शुद्ध होता है, और हृदय कम्प, यकृतशोथ, पाण्डु, कामलादि रोग नष्ट होते हैं।

मूल्य ६४ मात्रा २) रु०, १६ मात्रा ८ आ०

५. **गोली अमृत**—विरेचक है। और वात कफ के रोग नष्ट होते हैं।

मूल्य ६४ गोली २) रु०, १६ गोली ८ आ०।

६. **गन्धार रस**—मल बन्धक, अतिसार, संग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसार दूर करे। मूल्य १) रु०, नमूना ।)

७. **अमृतचूर्ण**—दांतों के वास्ते उत्तम मंजन, आँखों के वास्ते उत्तम अंजन, विषैले डंक पर उत्तम विषनाशक, नस्य लेने से शिर पीड़ा, प्रतिश्याय की चिकित्सा, बच्चों के रोगों की उत्तम औषधि, ज्वर, जूड़ीनिवारक।

मूल्य १० तोला २) रु०, २½ तोला ८ आ०।

८. **शफावटी**—विषैले ज्वर यथा शीतला, प्रसूत, मंथर, मलेरिया, टाईफाईड, पुरातन शिर शूल, प्रतिश्याय, मृगी आदि के वास्ते।

मूल्य ६४ गोली २) रु०, १६ गोली ८ आ०।

९. **बल्लपूर वटी**—हिस्टीरिया, मृगी, प्लेग, हैजा, भगन्दर, नासूर, खाये-गये या डंकादि से प्रवेश हुये और आतशक, सुजाक के विषों के विकार दूर होते हैं। मूल्य ६४ गोली ३) रु०, १६ गोली १२ आ०।

सब औषधियों की सेवन विधि साथ भेजी जावेगी।

धर्मार्थ औषधालय में अवश्य रखें

नवीन चिकित्सक केवल ये औषधियां रख कर योग्य वैद्य प्रसिद्ध हों

मिलने का पता:—**अमृतधारा फार्मेसी लि०, देहरादून।**

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हज़ारों रुपये का काम देता है । व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के निरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगों को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हज़ार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसी उत्तम पुस्तक दूसरी नहीं है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १।।।), डाक खर्च ।।=), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० ऐजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,
कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

विज्ञान और भारत

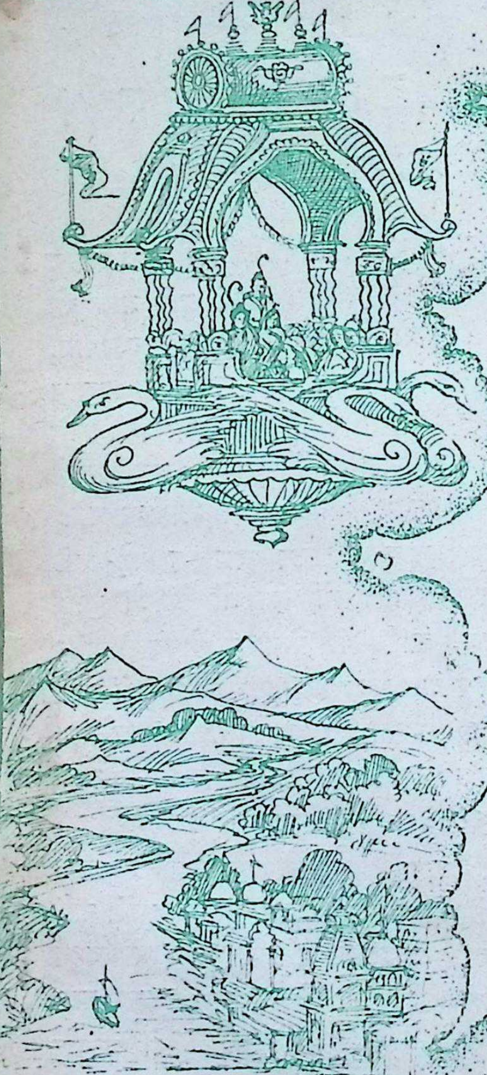

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. बर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लि०
पोस्ट—बक्स ५५४, कलकत्ता।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—न्यू इण्डिया प्रैस, नई दिल्ली।

मार्च ५१

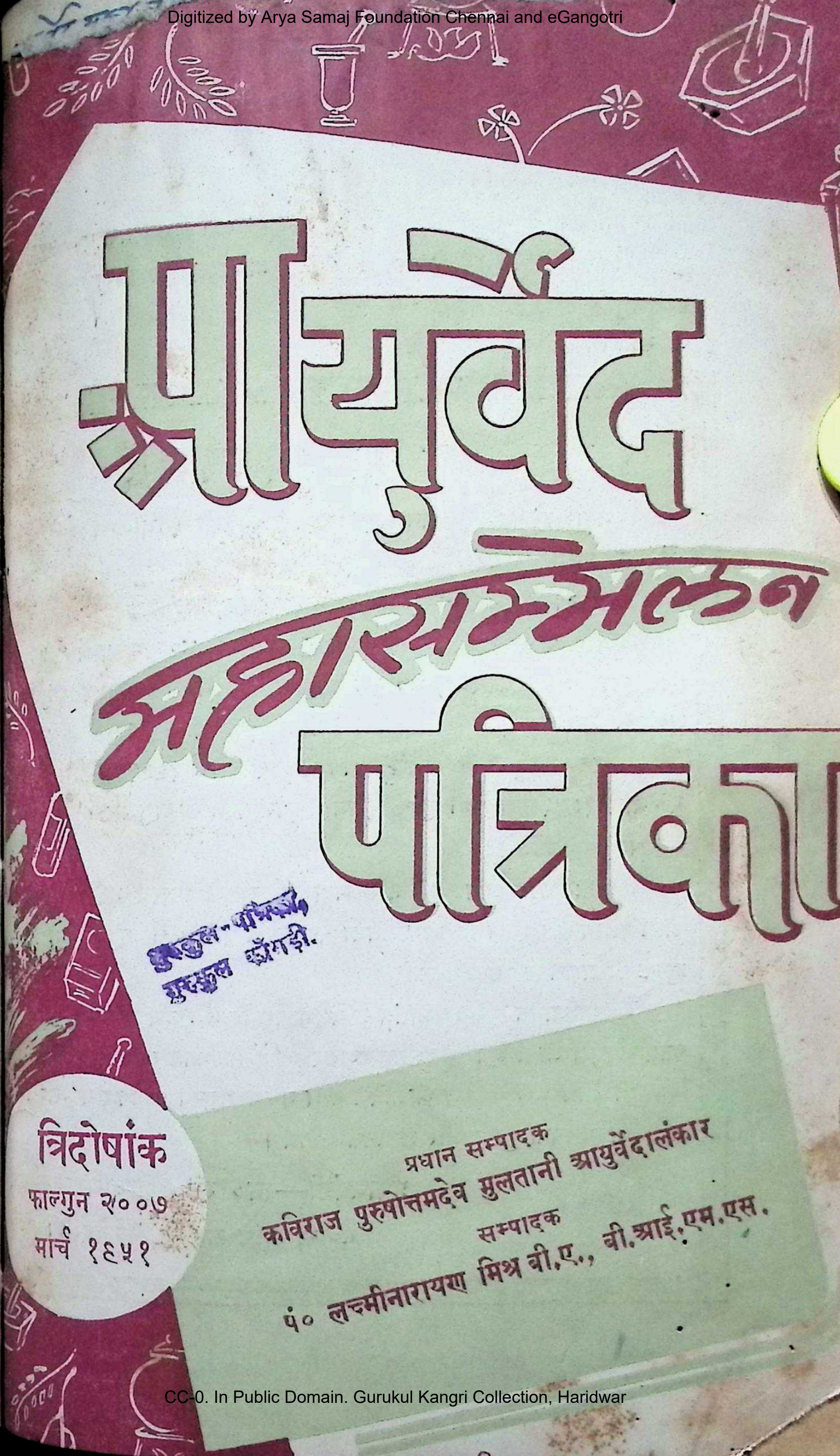

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

गुरुकुल काँगड़ी

त्रिदोषांक
फाल्गुन २००७
मार्च १९५१

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी.ए., बी.आई.एम.एस.

विषय-सूची

१. गुलमुहर के फूल — स्व० श्रीमती सरोजनी देवी नायडू
२. त्रिदोष के स्वरूप पर वाद-विवाद
३. त्रिदोष-स्वरूप-निर्णय
४. अपना राज ? — विप्रजी कमलाप्रसाद त्रिपाठी
५. त्रिदोष का वैज्ञानिक विवेचन — डा० लक्ष्मीनारायण पचौरी
६. आयुर्वेद-लोक
७. साहित्य-सत्कार

वैद्य महानुभाव ध्यान दें

महासम्मेलन की नवीन संशोधित नियमावली में विभिन्न सदस्यता शु में निम्न प्रकार परिवर्तन हो गया है—

१. मान्य सदस्यता शुल्क १०) रु० वार्षिक, २. प्रतिनिधि सदस्यता शु ५) रु० वार्षिक, ३. आजीवन सदस्यता शुल्क १००) रु० एक कालिक, ४. आश्र दाता सदस्यता शुल्क २००) रु० एक कालिक, ५. संरक्षक सदस्यता शुल्क ५ रु० एक कालिक।

परन्तु उपर्युक्त संशोधित नियम ता० २८ मार्च १९५१ से लागू होंगे। अ २७ मार्च १९५१ तक सभी शुल्क पुरानी नियमावली के अनुसार बिन बढ़ी दरों स्वीकार किये जावेंगे।

अतः यदि आप अभी तक महासम्मेलन के सदस्य नहीं बने हैं तो इ अल्प समय से पूर्ण लाभ उठावें तथा २७ मार्च १९५१ से पूर्व अपना सदस्य शुल्क कार्यालय में भिजवा दें।

आप जानते हैं कि प्रजातंत्र के वर्तमानकाल में सदैव संगठित शक्ति की आवाज़ सुनी जाती है। अतः यह आवश्यक है कि आप स्वयं तो सदस्य बने साथ ही अधिक से अधिक आजीवन तथा मान्य सदस्य बनाकर महासम्मेलन शक्ति को अधिक सुदृढ़ और संगठित बनायें।

प्रधानमंत्री—नि० भा० आ० महासम्मेलन
९०/८, कनाट सरकस, नई देहली।

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली ।

वर्ष ३७ अङ्क ३ | नई दिल्ली, फाल्गुण २००७, मार्च १९५१ | एक प्रति १) वार्षिक ५)

गुलमुहर के फूल

लेखिका—स्व० श्रीमती सरोजनी देवी नायडू

[गुल-मुहर का वृक्ष बड़ा होता है, और जब उसकी लम्बी फैली हुई डालियाँ वृक्षों के पत्तों ी तरह फूलों से भर उठती हैं तो चारों ओर का वातावरण जैसे चमकीले लाल प्रकाश से जगमगा ठता है । गुलमुहरके फूलों में सौन्दर्य भी विशेष कर उसके चमकीले लाल रंग का ही होता है । उसी मकीले लाल रंग से आकर्षित होकर श्रीमती सरोजनी देवी ने "गुलमुहर के फूलों की प्रशंसा" में म्न कविता लिखी है । वह उसके रंग पर तरह-तरह की कल्पनाएँ करती हैं— प्र० सं०]

"हे वसन्त के रंगीन जगमगाते वरदान—
तुम्हारे सुन्दर रंग से किस की तुलना की जा सकती है,
तुम्हारा यह रंग नव-वधू के चमकदार लाल कपड़ों जैसा है,
या किसी जंगली पक्षी के गहरे लाल रंग के पंख जैसा है,
या फिर उस नाग की लाल मणि जैसा है जो उसके फण पर चमकती है,
या उस रक्त जैसा है जो कि किसी राजपूत रमणी की सहायता के लिए हजारों राजपूतों की छातियों में से बह निकला है,
यह लाल चमक उस आनन्दमय ज्वाला की लपटों जैसी है जो एक सती की चिता से आकाश की ओर भभक कर उठती है ।"

अनुवादक—श्री वंशीधर विद्यालंकार, हैद्राबाद

शास्त्रचर्चा-परिषद्

त्रिदोष के स्वरूप पर वाद-विवाद

[आयुर्वेद वर्णित वात-पित्त-कफ इन तीन दोषों का वास्तविक स्वरूप क्या है ? त्रिदोष स्वतन्त्र (एकाकी) द्रव्य हैं या प्राणी शरीरस्थ आधुनिक क्रियाशारीर (फिजियालाजी) में वर्णित अनेक पदार्थों के तीन वर्ग हैं ? यदि त्रिदोष में वर्ग हैं ऐसा मान लिया जावे तो आधुनिक क्रियाशारीर में वर्णित किस पदार्थ का किस दोष में अन्तर्भाव हो सकता है ? इसका उत्तर आयुर्वेद महारथियों के शब्दों में नीचे पढ़िए । —प्र०सं०]

सर्वप्रथम श्रीयुत् भिकाजी विनायक डेग्वेकर ने अपने भाषण में यह स्पष्ट किया कि त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) शरीर में रहने वाले द्रव्य हैं। क्योंकि शरीर पाँचभौतिक है इसलिए यह शारीर द्रव्य भी पाँचभौतिक ही होंगे । इस प्रकार ये वात-पित्त-कफ 'पाँचभौतिक शारीर द्रव्य हैं' यह प्रस्ताव परिषद् के समक्ष उपस्थित किया जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ ।

पुनः आपने कहा कि 'ये वात-पित्त-कफ शारीरज अर्थात् शरीर में ही उत्पन्न होने वाले द्रव्य हैं । इनकी बाहर स्थिति नहीं' । इस विचार का भी सबों ने समर्थन किया । इसके बाद श्री डेग्वेकरजी ने यह दिग्दर्शन कराते हुए कि आयुर्वेद के संहिता-ग्रन्थों में जहाँ भी त्रिदोष का अर्थात् वात-पित्त-कफ का वर्णन आया है वहाँ एकवचन में ही आया है, इससे प्रतीत होता है कि ये वात-पित्त-कफ स्वतन्त्र एकाकी द्रव्य हैं, ऐसा विचार उपस्थित किया । साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि ये साम्यावस्था में अर्थात् प्रकृत अवस्था में सम्पूर्ण शरीर में अनवरत संचार करते रहते है । शास्त्रों में जो हृदय और नाभि के अधः, मध्य तथा ऊर्ध्व भागों में इनके स्थानों का वर्णन हैं वह उनके प्रभव-स्थान अर्थात् उत्पत्ति के स्थान हैं । वे वहीं से शरीर के विभिन्न स्थानों में पहुँचाये जाते हैं ।

इस विचार के उपस्थित किये जाने पर आचार्य श्रीयादवजी महाराज ने यह विचार उपस्थित किया कि वात-पित्त-कफ का एकवचन में वर्णन होने मात्र से वे एकाकी एवं स्वतन्त्र द्रव्य नहीं कहे जा सकते । संस्कृत साहित्य में 'जातौ एकवचनम्' का भी प्रयोग होता है । जैसे 'पशु' के कहने से पशुमात्र का बोध तथा 'फल' के कहने से

वर्ग' के सभी फलों का बोध होता है। इसी प्रकार 'वात' शब्द से 'वातवर्ग' के शारीर द्रव्यों का तथा 'पित्त' के कहने से 'पित्तवर्ग' के सभी शारीर द्रव्यों का और ' के कहने से'कफवर्ग' के सभी शारीर द्रव्यों का बोध हो जाता है। इतना ही नहीं, र्वेद शास्त्र में इन वात-पित्त-कफों के भी पाँच-पाँच पृथक् प्रकारों का वर्णन उपलब्ध है और ये विभिन्न प्रकार के वात-पित्त-कफ परस्पर एक-दूसरे से द्रव्य तथा प में भी कुछ साधर्म्य एवं वैधर्म्य रखते हैं। अतः इन्हें वर्गबोधक समझना ही त है।

उपर्युक्त विचारों के उपस्थित होने पर डा० डी० एन० बनर्जी ने यह विचार थित किया कि यदि हम दोषों का स्वरूप पहले निर्णय कर लें तो यह प्रश्न सरलता वयं ही हल हो जायगा। इसलिए पहले हमें दोषों के स्वरूप का निर्णय करना हिए।

दोषों का स्वरूप-निर्णय

सभापतिजी ने कहा कि इन दोषों के स्वरूप का निर्णय हम दो प्रकार से कर ते हैं—(१) इनके नामों की व्युत्पत्ति से तथा (२) इनके गुणकर्मों को देख कर। 'वात' शब्द 'वा गतिगन्धनयोः' से बनता है, इसलिए गति, ज्ञान, प्राप्ति तथा ाह जिन द्रव्यों से हमारे शरीर में होता है वे सब वात-वर्ग के हैं और उनका प वात का स्वरूप है। इसी प्रकार 'तप् सन्तापे', से 'पित्त' शब्द बना हुआ है; ात् शरीर के अन्दर पाक को उत्पन्न करने वाले सभी शारीर द्रव्य 'पित्तवर्ग' के हैं र उनका जो स्वरूप है, वही पित्त का स्वरूप है। 'श्लिष आलिङ्गने' से 'श्लेष्मा' तथा जलेन फलति निष्पद्यते' इति से 'कफ' शब्द बनता है। इस प्रकार शरीर के अन्दर ण और उदककर्म करने वाले सभी द्रव्य 'कफ-वर्ग' के हैं और उनका जो स्वरूप ह कफ का स्वरूप है। तात्पर्य यह है कि इनके नाम भी स्वरूप-बोधक हैं। इसी र इनके गुणों तथा कर्मों को देख कर भी हम उन गुण कर्मों से युक्त देहद्रव्य को , पित्त, कफ वर्ग के द्रव्य समझ सकते हैं और 'गुणगुणिनोरभेदः' इस सिद्धान्त से गुणों के भाव ही उनका आत्मरूप या स्वरूप हो जाता है; जैसे वात के रूक्ष, लघु, आदि गुणों के भाव रौक्ष्य, लाघव, सौक्ष्म्य ही उनका आत्मरूप या स्वरूप कहा है।

इस विचार के अनन्तर श्री गोडबोले शास्त्री के यह कहने पर कि कफ-पित्त-

वात स्राव के रूप में शरीर के अन्दर आते हैं ; श्री डेग्वेकरजी ने कहा कि कफ और पित्त ही स्राव के रूप में आते हैं, वात नहीं आता। श्री डेग्वेकरजी ने कहा कि ये दोष स्थूलरूपेण शरीर के अन्दर स्राव (Secretions) के रूप में आते हैं, परन्तु इनमें भी कफ और पित्त ही स्राव के रूप में आते हैं, वात सदा सूक्ष्म होने से अव्यक्त कहा गया है। वात के स्थूलरूप को भी हम आँखों से नहीं देख सकते। एसीलिए वात को 'अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च' कहा गया है। यहाँ 'अव्यक्त' का अर्थ 'अदृश्य' मात्र है। अतः वायु का ज्ञान वायु के अदृश्य होने से उसके कर्म द्वारा ही होता है। प्राकृत वायु के गुणों में लिखा है 'तत्र रूक्षो लघुः शीतः चलोऽथ विशदः खरः'।

इस पर आचार्यजी ने कहा कि वायु के ये रूक्षादि गुण तथा रौक्ष्यादि स्वरूप विकृत अवस्था के हैं क्योंकि चरक सूत्रस्थान महारोगाध्याय में स्पष्ट रूप से कहा है 'सर्वेष्वपि खल्वेतेषु वातविकारेषूक्तेषु अन्येषु चानुक्तेषु वायोरिदमात्मरूपमपरिणामी कर्मणश्च स्वलक्षणं यदुपलभ्य तत्तदवयवं वा विमुक्तसन्देहा वातविकारमेवाध्यवस्यन्ति कुशलाः। तद्यथा रौक्ष्यं शैत्यं लाघवं वैशद्यं गतिरमूर्तित्वं च वायोरात्मरूपाणीत्यादि।'

इस पर श्री डेग्वेकरजी ने कहा कि उक्त सूत्र में 'अपरिणामो' शब्द आया हुआ है जिसका अर्थ सहज सिद्ध' होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि यहाँ वायु का आत्मरूप विकृत वायु के लिए वर्णित है, तथापि प्रकृत अवस्था में ही गुण प्रकृत रूप में रहते हैं जो बढ़ कर विकृत रूप धारण कर लेते हैं। प्रकृत रूप में हमारे स्वास्थ्य के साधक होने से ये गुण अनुकूल पड़ते हैं जिससे हम उनका अनुभव नहीं करते। बढ़ने पर इन गुणों का अनुभव होने से यहाँ आत्म-रूप में पाठ आया है। इसलिए हमें उक्त रूक्षादि गुणों को वायु के प्रकृत रूप मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि सत्कार्यवाद के अनुसार यदि ये गुण वायु के अन्दर प्रकृत रूप में न होंगे तो इनकी वृद्धि विकृति के रूप में कैसे हो सकती है?

इस तत्त्वावलोकन के बाद आचार्यजी ने कहा कि उक्त रूक्षादि गुण प्रकृत वायु के गुण माने जा सकते हैं ; परन्तु ये गुण प्रकृत अवस्था में अनुभव के अन्दर नहीं आते।

पित्त का स्वरूप-निर्णय

श्री डेग्वेकरजी ने कहा कि पित्तों के वर्णन में पाचक पित्त का वर्णन अधिक स्पष्ट

है। साथ ही पित्तों में यह प्रधान पित्त है। अतः सर्वप्रथम इस पित्त का ही वर्णन हम प्रारम्भ करते हैं।

पाचक पित्त---अष्टांगहृदय सूत्रस्थान अध्याय १२ में इसका वर्णन निम्न प्रकार है—१. यह पंचात्मक है (पित्तं पंचात्मकम्)

२. पक्वाशय और आमाशय के बीच में निकलता है (पक्वामाशयमध्यगम्)।

३. पाँचभौतिक है।

४. तैजस गुण के अधिक होने से इसने द्रवत्व को त्याग दिया हैं (तैजसगुणोदयात् त्यक्तद्रवत्वम्)।

५ पाकादि कर्म करने से इसे अनल (अग्नि) कहा गया है।

६. यह अन्न को पचाता है और सार तथा किट्ट भाग को अलग करता है।

७. यह अपने स्थान में रह कर शेष पित्तों पर अनुग्रह करता है अर्थात् उनका पोषण करता है।

इन सब वर्णनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आमाशय और पक्वाशय के बीच में निकलने वाले पाचक स्राव ही पित्त हैं।

इस पर सभापतिजी ने कहा---"आयुर्वेद शास्त्र में सामान्य गुणकर्मों को देख कर अनेक रूप में आने वाले द्रव्यों की भी एक ही संज्ञा दी गई है। इस नियम के अनुसार शरीर के विविध अवयवों से निःसृत होने वाले सभी स्राव जिनसे पचन का कार्य होता है उन्हें पाचक पित्त कहते हैं।"

इस पर डा० बनर्जी ने कहा कि हमें यह सर्वप्रथम निश्चय करना है कि सब प्रकार के (पाँच प्रकार के) पित्तों का स्वरूप क्या है ? क्या ये सब एन्जाइम्स हैं ? या एन्जाइमयुक्त द्रव पदार्थ जो स्राव के रूप में पचनकार्य के लिए आते हैं।

इस पर डा० प्रसादीलाल झा ने कहा "एन्जाइम" वह मूल तत्त्व है, जिससे पचन कार्य सम्पन्न होता है। अतः अग्निकर्म करने वाला यह द्रव्य ही पित्त है।"

डा० बलीराम येरकुण्ठवार ने कहा—"एञ्जाइम पित्त नहीं है, वातल द्रव्य है; क्योंकि एञ्जाइम अग्निकर्म का करने वाला नहीं होता, नियोजक होता है। यह नियोजन का कार्य वात का है। अतः एञ्जाइम वातल द्रव्य है । इस एञ्जाइम के संयोग से पाचक स्रावों में स्थित लवणों के द्वारा अन्न का परिपाक होता है।

इसपर उनसे संयोजक (वैद्य रामरक्ष पाठक) ने पूछा, कि एञ्जाइम को हम वातल द्रव्य मान लें, तो पाचकपित्त किसे मानें।

इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिला।

इसके बाद श्री कुलकर्णी जी ने कहा कि यदि हम दोषों के स्थूल रूप पर विचार करना चाहें तो शास्त्रोक्त इनके विसर्ग, आदान और विक्षेप क्रिया द्वारा ही हम इनका ज्ञान कर सकते हैं। कफ की विसर्ग क्रिया, पित्त की आदान क्रिया और वायु की विक्षेप क्रिया क्रमशः सोम, सूर्य और अनिल की क्रियाओं से साम्य रखती हैं। देखने से पता चलता है कि सम्पूर्ण शरीर तथा शरीर के घटक देह परमाणु (Cell) के अन्दर भी उक्त त्रिविध क्रियायें तीनों दोषों द्वारा सम्पन्न होती हैं। उक्त एञ्जाइमों के भी तीन प्रधान कर्म देखे जाते हैं, जैसे पचन का प्रवर्तन, पचन कर्म तथा प्रसाद एवं मल भाग का विवेचन कर स्वयं पृथक् हो जाना। इन कर्मों को देखने से भी एञ्जाइम्स का प्रधान कर्म पाचक पित्त के कर्म से साम्य रखता है। अतः एञ्जाइम पाचक पित्त है, ऐसा प्रतीत होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनों के अनन्तर यह विचार स्थिर हुआ कि पक्वाशय तथा आमाशय के मध्य में आने वाले सभी पाचक रसगत पाचक तत्त्व (एञ्जाइम्स) पाचक पित्त हैं और पाचक पित्त का स्थान आमाशय तथा पक्वाशय का मध्य प्रदेश है।

रञ्जक पित्त—श्री डेग्वेकर जी ने रंजक पित्त का वर्णन करते हुए कहा—"रंजको रसरंजनात्" तथा "यत्तु यकृत्प्लीह्नोः पित्तं तस्मिन रंजकोऽग्निरिति संज्ञा, स रसस्य रागकृत् उक्त" (सु० सू० २१)। इस वर्णन के अनुसार रस को रंगने वाला तथा यकृत् और प्लीहा में रहने वाला पित्त रंजक पित्त कहलाता है।

इस पर डा० बनर्जी ने कहा कि वाग्भट ने आमाशय को भी रंजक पित्त का स्थान माना है जैसे, "आमाशयाश्रयं पित्तं रंजकं रसरंजनात्" (सूत्र स्थान अ० १२ श्लोक १३)। इसलिये हमें 'आमाशय' शब्द का पहले निर्णय करना होगा। आमाशय और पक्वाशय किसी एक स्थान को न कह कर प्रसङ्गानुसार या अधिकरणानुसार अनेक अवयवों के लिये, जहाँ पर रस आमावस्था या पक्वावस्था में रहता है, आयुर्वेद में व्यवहृत हुआ है, जैसे सुश्रुत निदानस्थान अश्मरी रोग में वस्ति का वर्णन करते हुए 'पक्वाशय' शब्द सम्पूर्ण मूत्रप्रणाली के लिये आया हुआ है। अतः वाग्भटोक्त रंजक पित्त के स्थान आमाशय से भी यकृत् का ग्रहण कर सकते हैं। आधुनिक शारीर क्रिया-विज्ञान में भी आमाशय से निकलने वाले रस में एक ऐसे तत्त्व का अवलोकन किया गया है जो रक्त के निर्माण में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त रक्त का निर्माण हड्डियों की लाल मज्जा में होता है, ऐसा आधुनिक शारीर क्रिया-विज्ञान कहता है। आयुर्वेदशास्त्र में मज्जा को

धातु के अन्तर्गत ग्रहण किया गया है । धातुओं के अन्दर धातुओं का निर्माण होने से रक्त का निर्माण उस वर्णन के अन्दर आ जाता है । परन्तु तथ्य यह है कि अस्थि का लाल मज्जा तभी रक्त-निर्माण में समर्थ होता है जब वह यकृत् में उत्पन्न होने वाले रक्तोत्पादक तत्त्व से प्रभावित होता है इसलिये यकृत् में उत्पन्न होने वाले इस रक्तोत्पादक तत्त्व को ही रंजक पित्त मानना चाहिये । गौण रूप में आमाशय में निकलने वाला रंजक तत्त्व भी रंजक पित्त माना जा सकता है। यह प्रत्यक्षतः देखा गया है कि रक्ताल्पता में यकृत् रस के खिलाने से या सूची-वस्ति देने से रक्त का निर्माण होने लगता है। आयुर्वेद में भी रक्त की कमी में यकृत का रस देने का विधान है । इससे यकृत् स्थित रक्तोत्पादक तत्त्व ही रंजक पित्त है यह विचार पुष्ट हो जाता है।

साधक पित्त--श्री डेग्वेकर जी ने इसके सम्बन्ध में कहा—'यद् पित्तं हृदयस्थं तस्मिन् साधकोऽग्निरिति संज्ञा । सोऽभिप्रार्थितमनोरथसाधनकृत् उक्तः ॥ (सु० सू० २१। १०)।' 'हृदयस्थं बुद्धिमेधाभिमानोत्साहैरभिप्रेतार्थसाधनात् साधकम्' इस वर्णन से पता चलता है कि आधुनिक शास्त्र में इसका कोई पूरा समाधान नहीं मिलता । पूना-परिषद् ने इसे हार्मोन्स कहा है । अतः यह विषय विचारणीय है । हमें किसी ऐसे पदार्थ का जो हृदय में रहता हो और बुद्धि, मेधा, अभिमान, उत्साह, प्रार्थित एवं मनोरथ का साधक हो, खोज करना है ।

इसपर श्री गोडबोले शास्त्री ने कहा कि 'हृदय' शब्द अनेक अर्थों में आयुर्वेद तथा आयुर्वेदेतर ग्रन्थों में प्रयुक्त हुआ है । उन्होंने योगवासिष्ठ आदि में आये हुए उपादेय तथा हेय हृदय का उद्धरण उपस्थित किया ।

इसके बाद संयोजक ने कहा कि हृदय के समीपस्थ सुप्रारेनल ग्लैंड के स्राव एड्रेनेलिन जो उक्त गुणयुक्त होता है उसे 'गंगायां घोषः' के अनुसार साधक पित्त माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव (हार्मोन्स) को भी हम साधक पित्त मान सकते हैं, क्योंकि साधक पित्त के गुणकर्म उनके अन्दर मिलते हैं और ये सभी हार्मोन्स रक्त के द्वारा हृदय में लाये जाते हैं।

आलोचक पित्त—श्री डेग्वेकरजी ने कहा कि इस पित्त का स्थान हमारे शास्त्र में दृष्टि में कहा गया है और इनका कार्य रूप ग्रहण है —"यद् दृष्ट्यां पित्तं तस्मिन् आलोचकंऽग्निरिति संज्ञा । स रूपग्रहणाधिकृतः" (सु० सू० २१।१०)। इस वर्णन के अनुसार नेत्र के अन्तर्गत रहने वाला रजितस्तर (Visual Purple) आलोचक पित्त

का स्थान और उसमें स्थित रंजक तत्त्व (Rhodopsin) को आलोचक पित्त कह सकते हैं।

भ्राजक पित्त—इसका स्थान त्वचा है। यह अभ्यंग, परिषेक, अवगाह, लेप आदि क्रियाओं का ग्राहक तथा पक्ता एवं शरीर की छाया का प्रकाशक है।—"यत्तु त्वचि पित्तं तस्मिन् भ्राजकोऽग्निरिति संज्ञा। सोऽभ्यंगपरिषेकावगाहलेपादीनां क्रियाद्रव्याणां पक्ता छायानां च प्रकाशकः।" (सु० सू० २१)। इसके अनुसार त्वचा में रहने वाला स्वेदग्रन्थि (Sweat glands) और स्नेहग्रन्थि (Sebaceous glands) के अन्दर रहने वाला एञ्जाइम मालूम होता है जिससे परिपाक हो कर ग्रन्थियों के अन्दर से स्नेह निकलता है और शरीर को स्निग्ध एवं मृदु बनाता है तथा त्वचा में भ्राजिष्णुता (Lustre) देता है। इस एञ्जाइम को हम भ्राजक पित्त कह सकते हैं।

पित्त का स्वरूप—आयुर्वेद में पित्त का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

पित्तं सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम्। अ० हृ० सू० १

पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नीलं पीतं तथैव च।
उष्णं कटुरसं चैव विदग्धं चाम्लमेव च॥ सु० सू० २१-११

औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं द्रवमनतिस्नेहो वर्णश्च शुक्लारुणवर्ज्यौ रसौ च कटुकाम्लौ पित्तस्यात्मरूपाणि।
च० सू० २०-१४

मुख से प्रारम्भ हो कर आमाशय के अन्त तक का महास्रोत का विभाग समाप्त होने पर पक्वाशय प्रारम्भ होता है। इस पक्वाशय के प्रारम्भिक दस इञ्च लम्बे विभाग को पक्वामाशय-मध्य अथवा ग्रहणी संज्ञा आयुर्वेद शास्त्र में दी गयी है। पाश्चिमात्य शारीर शास्त्र में इसको (Deuodenum) कहा है यकृत् (Liver) तथा अग्न्याशय (Pancreas) नामक दो बड़े ग्रन्थियों के स्राव एकत्र मिल कर एक नलिका द्वारा इसी 'पक्वामाशय-मध्य' संज्ञक विभाग में आ कर टपकते रहते हैं। इस मिश्र स्राव का वर्ण हरा तथा पीला (शुक्लारुणवर्ज्य) होता है। इसका गन्ध किञ्चित् सड़ी हुई मछली का (विस्रः—आमगन्धः) तथा रस खट्टा तथा चिरपिरा (रसौ च कटुकाम्लौ) होता है। प्रत्यक्षानुभव से निश्चित किये हुए पाश्चिमात्य ग्रन्थों में यह वर्णन पाया जाता है। यह द्रव्य तीक्ष्ण (जलमिश्रत तेजाब के समान कार्य करने वाला), द्रव (पतला) तथा किञ्चित् स्नेहयुक्त (चिकनाहट लिये हुए) होता है। अतः यही सचेतन द्रव द्रव्य पित्त दोष है यह निश्चित होता है।

इस पर श्री आचार्यजी ने कहा कि यहाँ जो पित्त का कटु रस कहा गया है वह क अर्थ में ही समझना चाहिये। परन्तु तिक्तरस से पित्त की शान्ति होती है ऐसा र्न मिलता है । यहाँ यह समझना चाहिये कि इस तिक्तरस से विदग्ध पित्त जो ल होता है उसकी शान्ति होती है। गंगाधर सेन ने अपनी टीका में इसे स्पष्ट किया —जैसे "आमस्याम्लस्य विपरीतेन तिक्तेन प्रशमः" (चरक सूत्रस्थान प्रथम अध्याय क ५६ पर गंगाधर सेन की टीका)। अन्यथा पित्त का शमन मधुर और कषाय रस से होता है।

कफ के स्वरूप तथा स्थान का निर्णय

श्री डेग्वेकरजी ने कहा कि कफों में क्लेदक कफ प्रधान है क्योंकि उसीसे अन्य ों का पोषण होता है । अतः सर्वप्रथम क्लेदक कफ का ही स्वरूप निर्णय करना चित होगा।

क्लेदक कफ—इसका स्थान आमाशय कहा गया है और इसके कर्म में कहा ा है कि यह अपने आहार को अपने उदक गुणों के द्वारा प्रक्लिन्न करता है, जिससे हार सुखजर हो जाता है। जैसे—"अन्नसङ्घातक्लेदनात् क्लेदकः" (अ० हृ० सू० १२) आमाशयः चतुर्विधस्याहारस्याधारः । स च तत्रोदकगुणैराहारः प्रक्लिन्नः सुखजरश्च वति।" (सु० सू० २१) । आमाशय के अन्दर दो प्रकार का स्राव होता है—(१) ामाशयिक रस (Gastric juice) और (२) श्लेष्मधर आवरणों का स्राव (Mucous cretions) उक्त क्लेदन कार्य प्रधानतः महास्रोत (Alimentary canal) के आद्य ग अर्थात् मुख से लेकर आमाशय तक जब तक आमाशयिक रस का लवणाम्ल ydrochloric acid) वहां आये हुए अन्न में नहीं मिल जाता तब तक लालास्राव-टैलीन नामक एञ्जाइम का कार्य होता रहता है और उस समय तक आमाशयगत न मधुर और शीतल रहता है। सुश्रुत में कहा है—"माधुर्यात् पिच्छिलत्वाच्च प्रक्ले-त्वात्तथैव च। आमाशये सम्भवति श्लेष्मा मधुरशीतलः ॥" सू० २१। यह वर्णन पूर्ण से ऊपर के वर्णन से मिल जाता है । अतः मुख में आने वाला लाला से लेकर माशय पर्यन्त का स्राव मिल कर क्लेदक कफ कहलाता है। आयुर्वेद शास्त्र में क्लेदक क को ही अन्य शेष कफों का पोषक कहा है। जैसे—"स तत्रस्थ एव स्वशक्त्या शेषाणां ष्मस्थानानामुदककर्मणा अनुग्रहं करोति" अर्थात् वह क्लेदक कफ ही उदक कर्म द्वारा र सभी कफों को अनुगृहीत करता है।

बोधक कफ—"बोधको रसबोधनात्" तथा "रसनस्थः सम्प्रबोधनात् बोधकः" (वाग्भट) तथा "जिह्वामूलकण्ठस्थो रसनेन्द्रियस्य सौम्यत्वात्सम्यग्रसज्ञाने वर्तते" (सु० सू० २८)। इन सूत्रों में वर्णित बोधक कफ के स्थान तथा कर्म से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि यह मुखकुहर में स्थित श्लेष्मधर आवरणों से (Mucous membranes) से स्रवित होने वाला रस ही बोधक कफ है।

तर्पक कफ—इसके सम्बन्ध में कहा है—"शिरःसंस्थोऽक्षितर्पणात्तर्पकः" (अ० हृ० सू० १२) अर्थात् सिर के भीतर मस्तिष्क के चारों ओर रहने वाले आवरणों के भीतर का द्रव (Cerebro-spinal fluid) जिससे सभी इन्द्रियाँ (इन्द्रियों के केन्द्र) तृप्त होती हैं, तर्पक कफ है।

श्लेषक कफ—इसके सम्बन्ध में कहा है—"सन्धिसंश्लेषणात् श्लेषकः" (अ० हृ०) अर्थात् सन्धियों में श्लेषण उत्पन्न करने से इसका नाम श्लेषक है। इससे यह सन्धि में निकलने वाला तरल (Synovial fluid) ही श्लेषक कफ है।

इस पर संयोजक ने कहा कि यहाँ पर अस्थि-सन्धि शब्द उपलक्षण मात्र प्रतीत होता है, क्योंकि सुश्रुत सू० २१ में कहा है कि "सन्धिस्थस्तु श्लेष्मा सर्वसन्धिसंश्लेषणात् सर्वसन्ध्यनुग्रहं करोति" अर्थात् श्लेषक कफ केवल अस्थिसन्धियों का ही संश्लेषण नहीं करता, बल्कि शरीरस्थ सभी सन्धियों का। इसलिये 'अस्थिसन्धि' को उपलक्षण ही यहाँ मानना उपयुक्त होगा।

अवलम्बक कफ—अवलम्बक के सम्बन्ध में कहा गया है—'उरःस्थस्त्रिकसन्धारणमात्मवीर्येणान्नरससहितेन हृदयावलम्बनं करोति।" (सु० सू० २१)। इसलिए हृदय प्रदेश में रहने वाला कोई ऐसा द्रव्य को अन्नरससहित स्ववीर्य से हृदय का अवलम्बन करता हो तथा त्रिक का सन्धारण करता हो खोजना होगा। हृदय-प्रदेश में दो प्रकार का तरल जैसे फुप्फुसावरणीय तरल (Pleural fluid) तथा हृदयावरणीय तरल (Pericardial fluid) देखने में आता है; जो कफ के गुणों से विशिष्ट होता है और जिस से हृदय का अवलम्बन भी होता है। परन्तु 'अन्नरससहितेन स्ववीर्येण' की युक्ति इसके साथ नहीं बैठती। साथ ही त्रिकसन्धारण का कार्य भी इस से नहीं होता। 'त्रिक' शब्द के अर्थ में भी मतभेद है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में 'त्रिक' से 'श्रोणि फलक तथा त्रिकास्थि के संगम का ऊपरी भाग' माना जाता है जो हृदय से बहुत दूर होने के कारण यहां ग्राह्य नहीं हो सकता। दूसरा, 'त्रिक' का अर्थ 'अंसफलकों तथा पृष्ठवंश का

न्धिस्थल' भी समझा जाता है। इस का भी उक्त तरलों से कोई सम्पर्क नहीं। अतः ह विषय चिन्त्य है।

इस पर डा० बनर्जी ने कहा—"त्रिक शब्द का अर्थ शास्त्रों में स्पष्ट नहीं है। 'त्रिक' जो उपर्युक्त अर्थ बतलाया गया है, वह यहां पर नहीं ग्रहण किया जा सकता। यदि युर्वेदोक्त सत्व, आत्मा और शरीरका संयोग रूप त्रिक अर्थात् आयु को हम मान लें र हृदयप्रदेशस्थ रक्तगत तरल भाग (Plasma) को अवलम्बक कफ मान लें तो वलम्बक कफ के लिए वर्णित सभी वर्णन युक्तियुक्त हो जाते हैं, क्योंकि रक्त का Plasma) प्लाज्मा अन्नरस से तैयार होता है और जीवन का धारण करने वाला है जीवन सत्व, आत्मा और शरीर का त्रिक रूप है। यह हृदय का अवलम्बन भी ता है। इस के अतिरिक्त वाग्भट ने अवलम्बक कफ को शेष कफों का पोषक भी कहा रक्तप्लाज्मा से सभी कफों का पोषण होता है अतः वाग्भट का यह वर्णन भी यहां क्तियुक्त हो जाता है।

वात का स्वरूप

अपान वात का उत्पत्तिस्थान—अपान का मूलार्थ गुदद्वार है। 'अपानोऽपाना:' ऐसा अष्टांगहृदयकार लिखते हैं। अर्थात् जिस वात का निःसरण गुदद्वारा ता है उसे अपान शब्द नियोजित है अतः इसका विचार करें कि यह अपान से कलने वाला वात द्रव्य शरीर में किस स्थान में उत्पन्न होता है।

ग्रहणीचिकित्साध्याय में अन्नविपरिणमन क्रिया का विवरण चरक में किया है। स में आचार्य लिखते है :—

> पक्वाशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वह्निना।
> परिपिण्डितपक्वस्य वायुः स्यात्कटुभावतः ॥च० चि० १५।११

आमाशय में क्लेदक कफ का तथा पक्वामाशयमध्य में पाचक पित्त का अन्न में श्रण होने के पश्चात् जब यह अन्न पक्वाशय में पहुँचता है, तब वहां इस का सम्पूर्ण पाचन कार्य समाप्त हो कर उसी स्थान में सूक्ष्म स्रोतसों द्वारा सारभूत अन्नरस (Chyb) का संशोषणकार्य आरम्भ होता है। यह साररस दूध के समान श्वेत तथा द्रव्य होने के कारण विपाचितान्न में से जब यह द्रव पदार्थ अलग हो जाता है, तब अन्न परिपिण्डित अथवा घनरूप (गाढ़ा) रह जाता है। इस संशोषणक्रिया में लेदक कफ पाचकपित्त आदि द्रव द्रव्यों के रासायनिक परिणाम (Chemical

Action) के कारण एक वायुरूप द्रव्य उत्पन्न होता है, जिस प्रकार सोडा में कोई अम्ल मिलाने से (Carbonic acid gas) नामक वायु बनता हुआ हम अनुभव करते हैं।

आधुनिक शारीरक्रियाविज्ञान द्वारा ज्ञात होता है कि हम लोग जो शाक, धान्य, शिम्बी आदि वानस्पत्य (Vegetables) आहार करते हैं उन में Starch, Glucose, Lactose आदि द्रव्य होते हैं। उन पर हास्रोत में उत्पन्न होने वाले अनेक स्रावों (Secretions) का रासायनिक संस्कार हो कर जो शकृत् में परिणत होने वाले अनेक द्रव्य बनते हैं, उसी रासायनिक क्रिया में carbon dioxide नामक एक वायुरूप द्रव्य उत्पन्न होता है। इस विषय के रसायनशास्त्रीय समीकरण (Chemical Reaction Equation) उद्धृत कर के मैं आपका बहुमूल्य समय नहीं लेना चाहता। जिन महाशयों को उनकी आवश्यकता हो उन्हें उस विषय से परिचित कराया जा सकता है। इसी वायु की अपान वायु संज्ञा दी हुई है।

यह वायुद्रव्य रासायनिक क्रिया का फलस्वरूप द्रव्य होने के कारण आचार्यों ने उपरिनिर्दिष्ट वचन में 'वायुः स्यात्' ऐसी सार्थक शब्दयोजना की है। कफ तथा पित्त द्रव्यों की उत्पत्ति को 'उदीर्यते' शब्द का प्रयोग तथा वायु की उत्पत्ति को 'स्यात' शब्द का प्रयोग बड़ा अन्वर्थक है। कफ तथा पित्त द्रव्य अन्य ग्रन्थियों से स्वयं बाहर निकलते (Secrete) हैं किन्तु वायु द्रव्य रासायनिक संस्कार (Chemical reaction) के फलस्वरूप उत्पन्न होता है, यह भेद स्पष्ट करने के लिये भिन्न शब्दयोजना की गयी है। इससे आचार्यों की सूक्ष्मदृष्टि तथा उत्पत्ति प्रकारों के भेद के यथातथ्य वर्णन का परिचय होकर उनके सम्बन्ध की आदरबुद्धि वृद्धिगत होती है।

वातविषयक अशास्त्रीय विचारधारा——महास्रोतसान्तर्गत कफ तथा पित्त द्रव्य शरीर में उदीरित होते हैं अतः उन्हें पाश्चिमात्य शास्त्रीय Secretions संज्ञा योग्य ही है। परन्तु ये उदीरित द्रव्य हैं, अतः वात द्रव्य भी उदीरित द्रव्य होना ही चाहिए इस प्रकार का अशास्त्रीय आग्रह 'महासम्मेलन पत्रिका' में प्रसिद्ध लेखों में पाया जाता है। यह विचार धारा किसी भी शास्त्रीय आधार पर अधिष्ठित न होने के कारण इसकी उपेक्षा करना ही योग्य होगा।

अपानवायु का कार्य——यह अपानवायु (Carbonic acid gas) जब तक योग्य प्रमाण में (Normal) उत्पन्न होता रहता है तब तक वह धमनी-चक्र

(Nervous System) को सुस्थिति में रखता है तथा धमनियों के कार्य को भली-भांति चलाता है। वालर (Waller) नाम के संशोधक ने इस वायु के धमनीचक्र पर होने वाले परिणाम के विषय में संशोधन किया है।

He (Waller) finds that the effect of Carbonic acid in large doses is to cause a diminution and finally the disappearance of the activity of the nerves while small doses of Carbonic acid increase the action currents.

इस वायु के धमनीचक्र पर होने वाले परिणामों के कारण ही इस वायु के सम्पूर्ण कार्य धमनीचक्र के कार्य हैं। अतएव चरक सू० १२८ में वर्णन किये हुए 'वायुस्तंत्रयंत्रधरः प्रवर्तकश्चेष्ठानामु-ावचानां आयुषोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः' इत्यादि सब धमनीचक्र के कार्य तथा—

उत्साहोच्छ्वासनिः श्वास चेष्टावेगप्रवर्तनैः।
सम्यग्गत्या च धातूनामक्षानां पाटवेन च ॥
अनुगृहात्यविकृतः। अ० हृ० सू० ११-२.

यह वर्णन वाग्भट ने वायु के कार्य के वर्णन के रूप में किया है। जिस प्रकार राज्यकारभार चलाने वाले कार्यकर्त्ताओं (officers) पर नियन्त्रण राजा का होता है उसी प्रकार इस धमनी-चक्र पर नियन्त्रण इसी वायु का होता है।

वृद्ध-अपानवात-नाशक प्रधान उपक्रम—जब अनेक बाह्य कारणों से तथा मिथ्या आहार से इस अपान वायु की उत्पत्ति विशेष प्रमाण में होकर उसकी वृद्धि होती है तब उसे शरीर से बाहर निकालने का सब से यथेष्ट उपाय चरकचार्य सू० २०-१३ में दिखाते हैं—

"आस्थापनानुवासनं तु खलु सर्वेभ्योपक्रमेभ्यः वाते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तद्धि आदित एव पक्वाशयमनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं वातमूलं छिनत्ति। तत्रावजितेऽपि वाते शरीरान्तर्गताः वातविकाराः प्रशान्तिमापद्यन्ते यथा वनस्पतेर्मूले छिन्ने स्कन्धशाखा-वरोहकुसुमफलपलाशादीनां नियतो विनाशस्तद्वत्।"

आस्थापन-अनुवासन वस्ति द्वारा जिस वृद्धवात का पक्वाशय से नाश होता, जैसा कि आचार्य यहां कहते हैं, वह क्या मन-आत्मा के समान अमूर्त द्रव्य होगा? यदि नहीं तो 'तत्र वायुः सदा सूक्ष्मः अप्रत्यक्षः विद्युच्छक्ति वदतीन्द्रियः' यह विधान कहां तक शास्त्रसम्मत हो सकता है। क्या विद्युच्छक्ति के भी रूक्ष-लघु-शीत आदि गुण कहीं वर्णन किये गये हैं?

अपानवायु ही शरीर वातविकारों का मूल है। अतएव उस कुपित वात द्रव्य को यहीं से शरीर के बाहर करना योग्य है।

वस्ति चिकित्सा का महत्व——इसी कारण इस आस्थापन अनुवासन वस्ति का चरक में इस प्रकार वर्णन किया है कि वस्ति चिकित्सा ही सम्पूर्ण चिकित्सा है।

च० सि० १—३८-३९

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा मर्मोर्ध्वसर्वावयवांगजाश्च ।
ये सन्ति तेषां न हि कश्चिदन्यो वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥
विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानां विक्षेपसंहारकरः स यस्मात् ।
तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति कृत्स्नां चिकित्सामपि वस्तिमेके ॥

वात द्रव्य की प्रशंसा—रोग उत्पन्न करने में पक्काशयगत अपान वात द्रव्य का इतना महत्त्व होने के कारण ही वातकलाकलीयाध्याय (च० सू० अ० १२) में इसकी 'सुखासुखयोर्विधाता......वायुरेव भगवानिति' इन शब्दों से प्रशंसा की गई है। तथा इस प्रशंसा से चिकित्सा-शास्त्र में क्या लाभ हो सकता है ऐसा प्रश्न उपस्थित करके योग्य उत्तर भी दिया गया है। मरीचि कहते हैं—"यद्यपि एवमेतत् किमर्थस्यास्यवचने विज्ञाने वा सामर्थ्यमस्ति भिषग्विद्यायां भिषग्विद्यामधिकृत्येयं कथा प्रवृत्ता इति।" प्रश्न का उत्तर मननीय है। वायोर्विद उवाच—"भिषक पवनमतिबलमतिपरुषमिति शीघ्रकारिणमत्यादिकं चेन्नानुनिषम्येत, सहसा प्रकुपितमतिप्रयतः कथमग्रेऽभिरक्षितुमभिधास्यति प्रागेवैनमत्ययभयात् वायोर्यथार्था स्तुतिरपि भवत्यारोग्याय....परमायुः प्रकर्षाय चेति।" इससे स्पष्ट है कि भगवान्, विष्णु, विभु इत्यादि विशेषण केवल स्तुति रूप हैं जिनसे शरीरान्तर्गत वातद्रव्य की शक्ति का पूर्ण परिचय हो सके।

इस प्रकार महास्रोतान्तर्गत पक्काशय में उत्पन्न होने वाले अपान संज्ञक वातद्रव्य का विस्तृत वर्णन मैंने आपके सामने उपस्थित किया है।

बावा साहब पराँजपे ने कहा कि केवल 'स्यात्' पद को लेकर हम पित्त-कफ द्रव्य से वायु के वर्णन को पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि जिस प्रकार रसदोष सन्निपात में समान गुण भूयिष्ठ द्रव्यगत रसों से कफ और पित्त की वृद्धि या पोषण होता है उसी प्रकार वायु की भी वृद्धि तथा पोषण का उपदेश शास्त्रों में उपलब्ध होता है। वाग्भट्ट ने वात के लिये भी 'उदीरण' शब्द का उपयोग किया है, जैसे अ० हृ० शा० अ० ३ में कहा है—'आदौ षड्रसमप्यन्नं मधुरीभूतमीरयेत् फेनीभूतं कफं जातं विदाहादम्लतां

ततः। पित्तमामाशयात् कुर्याच्चवमानं च्युतं पुनः ॥ अग्निना शोषितं पक्वं पिण्डितं कटु मारुतम् ॥" इस वर्णन में प्रत्येक दोष के लिये एक ही शब्द 'ईरयेत' आया है। अतः हमें किसी ऐसे द्रव्य को वातद्रव्य के रूप में शरीरान्तर्गत मानना पड़ेगा जो कफ और पित्त के समान ही महास्रोत में आते हों या उत्पन्न होते हों जिनका समान गुण भूयिष्ठ आहार द्रव्यगत रस से पोषण या वृद्धि होती हो। आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित वात, द्रव्य तथा वातयन्त्र के कर्मों को पृथक्-पृथक् कर समझना होगा। वातयन्त्र से हमें नर्वस सिस्टम समझना चाहिये, परन्तु वातद्रव्य पक्वाशय में आने वाला यह स्राव है जिसका स्वरूप उड़नशील होने के कारण सेमीगेसस (Semigaseous) है। इसी प्रकार पित्त सदा द्रव के रूप में होने से लिक्वड (Liquid) और कफ घनभाव होने वाला प्रवृत्ति के होने से सेंमीसोलिड (Semi solid) कहा जा सकता है।

इस पर श्री डेग्वेकर जी ने कहा कि जब तक आप शास्त्रीय प्रमाणों के साथ अपनी युक्ति का समर्थन नहीं करते तब तक हमें यह मान्य नहीं हो सकता।

इसके बाद डा० बनर्जी ने श्री डेग्वेकर जी के इस वचन का कि अपान वायु (Carbon dioxide) है, यह कहते हुए खण्डन किया कि अपान वायु के स्थान तथा कार्यों का जो वर्णन शास्त्रों में मिलता है उससे पता चलता है कि carbon dioxide का उससे कोई सम्बन्ध नहीं। इसके अतिरिक्त अपान वायु के स्थान में जो गैस तैयार होता है उसमें भी केवल carbon dioxide नहीं होता। अतः अपान वायु को कार्बन डायक्साइड मानना युक्ति युक्त नहीं।

इसके बाद श्रीयुत् डा०वलीराम येरकुण्ठवारजी ने भी श्री डेग्वेकरजी के इस कथन का कि अपान वायु carbon dioxide है खण्डन किया।

इसके बाद श्री गोडबोले शास्त्री ने कहा कि शास्त्रों में एक ही वायु के, इसके कर्म के अनुसार अनेक भेद किये गये हैं, जैसे प्रेरक वायु, पोषक वायु, शोषक वायु, घटक वायु, उत्सर्जनीय वायु, विसर्जनीय वायु।

प्राणवायु--इसके सम्बन्ध में श्री डेग्वेकरजी ने कहा कि शास्त्रों में इसका वर्णन निम्न प्रकार मिलता है :—"वायुर्यो वक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक्।" (सु० नि० १—१३)। अर्थात् उच्छ्वास द्वारा जिस बाह्य वायु (हवा) को हम मुख और नासिका से भीतर प्रवेश कराते हैं, वह वायु प्राण वायु है। इसमें आक्सीजन का प्रमाण अधिक रहता है जो प्राणरक्षण के लिये परमावश्यक द्रव्य है। प्राणायाम क्रिया में एक

नासिकारन्ध्र द्वारा जिस वायु को ऊपर की ओर खींचते हैं उसकी 'प्राण' संज्ञा है तथा दूसरे नासिकारन्ध्र द्वारा जिसे छोड़ते हैं उसे 'अपान' कहा गया है। इसका कारण यही है कि प्राणवायु में आक्सीजन की मात्रा अधिक होती है और नाक द्वारा निकाले हुए वायु में (अपान वायु में) कार्बन डायक्साइड की मात्रा अधिक होती है। गीता में कहा भी है—"प्राणापानौ समौकृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ" (गी० अ० ६)। इस वर्णन से भी प्राणवायु आक्सीजन-प्रधान वायु के लिये तथा अपान वायु कार्बन डायक्साइड प्रधान वायु के लिये व्यवहार हुआ है ऐसा प्रमाणित हो जाता है।

इस पर डा० बनर्जी ने कहा कि प्राणवायु का जो गुणकर्म शास्त्रों में वर्णित है, उसको देख कर आक्सीजन को ही प्राणवायु मान लेना युक्तिसंगत नहीं होता।

इस पर डा० प्रसादीलाल झा ने कहा कि आक्सीजन के बिना शरीर का कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। आक्सीजन के अभाव में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। अतः आक्सिजन को प्राणवायु मान सकते हैं क्योंकि प्राणवायु को 'देहधृक्' कहा गया है।

उदानवायु, व्यानवायु और समानवायु—श्री डेग्वेकर जी ने कहा कि इसी प्रकार उदानवायु, व्यानवायु तथा समानवायु भी कोई विशेष मिश्रित वायु हैं।

इस पर डा० प्रसादीलाल झा ने कहा कि ये तीनों वायु पृथक्-पृथक् हैं, अतः इनका हमें पृथक्-पृथक् विचार करना होगा। वायु का जो कुछ कार्य होता है, वह सब नाड़ी-संस्थान (नर्वससिस्टम) से होता है। नाड़ियों के अन्दर के कार्य नाड़ी-स्पन्दन (Nerve impulse) से सम्पन्न होते हैं। यह स्पन्दन नाड़ी-सूत्रों द्वारा (Dendrites) तथा नाड़ीकन्दों (Neurons) द्वारा सम्पन्न होता है। अतः वह पदार्थ जो नाड़ी-स्पन्दन को उत्पन्न करता है, वायु है।

इसके बाद श्री डेग्वेकर जी ने कहा कि हमें यह निर्णय करना होगा और देखना होगा कि आक्सिजन और कार्बन डायक्साइड का इन नाड़ियों तथा नाड़ीस्पन्दनों से कोई सम्बन्ध है या नहीं क्योंकि बाह्य वायु में हम इन तत्त्वों को पाते हैं।

इस पर डा० बनर्जी ने कहा कि बाहर के वायु से भीतर के वायु का कोई सरोकार नहीं। शरीर के अन्दर का वायु शरीर के सब प्रकार के चेष्टाओं का प्रवर्तक होता है। यदि बाह्य वायु ही शरीर के अन्दर जाकर यह कार्य करे तो हवाई जहाज पर उड़ने वाले आदमी कीं चेष्टाएँ हवाई जहाज के उस स्थान पर जाने पर जहाँ वायु नहीं है बन्द हो जातीं।

इस पर पण्डित रामनारायण शर्मा एम० ए० साहित्यव्याकरण आचार्य, सुपरिटेंडेंट, बिहार संस्कृत एसोसिएशन ने यह कहते हुए कि भारतीय दर्शनों में तथा आयुर्वेद शास्त्र में शरीरचर तथा बहिश्चर वायुओं का साम्य दिखलाया गया है, डा० बनर्जी के इस कथन का कि शरीरवायु से बाहर के वायु का कोई सम्बन्ध नहीं है, खण्डन किया। साथ ही यह भी कहा कि हम को आयुर्वेद में वर्णित सिद्धान्तों को दृष्टि में रख कर इस पर विचार करना चाहिए। आयुर्वेद-शास्त्र भारतीय दर्शनों पर प्रतिष्ठित है। अतः भारतीय दर्शनों में वर्णित इस विषय के तथ्यों से हमें सहायता प्राप्त करनी चाहिए।

इसके बाद महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी वाचस्पति ने भारतीय दर्शन तथा वैदिक वाङ्मय में वर्णित जलवायु के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया जिसका सारांश निम्न प्रकार है :—प्राण आदि शब्द आयुर्वेदेतर भारतीय साहित्य में सर्वत्र व्यवहृत हुए हैं और उन पर पर्याप्त विचार किया गया है। प्राण आदि के सम्बन्ध में नैयायिकों का मत है कि वे वायु हैं। उनके यहाँ इनके तीन भेद किये गये हैं—शरीर, इन्द्रिय और विषय भेद से। इसके अतिरिक्त शारीर वायु का भी प्राण आदि भेदों में स्पष्ट वर्णन मिलता है। सांख्य में इस प्रकार से वायु के भेदों का वर्णन उपलब्ध नहीं होता। वे तीनों अन्तःकरण (मन, बुद्धि, अहंकार) के सम्मिलित व्यापार से प्राण का व्यापार चलता है ऐसा मानते हैं। वेदान्त में भी "न वायुः क्रिये" इस सूत्र से उक्त दोनों विचारों का खण्डन किया गया है, उन्होंने कहा है कि इनका पृथक्-पृथक् वर्णन है। इसके लिये "पृथक् उपदेशात्" ऐसा सूत्र कहा है। उनके मत से प्राण वायु को बल का धारण करने वाला कहा गया है। उन्होंने यह भी कहा है कि प्राण ही मुख्य वस्तु है जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परिधारित है। इस प्रश्न के उपस्थित किये जाने पर कि सृष्टि के आदि काल में क्या था, उपनिषदों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उस समय असत् के सिवा और कुछ नहीं था। आगे चल कर असत् के वर्णन में 'असत्' शब्द से 'ऋषि' समझा गया है और "ऋषि ही प्राण है" ऐसा कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपनिषदों में जितने ऋषि, देवता आदि का वर्णन आता है वह सब प्राण का ही नाम है। जहाँ-जहाँ बल और विधारण कार्य होता है वह सब प्राण का ही कार्य है, इसीलिये उपनिषदों में कहा गया है कि "वातं ते प्राणो गच्छतात्"। इससे पता चलता है कि वायु का प्राण से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। साधारणतः कार्य कारण में लय होता है। इस नियम के अनुसार उपर्युक्त वर्णन से वायु का कार्यकारण सम्बन्ध स्पष्ट

हो जाता है। उपनिषद् में व्यान को ही जीवन कारण माना गया है। वही जब ऊपर की ओर जाता है तो उसे 'प्राण' कहते हैं और जब नीचे की ओर जाता है तब उसे अपान वायु कहते हैं। व्यान से ही शारीरिक सब चेष्टाओं की उत्पत्ति आयुर्वेद में भी प्रतिपादित है। हमारे शास्त्र में सभी शारीर प्रयत्नों को दो भागों में विभक्त कर दिया गया है। हमारे शरीर के वे प्रयत्न, जो स्वयं हमारी इच्छा के बिना होते रहते हैं, उन्हें जीवनयोनि प्रयत्न कहा गया है और उन प्रयत्नों को जो हमारी इच्छा के आधीन रहते हैं, इच्छायोनी प्रयत्न कहा गया है। आधुनिक शास्त्र में भी नाड़ी (Nerves) के कार्यों को इस प्रकार के दो भागों में बाँटा गया है। हमारे यहाँ इन सब प्रयत्नों का नियोजक वायु माना गया है। 'वात' शब्द 'वा गति गन्धनयोः' से बना हुआ है। इस लिये गति, ज्ञान, प्राप्ति और उत्साह जिस द्रव्य के द्वारा शरीर में सम्पन्न होते हैं वह 'वात' है। इस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र में उपलब्ध साहित्य से तथा परिषद् में आये हुए आयुर्वेद के विद्वानों की इस सम्बन्ध की चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन विषयों का आयुर्वेद शास्त्र में अति सूक्ष्म दशा से लेकर अति स्थूल दशा तक का विवेचन किया गया है। चिकित्सा कार्य के लिए स्थूल का ही विचार उपादेय होने पर भी विषय के विशेष ज्ञान के लिए सूक्ष्म का विचार भी आवश्यक हो जाता है।

इसके बाद डा० बलीराम येरकुण्ठवार जी ने अपने 'वैद्यक पद्धितयों का समन्वय' नामक पुस्तक से 'त्रिदोष सिद्धान्त का कुछ स्पष्टीकरण' विचार पढ़ कर सुनाया।

(देखें पृ० ५४—६०)

वात के स्वरूप के विषय में श्री डेग्वेकर जी ने निम्नोक्त वक्तव्य में अपने विचारों का सारांश स्पष्ठ किया :—

"In my opinion the Gunas attributed to वातदोष are those of a gaseous substance in the body. CO_2 is produced in the intestines as a result of chemical action of various secretions in the alimentary canal on the food taken. Modern phsiology tells us that the action of CO_2 on nervous system is such that if its quantity increases the nerves gradually loose their action while if the quantity becomes normal the action is regained. CO_2 produced in the intestines and in other minute cells in the body is absorbed by the circulatory system and reaches the nerve centers and thus if it is increased in quantity it acts on the nerves and disturbs them causing various symptoms which are attributed to वात in the shastras.

Thus CO_2 which predominates in the intestinal gases is अपान वायु. Similarly प्राण वायु is a gas which predominates in oxygen and all others are mixtures of these two gases in various proportions.

Research work should therefore be carried on in order to verify the above suggestions. Gases in the intestines and various other portions of the alimentary canal where the प्राणादि वायूज are said to be seated in the body should be collected and analysed. The action of CO_2 on nerves should be studied as per Wallor's experiments and the relation between these वायूज् and the nervous system definitely determined. It is no good saying that how can CO_2 which is thrown out of the intestines be supposed to act on nerves. What is poison to one system is the very life to the other. We know that vegetable kingdom grows on CO_2, absorbs it and emits oxygen which is needed for our system. Similary CO_2 may be necessary for the maintenance of nervous system.

From statements in Ayurvedic works it is evident that these वायु are actual entities in the body and no work on Ayurveda would be complete without ascertaining the relation between these entities and nervous system. I would like the members of the house to point out any method of ascertaining the two and so long as it is not forthcoming my hypothesis does need consideration."

इसके बाद सर्वसम्मति से त्रिदोष के स्वरूप पर एक ड्राफ्ट तैयार करने के लिये निम्न तीन विद्वानों की उपसमिति बना दी गई :—

१. डा० डी० एन० बनर्जी, २. श्री भि० वि० डेग्वेकर, ३. पं० रामरक्ष पाठक (संयोजक)।

इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट ड्राफ्ट के रूप में उपस्थित की जो पृष्ठ सं० १३४ पर देखें।

सभापतिजी ने त्रिदोष के वर्गीकरण के स्पष्टीकरण के लिए अपने "पंचमहाभूत और त्रिदोष" शीर्षक लेख को पढ़ कर सुनाया और कहा कि यह वर्गीकरण कोई मेरी नई खोज नहीं। प्राचीन आयुर्वेदसंहिताओं में तथा आयुर्वेदेतर भारतीय साहित्य में भी ऐसा वर्गीकरण पाया जाता है महाभारत के खिलपर्व (जिसे

हरिवंशपर्व भी कहते हैं) में कहा गया है कि "कफवर्गे भवेच्छुक्रः प्रतिवर्गे च शोणित" तथा अष्टांगहृदय में भी धातुओं के वर्गीकरण का स्पष्ट संकेत मिलता है। मेरे अतिरिक्त अन्य आयुर्वेद के विद्वानों ने भी इस वर्गीकरण का समर्थन किया है। जैसे. 'आयुर्वेद-दर्शन' नामक पुस्तक में श्री महादेव चन्द्रशेखर पाठक, 'वैद्य-पद्धतियोंका समन्वय' नामक पुस्तक में श्रीवलीराम येरकुण्ठवार, 'त्रिदोषतत्त्वविमर्श' नामक पुस्तक में श्री रामरक्ष पाठक तथा 'शरीर-क्रिया-विज्ञान' नामक पुस्तक में श्री रणजित राय प्रभृति ने भी इसका समर्थन किया है।

इस पर डा० बनर्जी ने कहा कि अभी वर्गीकरण का समय नहीं आया है क्योंकि ऐसा करने से आधुनिक विज्ञानोंक्त शरीर रचना तथा व्यापार का वर्णन जो अति स्पष्ट है वह अस्पष्ट हो जायगा।

इसके बाद दूसरे सदस्यों ने वर्गीकरण को उपादेय बतलाया और वर्गीकरण के पक्ष में अपना-अपना मत युक्ति व प्रमाण उपस्थित किया।

अन्त में आचार्यजी ने वर्गीकरण की आवश्यकता और उपादेयता को समझाते हुए कहा कि यह कार्य हमारे आचार्य ने ही आयुर्वेद के सभी दृष्टिकोणों को समझने के लिए तथा व्यवहार-सौकर्य के लिए अपनाया है। अतः इस पथ का अनुसरण ही हमारे लिए श्रेयस्कर है तथा हमारे ध्येयपूर्ति में सहायक होगा। यह कार्य आप इस समय करें या नहीं करें, इसे करना अवश्य होगा। इसके बिना आयुर्वेद का उद्धार नहीं।

इस पर संयोजक ने कहा कि साम्प्रति हमारे सामने शिक्षक-संस्थाओं में अध्यापनार्थ पाठ्यपुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। अतः हमें यह निर्णय करना होगा कि आधुनिक विज्ञान के उपादेय तथा आवश्यक अंश को हम किस प्रकार अपनावें और उनका अपने ग्रन्थों में किस प्रकार अन्तर्भाव करें।

प्र० का० फोन नं० ५६३ स्थापित १८६२ तार—'इन्जेकशन' झांसी

देशमान्य—मिश्रा—आयुर्वेदिक इन्जेक्शन–भारतीय

द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेक्शन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेदिक इन्जेक्सन विज्ञान पुस्तक, षष्ठम् संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ||=) नियमादि मुफ्त मंगायें।

सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २||) पो० |=)।

सर्वप्रथम आविष्कर्ता एवं एक मात्र निर्माता—

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू० पी०

त्रिदोष-स्वरूप-निर्णय

[आयुर्वेदशास्त्र चर्चा-परिषद् ने त्रिदोष के स्वरूप निर्णय को ड्राफ्ट के रूप में उपस्थित करने के लिए जो उपसमिति नियुक्त की थी उसकी रिपोर्ट इस प्रकार है —प्र० सं०]

वात का स्वरूप

वायु शरीर का वह द्रव्य है जिससे शरीर के अन्दर गति, प्राप्ति, संज्ञा तथा उत्साह का कर्म सम्पन्न होता है। (वा—गतिगन्धनयोः)। क्योंकि शरीर की सभी प्रकार की चेष्टाएं (गतियाँ) तथा उत्साह आदि नाड़ी-स्पन्दन (Nerve impulse) के द्वारा सम्पन्न होती हैं अतः इस संस्थान के नियामक को हम वायु कह सकते हैं। इस प्रकार वायु शब्द से उन सभी द्रव्यों का ग्रहण हो जाता है जो नाड़ी-स्पन्दन के नियोजक हैं। नाड़ी-स्पन्दन (Nerve impulse) स्वयं वायु नहीं। अतः वायु को 'अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च' ऐसा विशेषण दिया गया है।

१. प्राणवायु—इसका स्थान शिर, उरः, कर्ण, नासा, अक्षि और जिह्वा कहा गया है और इसका कर्म ष्ठीवन, क्षवथु, उद्गार, श्वास आहार कर्म आदि कहा है। इस प्रकार प्राणवायु (१) मानस व्यापार, (२) इन्द्रिय व्यापार, (३) रसवहन, प्रश्वसन तथा (५) निगरण व्यापार का नियोजक है। इसका स्थान शिर (मस्तिष्क, Brain) स्वतन्त्र नाड़ी-संस्थान के ग्रैवेय नाड़ी-शृङ्खला (Cervical ganglia of the autonomic nervous system) होने से वह उक्त कार्य को सम्पन्न करता है।

२. उदानवायु—का स्थान नाभि, उर तथा कण्ठ है और वह वाणी का प्रवर्तक है। इस प्रकार उदान वायु वाणी का नियोजक है।

३. समान वायु—को आमपक्वाशयचर कहा है। (१) अन्न को पचाता है, (२) उससे उत्पन्न मल को रसादि से पृथक् करता है। इस प्रकार समान वायु औदर्य नाड़ी शृङ्खला उत्तरा (Superior Mesenteric ganglia) में रह कर उपर्युक्त कार्यों का सम्पादन करता है और उससे उत्पन्न हुए सार भाग रस को हृदय तक पहुँचाता है। समान वायु के उपर्युक्त कर्मों के साथ आन्त्र के संकोच-प्रसार क्रिया (Peristalsis of the intestine and sphinctor) को भी हम उसमें अन्तर्भूत कर सकते हैं।

४. अपान वायु—का स्थान दोनों वृषण, वस्ति, मेढ़, नाभि, उरु, दोनों वङ्क्षण,

गुदा तथा अन्त्र हैं। यह मल, मूत्र, शुक्र तथा गर्भ को बाहर निकालता है तथा धारण करता है। इस प्रकार अपान वायु औदर्य नाड़ी शृङ्खला अधरा (Inferior mesenteric ganglia) में रह कर उपर्युक्त कार्य का सम्पादन करता है।

५. व्यान वायु—हृदय में रह कर सम्पूर्ण शरीर में संचार करता है। इसका कार्य सम्पूर्ण शरीर में गति उत्पन्न करना तथा नानाविध चेष्टाओं का प्रवर्त्तन है। इस प्रकार व्यान वायु मस्तिष्क के केन्द्रीय पिण्ड (Central gyrus) के पुरा तथा पश्चात् भाग में स्थित हो कर केन्द्रीय (Central), प्रान्तीय तथा स्वतन्त्र नाड़ियों के द्वारा निम्न त्रिविध कार्य को सम्पन्न करता है :—

(१) रससंवहन व्यवहार (Vasomotor function)
(२) चेष्टा व्यापार (Motor function)
(३) संज्ञा व्यापार (Sensory function)

इसके अतिरिक्त सामान्य शारीर व्यापार (general functions of the body) भी व्यानवायु का ही कार्य माना गया है।

इस प्रकार वायु के गुण रूक्ष, लघु, शीत, खर, सूक्ष्म, चल तथा विशद जो शास्त्रों में वर्णित हैं वह उनके वृद्ध अवस्था में स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाते हैं। इसलिए वायु का आत्मरूप या स्वरूप रौक्ष्य, लाघव, शैत्य, खरत्व, सूक्ष्मत्व, चलत्व तथा विशद शारीर भावों से स्पष्ट हो जाता है।

६. सामान्य वायु—शरीर के अन्दर जिन द्रव्यों से गति, ज्ञान, प्राप्ति तथा उत्साह का कार्य सम्पन्न होता है और शरीर के सभी व्यापारों के नियोजक वातसंस्थानगत वातस्पन्दन (Nerve impulse) जिनसे होता है वह सब वातद्रव्य हैं।

पित्त का स्वरूप

शरीर का प्रत्येक पदार्थ जो शरीर के अन्दर अग्निकर्म (पाक या रासयनिक परिवर्तन) को सम्पन्न करता है वह पित्त है। इसे अग्नि (कायाग्नि) भी कहा गया है। शरीर के अन्दर विविध स्रावों में निकलने वाला एञ्जाइम तथा हारमोन (अन्तः स्राव) एवं रञ्जक पदार्थ पित्त के ही रूप हैं।

१. **पाचक पित्त**—वह द्रव्य है जिससे शरीर के अन्दर आहार का पाचन होता है (जठराग्नि) तथा शारीर धातुओं के अन्दर धातुओं का पाचन होता है (धात्वग्नि)। इस प्रकार पाककर्म का करने वाला पचन प्रणाली में तथा धातुओं में एवं देहाणुओं में आने वाला एञ्जाइम पित्त का ही रूप है।

२. **रञ्जक पित्त**--जो रक्तकण में रक्तरञ्जक को उत्पन्न करने का उत्तरदायी है वह रक्तोत्पादक तत्त्व (Haemopoetic principle) है, जो यकृत् में पाया जाता है।

३. **आलोचक पित्त**--जो नेत्र के अन्दर रूप ग्रहण करने का उत्तरदायी है वह दृष्टि के हरित, पीत स्तर (visual purple of the retina) स्थित रञ्जक पदार्थ (Rhodopsin) है।

४. **साधक पित्त**--जो शरीर के अन्दर भय, क्रोध प्रभृति आवेशों का उत्तरदायी है, वह शरीर में निकलने वाले अनेक अन्तःस्राव रूप (हारमोन) हैं। इसका स्थान हृदय है क्योंकि शरीर के विभिन्न प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला हारमोन रक्त द्वारा हृदय में ही लाया जाकर वितरणार्थ एकत्रित होता है।

५. **भ्राजक पित्त**--जो त्वचा के द्वारा स्नेहादि उपलेपों को शोषण करने का उत्तरदायी है तथा ताप एवं त्वचा की प्रभा का नियंत्रक है वह त्वचा के अन्दर स्थित स्वेद तथा स्नेहग्रन्थियों के स्राव हैं।

६. **सामान्य पित्त**--शरीर के अन्दर होने वाले सम्पूर्ण पाक एवं परिवर्तन का उत्तरदायी है। पित्त के गुण ईषत्, स्नेह, तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, विस्र, सर तथा द्रव ये सब उपर्युक्त एनजाइम के ही गुण हैं। सम्पूर्ण एनजाइम शरीर के अन्दर निकलने वाले स्रावों के अन्तर्गत ही होते हैं अतः पित्त को द्रव कहा गया है। ये एनजाइम अति सूक्ष्म मात्रा में ही अति शक्तिशाली (Immense potentiality) होते हैं अतः इसे तीक्ष्ण कहा गया है। पित्त शब्द 'तप् सन्तापे' से बना हुआ है जिसका अर्थ ऊष्मा है। अतः इसे उष्ण कहा गया है अर्थात् यह शरीर के अन्दर उष्णता का उत्पादक है। ये एनजाइम अति सूक्ष्म होता है अतः इसे 'लघु' कहा है।

इस प्रकार पित्तदोष का आत्मरूप वा स्वरूप जैसे तैक्ष्ण्य, औष्ण्य, अनतिस्नेह, द्रवत्व, सरत्व प्रभृति स्पष्टरूपेण प्रमाणित एवं प्रस्थापित हो जाता है।

कफ दोष का स्वरूप

शरीर में उदक कर्म तथा दो देह द्रव्यों के बीच संश्लेषण करने वाला प्रत्येक द्रव्य आयुर्वेद शास्त्र में प्रधानतः कफ दोष से संज्ञित किया गया है। शरीर के सम्पूर्ण श्लेष्मधर आवरणों (Mucous Membrane) का तथा उदकधर आवरणों

(Serous Membranes) का तथा स्रावी ग्रन्थियों (Secretary glands) का स्राव इस कफ द्रव्य के अन्तर्गत आ जाते हैं। शरीर के विभिन्न प्रदेशों में यह सम्भव है कि वे अन्य स्रावों के साथ सम्मिश्रित हो जायं, परन्तु वे आयुर्वेद-शास्त्रोक्त कफ के गुणों (स्निग्ध, शीत, गुरु, मंद, श्लक्ष्ण, मृत्स्न, स्थिर) से युक्त होने के कारण कफदोष ही कहलायेंगे।

१. **क्लेदक कफ**--आमाशय (Stomach and small intestine) में निकलने वाले श्लेष्मधर आवरणों के स्राव तथा टायलिन एवं पेप्सीन नामक पाचक तत्त्व (Digestive ferments) वर्जित लाला स्राव और आमाशयिक स्राव का सम्मिश्रण है। उक्त दो पाचक तत्त्व पित्त के प्रतिनिधि हैं। अतः उपर्युक्त मिश्रित स्राव का तरल भाग ही क्लेदक कफ दोष है।

२. **बोधक कफ**--यह मुख, जिह्वा तथा कण्ठ प्रदेशस्थ श्लेष्मधर आवरण (Mucous membrane) का स्राव है।

३. **तर्पक कफ**--यह मतिष्क सुषुम्नास्थित (Cerebrospinal) तरल द्रव्य (fluid) हैं।

४. **श्लेष्क कफ**--यह अस्थिसन्धियों में स्थित कला से निकलने वाला स्राव (Synovial secretion) है।

५. **अवलम्बक कफ**--हृदय में रहता है। यह स्ववीर्य से तथा अन्नवीर्य की सहायता से, 'हृदय' का अवलम्बन करता है और 'त्रिक' का सन्धारण करता है तथा अन्व श्लेष्मस्थान का पोषण करता है। इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि हृदयस्थ रक्तरस (Plasma) ही अवलम्बक कफ है क्योंकि इस के मान लेने से उक्त सभी वर्णन प्रमाणित हो जाते हैं। इस वर्णन में 'त्रिक' शब्द का निश्चित अभिप्राय ठीक समझ में नहीं आता। त्रिक शब्द से आयुर्वेद-शास्त्र में कटि का वह प्रदेश जहां त्रिकास्थि एवं श्रोणिफलक का संयोग हुआ है समझा गया है। परन्तु अवलम्बक कफ का स्थान उरःप्रदेश होने से यहां यह अर्थ अयुक्त हो जाता है। दूसरा त्रिक से दोनों अंशफलकों तथा पृष्ठ वंश का संयोगस्थल समझा जाता है। यह भी युक्तियुक्त नहीं होता। क्योंकि यह समझ में नहीं आता कि अस्थिपञ्जर का यह अस्थिसंधायक त्रिक अन्य अधिक उपयोगी स्थानों को छोड़ कर क्यों ग्रहण किया गया है। यदि यहां 'त्रिक' शब्द से आयुर्वेद का कर्मपुरुष अर्थात् सत्य-आत्मा-शरीर का समवाय रूप त्रिक मान लें तो रक्तगत रक्तवारि (Plasma) से उपर्युक्त वर्णन का सब प्रकार से समाधान हो जाता है।

अवलम्बक कफ के सम्वन्ध में दूसरी मान्यता यह हो सकती है कि हम उसे फुफ्फुसावरणीय तरल (Pleural fluid) तथा हृदयावरणीय तरल (Percardial fluid) समझें। परन्तु इस को मानने पर अवलम्बक कफ के कार्यों उपर्युक्त वर्णन में से केवल दो (हृदयावलम्बन तथा उरःप्रदेश में रहना) का ही समाधान होता है। तीसरे त्रिकसंधारण की तथा स्ववीर्य एवं अन्नवीर्य की युक्ति नहीं बैठती।

६. **सामान्य कफ**—कफ का दो प्रधान कर्म शास्त्रों में कहा गया है जैसे—(१) उदक कर्म जिससे उस की कफ संज्ञा हुई है (के जले फलतीति कफः)। (२) श्लेषण जिससे इसकी श्लेष्मा संज्ञा हुई है (श्लिष् आलिङ्गने)। अतः सामान्य कफ शरीरस्थ जल का प्रतिनिधित्व करता है जो परिमाण में शरीर के भार का ७० प्रतिशत होता है। यह (जल) हमारे शरीर के प्रत्येक देह परमाणु (Cell) में वर्तमान रहता है तथा दो देहाणुओं का संयोग कराने के लिए भी उनके बीच में रहता है। देहधातुओं का सम्पूर्ण पोषक पदार्थ इस जल के द्वारा ही प्राप्त होता है और उनका मल भी इसी में विलीन हो कर शरीर से बाहर निकाला जाता है। यह जल दो देहाणुओं को परस्पर संयुक्त करने के लिए श्लेषक पदार्थ प्रदान करता है और यों कहें कि शरीर के सूक्ष्म तथा स्थूल उत्तरोत्तर सम्बन्धित भागों (Contiguous parts) का यह द्रव्य है। अतः इस 'कफ दोष' के अन्दर शरीर के सब प्रकार के रस स्राव (Serum), श्लेष्मस्राव (Mucous) तथा अन्य स्रावों का ग्रहण कर सकते हैं!

क्लेदक कफ तथा अवलम्बक कफ के सम्बन्ध में शास्त्रों में कुछ मतभेद दृष्टिगोचर होता है। सुश्रुत ने क्लेदक कफ को शेष कफ स्थानों का पूरक होने से प्रधान कफ माना है और वाग्भट ने अवलम्बक कफ को। यह तथ्य है कि सब प्रकार का श्लेष्मा आमाशय के क्लेदक कफ (आमाशयगत तरल) तथा भोजन में लिये गए जल से बनता है। अतः स्वभावतः क्लेदक कफ शेष कफस्थानों का पोषक हो जाता है। परन्तु रक्तगत रक्तरस (Plasma) को जब अवलम्बक कफ मान लेते हैं तब वह भी शेष कफस्थानों का पोषक हो जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि उपर्युक्त दोनों ही वर्णन सत्य हैं और दोनों को मानने में कोई विरोध नहीं।

इस प्रकार स्निग्ध, शीत, गुरु, मन्द, श्लक्ष्ण, मृत्स्न, स्थिर प्रभृति गुण जो कफदोष के शास्त्रों में वर्णित हैं वे सब यदि हम कफदोष को उनके विभिन्न स्थानों से निकाल कर मिलावें तो सब प्रकार के कफों में उनका स्वरूप स्नेह, शैत्य, शौक्ल्य, गौरव, माधुर्य, पैच्छिल्य, मात्स्न्र्य आदि के रूप में स्पष्ट प्रमाणित हो जायगा। अतः इससे कफ दोष का स्वरूप स्पष्ट प्रस्थापित हो जाता है।

अपना राज ?

[लेखक—विप्रजी कमला प्रसाद मिश्र, सोनवरसा]

त्रिगुणमयी सृष्टी रक्षाहित, आयुर्वेद अवतरण हुआ।
प्राणीमात्र के त्रिविध ताप का, सदा उसी से हरण हुआ॥१॥

पायी शीस यज्ञ ब्रह्मा ने, इन्द्र, चन्द्र आरोग्य हुए।
शक्ति बाण सम महाकाल को, लषण जीतने योग्य हुए॥२॥

च्यवन ऋषी ने पाया यौवन, जग ने जीवन-यापन त्राण।
पाए भिषग त्रिगुणमय पथ को, शास्त्रीय सुन्दर पंचनिदान॥३॥

ऋतु, रात्रि औ' दिनचर्चा से, मिटती त्रिविध अनेकों पीर।
समदोषः सम अग्नि धातु मल, चित प्रसन्न आरोग्य शरीर॥४॥

समय समय पर लगी ठोकरें, फिर भी बना रहा सम्मान।
पूछो ग्रीस युनान युरप से, भला कहाँ से पाए ज्ञान॥५॥

बौद्ध काल की विकल अहिंसा, शस्त्र चिकित्सा लोप किया।
यवन काल के कुछ उन्मत जन, व्यर्थ "वेद" पर कोप किया॥६॥

विक्रम, तक्षशिला, नालन्दा में, ग्रन्थों का हवन हुआ।
धू-धू कर, नहीं धांय धांय कर, ज्ञान राशि का वहन हुआ॥७॥

शल-शालाक्य का मिला सहारा, बृटिश बिछाया व्यापक जाल।
मिलों के मैले धुएँ से, पंचभूत हो उठा बेहाल॥८॥

भाषा देश चिकित्सा सबको, बृटिश नवालिग दिया करार।
स्वतंत्रता की शुभ उषा ने, भेजा उसे सिन्धु के पार॥९॥

हिन्दी के सिर पर है बिन्दी, भारत के सिर सोहे ताज।
"आयुर्वेद" अभी तिरस्कृत है, अरे, कहाँ यह अपना राज ?॥१०॥

त्रिदोष का वैज्ञानिक विवेचन

(लेखक—डा० लक्ष्मीनारायण पचौरी, गोविन्द गंज, जबलपुर)

(गतांक से आगे)

: ५ :

पित्त के कार्य—

गर्भ में जो रासायनिक (Chemical) क्रियाएं होकर विभिन्न अंगप्रत्यंग और धातुएं (Organs and tissues) बनती हैं वे क्रियाएं पित्त द्वारा होती हैं। Mesoderm संज्ञक मध्य भाग पित्त का प्रमुख स्थान है। शरीर के प्रायः सब प्रधान कोष्ठांग (Viscera) इसी से बनते हैं।

कफ के कार्य—

उक्त क्रियाओं में मौलिक उपादान की पूर्ति तथा कोषाणुओं को संयुक्त रखने का कार्य कफ द्वारा होता है। कफ के द्वारा ही गर्भ माता के गर्भाशय से संलग्न रहता है। अर्थात् अपरा और गर्भाशय संयोग का कारण कफ है। कफ-वर्धक द्रव्य होने से Epiderm, Mesoderm और Hypoderm तीनों में उपस्थित रहता है। तथापि Hypoderm या Endoderm नामक अन्तः विभाग में इसका आधिक्य रहता है।

(२) जन्मोत्तर क्रिया विज्ञान—

संक्षेप में वात पित्त कफ के प्रधान कार्य क्रमशः गति, पचन और पोषण हैं, जो त्रिधातु परिभ्रमण के द्वारा सम्पादित होते हैं। त्रिधातु परिभ्रमण का वर्णन दसवें बिन्दु के अन्तर्गत किया गया है। दोषों के विशेष कार्य शास्त्रों में यत्र-तत्र अनेक स्थानों में वर्णित हैं जिनमें से कुछ यहाँ उद्धृत करते हैं। इन उद्धरणों में कहीं-कहीं प्राकृत तथा विकृत दोषों के कार्य साथ-साथ दिये हैं किन्तु इस प्रकरण में केवल प्राकृत दोषों के कर्म ही ग्राह्य हैं।

वायु के कर्म—

उत्साहोच्छ्वास निश्वास चेष्टा धातुगतिः समा।
समोमोक्षो गतिमतां वायोः कर्माऽविकारजम् ॥ च०.सू० १८।५२

अपि च, वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः, प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां,

नियन्ता प्रणेता च मनसः, सर्वेन्द्रियाणामुद्योजकः, सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा, सर्वशरीरधातुव्यूहकरः, संधानकरः शरीरस्य, प्रवर्तको वाचः, प्रकृतिः स्पर्शशब्दयोः श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलं, हर्षोत्साहयोर्योनिः, समीरणोऽग्नेः, संशोषणो दोषाणां, क्षेप्ता बहिर्मलानां, स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता, कर्त्ता गर्भाकृतीनां, आयुषोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः । च० सू० १२।८

यद्यपि पचन कार्य मुख्य रूप से पाचक रसों द्वारा होता है, तथापि वायु और कफ उसके आवश्यक सहयोगी हैं। प्रेरक तत्त्व होने के कारण इनमें वायु प्रधान है क्योंकि पचन संस्थान में पित्त और कफ का स्राव कराती है तथा आमाशय और आन्त्र में पचन सहायक विविध गतियाँ (Churning movement of the stomach and peristaltic, pendular and segmental movements of the intestine) पैदा करती है।

पित्त के कर्म—

दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुत् तृष्णा देहमार्दवम् ।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्त कर्माऽविकारजम् ॥ च० सू० १८।५३

अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति, तद्यथा—पक्तिमपक्तिं दर्शनमदर्शनं मात्रामात्रत्वमूष्मणः प्रकृति विकृति वर्णौ शौर्यं भयं क्रोधं हर्षं मोहं प्रसादमित्येवमादीनि चापराणि द्वन्द्वानीति । च० सू० १२।११

पचन क्रिया प्रधानतया पित्त के द्वारा होती है। बिना पचन के कोई भी बाह्य वस्तु शरीर में आत्मसात् नहीं हो सकती और न दोष, धातु तथा मलों का निर्माण हो सकता है इसलिये पित्त का कार्य भी बड़े महत्त्व का है।

कफ के कर्म—

स्नेहो बन्धः स्थिरत्वञ्च गौरवं वृषता बलम् ।
क्षमाधृतिरलोभश्च कफकर्माऽविकारजम् ॥ च० सू० १८।५४

सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति, तद्यथा दार्ढ्यं शैथिल्यमुपचयं कार्श्यमुत्साहमालस्यं वृषतां क्लीबतां ज्ञानमज्ञानं बुद्धिं मोहमेवमादीनि चापराणि द्वन्द्वानीति । च० सू० १२।१२

कफ यदि शरीर में न हो तो पित्त सब धातुओं को भस्म करदे। क्लेदक कफ की कमी के कारण ही आमाशयिक प्रदाह या व्रण हो जाते हैं। यह इस कफ की ही कृपा है जिससे पाचक पित्त द्वारा आमाशयस्थ शाक मांसादि का पाचन होता है किन्तु आमाशय जो स्वयं मांसनिर्मित है उसका पाक नहीं होता। इसीलिये कहा है—

अत ऊर्ध्वं श्लेष्मस्थानान्यनुव्याख्यास्यामः । तत्र आमाशयः (कफाशयः) पित्ताशयस्य उपरिष्टात् तत्प्रत्यनीकत्वादूर्ध्वगतित्वात्तेजसश्चन्द्र इव आदित्यस्य,....इत्यादि । सु० सू० २१ । ११

जिस तरह संसार में सूर्य की ऊष्मा को चन्द्रमा अपने शैत्य से शान्त रखता है उसी प्रकार शरीर में कफ, पित्त के ऊपर स्थित उसके दुष्परिणामों से शरीर को बचाता है। यद्यपि प्रकृति में स्थिति की दृष्टि से ऐसा न होकर कार्य की दृष्टि से है क्योंकि स्थिति दृष्ट्या चन्द्र सूर्य के ऊपर नहीं है तथापि शरीर में पित्ताशय के ऊपर कफाशय तथा सौरमण्डल (Solar Plexus) के ऊपर चन्द्रमण्डल (Semilunar Plexus) स्थित रहने से यह उपमा स्थिति और कार्य दोनों की दृष्टि से उपयुक्त है।

इस तरह तीनों दोषों के कार्य बताने के पश्चात् प्रत्येक के जो पांच-पांच भेद हैं उनके कर्म सुश्रुतानुसार उद्धृत किये जाते हैं:—

पंच वायु—

प्राणोदानसमानश्च व्यानश्चापान एव च।
स्थानस्था मारुताः पञ्च यापयन्ति शरीरिणाम् ॥
वायुर्यो वक्त्रसंचारी स प्राणोनाम देहधृक्।
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणश्चाप्यवलम्बते ॥
प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान्।
उदानो नाम यस्तूर्ध्वं उपैति पवनोत्तमः ॥
तेन भाषित गीतादि विशेषोऽभिप्रवर्तते।
ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् करोति च विशेषतः ॥
आमपक्वाशयचरः समानो वह्निसंगतः।
सोऽन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान् विविनक्ति हि ॥
गुल्माग्निसंगातीसार प्रभृतीन् कुरुते गदान्।
कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवहनोद्यतः ॥
स्वेदासृक् स्रावणो वापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि।
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान् ॥
पक्वाधानालयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम्।
समीरणः शकृन्मूत्रं शुक्रगर्भार्तवान्यधः ॥
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् घोरान् वस्तिगुदाश्रयान्। सु० नि० १।१२ से १६ तक

इसी प्रकरण में अन्यत्र उपलब्ध पांच उपवायु के कार्य भी लिख दिये जाते हैं—

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ।
कृकरः क्षुत्कृज्ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥
न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ॥

पंच पित्त--

रागकृत्योजस्तेजोमेधोष्मकृत्पित्तं पञ्चधा प्रविभक्तमग्निकर्मणा अनुग्रहं करोति ।

सु० सू० १५।५

पक्वामाशयमध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपानं पचति, विवेचयति च दोषरसमूत्रपुरीषाणि, तत्रस्थमेव चात्मशक्त्या शेषाणां पित्तस्थानानां शरीरस्य चाग्निकर्मणाऽणुग्रहं करोति—तस्मिन् पित्ते पाचकोऽग्निरिति संज्ञा। यत्तु यकृत्प्लीन्होः पित्तं तस्मिन् रञ्जकोऽग्निरिति संज्ञा, स रसस्य रागकृदुक्तः। यत् पित्तं हृदयसंस्थं तस्मिन् साधकोऽग्निरिति संज्ञा, सोऽभिप्रार्थित मनोरथसाधनकृदुक्तः। यद् दृष्ट्यां पित्तं तस्मिन्नालोचकोऽग्निरिति संज्ञा, स रूप ग्रहणाधिकृतः। यत्तु त्वचि पित्तं, तस्मिन् भ्राजकोऽग्निरिति संज्ञा, सोऽभ्यङ्गपरिषेकावगाहलेपनादीनां क्रियाद्रव्याणां पक्ता, छायानाञ्च प्रकाशकः। इति।

सु० सू० २१।१०

पंच कफ—

संधिसंश्लेषण स्नेहनरोपणपूरण बलस्थैर्यकृत श्लेषमा पञ्चधा प्रविभक्तः उदककर्मणाऽनुग्रहं करोति ।

सु० सू० १५।६

माधुर्यात् पिच्छिलत्वाच्च प्रक्लेदित्वात्तथैव च ।
आमाशये सम्भवति श्लेष्मा मधुर शीतलः ॥

स तत्रस्थ एव स्वशक्त्या शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य चोदककर्मणाऽनुग्रहं करोति—तत्र 'क्लेदक' इति संज्ञा । उरस्थस्त्रिकसन्धारणमात्मवीर्येणान्नरससहितेन हृदयावलम्बनं करोति तस्मिन् 'अवलम्बक' इति संज्ञा । श्वासपथादीनां किञ्चित् श्मेष्मणाऽलेपनं स्वाभाविकमस्यैव श्लेष्मणः कर्म । जिह्वामूलकण्ठस्थो जिह्वेन्द्रियस्य सौम्यत्वात् सम्यग्रसज्ञाने वर्त्तते—तस्मिन् 'रसक' इति 'बोधक' इति व संज्ञा । शिरस्थस्नेहसन्तर्पणाधिकृतत्त्वादिन्द्रियाणामात्म—वीर्येणानुग्रहं करोति--तस्मिन् 'तर्पक' इति संज्ञा । सन्धिस्थस्तु श्लेष्मा सर्वसंधिसंश्लेषात् सर्वसन्ध्यनुग्रहं करोति--तस्मिन् 'श्लेषक' इति संज्ञा ।

सु० सू० २१।१३-१४

(६) दोष प्रकोपक कारण या हेतु विज्ञान (Etiology of abnormal Tridosh):—

तद्-तद् प्रकार के आम दोष का निर्माण होकर तद्-तद् दोष दूषित होते व प्रकुपित होते हैं । कहा है—

जठरानलदौर्बल्याद्विपक्वस्तु यो रसः ।
स आम संज्ञको देहे सर्व दोष प्रकोपणः ॥

दोष प्रकोपक बाह्य कारणों के तीन प्रधान विभाग किये गये हैं—(१) असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग (२) प्रज्ञापराध और (३) परिणाम। चरक ने कहा है—"इत्यसात्म्येन्द्रियार्थ संयोगः प्रज्ञापराधः परिणामश्च त्रयस्त्रिविध विकल्पा हेतवो विकाराणाम्।" चूंकि दोष वैषम्य ही रोग है (रोगस्तुदोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता) इस लिये ये रोगोत्पादक कारण दोष प्रकोपक कारण भी हैं। इन प्रकोपक कारणों का वर्णन विस्तार से इस प्रकार है—

वात प्रकोपक——

व्यायामादपतर्पणात्प्रपतनाद्भङ्गात्क्षयाज्जागरात्,
वेगानां च विधारणादतिशुचः शैत्यादतित्रासतः ।
रूक्षक्षोभकषायतिक्त कटुकैरेभिः प्रकोपं व्रजेत्,
वायुर्वारिधरागमे परिणते चान्नेऽपराह्णेऽपि च ॥

पित्त प्रकोपक——

कट्वम्लोष्ण विदाहि तीक्ष्ण लवण क्रोधोपवासातपः,
स्त्रीसंपर्क तिलातसीदधिसुरा शुक्तारनालादिभिः ।
भुक्ते जीर्यति भोजने च शरदि ग्रीष्मे सति प्राणिनां,
मध्याह्ने च तथाऽर्धरात्रिसमये पित्तं प्रकोपं व्रजेत् ॥

कफ प्रकोपक——

गुरुमधुररसातिस्निग्धदुग्धेक्षुभक्ष्य, द्रवदधिदिननिद्रापूपसर्पिष्प्रपूरैः ।
तुहिनपतनकाले श्लेष्मणः संप्रकोपः, प्रभवति दिवसादौ भुक्तमात्रे वसन्ते ॥ तीसटाचार्यः

(७) त्रिदोष विकृति-विज्ञान (Tridosh Pathology)——

विकृत दोष की कौन-सी अवस्थाएं हैं, वे कब और कैसे रोगोत्पन्न करती हैं यह विकृति-विज्ञान का विषय है। विकृत वात, पित्त, कफ से जो विकृतियाँ होती हैं उनमें क्रमशः शोष, कोथ और क्लेद संक्षेप में प्रधान हैं। दूषित या विकृत दोषों के प्रसार से जिस प्रकार रोगोत्पत्ति होती है उसे सम्प्राप्ति कहते हैं—

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ मा॰ नि॰ १।१०

वृद्ध दोषों की क्रमागत निम्न लिखित ६ अवस्थाएँ विकृति-विज्ञान अथवा रोग सम्प्राप्ति के अन्तर्गत आती हैं जिनका वर्णन आगे किया गया है—

संचयञ्च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम् ।
व्यक्ति भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक् ॥ सु० सू० २१।३६

विकृत दोष की इन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में कौन-कौन से लक्षण होते हैं ये सुश्रुत सूत्र स्थान २१वें अध्याय में दिये हैं। लेख का कलेवर बढ़ जाने के कारण यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जाता।

ऋतुभेद के अनुसार दोषों का स्वभाविक संचय, प्रकोप और प्रशम होता रहता है। जिसके लिये कहा है—

चय प्रकोपप्रशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु । अ० हृ० सू० १२।२४
वर्षादिषु च पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥ च० सू० १७।११२

उपर्युक्त ऋतुओं में दोषों का संचय और प्रकोप प्राकृत कहलाता है तथा इतर ऋतुओं में वैकृत। यदि उनका स्वभावतः शमन नहीं हुआ तो वे प्रसृत होकर रोग के कारण बन जाते हैं।

प्रसर के पश्चात् स्थानसंश्रय की अवस्था होती है। स्थानसंश्रय के लिए स्थान वैगुण्य आवश्यक है जहाँ पर दोष आश्रय लेते हैं। तदनन्तर रोग की अभिव्यक्ति या रोगोत्पत्ति होती है। कहा भी है—"कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्। यत्र संगस्तु स्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते॥" सु० सू० २४।१०॥ अतः रोग का चित्र विकृत दोष और स्थान वैगुण्य के संयोग से बनता है। आजकल रोग की व्याख्या की जाती है कि लक्षणों के समूह को रोग कहते हैं। किन्तु यह बात गलत है। दोषवैगुण्य तथा स्थानवैगुण्य के संयोग के कारण शरीर में जो विकृति होती है वह रोग है। लक्षण-समूह व्याधिचित्र के निदर्शक परिणाम हैं जिनसे व्याधि का अनुमान होता है।

किसी भी कार्य की उत्पत्ति के लिए समवायि, असमवायि और निमित्त तीनों कारण आवश्यक होते हैं किन्तु उसके नाश के लिये निमित्त कारण का नाश आवश्यक नहीं होता। शेष दो में से किसी एक के नाश से कार्य का नाश हो जाता है, किन्तु प्रत्येक अवस्था में असमवायि कारण का नाश होता ही है। रोग के प्रति मिथ्याहार विहारादि समवायि कारण हैं तथा दोषदूष्यसंयोगरूपी सम्प्राप्ति असमवायि कारण है और दोष निमित्त कारण है। इनमें से किसी एक के अभाव में रोगरूपी कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कार्य के निमित्त कारण के नाश से कार्य का नाश नहीं होता है किन्तु

इस प्रकरण में दोषरूपी निमित्त कारण के नाश से कार्य का नाश हो जाता है, यह विशेषता है। उसका कारण यह है कि दोष, सम्प्राप्ति रूपी असमवायि कारण में भी भाग लेते हैं। मधुकोषकार ने इसका कारण यह बताया है कि दोष आधारभूत अथवा स्थायी निमित्त कारण हैं, जैसे दीपक के प्रति वर्ति और तैल। वर्ति और तैल निमित्त कारण होते हुए भी उनके नाश से दीपक का नाश हो जाता है। इसी प्रकार जल पंक भी आधारभूत निमित्त कारण है तथा उसके नाश से कमल का नाश हो जाता है। कुछ विद्वान् दोषों को समवायि कारण मानते हैं किन्तु यह विवाद इस लेख की सीमा के बाहिर होने से अविचार्य है।

विकृत स्थिति में दोषों के जो भेद होते हैं उनके सम्बन्ध में मधुकोषकार ने निम्नलिखित संग्रह श्लोक दिया है—

दोषस्य च प्राकृत वैकृताभ्यां, भेदोऽनुबन्ध्यादपि चानुबन्धात्।
तथा प्रकृत्यप्रकृतित्व योगात्तथाऽऽशयाकर्षवशाद्गतेश्च॥
मा० नि० १।५ की मधुकोष टीका

विस्तारभय से सब का वर्णन न करके गतिभेद से दोषों का वर्णन देते हैं—

क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च दोषाणां त्रिविधागतिः।
ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यग्च विज्ञेया त्रिविधा परा॥
त्रिविधा चापरा कोष्ठ शाखा मर्मास्थि सन्धिषु।
इत्युक्ता विधिभेदेन दोषाणां त्रिविधा गतिः॥ च० सू० १७।११४, ११५

दोषों के वृद्धि क्षयात्मक ६२ भेदों का निरूपण चौथे बिन्दु के 'च' खण्ड में कर दिया गया है। ज्यादातर दोषों की वृद्धि या प्रकोप से ही रोग उत्पन्न होते हैं। दोषों के क्षय से रोगोत्पत्ति न होकर उनके प्राकृतिक कार्यों में न्यूनता हो जाती है तथापि कुछ सामान्य रोगों की सम्भावना रहती है और बहुधा क्षीणेतर शेष दोष साम्य रहने पर भी प्रायः उनकी वृद्धि के लक्षण मालूम होते हैं।

मधुकोष के संग्रह श्लोक में वर्णित भेदों के अतिरिक्त दोषों के साम और निराम दो प्रधान भेद और हैं जिसका ज्ञान चिकित्सक के लिये आवश्यक है। इसका वर्णन इस प्रकार है—

ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्।
दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते॥
आमेन तेन संयुक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः।
सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवाः॥ अ० हृ० सू० १३।२५-२७

स्रोतोरोधबलभ्रंशगौरवानिलमूढताः ।
आलस्यापक्ति निष्ठीवमलभेदारुचिक्लमाः ॥
लिङ्गं मलानां सामानां निरामाणां विपर्ययः । अ० हृ० सू० १३।२३-२४

वातादि प्रत्येक दोष के साम निराम गुणों का वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध है किन्तु विस्तार भय से उन्हें नहीं दिया जाता। सर्व प्रथम निर्दिष्ट संचय प्रकोपादि ६ अवस्थाएं इसी साम दोष की होती हैं। आम दोष के ही कारण व्याधि की ३ अवस्थाएं होती हैं—सामावस्था, पच्यमानावस्था और निरामावस्था।

सम्प्राप्ति की क्रमागत ६ अवस्थाएं तथा विकृत दोष के भेदों का वर्णन करने के पश्चात् सम्प्राप्ति के भेदों का उल्लेख करते हैं—

संख्या विकल्प प्राधान्य बल काल विशेषतः।
सा भिद्यते.................................॥ मा० नि० १।११

(८) प्रकुपित दोषों के कर्म (Symptomatology and Nosology)—

इस विवरण के दो विभाग हैं, पहिला लक्षण-विज्ञान और दूसरा व्याधि-विज्ञान इनमें क्रमशः प्रकुपित वातादि के लक्षण तथा दोषानुसार व्याधियों का वर्गीकरण किया गया है।

लक्षण-विज्ञान (Symptomatology)—वात-पित्त-कफ से उद्भूत लक्षणों के अपरिसंख्येय होते हुए भी उनमें क्रमशः शूल, दाह और शोथ मुख्य हैं। पूना-परिषद् ने शोथ के स्थान में गौरव को विकृत कफ का प्रधान लक्षण दिया है जो अधिक व्यापक है किन्तु अष्टाङ्गहृदय का यह श्लोक शोफ अथवा शोथ के पक्ष में है—

शूलं नर्ते ऽनिलाद्दाहः पित्ताच्छोफः कफोदयात्। अ० हृ० सू० २१।६

अब प्रकुपित वातादि के लक्षण अथवा कर्मों का विस्तृत विवरण दिया जाता है। यद्यपि इसमें प्रत्येक लक्षण का वर्णन न कर के सिर्फ उनका नाम निर्देश है इसलिए इसे विस्तृत विवरण नहीं कहना चाहिए तथापि अनेक लक्षणों का निर्देश होने से, पूर्व-निर्दिष्ट एक-एक लक्षण की तुलना में यह विस्तृत विवरण ही है।

वात लक्षण—

आध्मानस्तंभरौक्ष्यस्फुटनविमथनक्षोभकम्पप्रतोदः,
कंठध्वंसावसादौ श्रमक विलपनं स्रंस शूलप्रभेदाः।
पारुष्यं कर्णनादो विषमपरिणति भ्रंश दृष्टि प्रमोहा,
विस्पन्दोद्घट्टनानि ग्लपनमशयनं ताडनं पीडनं च॥

नामो ज्ञामो विषादोभ्रमपरिपतनं जृम्भणं रोम हर्षौ,
विक्षेपा क्षेप शोष ग्रहण शुशिरताच्छेदनं वेष्टनं च ।
वर्णः श्यावोऽरुणो वा तृडपि च महती स्वापविश्लेषसङ्गा,
विद्यात्कर्माण्यमूनि प्रकुपित मरुतः स्यात्कषायो रसश्च ॥

पित्त लक्षण--

विस्फोटाम्लकधूमकाः प्रलपनं स्वेदस्तुतिमूर्च्छनं,
दौर्गन्ध्यं दरणं मदो विसरणं पाकोऽरतिस्तृड्भ्रमौ ।
ऊष्माऽतृप्तितमः प्रवेशदहनं कट्वम्लतिक्ता रसाः,
वर्णः पाण्डुविवर्जितः कथितता कर्माणि पित्तस्य वै ॥

कफ लक्षण—

तृप्तिस्तन्द्रागुरुता स्तैमित्यं कठिनता मलाधिक्यम्,
स्नेहापक्त्युपलेपाः शैत्यं कण्डुः प्रसेकश्च ।
चिरकर्तृत्वं शोथो निद्राधिक्यं रसौ पटुस्वादू,
वर्णः श्वेतोऽलसता कर्माणि कफस्य जानीयात् ॥

संसर्ग तथा सन्निपात लक्षण—

द्विदोष लिङ्गः संसर्गः सन्निपातस्त्रिलिंगकः ॥ सुदान्तसेन ।

(२) व्याधिविज्ञान (Nosology)—

वातादि जन्य विकार अनेक हैं तथापि निदान और चिकित्सा सौकर्य के लिए त्रों में उनकी संख्या क्रमशः ८०,४० और २० के हिसाब से दी गई है। भिन्न-भिन्न न्थों में प्रायः नामान्तर तथा पाठान्तर पाया जाता है। च० सू० २० अ० में यह गणना यरूप में है। शार्ङ्गधर ने पूर्वखण्ड सप्तम अध्याय में इसे पद्यरूप में दिया है तथा दोनों ी नामावली में काफी अन्तर है। माधवनिदान के परिशिष्ट में यह गणना पद्यरूप में दी ई है जो शार्ङ्गधर से मिलती-जुलती है। यह कुछ व्यावहारिक तथा प्रसिद्ध होने के ारण इसे उद्धृत किया जाता है—

वातरोग--

अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः ।
प्रस्वप्नस्वेदयोर्नाशो दुर्बलत्वं बलक्षयः ॥ १ ॥
कम्पः कार्श्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता ।
आक्षेपको हनुस्तम्भ ऊरुस्तम्भः शिरोग्रहः ॥ २ ॥

मूकत्वमतिजृम्भा स्यादत्युद्गारो ऽन्त्र कूजनम् ।
वात प्रवृत्तिः स्फुरणं सिराणां पूरणं तथा ॥ ३ ॥
बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलं कटिग्रहः ।
अङ्गपीडाङ्ग शूलञ्च सङ्कोचस्तम्भ रूक्षता ॥ ४ ॥
अङ्गभङ्गो ऽङ्गविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्ध विट्कता ।
दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तम्भस्तथार्दितम् ॥ ५ ॥
अङ्गभेदोऽङ्गशोषश्च मिन्मिनत्वं च कल्लता ।
प्रत्यष्ठीला तथाऽष्ठीला वामनत्वं च कुब्जता ॥ ६ ॥
पक्षाघातः क्रोष्टुशीर्षो मन्यास्तम्भश्च पङ्गुता ।
अपतानो व्रणायामो वातकण्टोऽपतन्त्रकः ॥ ७ ॥
गृध्रसी पादहर्षश्च विश्वाची चाप बाहुकः ।
कलाय खन्जता तूनी प्रति तूनी च खञ्जता ॥ ८ ॥
रेतः प्रवर्तनं चाति न वा स्यात् कृशता तथा ।
चेतसश्चानवस्थानं काठिन्यं विरसास्यता ॥ ९ ॥
कषायमुखताऽऽध्मानं प्रत्याध्मानञ्च शीतता ।
भीरुत्वं रोम हर्षश्च तोदः कण्डू रसाज्ञता ॥ १० ॥
वधिरता प्रसुप्तिश्च गन्धाज्ञानं दृशोः क्षयः ।
इमे नानात्मजा रोगा वायोरुक्ता मुनीश्वरैः ॥ ११ ॥

पित्त रोग——

चत्वारिंशद्गदाः पित्त जन्याः प्रोक्ता मुनीश्वरैः ।
धूमोद्गारो विदाहश्चोष्णाङ्गत्वं मति विभ्रमः ॥ १ ॥
छुवि ह्रासो गलेशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ।
तिक्तास्यताम्लवक्त्रत्वं घर्मस्रावोऽङ्गपाकता ॥ २ ॥
क्लमोहरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतगात्रता ।
तमसो दर्शनं पीतमण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ ३ ॥
उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च ।
शीतेच्छा पीतनखता तेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ॥ ४ ॥
कोपश्चगात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमन्धता ।
दौर्गन्धं पीतमूत्रत्वमरतिः पीत विट्कता ॥ ५ ॥

पीतावलोकनं पीतनेत्रता पीतदन्तता ।
रक्तद्रावोङ्गदरणं लोहगन्धास्यता तथा ॥ ६ ॥
निस्सरत्वञ्च पित्तस्य चत्त्वारिंशद्रुजः स्मृताः ।

श्लेष्म रोग—

कफस्य विंशती रोगास्तृप्ति तन्द्राऽतिनिद्रता ।
स्तैमित्यं गुरुगात्रत्वमालस्यं मुखमिष्ठता ॥ १ ॥
मुखस्रावो बलासस्योद्गिरणं मलभूरिता ।
कण्ठहृदुपलेपश्च धराचयो बलासकः ॥ २ ॥
गलगण्डो ऽति च स्थौल्यं शीताग्नित्वमुदर्दता ।
श्वेतावभासता श्वेतविण्मूत्र नेत्रता तथा ॥ ३ ॥

ऊपर दोषानुसार रोगों का वर्गीकरण दिया है किन्तु इनमें रोगों के अनेक नाम ऐसे हैं जो लक्षण मात्र हैं । शास्त्र में यह रोगावली होने के कारण तथा स्थानाभाव के कारण उस पर कोई टीका-टिप्पणी न कर उसे मूलरूप में उद्धृत कर दिया है । इनके अतिरिक्त और भी ज्ञात एवं अज्ञात अनेक रोग हैं जिनका वर्गीकरण निदान तथा चिकित्सा के लिए दोषानुसार कर लेना चाहिए । इसीलिए कहा है—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ।
न हि सर्वं विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थितिः ॥
स एव कुपितो दोषः समुत्थान विशेषतः ।
स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून् ॥
तस्मात् विकार प्रकृतिरधिष्ठानान्तराणि च ।
समुत्थान विशेषांश्च बुद्ध्वा कर्म समाचरेत् ॥ चरक ।

(९) प्रकुपित दोषों की शान्ति के उपाय (Therapeutics with Pharmacology)—

प्रकुपित दोषों की चिकित्सा (Therapeutics of Tridosh) :—

विकृति विज्ञान के अन्तर्गत सम्प्राप्ति की जो क्रमागत छै अवस्थाएँ कही हैं उनके लक्षण देते हुए सुश्रुताचार्य ने उन्हें छै क्रिया काल करके वर्णन किया है। अर्थात् सम्प्राप्ति की प्रत्येक अवस्था में चिकित्सा हो सकती है और जितने जल्दी चिकित्सा की जाय उतनी ही जल्दी रोग निरोध या रोगशमन होगा। स्थानसंश्रय होने पर व्याधि

के पूर्व रूप दिखने लगते हैं। आयुर्वेद की कितनी विशेषता है कि रोगोत्पत्ति के पहिले सिर्फ पूर्व रूप में ही नहीं किन्तु दोषों के संचय, प्रकोप और प्रसर की अवस्था में ही चिकित्सा करके रोगों का आगमन रोका जा सकता है। रोगप्रतिषेध की दृष्टि से यह मत कितना प्राकृतिक और वैज्ञानिक है, जबकि आयुर्वेद के सम्बन्ध में यह आक्षेप किया जाता है कि उस में प्रतिषेधक चिकित्सा (Preventive Medicine) का अभाव है। एलोपेथी में सिर्फ औपसर्गिक रोगों का संचयकाल (Incubation period) दिया है किन्तु उसके कोई लक्षण अथवा उस अवस्था में रोग को रोक देने के कोई उपाय नहीं दिये। विपरीत इसके यदि उस अवस्था में रोगप्रतिषेधक वेक्सीन का प्रयोग किया जाय तो रोग प्रायः अधिक भयङ्कर होता है। किस ऋतु* में किस दोष का स्वाभाविक संचय प्रकोप और प्रशम होता है तथा कब अर्थात् किस ऋतु में उसका शोधन अथवा निर्हरण करना चाहिये इसके सम्बन्ध में आयुर्वेद में कहा है—

तत्र वर्षाहेमन्तग्रीष्मेषुसञ्चितानां दोषाणां शरद्वसन्तप्रावृट्सु च प्रकुपितानां निर्हरणं कर्त्तव्यम्। तत्र पैत्तिकानां व्याधीनामुपशमो हेमन्ते श्लैष्मिकाणां निदाघे वातिकानां घनात्यये स्वभावत एव, त एते सञ्चयप्रकोपोपशमा व्याख्याताः। सु० सू० ६।१३-१४

अपिच, हरेद् वसन्तेश्लेष्माणं पित्तं शरदि निर्हरेत्।
वर्षासु शमयेद् वायुं प्राग् विकार समुच्छ्रयात्॥ सु० सू० ६।३६

दोषों की चिकित्सा के सम्बन्ध में सुश्रुताचार्य ने निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादन किया है—

दोषाः क्षीणाः बृंहयितव्याः, कुपिताः प्रशमयितव्याः, वृद्धाः निर्हर्तव्याः, समाः परिपाल्या इति सिद्धान्तः॥ सु० चि० ३३।३

तथैव, तत्र (दोषक्षये) स्वयोनिवर्धनान्येव प्रतिकारः।

---

*ऋतु—ज्योतिष शास्त्र में तथा दोष संशोधन की दृष्टि से वैद्यकशास्त्र में षड् ऋतुओं का निम्न क्रमानुसार वर्णन किया है—"वर्षाशरद्हेमन्तवसन्तग्रीष्मप्रावृड"

धर्मशास्त्र में तथा दोषों के स्वाभाविक क्षय प्रकोप और प्रशम की दृष्टि से वैद्यक शास्त्र में ऋतुओं का यह क्रम हैं—"वर्षाशरद्हेमन्तशिशिरवसन्तग्रीष्म"

ऋतुओं के दो प्रकार के विभागों पर काश्यप संहिता का मत है कि गंगा के दक्षिण भाग में वर्षा अधिक होने से वर्षा ऋतु के साथ प्रावृड् ऋतु की कल्पना की गई है। तथा गंगा के उत्तर में शीत अधिक होने के कारण हेमन्त के साथ शिशिर ऋतु की कल्पना की है।

तेषां (अतिवृद्धानां दोषादीनां) यथास्वं संशोधनं क्षपणं च क्षमादविरुद्धैः क्रियाविशेषैः कुर्वीत ॥ सु० सू० १५।१०, १६

संसर्गे यो गरीयान् स्यादुपक्रम्यः स वैभवेत् ।
शेषदोषाविरोधेन सन्निपाते तथैव च ॥ सु० सू० २१।३६

दोषों के संशोधन व संशमन के लिये वाग्भट ने निम्नोक्त प्रधान सूत्र दिया है—

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम् ।
वस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं* घृतं मधु ॥ अ० हृ० सू० १।२५

दोषों की साम तथा निरामावस्था के लिये कहा है—सामे पाचनं निरामे शमनम् ॥

अब वातादि शामक तथा वर्धक रस, गुण और भूतों का जो वर्णन आगे दिया जाता है उसका अन्तर्भाव चिकित्सा विज्ञान के सिवा त्रिदोष के द्रव्य गुण विज्ञान (Pharmacology of Tridosh) में भी किया जा सकता है।

वातादि के शामक वर्धक रस—

रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः,
षड् द्रव्यमाश्रितास्ते तु यथापूर्वं बलावहाः ।
तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति वयस्तिक्तादयः कफम्,
कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ॥ अ० हृ० सू० १।१४,१५

तथाच,

तत्र मधुराम्ललवणाः वातघ्नाः, मधुरतिक्तकषायाः पित्तघ्नाः, कटुतिक्तकषायाः श्लेष्मघ्नाः । सु० सू० ४२।४

अब दोषों के शामक वर्धक भूत तथा प्रशामक द्रव्यों के गुण और कतिपय संशमन द्रव्यों की सूची देते हैं :—

वात—(१) शामक वर्धक भूत—

भूतेजो वारिजैर्द्रव्यैः शमं याति समीरणः ॥
वियत्पवन जाताभ्यां वृद्धिमभ्येति मारुतः । सु० सू० ४१।७, ८

(२) शामकगुण—

रूक्षः शीतोलघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः ।
विपरीतगुणैः द्रव्यैः मारुतः सम्प्रशाम्यति ॥ च० सू० १।५९

---

*तैलं—तैलों में एरण्ड तैल प्रधान वातशामक है।

(३) संशमन वर्ग

भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणमेषशृंगीबलातिबलार्तगलकच्छुराशल्लकीकुबेराक्षीवीरतरुसहचराग्निमन्थवत्सादन्येरण्डाश्मभेदकालर्कार्कशतावरीपुनर्नवावसुकवाशिरकाञ्चनक भार्गी कार्पासीवृश्चिकालीपत्तूरबदरयवकोलकुलत्थप्रभृतीनि विदारिगन्धादिश्च द्वे चाद्ये पञ्चमूल्यौ समासेन वातसंशमनो वर्गः।

सु० सू० ३६।७

जीवनीय द्रव्य बी (Vitamin B.) तथा विशेष कर बी१ (B_1) और उसके आश्रयभूत द्रव्य सब वातशामक हैं।

पित्त—(१) शामकवर्धक भूत—

भूम्यम्बु वायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निवृ त्तिम् ॥
आग्नेयमेव यद्द्रव्यं तेन पित्तमुदीर्यते। सु० सू० ४१।७, ६

(२) शामक गुण—

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु।
विपरीत गुणैः पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति ॥ च० सू० १।६०

(३) संशमन वर्ग—

चन्दनकुचंदनह्रीवेरोशीरमञ्जिष्ठापयस्याविदारीशतावरीगुन्द्राशैवलकल्हारकुमुदोत्पलकन्द (द)लीदूर्वामूर्वाप्रभृतीनि काकोल्यादिः सारिवादिरञ्जनादिरुत्पलादिर्न्यग्रोधादिस्तृणपञ्चमूलमितिसमासेन पित्त संशमनो वर्गः ॥

सु० सू० ३६।८

कफ—(१) शामक वर्धक भूत—

खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम् ॥
वसुधा जल जाताभ्यां बलासः परिवर्धते। सु० सू० ४१।८, ६

(२) शामक गुण—

गुरुशीतमृदुस्निग्धमधुर स्थिरपिच्छिलाः।
श्लेष्मणः प्रशमं यान्ति विपरीत गुणैर्गुणाः ॥

(३) संशमन वर्ग—कालेयकागुरुतिलपर्णीकुष्ठहरिद्राशीतशिवशतपुष्पासरलारास्नाप्रकीर्योदकीर्येङ्गुदीसुमनाकाकादनीलाङ्गलकीहस्तिकर्णमुञ्जातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीकण्टकपञ्चमूल्यौ पिप्पल्यादिर्बृहत्यादिर्मुष्ककादिर्वचादिः सुरसादिरारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः ॥

सु० सू० ३६।६

जीवन द्रव्य ए. डी. और ई (vitamins A. D. and E.) तथा उनके आश्रयः

भूत एवं प्रोटीन और शर्करायुक्त द्रव्य कफवर्धक हैं। इनके विपरीत अथवा इनसे रहित कफ शामक समझना चाहिये।

सूचना—अष्टांग हृदय सूत्रस्थान १३ अर्थात् दोषोपक्रमणीय अध्याय में वातादि दोषों को शान्त करने का अच्छा वर्णन दिया है जो दृष्टव्य है।

(१०) पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान से समन्वय* (Co-ordination with the Western Medical Science)—

कुछ विद्वानों का मत है कि भावावेश में आकर त्रिदोष का पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के पारिभाषिक शब्दों से समन्वय करना एक बड़ी भूल है, जिसके ये कारण हैं—

(१) सजीव वस्तु का सिद्धान्त होने से त्रिदोष, प्राणिविज्ञान का विषय है जब कि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अधिकांश सिद्धान्त भौतिक और रासायनिक शास्त्र (physics and chemistry) नामक जड़ विज्ञान पर आधारित हैं।

(२) त्रिदोष सिद्धान्त का आधार पञ्चमहाभूतात्मक दार्शनिक सिद्धान्त है जहां तक आधुनिक विज्ञान अभी नहीं पहुँच पाया है।

(३) त्रिदोष एक सजीव यौगिक (Vital compound) है जिसमें सर्वशरीर चरत्व और व्यापकत्व दोनों हैं। पाश्चात्य विज्ञान में ऐसे शक्ति सम्पन्न किसी भी सजीव यौगिक की कल्पना तक नहीं है अतः त्रिदोष का उससे समन्वय करने का प्रश्न ही अनुचित है।

उपर्युक्त कारणों में काफी सत्यांश है। तथा यही कारण है कि अनेक विद्वानों के समन्वय करने के प्रयत्न प्रायः अन्धगजन्याय के समान ही रहे और एक निश्चित सर्वमान्य मत अभी तक निर्धारित नहीं हो सका। फिर भी आधुनिक विज्ञान की गति कुछ गम्भीरता की ओर प्रविष्ट हो रही है जिससे यह आशा की जाती है कि भविष्य में सम्भवतः वह पञ्चभूत सिद्धान्त और त्रिदोषवाद के निकट आ जावे। दोनों पद्धतियों में तथाकथित मौलिक भिन्नता रहते हुए भी चिकित्सा शास्त्र के उद्देश्य तथा निदान एवं चिकित्सा के अन्तर्भूत सिद्धान्तों की अनेक समानताएं† हैं जिनके आधार

---

*पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान से समन्वय—इस प्रकरण में अनेक स्थानों पर पारिभाषिक अंग्रेजी शब्द निश्चित सर्वमान्य अनुवाद के अभाव के कारण हिन्दी में न लिख कर समझने की सुविधा के लिये जैसे के तैसे रख दिये हैं। कृपया पाठक गण क्षमा करेंगे।

†समानताएं—सन् १९४९ में फरवरी से सितम्बर माह तक की महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित "चिकित्सा पद्धतियों का समन्वय" शीर्षक लेख में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

पर तथा शरीरशास्त्र की अभिन्नता के कारण तुलनात्मक विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है । यह सिर्फ कल्पना है, एक रेखा चित्र है । उसकी यथार्थता की पुष्टि विद्वानों के द्वारा भविष्य में हो सकेगी ।

वर्णन सौकर्य के लिये इसके तीन विभाग किये गये हैं—

(१) त्रिदोष का सामूहिक विवेचन ।

(२) त्रिदोष का विभागशः अर्थात् वात पित्त और कफ का एकैकशः विवेचन।

(३) वात पित्त कफ का विभागशः अर्थात् प्रत्येक के पांच-पांच भेदों का विवेचन।

(१) त्रिदोष का सामूहिक विवेचन—

त्रिदोष एक सर्वशरीर व्यापी तथा सर्वशरीर चर पोषक, धारक तथा क्रिया शक्ति सम्पन्न सजीव पदार्थ (Circulating free protoplasmic nutrient material) है जो कहीं सूक्ष्म और कहीं स्थूल अवस्था में पाया जाता है । यह एक यौगिक है जिसके वातपित्तकफात्मक अंगों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता वात-पित्त-कफ का विशिष्ट प्रयोग उस विशिष्ट अंश के आधिक्य के कारण होता है । शरीर के सूक्ष्मतम भाग जिसे सेल या कोषाणु कहते हैं उसमें भी यह स्थित है। उसका (Nucleus) वात प्रधान, (Cytoplasm) कफ प्रधान और उसमें उपस्थित (Enzymes) पित्त प्रधान हैं। इन सूक्ष्म अणुओं के रूप में ही यह शरीर में भ्रमण करता है तथा अवस्थित रहता है इस तरह इसकी चल और अचल दो अवस्थाएं हैं तथापि त्रिदोष के अचल अणुओं में भी वात के कारण अपने ही स्थान में कुछ न कुछ गति होती रहती है।

*त्रिधातु-परिभ्रमण—

वातपित्तकफा देहे सर्वस्रोतोऽनुसारिणः । च० चि० २८।५९

वातपित्तश्लेष्मणां सर्वशरीर चराणां पुनः सर्वाणि स्रोतांस्ययनभूतानि ॥ च० वि० ५।५

सर्वशरीर चरास्तु वातपित्तश्लेष्माणो हि सर्वस्मिंश्छरीरे कुपिताऽकुपिताः शुभाऽशुभानि कुर्वन्ति । च० सू० २०।९

संतत्याभोज्याधातूनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत् । च० चि० १५।२१

शास्त्र कथित इन वाक्यों से सिद्ध है कि त्रिधातु परिभ्रमणशील पदार्थ हैं।

---

*त्रिधातु—त्रिदोष के स्थान में त्रिधातु शब्द इस लिये रहता है कि दोषावस्था में अर्थात प्रकुपित होने पर इनका प्रसार होता ही है किन्तु साम्यावस्था याने धातवीय अवस्था में भी ये परिभ्रमणशील हैं जिसका वर्णन यहाँ किया गया है ।

इसका परिभ्रमण रस और रक्त परिभ्रमण (Lymph and blood circulation) से भी अधिक व्यापक है। यह महास्रोतस् (Alimentary Canal) से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण शरीर में होता हुआ वहीं समाप्त होता है। त्रिदोष महास्रोतस् में उत्पन्न होकर अन्नपरिपाक से पुष्ट होकर शोषित होते और शरीरस्थ दोष तथा सप्त धातुओं का पोषण करते हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में निर्माण प्रकरण के अन्तर्गत विवेचन कर दिया है। क्लेदक पाचक और अपान* नामक प्रधान कफ, पित्त और वात पचन संस्थान में रहते हुए अपने पुष्ट किन्तु सूक्ष्म संचारी अंशों द्वारा शेष चार-चार विभागों का पोषण करते हैं। क्लेदक कफ के लिए कहा है—

माधुर्यात् पिच्छिलत्वाद्प्रक्लेदित्वात्तथैव च।
आमाशये संभवति श्लेष्मा मधुर शीतलः॥

स तत्रस्थमेव शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य चोदककर्मणाऽनुग्रहं करोति।

सु० सू० २१।१३,१४

पाचक पित्त के लिये कहा है—

पक्वामाशयमध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपानं पचति, विवेचयति च रसदोष मूत्रपुरीषाणि; तत्रस्थमेव चात्मशक्त्या शेषाणां पित्तस्थानानां शरीरस्य चाग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति।

सु० सू० २१।१०

तात्पर्य यह है कि ये अन्नपरिपाक में सहायक हो उसके प्रसाद भाग से पुष्ट होकर पूर्ण कफत्व पित्तत्व और वातत्व को प्राप्त होते हैं तथा शोषित होकर परिभ्रमण करते हुए तद्-तद् दोष की पुष्टि करते हैं। "वृद्धि समानैः सर्वेषां विपरीतैः विपर्ययः" इस नियमानुसार क्लेदक पाचक और अपान नामक अंश शेष विभिन्न अंशों का पोषण नहीं कर सकते जब तक कि वे आहार के प्रसाद भाग से पूर्णता को प्राप्त न हो जावें। इस लिये वे पूर्णत्व प्राप्ति के पश्चात् दोषों की पुष्टि करते हैं। क्लेदक कफ और पाचक पित्त के लिये जो 'तत्रस्थमेव' शब्द का उपयोग किया है इसका तात्पर्य भी यही है कि वे अपनी स्थूल तथा शुद्ध अवस्था में वहीं रहते हैं। तत्पश्चात् अपनी-अपनी शक्ति द्वारा आहार सहयोग से दोष के समस्त भेदों से समन्वित हो अर्थात् पूर्णत्व को प्राप्त हो

---

*अपान—इसके द्वारा शेष चार वायुओं के पोषण के सम्बन्ध में शास्त्र में कोई प्रमाण मेरे देखने में नहीं आया। तथापि अपान वायु के पक्वाशय में रहने के कारण जहाँ पर कि अन्नपरिपाक क्रिया में वायु की उत्पत्ति होती है तथा जो प्रधान वातस्थान है, अन्य चार भेदों के पोषण की जिम्मेदारी इसी पर हो सकती है। ऐसी सम्भावना है।

शरीरस्थ दोषों की पुष्टि करते हैं। वात, पित्त, कफ अपने चार-चार विभागों का पोषण करने के बाद पुनः क्लेदक, पाचक और अपान रूप में अवशिष्ट रह कर महास्रोत को प्राप्त होते हैं। इस तरह यह चक्र चलता रहता है। यहाँ यह मान्य तथ्य है कि सप्त धातुएं त्रिदोषात्मक हैं अतः उनकी पुष्टि भी इस परिभ्रमित त्रिदोष के द्वारा होती रहती है।

संक्षेप में त्रिदोष या त्रिधातु परिभ्रमण का मार्ग इस प्रकार है :—

महास्रोत से जो केशिकायें तथा रसायनियाँ (Capillaries and lacteals) प्रारम्भ होती हैं उनसे परिपुष्ट त्रिधातु का शोषण होता है। केशिकायें इसे अधरा महासिरा (Inferior Venacava) में तथा रसायनियाँ महती रसकुल्या (Thoracic duct) के द्वारा उत्तरामहासिरा (Superior Venacava) में ले जाती हैं, जहाँ से त्रिधातुयें हृदय में पहुँच कर रक्त से सम्मिश्रित हो जाती हैं। तत्पश्चात् रक्तवाहिनी, केशिका, रसायनी, कोष्ठ, धातु और अंग-प्रत्यंग में प्रविष्ट होकर उन्हें पुष्ट कर, स्वयं क्षीण हो महास्रोत में स्राव के रूप में आती हैं जहाँ से अन्नपरिपाक क्रिया में सहयोग दे पुनः परिपुष्ट और शोषित होती हैं। इस प्रकार त्रिधातु परिभ्रमण चलता रहता है। यह चक्र रसायनी और रक्तवाहिनियों के अतिरिक्त शरीर के समस्त स्रोतों में चलता है तथा शरीर की स्रोतों धातुओं, कोष्ठों और अङ्ग-प्रत्यङ्गों में इसका प्रवेश होने के कारण त्रिधातु परिभ्रमण का क्षेत्र रसपरिभ्रमण और रक्तपरिभ्रमण की अपेक्षा व्यापक कहा गया है।

Bile जो कि एक प्रकार का पित्त है यकृत एवं पित्ताशय (Gall-bladder) से आंत्र में स्रावित होता है तथा पाचन कार्य में सहायता देकर रक्तवाहिनियों से शोषित होकर सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करता हुआ पुनः यकृत को पहुंच जाता है। इसे Bile-circulation या Entero hepatic cycle of bile कहते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित यह मत त्रिधातु परिभ्रमण का ही एक अंश है, और सम्भव है कि वे भविष्य में हमारे और भी निकट आ जावें।

(२) त्रिदोष का विभागशः याने वात, पित्त, कफ का एकैकशः विवेचन—

यह पहिले बताया जा चुका है कि वात, पित्त, कफ प्रत्येक की स्वतन्त्र स्थिति शरीर में नहीं है। शरीर क्रिया सम्पादनार्थ कार्य की दृष्टि से उनके अपने-अपने मुख्य कार्य होते हुए भी वे एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं अतः संयुक्त अवस्था में रहते हैं। फिर भी "प्राधान्येव व्यपदेशा भवन्ति" इति न्यायात् जहाँ जिसका आधिक्य रहता है वहाँ उसी को प्रधान समझा जाता है। अतः सुविधा की दृष्टि से एक का अलग-

अलग विवेचन शास्त्रों में किया गया है। दूसरी एक और महत्त्व की बात यह है कि वात, पित्त, कफ एक-एक निश्चित वस्तु नहीं हैं किन्तु ये एक-एक प्रकार के द्रव्यों के तीन समूह हैं जैसा कि हरिवंश पुराण से व्यक्त होता है—"कफ वर्गे भवेत् शुक्रं पित्त वर्गे तु शोणितम्।' कफ और पित्त के समान वात को भी वर्ग मानना चाहिये।

वात—यह एक प्राण शक्ति सम्पन्न द्रव्य है तथा शरीर की समस्त जैव-भौतिक क्रियाओं (Bio-physical process) का कर्त्ता है। यह। प्रायः वायवीय अवस्था में रहता है तथा सर्वशरीर व्यापक होते हुए भी इसका कार्य प्रधान रूप से मस्तिष्क सौषुम्नीय तथा स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल (Cerebrospinal and autonomic nervous system) के माध्यम से होता है। यह समझना भूल होगी कि नाड़ी संस्थान सिर्फ वायु से ही सम्बन्धित है। उसमें कुछ Ketabolic तथा कुछ anabolic nerves हैं जो क्रमशः पित्त तथा कफ के स्राव के लिए जिम्मेदार हैं। इसलिए कहा है—

योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत्।
दाहकृत्तेजसायुक्तः शीतकृतसोमसंश्रयात्॥ च० चि० ३।३८

वायु अपनी सूक्ष्मावस्था के कारण दृश्यमान नहीं है तथापि आजकल प्रयुक्त Electrocardiaogram, Electroencaphelogram, Sphygmogram आदि यन्त्रों से उसकी गति का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है जो क्रमशः मस्तिष्क, हृदय और नाड़ी की वातगति निदर्शक यन्त्र हैं। Sphygmomanometer का उल्लेख पहिले हो ही चुका है जो रक्तस्थ वात के दबाव को बताता है।

पित्त—यह एक पाकशक्ति सम्पन्न जैव-रासायनिक (Bio-chemic) द्रव्य है जो अधिकतर द्रवावस्था में रहता है। शरीर में दो प्रकार की रासायनिक क्रियाएं (Bio-chemical processes) होती हैं। एक पचनात्मक क्रिया (Ketabolic process or ketabolism) और दूसरी उपचयात्मक क्रिया (anabolic process or anabolism) कहलाती है। आंग्ल भाषा में दोनों की संयुक्त संज्ञा metabolism है। प्रथम क्रिया पित्त के द्वारा और दूसरी कफ के द्वारा सम्पादित होती है। पित्त के निर्माण याने स्राव के लिए मध्यस्वतन्त्र नाड़ीमण्डल (Sympathetic nervous system) विशेष रूप से जिम्मेदार हैं। कहा भी है—

पित्तं पंगु कफः पंगु पंगवो मल धातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥

ये नाड़ियां शरीर के अन्य भागों में और विशेषकर पचन संस्थान में स्थित असंख्य पित्त निर्मापक ग्रन्थियों का स्राव कराती हैं। प्रणालीविहीन ग्रन्थियों (Ductless glands) कुछ पित्तस्राव प्रधान तथा कुछ कफ स्राव प्रधान रहती हैं, यद्यपि उनके स्राव में पित्त और कफ मिश्रित स्वरूप में रहता है। अधिवृक्क (Adrenal or Suprarenal gland) और अग्न्याशय (Pancreas) पित्त प्रधान ग्रन्थियां हैं। इनमें भी अधिवृक्क प्रमुख पित्त ग्रन्थि है इसलिए पित्तवर्ग को adrenal group भी कह सकते हैं। Adrenal ग्रन्थि के medulla भाग में sympathetic cells पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं जो sympathetic nerves और adrenaline के निकट सम्बन्ध के सूचक हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि sympathetic nerves सीधा कार्य न करके उनके प्रान्तस्थ भागों (nerve ends) से adrenaline अथवा तत्सम sympathin नामक एक रासायनिक पदार्थ का स्राव होता है जिसके द्वारा तदधिकृत क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। यह sympathin नामक स्राव पित्त ही कहा जा सकता है।

मुख, जठर तथा शरीर परमाणुओं में जो पाचक रस (enzymes) आहार को रस के रूप में एवं रसादि को उत्तरोत्तर रक्तादि धातुओं के रूप में परिवर्तित कर शरीर के उपयोग के योग्य बनाते हैं वे सब पित्त अथवा अग्नि के नाम से कहे जाते हैं। इस क्रिया में अनुपयोगी भाग नष्ट होता है जो शरीर के बाहिर मल के रूप में निष्कासित होता है।

Sympathetic nerves या adrenaline हृदय की गति को उत्तेजित कर समग्र शरीर में रक्त परिभ्रमण की गति व दबाव को बढ़ा कर धातुओं में पाक क्रिया (Ketabolic process) को बढ़ाते हैं। जिस प्रकार नाड़ी संस्थान तीनों दोषों का प्रवाहक होते हुए भी वायु का प्रधान मार्ग है तद्वत् रक्तवह संस्थान तीनों दोषों का संचरण करते हुए भी पित्त संचार के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है।

कफ—यह एक वृद्धि शक्ति सम्पन्न जैव रासायनिक द्रव्य है जो कहीं सान्द्र और कहीं द्रवावस्था में रहता है। वह शरीर की उपचयात्मक क्रियाओं (anabolism) का कर्त्ता है। इसका निर्माण प्रायः परिस्वतन्त्र नाड़ी मण्डल (Para sympathetic nervous system) की उत्तेजना से होता है। इन नाड़ियों के प्रान्तस्थ भागों (nerve-eadings) से acetylcholine नामक स्राव होता है जिसके द्वारा वे कार्य सम्पादन करती हैं अतः इसे acetylcholine group भी कहते हैं।

शरीर के अधिकांश जलीय भागों, श्लैष्मिक स्राव, लसीका और रक्तरस (mucus, lymph and plasma) में यह सूक्ष्म अथवा स्थूल अवस्था में मौजूद है और इसका स्राव शरीर की श्लेष्म ग्रन्थियों (mucous glands) से होता रहता है। यह पहिले कह ही दिया है कि निस्रोतस् ग्रन्थियों का स्राव कफ पित्त युक्त होते हुए भी किसी में कफ व किसी में पित्त का आधिक्य रहता है। कफ प्रधान ग्रन्थियां शरीर की वृद्धि के लिए विशेष जिम्मेदार हैं। उनमें पित्त का अनुबन्ध रहता ही है क्योंकि पाकान्तर जो वृद्धि होती है वह स्वाभाविक है। साम कफ के स्राव से myoxedema के समान होने वाली शारीरिक वृद्धि अस्वाभाविक, विकृति उत्पादक और कुरूप बनाने वाली है। इन निस्रोतस् ग्रन्थियों में जो कफ प्रधान हैं तथा शारीरिक वृद्धि के लिए जिम्मेदार हैं, ये प्रमुख हैं—

Thyroid, pituitary-anterior lobe, Testes (ये स्रोत स्रावी और निस्रोत स्रावी दोनों हैं) और Corpora lutea. Thymus और pineal भी कफ प्रधान ग्रन्थियां हैं किन्तु कार्य की दृष्टि से ये उतनी महत्त्व की नहीं हैं। इन सब में पीयूष ग्रन्थि या पोषणिका (Pituitary) प्रधान कफ ग्रन्थि है। उसमें पित्त के अतिरिक्त वात का भी विशेष अनुबन्ध है, जो गर्भाशय के ऊपर उसके संकोचक प्रभाव (Oxytocic action) से ज्ञात होता है। उसका स्राव अष्ट बिन्द्वात्मक पर या प्रधान ओज है जो कफ वर्गीय महत्त्वशील द्रव्य है। कविराज श्री गणनाथ सेन ने प्रत्यक्ष शारीर में इस ग्रन्थि को ही योगियों का सुधा स्रावि सोम मण्डल माना है। प्रधान ओज के अतिरिक्त अपर या साधारण ओज भी होता है। ओज कफ का ही परिष्कृत विशिष्ट शक्ति सम्पन्न स्वरूप है तथा कोई एक वस्तु न होते हुए कफ वर्ग के अन्तर्गत एक उपवर्ग है जिसमें शरीर रक्षक कई द्रव्य आ जाते हैं। यह सम्पूर्ण धातुओं का स्नेह रूपी तेजस्वी भाग है जो सम्पूर्ण शरीर में रहते हुए भी हृदस्थ रक्त में विशेष रूप से रहता है। ओज के सम्बन्ध में कहा है:—

रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजः तत्खलु ओजः। तदेव बलमित्युच्यते।

सु० सू० १५।२१

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम्॥
देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।
तदभावाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम्॥ सु० सू० १५।२३-२४

हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम्।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति॥ च० सू० १७।७४
ओजोऽशनानां रजनी चराणाम्[*] ॥ च० शा० २।१०

उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि ओज ही शारीरक क्षमता का हेतु है तथा उसमें रोग के जीवाणु नाशक, जीवाणु द्रावक तथा जीवाणु-स्तंभक (Bactericidal, bacteriolytic and bacteriostatic) गुण विद्यमान हैं। आधुनिक शारीर क्रिया शास्त्र में वर्णित रक्तस्थ antibodies, phagocytes, bacteriolysins, antitoxins, agglutinins, precipitins, opsonins इत्यादि अनेक अज्ञात पदार्थों में से कुछ हैं जो ओज के अन्तर्गत आते हैं। इस सम्बन्ध में आयुर्वेद का वैशिष्ठ्य और गाम्भीर्य यह है कि वह ऐसे शरीर रक्षक द्रव्यों की उपस्थिति आधुनिक मतानुसार रक्त में मानते हुए हृदयस्थ-रक्त में [†]विशेष तथा रक्तातिरिक्त-अन्य-धातुओं में[‡] भी मानता है। ओज की एक और विशेषता यह है कि वह सम्पूर्ण रोगमात्र के प्रति क्षमता का हेतु है जिसमें जीवाणुजन्य रोग आ ही जाते हैं। एलोपेथी में वर्णित रोग क्षमता का सम्बन्ध सिर्फ जीवाणुजन्य रोगों से ही है।

जिस प्रकार रक्तवह संस्थान प्रधान पित्तमार्ग है तथा sympathetic nerves की उतेजना से हृद्‌गति बढ़ कर रक्त परिभ्रमण बढ़ जाता है, तथैव लसीका संस्थान प्रधान कफ वाहक संस्थान है। Parasympathetic की उतेजना से पचन संस्थान का कार्य बढ़कर आहाररस का अधिक निर्माण होता है। कफ के प्रधान स्थान उरो विभाग में स्थित महती रसकुल्या (Great lymphatic duct or thoracic duct) पोषक

---

[*] रजनी चराणाम्—'रजनीचर' राक्षस और रोग जीवाणु दोनों के लिये प्रयुक्त होता है।

[†] हृदयस्थ रक्त में—यहां यह शंका हो सकती है कि हृदयस्थ रक्त शरीर के रक्त से भिन्न नहीं है क्योंकि वही शरीर में भ्रमण करता है फिर यह वैशिष्ठ्य कैसे कहा गया? किन्तु अनावश्यक विस्तार एवं विषय बाह्य हो जाने के कारण इसका स्पष्टीकरण नहीं किया जाता।

[‡] रक्तातिरिक्त अन्य धातुओं में इस सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिक प्रयत्न कर रहे हैं। Halliburton Physiology में लिखा है—Upto this point I have spoken only of the blood, but workers are steadily bringing forward evidence to show that other cells of the body may by similar measures be rendered capable of producing a corresponding protective mechanism. आयुर्वेद के मत से यह बात प्रकृत रूप से होती ही है।

रस से परिस्रावित हो जाती हैं और अन्य रसायनियों में भी स्थायी रस अथवा लसीका का संचरण बढ़ जाता है, तथा शरीर की उपचयात्मक क्रिया (anabolism) में वृद्धि हो जाती है। यदि यह कहा जावे कि आहार रस तो त्रिदोषात्मक है तो उसका उत्तर यह कि ऐसा होते हुए भी पोषण तथा वृद्धि गुण सम्पन्न होने के कारण यह कफ प्रधान है

(३) वात पित्त कफ का विभागशः अर्थात् प्रत्येक के पांच-पांच भेदों का विवेचनः—

यह पहिले कहा जा चुका है कि वातादि वर्ग हैं जिनमें एक जातीय अनेक पदार्थों का समावेश होता है। प्रत्येक में पांच पांच भेद प्रधान हैं। यथार्थ में ये भी एक जातीय अनेक पदार्थों के समूह हैं इसलिये इन्हें उपवर्ग कहा जा सकता है। यद्यपि आयुर्वेद शास्त्र में ऐसा कोई वर्णन नहीं है तथापि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र से तुलनात्मक विवेचन करने में ऐसी प्रतीति होती है जो आगे पित्त और कफ के कुछ भेदों से और भी स्पष्ट हो जाती है। पहिले जो वायु के ४९ भेद कहे गये हैं वे वायु के इन्हीं पांच भेदों के अन्तर्गत आ जाते हैं अतः ये पांच भेद वात वर्ग के अन्तर्गत उपवर्ग ही हैं।

वायु के भेद—वायु के जो पांच भेद किये गये हैं उनका वर्णन करते हैं। वे विद्युत के धन ऋण अथवा बाह्य वायु के carbondioxide, oxygen, nitrogen hydrogen, halogen आदि के समान हैं। आधुनिक नाड़ीशास्त्र (Neurology) में वर्णित नाड़ी चक्र (Nerve Plexuses) तथा योगतन्त्र में वर्णित षट् पद्म या षट् चक्र पंच वायु के विशिष्ट स्थान हैं तथा यह सम्भव है कि तत्रस्थ शक्ति सम्पन्न अज्ञात द्रव्य ही भिन्न-भिन्न वायु हों। अज्ञात शब्द इसलिये कहा कि अभी तक आधुनिक विज्ञान में अथवा प्राचीन साहित्य में इसकी खोज नहीं हो सकी है कि इन पांचों का यथार्थ स्वरूप क्या है। कौनसी वायु किस चक्र से विशेष सम्बन्धित है इसे नीचे प्रदर्शित करते हैं।

वायु के प्रकार	—	योग तन्त्रोक्त चक्र	—	आधुनिक विज्ञानोक्त चक्र
प्राण वायु	—	आज्ञा चक्र*	—	बहिर्मातृक चक्र (Cavernous plexus)
		विशुद्ध चक्र	—	अन्तर्मातृक चक्र (Carotid-plexus)

---

*आज्ञाचक्र—प्रत्यक्ष शरीर में आज्ञाचक्र को एक स्थान पर Optic Thalamii मान कर उसकी 'आज्ञाकन्द' संज्ञा दी है और दूसरे स्थान पर उपरिनिर्दिष्ट बहिर्मातृक चक्र लिखा है।

उदान वायु — अनाहत चक्र — हार्दिक नाड़ी चक्र (Cardiacplexus)

व्यान वायु — स्वाधिष्ठान चक्र* — अधिवस्तिक नाड़ी चक्र (Hypogastric plexus)

समान वायु — मणिपूर चक्र — सौरमंडल या उदर्य मस्तिष्क† (Solar, epigastric or Coeliac plexus or abdominal brain)

अपान वायु — मूलाधार चक्र‡ — वस्तिगुहान्तरीय नाड़ी चक्र (Pelvic plexus)

ऊपर चक्रों से पांच वायुओं का सम्बन्ध प्रदर्शित किया है। अब उनके शास्त्रोक्त कार्य और स्थान के आधार पर आधुनिक नाड़ीविज्ञान के अनुसार मार्गों तथा आश्रय स्थान का विशद वर्णन करते हैं:—

प्राण वायु—मस्तिष्क (Brain), मस्तिष्कीय नाड़ियां (Cranial nerves), परिस्वतन्त्र नाड़ीमण्डल का ऊर्ध्व भाग (Upper part of the parasympathetic nervous system), ऊर्ध्व और अधः ग्रैवेयक ग्रन्थि (Superior and Inferior Cervical ganglia)

---

* स्वाधिष्ठान चक्र—प्रत्यक्ष शरीर में एक स्थान पर स्वाधिष्ठान चक्र को अधरान्त्रिक नाड़ी चक्र (Inferior mesenteric plexus) भी लिखा है। दोनों नाड़ी चक्र एक-दूसरे के सन्निकट होने से दोनों सम्भावनाएं हैं अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र अधिवस्तिक अथवा अधरान्त्रिक नाड़ी चक्रों में से कोई भी हो सकता है।

† उदर्य मस्तिष्क—इसका नाम उदर्य मस्तिष्क रखना सिद्ध करता है कि कार्य की दृष्टि से इसका महत्त्व शिरस्थ मस्तिष्क के समान होना चाहिए। और यदि ऐसा है तो अन्य चक्रों का भी कार्य दृष्ट्या कुछ महत्त्व होना चाहिए। यद्यपि आधुनिक शास्त्रों में ऐसा कोई वर्णन नहीं है। यह सम्भव है कि आधुनिक नाड़ी विज्ञान वेत्ताओं को अभी इन चक्रों के विशिष्ट कार्यों का ज्ञान न हो पाया हो।

‡ मूलाधर चक्र—प्रत्यक्ष शरीर ने मूलाधार चक्र को एक स्थान पर Ganglion Coccygenum Impar ध्वजाधोगुदोर्ध्व या कन्दमूल माना है और एक अन्य स्थान पर उपरिनिर्दिष्ट वस्तिगुहान्तरीय चक्र लिखा है। किन्तु यह ग्रन्थि (ganglion) नहीं है, चक्र है इसलिऐ उपर्युक्त मत ही ठीक है।

उदान वायु--सुषुम्ना का ग्रैवेयक विभाग (Cervical part of the spinal cord) और सुषुम्ना के औरस विभाग का ऊर्ध्वार्ध (upper half of the thoracic part of the spinal cord) तथा तज्जन्य नाड़ियां।

समान वायु--सुषुम्ना औरस निभाग का निम्नाध '(Lower half of the thoracic part of the spinal cord), ग्रन्थियों सहित मध्य स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल (Sympathetic nervous system includling sympathetic ganglia), सौरमण्डल या उदर्य मस्तिष्क (Solar plexus or abdominal brain) चन्द्रमण्डल (Semilunar ganglion), ऊर्ध्व और अधः आन्त्रिक नाड़ी चक्र (Superior and Inferior mesenteric plexus), पचन संस्थान नियामक सौषुम्नीय नाड़ियां (Spinal nerves governing the digestive system).

अपान वायु—सुषुम्ना का कटि और त्रिक विभाग (Lumbar and Sacral part of the spinal cord) परिस्वतन्त्र नाड़ी मण्डल का अधोभाग (Lower part of the parasympathetic nervous system), अधिवस्तिक नाड़ी चक्र (Hypogastric plexus).

व्यान वायु—चेष्टावह और संज्ञावह नाड़ियां (Motor and Sensory nerves includling vasomotor and pitomotor nerves).

इन वायुओं का भिन्न-भिन्न निस्रोतस् ग्रन्थियों के स्रावों तथा अन्य स्रावों से भी विशिष्ट सम्बन्ध है जो नीचे प्रदर्शित किया जाता है :—

वायु के प्रकार	**स्राव**
प्राण वायु —	पीयूष या पोषणिका ग्रन्थि (Pituitary gland) का स्राव।
उदान वायु —	ग्रैवेयक चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid gland) का स्राव।
व्यान वायु —	मज्जान्तः स्राव (nerve-end secretion i. e. choline hydrochlore)।
समान वायु —	आमाशयिक स्राव और आन्त्रिक उद्रेचन (Gastric juice and Succus entericus)।
अपान वायु —	उपवृक्कोद्रेक (Adrenal secretion)।

कुछ विद्वानों का प्राण और अपान वायु के सम्बन्ध में अपना एक विशेष मत है जिसके पक्ष-विपक्ष का विवेचन यहाँ संक्षेप में किया जाता है :—

वे बाह्य वायु और आभ्यन्तरिक वायु को एक मानते हुए अपान वायु को कारबन-डाय आक्साइड और प्राणवायु को आक्सीजन मानते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के पाँचवें अध्याय के २७वें श्लोक में कहा है—"प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।" जो वायु अन्दर जाती है वह प्राण अथवा आक्सीजन और जो बाहिर आती है वह अपान अथवा कारबन डाय आक्साइड है पक्वाशय में आहार पाक की अन्तिम अवस्था में जो वायु की उत्पत्ति बताई गई है (वायुः स्यात् कटुभावतः) वह भी गुद मार्ग से निकलने वाली कारबन डाय आक्साइड अथवा अपान वायु है। जिस तरह महास्रोतस्थ क्लेदक कफ तथा पाचक पित्त अन्य शेष चार-चार कफ व पित्त का अनुग्रह या पोषण करते हैं तद्वत् यह अपान वायु भी शेष चार वायुओं का पोषण करती तथा उनके कार्य में सहायक होती है। प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि वायुमण्डल में अथवा शरीर में कारबन डाय आक्साइड़ याने अपान वायु के आधिक्य से श्वास क्रिया उत्तेजित होकर प्राण वायु याने आक्सीजन का कार्य बढ़ जाता है। यह पूर्व पक्ष है।

यह मत सुन्दर प्रतीत होता है किन्तु इस मत के प्रतिपादन में प्रारम्भ से ही बड़ी भारी भूल हो गई है क्योंकि श्वास-प्रश्वास क्रिया में वर्णित प्राण वायु कारबन डाय आक्साइड तथा अपान वायु आक्सीजन है न कि इसके विपरीत जैसा कि मिथ्या लौकिक प्रचार के आधार पर पूर्व पक्ष में विवेचन किया गया है। इस सम्बन्ध में गीता के उपर्युक्त श्लोक* की टीका पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। श्रीधर ने इसकी टीका में लिखा है—

उच्छ्वासनिच्छ्वास रूपेण नासकयोराभ्यन्तरे चरन्तौ प्राणापानावूर्ध्वाधोगति निरोधेन समौ कृत्वा। कुम्भयित्वा इत्यर्थः। यद्वा प्राणो यथा बहिर्न निर्याति यथा चापानोऽन्तर्न प्रविशति किन्तु नासामध्य एव द्वावपि यथा चरतः तथा मन्दाभ्यामुच्छ्वासनिच्छ्वासाभ्यां समौ कृत्वेति।

इसके सिवा श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय की उन्तीसवें श्लोक† की टीका

---

*उपर्युक्त— प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।

†श्री मद्भगवद्गीता का चौथे अध्याय का उन्तीसवां श्लोक—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे।
प्राणापान गती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः॥

से भी प्राण वायु का कारबन डाय आक्साइड तथा अपान वायु का आक्सीजन होना सिद्ध होता है। श्रीधर ने लिखा है—

अपाने अधो वृत्तौ प्राणामूर्ध्ववृत्तिं पूरकेण जुह्वति पूरककाले प्राणमपानेनैकी कुर्वन्ति। तथा कुम्भकेन प्राणापानयोरूर्ध्वाधोगतीरूद्ध्वा रेचक कालेऽपानं प्राणे जुह्वति। एवं पूरक कुम्भकरेचकैः प्राणायाम परायणाः अपरे इत्यर्थः। प्राणानां दशानां कर्माणि, प्राणस्य बहिर्गमनम्' अपानस्याधो गमनम्।

इसी श्लोक की टीका में भगवान शङ्कराचार्य ने लिखा है—

"प्राणापानगती मुखनासिकाभ्यां वायोर्निर्गमनं प्राणस्य गतिः तद्विपर्ययेणाधोगमनमपानस्य ते प्राणापानगती।"

श्रीमती एनीबीसेंट तथा डा० भगवानदास ने भगवद्गीता के आंगल अनुवाद में इस श्लोक की टीका में प्राण के लिए 'out going breath' तथा अपान के लिए 'in going breath' का प्रयोग किया है।

इनके अतिरिक्त कठोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, वेदांत सूत्र, योग सूत्र आदि से भी प्रमाण दिये जा सकते हैं जो इसी मत के सूचक हैं। यह प्राणापान संज्ञा धर्म अथवा दर्शन शास्त्र की पारिभाषिकी संज्ञा है जो आयुर्वेदोक्त प्राणापान से भिन्न है। अतः इस मत के आधार पर तथा उसे भी विपरीत मान कर आयुर्वेदीय मत की सिद्धि करना अभीष्ट नहीं है। तथा च आयुर्वेदोक्त अपान वायु का स्थान तथा कार्य-क्षेत्र आयुर्वेद शास्त्र में नासा व मुख कहीं भी वर्णित नहीं है।

पित्त के भेद—अब पित्त के जो पाँच भेद किये गये हैं उनका तुलनात्मक विवेचन किया जायगा।

पाचक पित्त—इसमें आधुनिक शास्त्रोक्त निम्न लिखित वस्तुओं का समावेश होता है :—

लाला स्राव* (Salva) का ptylin नामक enzyme, आमाशयिक स्राव† (Gastric juice) का अम्ल भाग तथा Rennet या Rennin और Pepsin नामक enzymes, अग्न्याशयिक स्राव (Pancreatic juice), आन्तरिक स्राव (Succus entericus) और Bile, अग्न्याशय के दो प्रकार के स्राव हैं—बहिः स्राव और अन्तः

---

*लालास्राव—इसका शेष भाग बोधक कफ का है।

†आमाशयिक स्राव—इसका शेष भाग क्लेदक कफ का है।

स्राव। उसका बहिः स्राव Pancreatic juice कहलाता है जिसका उल्लेख अभी किया गया है। अन्तः स्राव Insulin कहलाता है जो एक प्रकार का सर्व शरीर चर सूक्ष्म पाचक पित्त अथवा प्रधान धात्वग्नि है।

रञ्जक पित्त--आयुर्वेद में रञ्जक पित्त के स्थान आमाशय, यकृत और प्लीहा बतलाये गये हैं। इसका कार्य रस धातु को रञ्जित करने का अथवा दूसरे शब्दों में रस से रक्त बनाने का है। यह कार्य जिस द्रव्य से होता है उसे Erythrocyte maturing factor, P. A. factor अथवा Haemopoetic principle कहते हैं। यही आयुर्वेदोक्त रञ्जक पित्त है। आहारस्थ extrinsic factor तथा आमाशयस्थ intrinsic factor के संयोग से इसका निर्माण आमाशय में होकर यकृत में संचय होता है। इसी लिये यकृत और आमाशय रञ्जक पित्त के स्थान बताये गये हैं। यद्यपि रक्त के लाल कणों का निर्माण इनमें न होकर अस्थिमज्जा (Bone-marrow) में होता है तथापि एतदर्थ यकृतस्थ E. M. F. अथवा Haemopoetic principle परमावश्यक है। आजकल पाण्डु रोग (Anaemia) में प्रयुक्त यकृत सत्त्व (Liver extract) के इंजेक्शनों का प्रभाव रक्त वृद्धि में स्पष्ट देखा जाता है जो प्राच्य मत की पुष्टि करता है तथा ऋषियों की तीक्ष्ण वैज्ञानिक बुद्धि पर हमें आश्चर्य में डाल देता है। इसी प्रकार आमाशयिक सत्त्व (Gastric or Stomach extract) का प्रयोग भी पाण्डु रोग में आजकल मुख द्वारा किया जाता है जो वाग्भट के इस मत की पुष्टि करता है कि आमाशय भी रञ्जक पित्त का स्थान है प्लीहा में भ्रूणावस्था तथा शैशवावस्था में रक्ताणु बनते हैं तथा उसमें आवश्यकता के लिये रक्त का संचय रहता है इसलिये प्लीहा का निर्देश भी रञ्जक पित्त के स्थानों में कर दिया है। शैशवावस्था के पश्चात् उसमें रक्त के केवल श्वेताणु बनते हैं।

रक्त में जो लाल वर्ण रहता है वह रक्ताणुओं में स्थित Haemoglobin के कारण है इसलिये Haemoglobin भी रञ्जकपित्त है।

साधक पित्त—कुछ लोगों का मत है कि हृद्गत Sympathetic nerves द्वारा स्रवित adrenaline अथवा तत्सम कोई स्राव है। किन्तु मेरा अनुमान है कि यह हृदय का ही कोई स्राव है जिसका आधुनिक वैज्ञानिकों को अभी तक पता नहीं लगा है। हृत्मांसपेशी की विशिष्ट रचना और उसका किसी नाड़ी द्वारा उत्तेजना (nervous stimulus) पाये बिना अविरत गति से कार्य करते रहना यह सूचित करता है कि उस

का कोई स्राव है जो यह कार्यनियमित रूप से कराता है। Sympethetic vagus या nerves का नियामक प्रभाव हृदय की गति को आवश्यकतानुसार कम या ज्यादा करने में अवश्य होता है किन्तु इनकी उत्तेजना के अभाव में जो स्पन्दन कार्य होता है वह हृदय का स्वाभाविक है। आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा इस के प्रयोग किये जा चुके हैं और यह सिद्ध हो चुका है कि हृत्पेशी-का-कार्य* नाड़ी जन्य (Neurogenic) न होकर पेशी जन्य (Myogenic and myodromic) है। आधुनिक हृदय विशेषज्ञ (cardiologists) हृद्रोगों में हृद्रस (cardiac extract) का प्रयोग करते हैं। इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि हृदय का अवश्य कोई स्राव होना चाहिए जो हृदय का पोषक तो है ही किन्तु मन तथा शरीर की उच्चतम क्रियाओं का उत्तेजक भी है। हृत्पेशी का यह स्राव (Hormone or Internal secretion of the heart) हृत्कार्य सम्पादन करता हुआ मन तथा शरीर को उत्साहित कर अभिवाञ्छित मनोरथ की पूर्त्ति करता है। यही साधक पित्त है।

आलोचक पित्त—यह नेत्र के Retina नामक अन्तः पटल का visual purple (Rhodopsin) नामक रञ्जक पदार्थ है जो Rods के बाह्य अंग में स्थित रहता है। यह रक्त वर्ण का होता है। केमरे के नेगेटिव प्लेट के समान वस्तु का जो चित्र Retina पर बनता है वह इसी द्रव्य के रासायनिक परिवर्तनों के कारण बनता है। Blind spot पर जहां कि rods नहीं रहते visual purple की अनुपस्थिति के कारण कोई प्रतिच्छाया नहीं दिखाई देती। नेत्र में इस रञ्जक द्रव्य के अतिरिक्त और भी रञ्जक द्रव्य हैं जिनके सम्बन्ध में अभी विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है यथा पीत बिन्दु (Yellow spot or macula lutea) में स्थित पीत द्रव्य।

---

*हृत्पेशी का कार्य—Handbook of physiology में लिखा है—

At one time the rhythm which cardiac muscle exhibits was supposed to be due to the action upon it of the nerves which are present. We now know that the property of rhythmical contraction resides in the muscular tissue itself, though normally during life it is controlled and regulated by the nerves which supply it. This conclusion may be expressed by saying that cardiac rhythm is myogenic not neurogenic.

भ्राजक पित्त—यह एक त्वग्कोष्ठस्थ द्रव्य (Intracellular substance of the skin) है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में तापनियमन, शोषण, और तैल तथा स्वेद प्रस्रवण प्रधान कार्य बताये गये हैं, किन्तु इनके कर्त्ता का वर्णन नहीं दिया है। नाड़ी संस्थान में तैल ग्रन्थियों और स्वेद ग्रन्थियों को प्रेरित करने वाले केन्द्र हैं तथापि सामान्य दशा में इनका नियमन तथा त्वचा द्वारा लेपादि का पाचन और शोषण कार्य त्वग्कोष्ठ द्रव्य एवं तन्निष्ठ ऊष्मा द्वारा होता है जो आयुर्वेदोक्त भ्राजक पित्त है। त्वचा की यह स्थिति नाड़ी प्रभाव के अन्तर्गत होते हुए भी हृदय के तन्निष्ठ स्फुरण गुण के समान स्वकीय एवं स्वतंत्र है। तथा जिस प्रकार हृदय में साधक पित्त के द्वारा कार्य सम्पादन होता है उसी प्रकार त्वचा में उसके कार्य भ्राजक पित्त के आधीन हैं।

कफ के भेद—वात तथा पित्त के समान कफ के भी पांच प्रकार या उपवर्ग हैं तथा पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के किन द्रव्यों से उनकी तुलना की जा सकती है यह लिखित सारिणी में बताया गया है—

क्लेदक कफ—आमाशय की पचयात्मक ग्रन्थियों का स्राव (Gastric mucous secretion excluding hydrochloric acid and enzymes named pepsin aed rennin), आमाशय में rennin तथा pepsin नामक पित्त वर्गीय enzymes के अतिरिक्त enterogastrone नामक protective enzyme होता है जो आमाशय की श्लैष्मिक कला को पूर्वोक्त enzymes के तीक्ष्ण प्रभाव द्वारा विनाश होने से बचाता है। यह रक्षक enzyme क्लेदक कफ का ही भाग है।

अवलम्बक कफ—हृदयावरण और फुफ्फुसावरण में स्थित द्रव (Serous fluid in pleurac and pericardium), श्वास संस्थान का श्लैष्मिक द्रव्य (Tissue fluid of the respiratory system), महती रसकुल्या में स्थित रस (Lymph and chyle in the great lymphatic duct called thoracic duct), चुल्लिका, उपचुल्लिका और औरस ग्रन्थियों का अन्तः स्राव (Internal secretion of the thyroid, parathyroid and thymus glands)

बोधक या रसक कफ—मुख और गले का श्लैष्मिक स्राव (Mucous secretion of the mucus glands in the mouth and pharynx), लाला ग्रन्थियों का लाला स्राव (salivary secretions of the salivary glands—

excluding ptyline), श्लेष्मभू* अथवा उपजिह्विका नामक दो रसग्रन्थिां (Lymphoid glands) जिन्हें अंगरेजी में tonsil कहते हैं, उनका स्राव।

तर्पक कफ—मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव (cerebrospinal fluid which is nutritive to the nerve tissues), नेत्र गोलक में स्थित द्रव (Agueous and Vitreous humours in the eye balls) अश्रुग्रन्थि का स्राव (Lacrymal secretion), तथा अन्तः कर्ण में स्थित द्रव (Fluids inside the internal ears called endolymph and perilymph).

श्लेषक कफ—अस्थि संधियों में स्थित श्लेष्मा (Synovia i.e. synovial fluid in the joints), अणुश्लेष्मा या कोषाणुओं की सन्धियों में स्थित श्लेष्मा (Inter-cellular substance).

उपसंहार (Conclusion)

त्रिदोष के आवश्यक विषयों पर इस लेख में प्रकाश डाला गया है। इसमें प्राचीन शास्त्रोपलब्ध विषय तथा विद्वानों द्वारा पुरस्कृत एवं कुछ निजी विचारों का संग्रह है। इसमें प्रस्तुत विषय भी अभी तक लिखे गये त्रिदोष सम्बन्धी लेखों के समान एक अन्तिम निर्णीत विचार नहीं कहा जा सकता तथा विमर्श और अनुसंधान के लिये पर्याप्त स्थान है।

उपर्युक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त त्रिदोष सम्बन्धी अनेक विषय हैं जिन पर प्रकाश डाला जा सकता था किन्तु निरपेक्ष विस्तार के कारण उन्हें छोड़ दिया है, यथा—ओज और रक्त दोष क्यों नहीं हैं, वातादि प्रकृति के लक्षण और आधुनिक मत, त्रिदोष और नाड़ी विज्ञान, त्रिदोष और जीवाणुवाद, मानस दोष और मानस विकार का त्रिदोष से सम्बन्ध, मृत्यु के पश्चात् त्रिदोष की स्थिति इत्यादि इत्यादि।

समाप्त

---

*श्लेष्मभू—चरक ने लिखा है—"द्वौश्लेष्मभुवौ" जिसकी टीका में चक्रदत्त लिखते हैं—"श्लेष्मभुवौकण्ठस्यपार्श्वयोर्व्यवस्थितौ कठिनौ भागौ।" चरक में ही अन्य स्थान पर इनके लिये 'उपजिह्विका' शब्द आया है। ये वर्तमान में प्रचलित 'टान्सिल' हैं तथा इनके लिए आजकल हिंदी में 'गल ग्रन्थि' शब्द का प्रयोग करते हैं।

आयुर्वेद-लोक

श्री आयंगर द्वारा आयुर्वेद की उपयोगिता पर जोर—

तिब्बिया कालेज की आयुर्वेदिक सम्भाषा परिषद् द्वारा आयोजित वसन्तोत्सव के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए भारतीय संसद् के उपाध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने आयुर्वेद को एक वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली बताया और कहा कि अनेक कारणों से यह प्रणाली देश के लिए उपयोगी है। तिब्बिया कालेज की वर्तमान स्थिति पर खेद प्रकट करते हुए आपने कहा कि जिस शिक्षण संस्था का उद्घाटन गांधी जी द्वारा हुआ और जो केन्द्र में विद्यमान है, उसकी उपेक्षा सरकार को नहीं करनी चाहिए।

कालेज के आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष कविराज उपेन्द्रनाथ दास ने कालिज की वर्तमान दशा पर प्रकाश डाला। आपने कहा कि एक ओर राष्ट्र के कर्णधारों द्वारा स्थापित तिब्बिया कालेज जैसी संस्थाएं मिटती जा रही हैं, दूसरी ओर नई-नई संस्थाएं खोली जा रही हैं और उनकी योजनाएं बना कर करोड़ों रुपया व्यय किया जा रहा है। श्री दास ने भाषण के अन्त में आयुर्वेद का महत्व बताते हुए सरकार से तिब्बिया कालेज के उद्धार की अपील की।

श्री हरिरंजन मजूमदार, भूतपूर्व अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग, ने अपने भाषण में कहा कि हमारी सरकार जो कानून बनाने में बहुत प्रगतिशील है एवं हमारे शिक्षा मंत्री जो स्व० हकीम अजमल खान साहब के परम मित्रों में से हैं, क्यों नहीं कालेज के उद्धार के लिए कोई कानूनी व्यवस्था करते? उन्होंने आशा प्रगट की कि संसद् के सदस्य तथा भारत सरकार शीघ्र ही इस सम्बन्ध में उचित कार्यवाही करेगी ताकि तिब्बिया कालेज पुनः भारत के आदर्श आयुर्वेद महाविद्यालय का रूप धारण कर सके।

प्राचीन दवाइयों में शोध की आवश्यकता—प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने लखनऊ में केन्द्रीय औषधि अनुसन्धानशाला का उद्घाटन करते हुए कहा कि औषधि अनुसन्धान भारत में दो कारणों से आवश्यक है। एक तो यह कि भारत में औषधियों का बाहर से

ाना बन्द हो और भारत आत्मनिर्भर हो। दूसरा यह कि नए-नए तरीकों का आविष्कार किया ाय जिससे न केवल हमारे कष्ट दूर हों अपितु दुनिया को भी फायदा मिले।

“मैं यह सोचता हूँ कि हमारे देश में वैज्ञानिक आधार पर अनुसन्धान आवश्यक है। मारे में नीम हकीमी और अन्ध विश्वास बहुत है। उस नीम हकीमी को हम मीठे और मधुर ब्दों के आवरण में छिपाने का प्रयत्न करते हैं, यह खतरनाक चीज है।

“जिस चीज में भी नीम हकीमी और अन्ध विश्वासों की गन्ध आती हो उसे खतम रना चाहिए। मैं नीम हकीम का आसरा लेने की अपेक्षा उनके बिना मर जाना अधिक सन्द करूंगा।

यद्यपि मैं नीम हकीमी के विरुद्ध हूं तो भी यह चाहता हूँ कि हमारे यहां पीढ़ी दर पीढ़ी ो घरेलू दवाइयां चली आती हैं उनकी प्रभावशालिता की भरपूर खोज की जाय। यह काम ज्ञानिक ढंग से करने से अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। लोगों को प्राचीन काल की वे चीजें ोड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए, जो खोज करने पर निरर्थक सिद्ध हों।

आसाम आयुर्वेद महासम्मेलन--की कार्यनिर्वाहक समिति की एक बैठक में क प्रस्ताव द्वारा सरकार से अनुरोध किया गया है कि वैद्यों पर औषध बिकी कर लागू न किया ाए क्योंकि इससे गरीब जनता को हानि होगी और उन्हें अपनी स्वास्थ्य रक्षार्थ चिकित्सा कराने कठिनाई होगी।

एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा गोहाटी मुनिकुल आश्रम वैदिक विद्यालय में सरकार द्वारा प्राचीन ादर्शानुसार स्थापित आयुर्वेद शिक्षा विभाग को स्थाई करने की प्रार्थना की गई और सम्मेलन ी ओर से आवश्यक सहायता देने का वचन दिया गया।

राजस्थान प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन--एकादश अधिवेशन में होने वाली निबन्ध परिषद् पढ़े जाने वाले स्नायुक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य संरक्षक योजना इन दो विषयों पर गवेषणा-ें लेख भेजने के लिये सभी आयुर्वेद विद्वानों से प्रार्थना की जाती है कि वे अपने लेख १९ र्च तक अवश्य प्रधान मन्त्री, राजस्थान प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन विष्णुभवन, उदयमन्दिर, जोधपुर पते पर भेज दें। जो निबन्ध-निर्णायक समिति के द्वारा प्रथम एवं द्वितीय स्वीकार होंगे उन्हें ागत-समिति द्वारा क्रमशः स्वर्ण एवं रजत पदक प्रदान किये जावेंगे।

पटियाला राज्यसंघ वैद्यमण्डल सरहिन्द--के एक विशेषाधिवेशन में पदाधि-ारियों का चुनाव इस प्रकार हुआ—प्रधान, पं० राम प्रसाद जी राजवैद्य (पटियाला), कार्य-ाहक प्रधान—पं० गोवर्धन दास (तपा), उप-प्रधान—पं० मुंशीराम (भटिण्डा), प्रधान-

मन्त्री—महेशदत्त शर्मा (सरहिन्द), संयुक्त मन्त्री—श्री कान्ती नारायण मिश्र (पटियाला), मन्त्री—बाबूराम (बरनाला)।

भूल-सुधार——गतांक में प्रान्तीय समाचारों के स्तम्भ में दिल्ली आयुर्वेदिक बोर्ड के सदस्यों के नामों में प्रधान इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा दिल्ली, श्री कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी का नाम क्लर्क की गलती से रह गया था। इसका हमें हार्दिक खेद है—प्र० स०।

श्रीगंगाधर शास्त्री गुणे का स्वर्गवास

सुप्रसिद्ध आयुर्वेद विद्वान् श्री गंगाधर शास्त्री गुणे (अहमदनगर) का २२ फरवरी को पूना में पक्षाघात से ६९ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। आप पूना के मैडिकल कालेज में आयुर्वेद पर विशेष व्याख्यान माला देने गए हुए थे। आयुर्वेदाश्रम अहमदनगर के आप संस्थापक थे। परमात्मा मृतात्मा को सद्गति तथा दुखी परिवार को शान्ति प्रदान करे।

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

आयुर्वेदीय-यन्त्र-शस्त्र परिचय

(सुश्रुतवाग्भटाद्याश्रितः सचित्रश्च)

रचयिता :—आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेन्द्रमोहन बी० ए०

(भूतपूर्व प्रिंसिपल, दयानन्दायुर्वेदिक कालेज, लाहौर)

इस अपूर्व ग्रन्थ में न केवल यन्त्रों और शस्त्रों की विधिवत् व्याख्या की गई है, प्रत्युत लगभग १०० चित्र (Diagrams) दे कर उनकी आकृति का पूर्ण परिचय दिया गया है। वर्णन अति रोचक और पठनीय है। यह पुस्तक आयुर्वेद विद्यापीठ के परीक्षार्थियों तथा आयुर्वेदीय संस्थाओं के छात्रों के लिये अत्युपयोगी है। इस में शल्य-सम्बन्धी प्रश्न तथा अन्य अनेक उपयोगी बातें योगादि दिये गये हैं। चिकित्सक भी इससे लाभ उठा सकते हैं। मूल्य १॥) प्रति, डाक व्यय पृथक्।

मिलने का पता :—श्री सत्येन्द्रनाथ बी० ए० (आनर्स),
प्रबन्धक-इन्द्रायुर्वेद भवन, हरध्यानसिंह रोड, करोल बाग, नई देहली।

साहित्य-सत्कार

[समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ आनी आवश्यक हैं]

द्रव्यगुण विज्ञानम् (उत्तरार्ध औषध द्रव्य विज्ञानियोनाम द्वितीयः खण्डः)—लेखक—श्रीयादव जी त्रिकम जी आचार्य। प्राप्ति स्थान—श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य, डा० विगास स्ट्रीट गायवाड़ी, बम्बई तथा निर्णयसागर प्रैस, २६।२८, कोलभाट स्ट्रीट, बम्बई २। पृष्ठ संख्या ४८०, मूल्य १२) रु०।

द्रव्यगुण विज्ञान का पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध का परिभाषा खण्ड पहिले प्रकाशित हो चुके हैं। उपर्युक्त उत्तरार्ध का औषध द्रव्य विज्ञानीय नामक द्वितीय खण्ड अब प्रकाशित हुआ है। इस खण्ड में उद्भिज और जाङ्गम दो प्रकार के द्रव्यों का वर्णन किया गया है। उद्भिजों के अंगप्रत्यंगों के नाम और उनकी व्याख्या, द्रव्य का संक्षिप्त परिचय, उपयुक्त अंग, मात्रा और गुण कर्म आदि का वर्णन संक्षेप में किन्तु अत्यन्त योग्यता-पूर्वक किया गया है।

इस खण्ड में प्रायः वैद्यों के नित्य व्यवहार में आने वाले और असंदिग्ध द्रव्यों का वर्णन है। यूनानी और पाश्चात्य चिकित्सा में विशेष प्रचलित बनफ्शा, जूफा, सुरंजान, जुन्दबेदस्तर, डिजिटेलिस, बैलाडोना, अर्गट आदि द्रव्यों का भी वर्णन है।

आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए द्रव्यगुण के पठन के लिए तथा चिकित्सकों के reference के लिए अनूठा ग्रन्थ है।

वैद्य समाज के लिये स्वर्ण-अवसर

हमारे यहाँ के विशुद्ध आयुर्वेदिक वैज्ञानिक ढंग से बने हुए आयुर्वेदिक इंजेक्शनों को खरीद, दुःसाध्य एवं कठिन रोगों की चिकित्सा कर यश तथा धनोपार्जन कीजिए।

भारत में आयुर्वेदिक इंजेक्शनों की एकमात्र अनुसंधान-शाला—

श्री लक्ष्मी आयुर्वेदिक अनुसंधान भवन, बरुवा सागर (झांसी)।

अमृतधारा नव औषध रत्न से

पूरा औषधालय चलाइये, सब रोगों की चिकित्सा कीजिये

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्य, के ५० वर्षीय अनुभव के आधार पर ये औषधियां निर्मित हैं। अमृतधारा तो लगभग सब रोगों को खाने व लगाने से दूर भगाती है। औषध नवरत्न निम्न रोगों के वास्ते रामबाण का काम देते हैं।

१. **शमकारक**—पित्त वृद्धि और दूषित होने से जो भी रोग हो, इस से दूर करिये। रक्त कहीं से बहता हो बन्द हो जायेगा।
मूल्य ६४ गोली ४) रु०, १६ गोली १) रु०

२. **याकूती नवरत्नी**—ऊपर लिखित गर्मी के सब विकार दूर करने के अतिरिक्त हृदय मस्तिष्क यकृत को बल देती है। और मानसिक विकार के रोगों को दूर करती है। मूल्य ६४ गोली १०) रु०।

३. **गुड़चक**—वात तथा कफ के सर्व रोग नष्ट होते हैं।
मूल्य ६४ गोली ४) रु०, १६ गोली १) रु०।

४. **हयात अफ़ज़ा**—सब विकार दूर होकर रक्त शुद्ध होता है, और हृदय कम्प, यकृतशोथ, पाण्डु, कामलादि रोग नष्ट होते हैं।
मूल्य ६४ मात्रा २) रु०, १६ मात्रा ८ आ०

५. **गोली अमृत**—विरेचक है। और वात कफ के रोग नष्ट होते हैं।
मूल्य ६४ गोली २) रु०, १६ गोली ८ आ०।

६. **गन्धार रस**—मल बन्धक, अतिसार, संग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसार दूर करे। मूल्य १) रु०, नमूना ।)

७. **अमृतचूर्ण**—दांतों के वास्ते उत्तम मंजन, आँखों के वास्ते उत्तम अंजन, विषैले डंक पर उत्तम विषनाशक, नस्य लेने से शिर पीड़ा, अतिश्याय की चिकित्सा, बच्चों के रोगों की उत्तम चिकित्सा, ज्वर, जूड़ीनिवारक।
मूल्य १० तोला २) रु०, २½ तोला ८ आ०।

८. **शफावटी**—विषैले ज्वर यथा शीतला, प्रसूत, मंथर, मलेरिया, टाईफाईड, पुरातन शिरा शूल, प्रतिश्याय, मृगी आदि के वास्ते।
मूल्य ६४ गोली २) रु०, १६ गोली ८ आ०।

९. **बलपूर वटी**—हिस्टीरिया, मृगी, प्लेग, हैजा, भगन्दर, नासूर, खाये-गये या डंकादि से प्रवेश हुये और आतशक, सुजाक के विषों के विकार दूर होते हैं। मूल्य ६४ गोली ३) रु०, १६ गोली १२ आ०।

सब औषधियों की सेवन विधि साथ भेजी जावेगी।

धर्मार्थ औषधालय में अवश्य रखें

नवीन चिकित्सक केवल ये औषधियां रख कर योग्य वैद्य प्रसिद्ध हों

मिलने का पता:—**अमृतधारा फार्मेसी लि०, देहरादून।**

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

मतदाता-सूची

प्रकाशित हो चुकी है जिसमें १५०० से भी अधिक वैद्यों के नाम पते सहित संग्रहीत हैं। औषध-विक्रेताओं के विशेष काम की चीज है। १) रु० भेजकर शीघ्र प्राप्त कर लें।

नया आविष्कार

स्त्री पुरुष, बालक सब के लिये अत्युत्तम महौषधि

* नव रत्न रस *

यह हीरा, माणक, मोती आदि नवरत्नों और स्वर्ण के संयोजन से तैयार की हुई प्रक्रिया है। शरीरस्थ रस. रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, शुक्र-वीर्य धातु की शुद्धि और पुष्टि इस महौषधि के विशिष्ट कार्य हैं तथा नपुँसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल कर नव यौवन प्रदान करता है। स्त्रियों के गर्भाशय के शोथ, प्रदर, बार-बार गर्भपात, गर्भवती स्त्री के हाथ पैरों, पेडू में शोथ तथा पांडुता आदि नष्ट करता है। वंध्यत्व निवारणार्थ यह अपूर्व औषधि है। बालकों की अशक्त अस्थियों को बलवान् बना कर केलशियम और विटामिन की न्यूनता, दुग्धपान स्तनपान का अपचन आदि नष्ट करके बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। क्षय, जीर्ण ज्वर कास, श्वास, मधुमेह, मानसिक निर्बलता आदि में अत्युपयोगी है।

नवरत्न रस——निरोगी के लिये रसायन और रोगो के लिये पूर्ण स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है।

उँझा फार्मेसी लि०, उँझा (गुजरात)

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)

गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे० के० शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४० वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। १५० पृष्ठ के बड़े सूचीपत्र का मूल्य आठ आना। छोटा सूचीपत्र मुफ्त। सब भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों तथा ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपर्युक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

Good News For English Knowing Vaidyas.

"The Journal of Ayurveda" has been taken over by the All India Ayurvedic Congress as its mouth-piece. The English-knowing Vaidya-samaj is, therefore, requested to subscribe to this paper in order to know the policy of the Mahasammelan and to help the Mahasammelan in propagating Ayurveda and the point of view of the Mahasammelan.

The new year begins with the January issue and the subscription from Vaidyas is Rs. 7/8 per annum and from students Rs. 5/- per annum. Intending subscribers are requested to write for it to :—

The General Secretary, **All India Ayurvedic Congress,**
90/8, Connaught Circus, New Delhi.

अत्यन्त सस्ती ! अत्यन्त सस्ती !!

शीघ्रता कीजिए, ऐसा अवसर फिर न मिलेगा।

हमारा कार्यालय भारत-पाक की सीमा पर होने से हम अपनी कुछ औषधियों का अधिक स्टाक शीघ्र विक्रय करना चाहते हैं। इस आशय से, अपनी लागत मात्र पर, इन औषधियों को दे रहे हैं।

नोट : इन भावों पर २० तोला से कम कोई औषधि न भेजी जावेगी। कम मंगाने पर सूची-पत्र के भाव लिए जावेंगे। स्टाक कम होते ही इन भावों पर बिक्री बन्द कर दी जावेगी। हमारा १ सेर ८० तोला का है। बड़ा सूचोपत्र मुफ्त।

गन्धक शुद्ध आंवलासार १०) सेर	कान्त लोह भस्म २८) सेर	योगराज गुग्गल १५) सेर
अभ्रक वज्र भस्म (६० पुटी) ६०) सेर	कसीस भस्म १०) ,,	रस सिन्दूर ६०) ,,
३० पुटी ४६) ,,	गोदन्ती ,, ३।।) ,,	लोह भस्म २४) ,,
कपर्दिका भस्म ८) ,,	चन्द्र प्रभा वटी ३०) ,,	शंख ,, ७) ,,
कुक्कटाण्डत्वक १८) ,,	प्रवाल भस्भ ४८) ,,	भृङ्गराज भस्म १४) ,,
त्रिवंग भस्म ४८) ,,	प्रवाल चन्द्रपुटी ४८) ,,	स्वर्ण माक्षिक भस्म २८) सेर
अभ्रक श्वेत भस्म १४) ,,	वंग भस्म श्वेत ३६) ,,	स्वर्ण बंग नं० १ ६०) ,,
	मण्डूर ,, २०) ,,	स्वर्ण सिन्दूर ३) ,,
	मुक्ता शुक्ती भस्म १०) ,,	

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स नं० १, जी० टी० रोड, अमृतसर।

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हज़ारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के निरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हजार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसी उत्तम पुस्तक दूसरी नहीं है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १।।।), डाक खर्च ।।=), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० ऐजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

विज्ञान और भारत

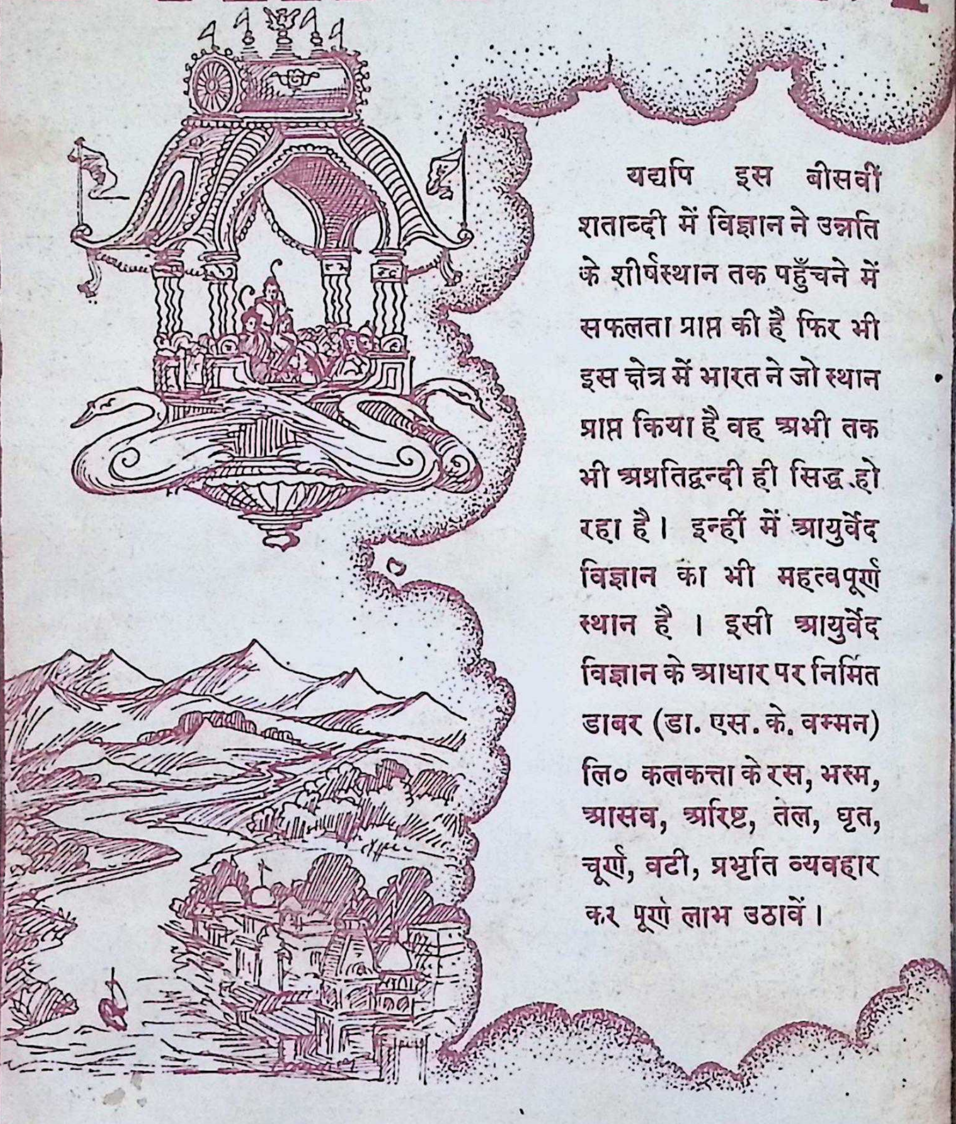

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. वर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तैल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लि०
पोस्ट—बक्स ५५४, कलकत्ता।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—न्यू इण्डिया प्रैस, नई दिल्ली।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

माघ २००७
फरवरी १९५१

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी.ए., बी.आई.एम.एस.

अमित

राजधानी से प्रकाशित समाचार-पत्रों की

सम्मति से लाभ उठाइये

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के मासिक मुख्य पत्र के रूप में पिछले ३६ वर्ष से यह पत्रिका प्रकाशित हो रही है। इसके प्रधान सम्पादक कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी भारत के लब्ध-प्रतिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सकों में से हैं। आयुर्वेद सम्बन्धी वैज्ञानिक सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर विद्वानों के लेखों के अतिरिक्त जन-साधारण के लिये स्वस्थवृत्त के उपदेश के लिए उपयोगी पत्र है।

देहली; ३१ दिसम्बर, १६५०। वीर अर्जुन (साप्ताहिक)

"यह निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की मासिक पत्रिका है जो निरन्तर ३६ वर्ष से अपने सुपाठ्य, सुविचारित, अनुभवसिद्ध एवं अनुसन्धानपूर्ण लेखों द्वारा इस देश की सेवा करने में निरत है। आयुर्वेद की सर्वांगपूर्ण उन्नति देखना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है, जो सर्वथा प्रशंसनीय है। स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार का स्वास्थ्य-विभाग आयुर्वेद के प्रचार तथा प्रोत्साहन के प्रति जो उपेक्षा दिखा रहा है पत्रिका उसके प्रति सजग है। भारतवर्ष के प्रान्तों में आयुर्वेद के प्रति साधक-बाधक कार्यों के सिंहावलोकन के प्रवित्र कर्त्तव्य का पालन भी पत्रिका कर रही है।"

नई दिल्ली; २६ नवम्बर, १६५०। 'हिन्दुस्तान' (साप्ताहिक)

पत्रिका में प्रायः अनुभवी आयुर्वेद के विद्वानों के अत्यन्त खोजपूर्ण शास्त्रीय लेख प्रकाशित होते हैं। मनुष्य-स्वास्थ्य के लिये उपयोगी भारत में उत्पन्न पेड़, पौधों, तथा विभिन्न जड़ी-बूटियों की उपयोगिता पर भी प्रायः एक उपादेय लेख रहता है। भारत में आयुर्वेद सम्बन्धी नई गति-विधि, चिकित्सा-विज्ञान की नई खोजों, विभिन्न प्रकार के सुझावों तथा आयुर्वेद साहित्य के प्रसार के लिये पत्रिका में 'आयुर्वेद-लोक' 'ज्ञान-विज्ञान', 'पाठकों के पत्र' तथा 'साहित्य-सत्कार' आदि कई महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं। नि० भा० आ० महासम्मेलन की परीक्षाओं सम्बन्धी पूरी रिपोर्ट भी पत्रिका में रहती है।

छपाई सुन्दर है तथा अश्लील विज्ञापन वर्जित हैं। पत्रिका विशेषतया उच्च शिक्षित समाज, शिक्षण संस्थाओं तथा चिकित्सकों के लिये बड़ा उपयोगी है।'

देहली; ८ अक्टूबर, १६५०। 'नवभारत टाईम्स'

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली।

वर्ष ३७ अङ्क २ | नई दिल्ली, माघ २००७, फरवरी १९५१ | एक प्रति ।।) वार्षिक ५

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१. सम्पादकीय		५०
२. शास्त्र चर्चा-परिषद् की कार्यवाही		५१
३. हमारा चिकित्सालय		५७
४. अपस्मार का निदान	(श्री एम० आर० भट्ट)	५९
५. ब्लडप्रेशर क्या है ?	(श्री पं० नानकचन्द)	६३
६. पायरिया की सफल चिकित्सा	(श्री किशोरदास भागीरथ गुप्त)	६५
७. बालामृतरूपम्मण्डूरम्	आचार्य नित्यानन्द सारस्वत)	७१
८. वंशलोचन	(श्री ओ० एन० पेट्री)	७३
९. त्रिदोष का वैज्ञानिक विवेचन	(डा० लक्ष्मीनारायण पचौरी)	७८
१०. सबल व स्वस्थ होने के उपाय	(कविराज प्रतापसिंह)	८१
११. क्या कभी द्वार बन्द थे ?	(श्री नागेशदत्त शास्त्री)	८३
१२. ज्ञान-विज्ञान		८६
१३. पाठकों के पत्र		८७
१४. प्रान्तीय समाचार		८९
१५. स्थायी समिति व कार्यकारिणी का अधिवेशन		९१
१६. साहित्य सत्कार		९९
१७. आय-व्यय विवरण		१०५

सम्पादकीय

प्रगति का साधन

प्रान्तीय सम्मेलनों की गतिविधि, पटना में शास्त्र-चर्चा-परिषद् और दिल्ली में स्थायी समिति के अधिवेशन में प्रकाशन विभाग की स्थापना तथा विधान में संशोधन आदि महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव निश्चय ही महासम्मेलन की प्रगति के सूचक हैं।

जीवन नाम ही प्रगति का है संसार का अणु-अणु हिल रहा है। इसी में संसार की सत्ता है संसार मरणशील है। इस में ठहरने का, निठल्ले बैठे रहने का स्थान ही नहीं है। तालाब कितना ही मनोहर हो यदि उसका पानी बदला न गया तो अवश्य सड़ांद पैदा करेगा।

इसी प्रकार जगति, समाज व संस्था के जीवन में भी देश व काल की अवस्थानुसार उथल-पुथल होती रहनी आवश्यक है। समय के साथ-साथ पुराने विधानों में धीरे-धीरे विकास होता जाए तभी कल्याण है, क्योंकि विकास भी तो गति ही को कहते हैं।

'पुराण' क्या है ? यास्क के निर्वाचन के अनुसार 'पुरा नवं भवति'। रात के अन्धेरे में उषा की नई छटा छिपी है। जीवन नाम ही पुराने को नित्य नया करने का है। जहाँ यह क्रिया समाप्त हुई, जीता पिण्ड निर्जीव हो जाएगा। जीवन, व्यक्तियों का भी, जातियों का भी, संस्थाओं का भी, सतत हो रही काया-पलट में है। नए को छोड़ो नहीं, पुराने से मुख मोड़ो नहीं। रूढ़ियाँ अदलती बदलती रहें परन्तु भाव वही रहे।

इस दृष्टि से शास्त्र-चर्चा-परिषद् व स्थायी समिति के प्रस्ताव किसी भी जीवित जागृत संस्था के लिए अभिमान का विषय हो सकते हैं। शास्त्र-चर्चा के द्वारा हमने कुछ ऐसे सिद्धान्त स्थिर कर लिए हैं जिनसे आयुर्वेद ग्रन्थों के निर्माण में सहायता मिलेगी। स्थायी समिति द्वारा संशोधित विधान स्वतन्त्र भारत के वैद्य समाज को सुसंगठित और सुव्यवस्थित करने में सहायक सिद्ध होगा।

कोई भी संस्था हमेशा के लिए एक स्थान पर खड़ी नहीं रह सकती। उसे बद्धमूल रहने के लिए अपने में हवा की-सी तेज़ी लानी चाहिए। जो वृक्ष हिलते-जुलते नहीं, उनकी जड़ों को कीड़े खा जाते हैं। वृक्ष गिरने से वरे-वरे, जितना अधिक हिले उतना बद्ध-मूल होगा।

प्रगति का साधन है—संगठन। आयुर्वेद की दुन्दभि देश के कोने-कोने में बज उठे, जनता व सरकार एक स्वर में आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति स्वीकार करे। इसके लिए जहाँ वैद्यों में अधिक उत्साह, साहस तथा संगठन की आवश्यकता है वहाँ हमारे कार्यकर्त्ताओं में भी अधिक दूर-दर्शिता तथा अधिक नीति-निपुणता की आवश्यकता है।

—पुरुषोत्तमदेव मुलतानी

शास्त्र-चर्चा परिषद् की कार्यवाही

ा० २४ दिसम्बर १९५०

सर्वप्रथम सभापति जी की आज्ञा से संयोजक महोदय ने विवेच्य विषयों (जो पत्रिका के तम्बर १९५० के अंक में प्रकाशित हो चुके हैं) को सदस्यों के समक्ष उपस्थित किया और श्रीयुत ० डी० एन० बनर्जी द्वारा प्राप्त स्मृति-पत्र* को पढ़कर सुनाया। तदनन्तर इस तथ्य को ध्यान रखते हुए कि चिकित्सा-कार्य में भूतों से परे विचार की आवश्यकता नहीं, जैसा कि सुश्रुत कहा है, भूतेभ्यो हि परं यस्मात् नास्ति चिन्ता चिकित्सिते' यह निश्चय हुआ कि आयुर्वेद के धारभूत सिद्धान्त पंचमहाभूत के सम्बन्ध में आयुर्वेद-संहिताओं में उपलब्ध विचारों तथा उन चारों के मूल स्रोतों पर सर्वप्रथम विचार किया जाय।

विषय संख्या १, २—इस सम्बन्ध में परिषद् के अनेक सदस्यों के विचारों को स्थित किये जाने के अनन्तर यह सर्वसम्मत निर्णय हुआ कि "आयुर्वेद का मुख्य रूप से वेच्य पदार्थ आयुर्वेदोक्त पंचमहाभूत और आत्मा ये छः हैं। आयुर्वेद में पुरुष को (कर्म पुरुष) 'षड् धातुज' कहा है। 'पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः इत्युच्यते'—सुश्रुत, तथा षड्धातुज व राशिपुरुष संज्ञकः'—चरक। अतः हम लोगों को मूलरूपेण इन पर ही अपने विचार तथा र्णय को सीमित रखना श्रेयस्कर है।

आयुर्वेद के संहिताओं में समागत अन्य दर्शनों के विचारों का भी आयुर्वेद के विचार से मंजस्य उपस्थित करना हमारा कर्त्तव्य है। चरकोपदिष्ट वैशेषिकानुमत षट् पदार्थ—सामान्य शेष द्रव्य गुण कर्म तथा समवाय भी हमें मान्य हैं क्योंकि अन्य दर्शनों में इन्हें पदार्थ शब्द संज्ञित किया गया है। पदार्थ के लक्षण जो आयुर्वेद शास्त्र में दिये गये हैं उनमें तथा अन्य र्शनों के लक्षणों में साम्य है, जैसे 'अभिधेयत्वं पदार्थसामान्यलक्षणम्' (तर्क दीपिका); प्रमिति षयाः पदार्थाः' (सप्तपदार्थी); 'षण्णामपि, पदार्थानामस्तित्वाभिधेयत्वे ज्ञेयत्वानि' (प्रशस्तपाद); दप्रतिपाद्यो अर्थः पदार्थः' (तात्पर्यटीका) तथा 'योऽर्थोऽभिहितः सूत्रे पदे वा स पदार्थः, 'पदस्य यो: पदानां वा अर्थः पदार्थः' (सुश्रुत)।

इस प्रकार यह निर्णय कर लेने पर कि आयुर्वेद के चिकित्सा कार्य के लिये उपयुक्त चमहाभूत और आत्मा ये छः पदार्थ ही मुख्य रूप से विवेच्य विषय हैं, आयुर्वेद संहिता न्थों में वर्णित सांख्यादि मतों का हमें आयुर्वेद के इस मूलभूत पदार्थ के अन्दर अन्तर्भाव करना वश्यक हो जाता है। सांख्य ने सृष्टि क्रम का दिग्दर्शन कराते हुए प्रकृति, पुरुष तथा प्रकृति

---

* पत्रिका के नवम्बर १९५० के अङ्क में प्रकाशित।

और पुरुष के सांनिध्य से उनसे उत्पन्न होने वाले अन्य तेईस तत्त्वों का अर्थात् सब मिला कर २५ तत्त्वों का वर्णन किया है। इनका क्रम निम्न प्रकार है :—

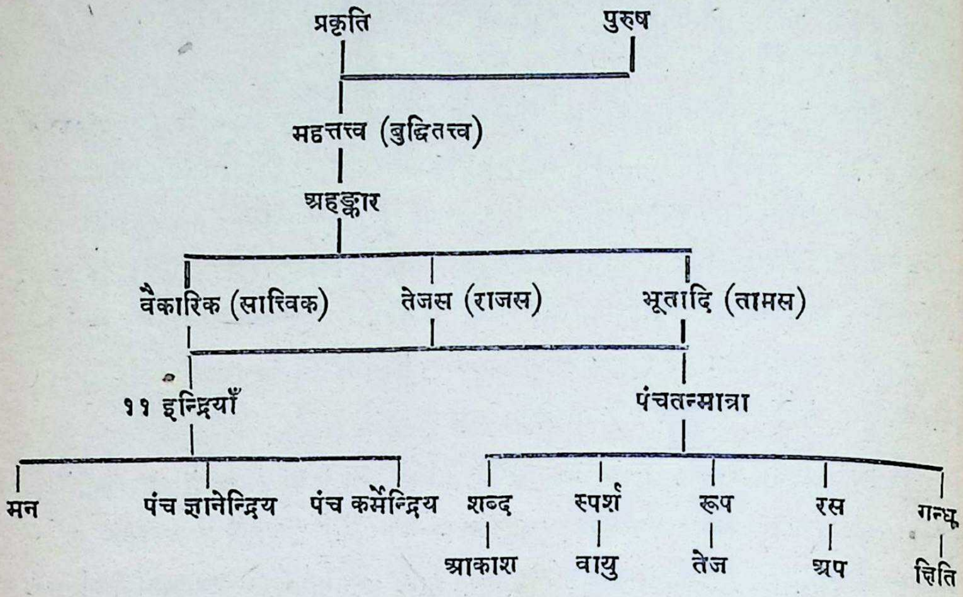
प्रकृति
पुरुष
महत्तत्त्व (बुद्धितत्त्व)
अहङ्कार
वैकारिक (सात्विक)
तेजस (राजस)
भूतादि (तामस)
११ इन्द्रियाँ
पंचतन्मात्रा
मन
पंच ज्ञानेन्द्रिय
पंच कर्मेन्द्रिय
शब्द
स्पर्श
रूप
रस
गन्ध
आकाश
वायु
तेज
अप
क्षिति

इस प्रकार १ प्रकृति + १ महत्तत्त्व + १ अहंकार + ५ तन्मात्रा ये ८ प्रकृतियाँ (अष्टौ प्रकृतयः) कहलाती हैं और ११ इन्द्रियाँ तथा ५ महाभूत ये 'षोडश विकार' कहलाते हैं। पुरुष न प्रकृति है और न विकृति। इस प्रकार ८ प्रकृतियाँ + १६ विकार + १ पुरुष ये २५ (पंचविंशति) तत्त्वमय पुरुष ईश्वरकृष्ण कृत सांख्य में प्रतिपादित हैं। इनका आयुर्वेद के ६ पदार्थों में निम्न प्रकार अन्तर्भाव हो जाता है :—जैसे १ प्रकृति + ११ इन्द्रियाँ + ५ तन्मात्राएं + ५ महाभूत = २२ इनका पंचमहाभूतों के अन्दर तथा महत्तत्त्व (बुद्धितत्त्व) और अहंकार का आत्मा के गुण के अन्दर आयुर्वेद में प्रतिपादित होने से आत्मा में अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार पंचमहाभूत और पुरुष इन ६ पदार्थों के अन्दर ही सांख्य के २५ तत्त्वों का अन्तर्भाव हो जाता है।

चरक में २४ तत्त्वों का भी पुरुष माना गया है, जैसे "ततश्च धातु भेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः", अर्थात् १ मन + १० इन्द्रियां + ५ अर्थ + ८ प्रकृतियां = २४ । 'मनोदशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्ट धातुकी—चरक शरीर १। इनमें से मन, १० इन्द्रियाँ, ५ अर्थ, ५ तन्मात्राएं ये २१ पंचमहाभूत के अन्दर तथा अव्यक्त अपने गुण बुद्धि तथा अहंकार के साथ आत्मा के अन्दर अन्तर्भूत हो जाते हैं।

वैशेषिकानुमत "खादीन्यात्मा मनः कालोदिशश्च द्रव्यसंग्रहः" अर्थात् आकाश, वायु, तेज, अप्, पृथ्वी, आत्मा, मन, काल, दिक् इन ९ नित्य द्रव्यों का निम्न प्रकार आयुर्वेद के छः पदार्थों

के अन्दर अन्तर्भाव हो जाता है। दिक् और काल का अन्तर्भाव आकाश के अन्दर हो जाता है—दिक्कालावाकाशादिभ्यः (सांख्य)। आयुर्वेद में मन को भी भौतिक ही माना है। अतः मन, दिक् और काल का भी अन्तर्भाव पंचमहाभूतों के अन्दर ही हो गया। शेष रहा आत्मा। इस प्रकार पंचमहाभूत और आत्मा ये आयुर्वेदोक्त ६ पदार्थ के अन्दर ही आयुर्वेद शास्त्र में आये हुए अन्य तत्वों तथा द्रव्यों का अन्तर्भाव हो जाता है।

ता० २५ दिसम्बर १९५०

विषय सं० ३—आज सर्वप्रथम भूतों के स्वरूप निर्णय पर विचार प्रारम्भ हुआ। सभी विद्वानों ने अपने-अपने विचार भूतों के सम्बन्ध में प्रकट किये। सभापति जी ने गत बनारस पंचमहाभूतत्रिदोष परिषद् के निर्णय पर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि "श्री उपेन्द्रनाथदास कृत 'पंचमहाभूतविज्ञानोक्त 'नित्यत्वे सति गुणवत् समवायिकारणत्वं भूतत्वं' यह लक्षण ही हमारे लिये मान्य होना चाहिये। इस पर महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदवाचस्पति ने बतलाया कि भूतों कि पाँच अवस्थाएँ होती हैं—१ गुण, २ अणु, ३ रेणु, ४ स्कन्ध, ५ सत्त्व।

(१) गुण—भूतों की अपंचीकृत सूक्ष्मास्था या तन्मात्रावस्था या परमावस्था को गुण कहते हैं। योगदर्शन में इसे सूक्ष्मावस्था कहा है।

(२) अणु—भूतों की संख्या अपंचीकृत अवस्था में भूतानुप्रवेश होने से उनकी 'अणु' संज्ञा होती है।

(३) रेणु—भूतों की पंचीकृत अवस्था को 'रेणु' कहते हैं।

नोट—उक्त दोनों अणु और रेणु अवस्था को योगदर्शन में स्वरूपावस्था कहा गया है।

(४) स्कन्ध—भूतों की स्थूलावस्था को 'स्कन्ध' अवस्था कहते हैं।

(५) सत्त्व—भूतों की स्थूलतर अवस्था को 'सत्त्व' अवस्था कहते हैं।

नोट—योगदर्शन में उक्त दोनों स्कन्ध और सत्त्व अवस्थाओं को स्थूलावस्था के अन्दर लिया गया है।

योगदर्शन में भूतों की एक और अवस्था का भी वर्णन है जिसे 'अन्वय' अवस्था कहते हैं। यह सत्त्व, रज, तम आदि तीन गुणों की अवस्था है। इसे त्रिगुणावस्था भी कहा गया है।

इस पर डा० प्रसादी लाल झा ने अपना निम्न विचार प्रगट किया :—

पंचमहाभूतों के यथार्थ रूप—भूतों के प्रथम रूप की परिभाषा 'स्थूल' है। इनके उदाहरण शब्दादिसंज्ञक भूताणु है। ये ही भूतों के विशेषण कहाते हैं। वे इन्द्रियग्राह्य (Perceptible by sensory organs) हैं । एटामिक फिजिक्स (Atomic Physics) के फोटान्स (Photons) और स्थूल रूपों में विषय की दृष्टि से ही समानता है।

भूतों के द्वितीय रूप की परिभाषा 'स्वरूप' है । वे भूतों के स्वसामान्य साधारण लक्षण हैं यथा पृथ्वी की मूर्ति, जल का स्नेह ।

भूतों के तृतीय रूप की परिभाषा 'सूक्ष्म' है । तन्मात्राएँ इनके उदाहरण हैं । यह बुद्धि इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य (Imperceptible) हैं।

भूतों के चतुर्थ रूप की परिभाषा 'अन्वय' है । सत्वरजतमादि त्रिगुणों के समान ही इनके कार्य होते हैं। जैसे सात्विक आहार में वर्तमान अन्वयाख्य तत्वों से सात्विक इन्द्रियों, मन और चक्षु आदि के सात्विक अंशों का पोषण धारण होता है। (आयुर्वेद विज्ञान मीमांसा भाग—१)

भूतों के पञ्चम रूप की परिभाषा 'अर्थवत्व' है । ये ही अर्थाकार बुद्धियों की वृत्तियों के हेतु हैं।

ता २६ दिसम्बर १९५०

इस प्रकार भूतों का विचार समाप्त होने के बाद अन्त में आज आकाश के परमाणु होते हैं या नहीं इस पर विचार प्रारम्भ हुआ। म० म० पं० गिरिधर शर्मा ने कहा कि आकाश के भी परमाणु होते हैं, यद्यपि न्यायदर्शन में आकाश के परमाणुओं का वर्णन नहीं मिलता, तथापि अन्य दर्शनों में शब्द के परमाणुओं की स्वीकृति से आकाश के परमाणुओं का समर्थन हो जाता है । आकाश 'भाव' पदार्थ है। अतः उसके भी परमाणु होते हैं।

विषय संख्या ४—सर्व सम्मति से आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञान के लिए अध्ययनार्थ तथा अध्यापनार्थ एवं चिकित्सा कार्य के लिए पंचमहाभूत विज्ञान को अति उपादेय एवं आवश्यक समझा गया । आयुर्वेद शास्त्र में कहा गया है "सर्वं द्रव्यं पांच भौतिकमस्मिन्नर्थे" इस लिए पंचमहाभूतों का जानना पांचभौतिक द्रव्यों के जानने के लिए परमावश्यक है । आयुर्वेद का विवेच्य विषय उपर्युक्त छ पदार्थों अर्थात् पंचमहाभूत और आत्मा के अतिरिक्त षड्धातुज चेतन शरीर और पंचभौतिक शारीर द्रव्य तथा स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के साधन पांचभौतिक आहार एवं औषध द्रव्य भी हैं । अतः इन शारीर द्रव्य के व्यापार शारीर द्रव्य की विकृति तथा स्वस्थहित आहार द्रव्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी औषधि द्रव्यों के गुणकर्मों का सोपपत्तिक वर्णन करना होगा। तात्पर्य यह कि इन द्रव्यों के संघटक का कार्यकारणभाव दिखाते हुए उनके व्यापार एवं विकृतियों का वर्णन करना होगा।

उपर्युक्त विचार-विमर्श के अनन्तर सभापति की ओर से निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया गया जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ:—

क. "पंचमहाभूत आयुर्वेद का एक आधारभूत सिद्धान्त है। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों द्वारा की गयी इनकी व्याख्या सर्वमान्य है। वर्तमान वैज्ञानिकों के ९२ एलिमेंट और उनके अणु (एटम) भी पांचभौतिक हैं, यद्यपि ये एलिमेंट्स ऐसे द्रव्य हैं जो आणविक भार (ऐटमिक वेट) आदि अपने-अपने विशेष गुण को रखते हैं और इनमें से प्रत्येक आधुनिक रसायन शास्त्र के अनुसार स्वतन्त्र है, तथापि इनका पार्थिव, आप्य, तैजस, वायव्य और नाभस वर्गों में वर्गीकरण किया जा सकता है।

ख. उपर्युक्त कार्य को सम्पन्न करने के लिए निम्न विद्वानों की एक उपसमिति बनायी जाय, जो आधुनिक विज्ञानोक्त ९२ तत्त्वों को पार्थिवादि ५ वर्गों में विभक्त करदे। १. श्रीयुक्त दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी, लखनऊ। (संयोजक)। २. श्रीयुक्त भी० वी० डेग्वेकर, जबलपुर। ३. श्रीयुक्त गुरुदत्त, दिल्ली। ४. पं० रामरत्न पाठक, बेगूसराय।

विषय संख्या ५—त्रिदोष के स्वरूप के सम्बन्ध में निर्णय 'पत्रिका' के आगामी अंक में विस्तार से प्रकाशित होंगे।

विषय संख्या ६—छठे विषय पर विचार हुआ और सर्वसम्मति से यह निश्चित हुआ कि आयुर्वेद में मस्तिष्क, हृदय, यकृत, प्लीहा, आमाशय आदि शरीर अवयवों की क्रियाओं का वर्णन प्रायः त्रिदोष की क्रियाओं के नाम से ही किया गया है। उनकी क्रियाओं का स्वतन्त्र वर्णन प्रायः नहीं पाया जाता। आधुनिक क्रियाशारीर में प्रत्येक शरीर-अवयवों की क्रियाएं स्वतन्त्र रूप से वर्णित हैं। अतः इन दोनों का समन्वय करके त्रिदोषानुसार शारीर क्रियाओं का वर्णन जिसमें हो ऐसे पाठ्य पुस्तक निर्माण किये जाएं।

इसके समर्थन में मानचित्र के ऊपर दिग्दर्शन कराते हुए कि जिस प्रकार भगीरथी के लाये हुए गंगा की खात में अनेक प्रकार के जल मिल जाने पर भी गंगा का महात्म्य कम नहीं होता उसी प्रकार आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्त पंचमहाभूत और त्रिदोष के अन्दर अन्तर्भूत कोई भी चिकित्सा-विज्ञान आयुर्वेद के महात्म्य को कम नहीं कर सकता।

इस पर श्री डेग्वेकर जी ने कहा कि यद्यपि मैं इस कार्य का समर्थक हूं और चाहता हूं कि यह कार्य हो, परन्तु आयुर्वेदीय चिकित्सा के लिए यह विशेष उपादेय नहीं है। अन्त में मूल प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

विषय संख्या ७——सर्वसम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि आयुर्वेद में वर्णित, ज्वर, प्रमेह, कुष्ठ, शोथ, विसर्प आदि भिन्न-भिन्न अनेक रोगों के वर्ग हैं। अतः इन वर्गान्तर्गत रोगों को स्वतन्त्र रोग मान कर अवयव बिकृति के अनुसार उनका स्वतन्त्र निदान और चिकित्सा लिखना आवश्यक है। अवयव विकृति के वर्णन के साथ-साथ उन रोगों के दोष लक्षणानुसार वातिक, पैतिक, श्लैषिक, द्वन्द्वज और सन्निपातिक भेद तथा तदनुसार चिकित्सा लिखने की भी आवश्यकता है। इसके साथ-साथ नवाविष्कृत रोगों के निदान और चिकित्सा को भी आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार लिखा जाए।

विषय संख्या ८——सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ शरीरावयव वाचक कुछ संज्ञाओं का प्राचीन ग्रन्थों में अनेकार्थ में प्रयोग देखा जाता है और कुछ संज्ञाओं के अर्थ में विद्वानों में मतभेद देखा जाता है; अतः उनके निश्चित अर्थ का निर्णय करना परमाश्यक है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये निम्न विद्वानों की एक समिति बनी :—

आचार्य यादव जी त्रिकम जी (संयोजक), डा० डी० एन० बनर्जी (कलकत्ता), श्री गोविन्द भास्कर घाणेकर (बनारस), पं० रामरक्ष पाठक (बेगूसराय), श्री गोपाल शास्त्री गोडबोले (झाँसी)।

विषय संख्या ९——इस पर विचार प्रारम्भ हुआ और श्री डेग्वेकर जी ने कहा कि पहले हम को यह तय करना होगा कि वस्तुतः जीवाणु रोगों के कारण हैं या कार्य हैं क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि हमारे शरीर में नाना प्रकार के जीवाणु रहते हुए भी हमें रोग नहीं होता। मेरे समझ से जीवाणु रोगों के कारण नहीं, कार्य हैं। रोगों का कारण तो दोषवैषम्य है।

इस पर आचार्य जी ने कहा कि आप यह प्रमाणित करें कि रोगों का कार्य या परिणाम जीवाणु किस प्रकार हैं। मलेरिया आदि के जीवाणु किस प्रकार दोषों की विकृति के परिणाम होते हैं?

इस पर श्री गुरुदत्तजी ने कहा कि शरीर के अन्दर जब दोषवैषम्य होता है तभी जीवाणुओं की वृद्धि होती है। इस लिये जीवाणुओं की वृद्धि में दोषवैषम्य कारण होता है। तात्पर्य यह कि जीवाणुओं की वृद्धि दोषवैषम्य का परिणाम है और दोषवैषम्य ही आयुर्वेद में रोग माना गया है। इस प्रकार जीवाणु-वृद्धि रोग का परिणाम सिद्ध हो जाता है।

इस पर प्रो० सोमदेव जी ने भी अपना लिखित वक्तव्य पढ़ कर सुनाया जिसमें उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि जीवाणुओं का वर्णन आयुर्वेद में भी है। परन्तु ये जीवाणु दोष वैषम्य

(शेष पृष्ठ १००·पर)

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

हमारा चिकित्सालय

[इस नए स्तम्भ में ज्ञान-वृद्ध एवं वयोवृद्ध वैद्यों के चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव प्रतिमास प्रकाशित होंगे। धर्मार्थ चिकित्सालयों के अध्यक्ष एवं आतुरालयों के प्रधान चिकित्सक भी यदि अपने यहां के कष्टसाध्य एवं दुःसाध्य रोगियों के चिकित्सा सम्बन्धी विवरण हमें लिख भेजें तो हम उन्हें सहर्ष प्रकाशित करेंगे। प्र० सं०]

उपान्त्रशोथ (Appendicites)

(लेखक-आयुर्वेद भूषण पं० राम गोपाल शास्त्री, मंत्री विद्यापीठ, करौल बाग, देहली)

अभी तीन मास पूर्व उपान्त्र शोथ के दो ऐसे रोगियों को मैंने ठीक किया है जिन्हें डाक्टरों ने पेंसिलिन आदि के इन्जैक्शन करने के पश्चात् भी आपरेशन के बिना असाध्य ठहरा दिया था अर्थात् या तो वह आपरेशन करावें या मृत्यु की प्रतीक्षा करें। उन रोगियों को आयुर्वेदिक योगों से ठीक किया गया है और वे अब सर्वथा स्वस्थ हैं। उनको किसी भी प्रकार का अब कोई कष्ट नहीं है।

इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में सदा इस बात का विशेष ध्यान रखें कि विरेचन के लिए कोई औषध न दें। निम्बादि चूर्ण (भैषज्य रत्नावली वातरक्ताधिकार) और शंख भस्म का इस रोग में मैंने सफलतापूर्वक सैंकड़ों रोगियों पर प्रयोग किया है। युवा पुरुष के लिए ३ माशा निम्बादि चूर्ण के साथ ४ रत्ती शंख भस्म मिला कर उष्ण जल से देनी चाहिए। यह एक मात्रा है इस प्रकार दिन में दो बार दें।

रोग यदि कठिन अवस्था में पहुँच गया हो तो निम्बादि चूर्ण और शंख भस्म के साथ शूलहरण योग (रसेन्द्र सा०सं० शूलाधिकार) का प्रयोग करना चाहिए। दिन में दो गोली शूलहरण और दो मात्रा निम्बादि चूर्ण व शंखभस्म गरम पानी से दें। यदि विबन्ध हो तो दूध में मुनक्का उबाल कर देने से उदरवात, पीड़ा और विबन्ध तीनों दूर हो जाते हैं। युवा पुरुष के लिए शीतकाल में ६ दाने मुनक्का के प्रयोग करें। पावभर दूध में आध पाव जल मिलावें और बीज निकाले मुनक्का को टुकड़े-टुकड़े करके उसमें डाल दें। पक जाने पर नीचे उतार लें और मुनक्का को मसल कर दूध छान लें। मुनक्का फैंक

दें और दूध रोगी को पिलावें। इस प्रकार दिन में एक बार देने से ही लाभ होता है, न हो तो दो बार भी दिया जा सकता है। दो बार में आठ दाने से अधिक मुनक्का का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ग्रीष्म काल में चार दाने ही मुनक्का के पर्याप्त हैं।

यदि रोगी को पीड़ा के वेग के पीछे ज्वर भी आवे तो निम्बादिचूर्ण व शंख भस्म में युवा पुरुष के लिए २ रत्ती प्रति मात्रा में शुद्ध आंवला सार गन्धक मिला देवें। कभी-कभी रोगी को अतिसार भी साथ में हो जाता है, इस अवस्था में निम्बादि चूर्ण कुछ समय के लिए बन्द कर देना चाहिए। लशुनादिवटी, शंख भस्म और गंधक की दो मात्रा और शूलहरण की दो गोलियां प्रतिदिन दें। यह औषध निरन्तर ३-४ मास तक देनी चाहिए। रोगी को तीव्र शूल का दौरा कभी-कभी बीच में होता है; इससे घबराना नहीं चाहिए। २ मास के पीछे दौरे की तीव्रता बहुत न्यून हो जाती है। असह्य शूल के समय शंखवटी (भै०र०) और शूलहरण योग की गोली पंद्रह या बीस-बीस मिनिट के अनन्तर देते रहना चाहिए। दिन में ४ शंखवटी और ४ शूलहरण तक दे सकते हैं।

उपर्युक्त औषध ३ मास तक प्रयोग करने से प्रायः सब ही रोगी ठीक हो जाते हैं किन्तु अपवाद भी हो सकते हैं। ऐसे रोगियों को यही योग १-२ मास तक और देने चाहिएं, लाभ होने के पश्चात् भी रोगी को निरन्तर १-२ मास तक प्रातः सायं शूलहरण और भोजन के बाद अग्नितुण्डी रस (र०सा०सं०) देते रहना चाहिए। इससे फिर कभी भी वेग आने की आशंका नहीं रहती। इसके अतिरिक्त केवल कज्जली भी दो रत्ती प्रतिदिन मधु के साथ दो मास तक देने से लाभ होता है। मोटे खद्दर (गाढ़ा) की पट्टी बराबर पेट पर बंधवावें और सर्दी में ऊनी वस्त्र की पट्टी बंधवावें। ऐसा करने से पेट में वायु बहुत न्यून पैदा होती है और शूल के दौरे नहीं होते।

पथ्य—वेग के दिनों में रोगी को बराबर लेटे रहना चाहिए। खाने के लिए केवल दूध दें। वेग हट जाने के पश्चात् सुपाच्य और लघु आहार देना चाहिए। वातकारक और विबन्धकारक पदार्थ, अमरूद, केला, उड़द, चने की दाल, परांवठे, मिठाई इत्यादि सर्वथा वर्जित हैं। बीज किसी प्रकार का अन्न में न जाना चाहिये। दौड़ना बोझ उठाना तथा सीढ़ियों पर चढ़ना भी वर्जित है किन्तु जहां आवश्यक हो वहां सीढ़ियां धीरे-धीरे ही चढ़ना उतरना चाहिए। चिकित्सा काल में मैथुन सर्वथा निषिद्ध है।

केरलाचार्य के मत से—

अपस्मार का निदान

(लेखक—वैद्य गुरु श्री एम० आर० भट्ट, पी० एच० डी०, जैप्पु, मंगलौर)

(क) **हेतु**—अपस्मार रोग के निदान पर विचार करते समय यह आवश्यक है कि हम इसके प्राधानिक, सन्निकृष्ट, विप्रकृष्ट, व्यभिचार, असात्मेन्द्रिय और परिणाम आदि हेतुओं का निर्णय करें।

(ख) **प्राग्रूप**—हृद्-कम्प, विस्मृति, एकाग्रताप्रद् समस्त प्रवृत्तियों का लोप, स्वेद का आना, विषाद तथा पराजय, असावधानता तथा अनिद्रा यह अपस्मार रोग के पूर्वरूप हैं।

लक्षण

वातापस्मार—विवेक तथा चेतनाशक्ति का नाश, रोग के भयंकर दौरे, मुख-विकृति, मुख से झाग आना, आकृति का काला पड़ना, काली वमन, तीव्र दन्त क्षत आदि वातापस्मार के लक्षण हैं।

पित्तापस्मार—हरित रक्त तथा फेनयुक्त रक्त आकृति, रक्त-वर्ण की समस्त शरीर पर व्याप्ति, प्यास, तीव्रताप, तथा ताप और अग्नि के सूचक सभी लक्षण।

कफापस्मार—पीत आकृति, दृष्टि तथा स्वाद का धुन्धलापन, समस्त शरीर में भारीपन, तथा रोगाक्रमण का समय लम्बा होना आदि।

त्रिदोषापस्मार—उपर्युक्त वातपित्तकफान्तर्गत अपस्मार के सभी लक्षणों का एक साथ या पृथक-पृथक होना।

केरलाचार्य ने दैनिक होने वाले अपस्मार को वातापस्मार के अन्तर्गत तथा रात्रि को होने वाले अपस्मार को कफापस्मार के अन्तर्गत माना है।

आक्षेपक, भ्रम तथा तन्द्रा यह क्रमशः वातापस्मार पित्तापस्मार तथा कफापस्मार के सूचक हैं।

आक्षेपक (वातापस्मार) को हम रोग की आक्षेपावस्था (Convulsion) या तीव्रावस्था कह सकते हैं। इसमें अंगों का अचानक झटका मारना, तथा रोगी की संवित्ति

अर्थात् चेतनाशक्ति का नाश हो जाता है। वह बाह्य जगत् की घटनाओं को समझ नहीं सकता किन्तु संकल्प शक्ति उसमें विद्यमान रहती है, क्योंकि संकल्प पर पित्त का अधिकार होता है।

दूसरी अवस्था भ्रम (पित्तापस्मार) में संवित्ति विद्यमान रहती है किन्तु संकल्प शक्ति का लोप हो जाता है।

तीसरी अवस्था तन्द्रा (कफापस्मार) में संवित्ति और संकल्प दोनों ही नहीं रहते।

उपर्युक्त तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त एक चौथी अवस्था का रोगी भी आपको मिलेगा। जिसमें रोगी आक्षेपक से तन्द्रा में प्रवेश करता है। इस अवस्था में यदि रोगी को सुई चुभोई जावे तो उसमें कुछ गति दिखाई देगी । इससे यह सिद्ध होता है कि वातापस्मार के आक्रमण के पश्चात् उसमें संवित्ति या चेतनाशक्ति पुनः लौट आई है किन्तु तन्द्रा आने पर ही श्रम तथा थकावट का अनुभव होता है।

केरलाचार्य के मतानुसार योग की गल्त साधना से भी अपस्मार रोग हो जाता है जो दुर्बल मस्तिष्क वाले व्यक्तियों को उनकी योग-भ्रष्टता के अनुसार होता है। इसके निम्न चार प्रकार होते हैं:—

(१) **लय**—सत्त्व दुर्गा अथवा वरुण की उपासना करते समय कफ प्रकृति वाला व्यक्ति उपासना से कफ-वृद्धि के कारण योग-भ्रष्ट हो जाता है। मंत्रों द्वारा उत्पन्न हुए दोषों का शमन करने के लिए यदि उचित आहार तथा कल्प का प्रयोग न किया जाए तो उसे तन्द्रा भी हो सकती है। (केरलाचार्य ने इसकी चिकित्सा के लिए, रूक्ष, उष्णवीर्य, कटु, तिक्त, कषाय वस्तुओं का सेवन बताया है)।

(२) **विक्षेप**—मारुति (वातात्मक) की उपासना करते समय वात प्रकृति प्रधान व्यक्ति यदि कल्प और आहार का ध्यान विशेष न रखे तो उसे रोग के भीषण दौरे पड़ने लगते हैं। (इस अवस्था में उपचार के लिए मधुर, अम्ल, लवण, उष्णवीर्य एवं स्निग्ध वस्तुओं का सेवन बताया गया है)।

(३) **कषाय**—पित्त प्रकृति प्रधान व्यक्ति यदि कृष्ण (जो अधिकांशतः वातपित्त का प्रतिनिधित्व करते हैं) की उपासना करे और उचित आहार एवं कल्प का ध्यान न रखे तो उसके बुद्धि-स्थान में वात उत्तेजित हो जाता है इसलिए वह गतावधानि या दशावधानि (जिसकी सावधानता नष्ट हो गई हो) हो जाता है। उसे अपनी अवधानित्व शक्ति पर अधिकार नहीं रहता। इस अवस्था में योग उसके लिए योग न रहकर

रोग का रूप धारण कर लेता है। (इसके लिए मधुर, शीतवीर्य, तथा स्निग्ध चिकित्सा का विधान है)।

(४) **रसास्वाद**—किसी प्रकार की उपासना से मन्दाग्नि व्यक्ति को कुछ अस्थायी आनन्द प्राप्त होता है और कफवात उत्तेजित हो जाते हैं। इस योग भ्रष्टता को 'रसास्वाद' कहते हैं।

द्विविध चेतनावस्था या अधिकार

केरलाचार्य ने आवेश द्वारा भी 'अपस्मार' का होना बताया है। इस अवस्था में रोगी भविष्य की आश्चर्यजनक बातें कहता है। मान लीजिए संसार का कोई भाग प्राथमिक रूप से वात से पूर्ण है। ऐसा व्यक्ति जिसका वात उत्तेजित अवस्था में हो किसी वात प्रधान शक्ति या प्रेतात्मा से प्रेरित होकर उस ओर आकर्षित हो जाता है। प्रेतलोक की वातशक्ति तथा वातब्रह्माण्ड रोगी की वातप्रकृति में प्रवेश कर जाते हैं और उस पर उनका अधिकार हो जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में रोगी पक्षियों, आकाश और वायुयान आदि के स्वप्न देखता है। एक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक ने इसे द्विविध चेतनावस्था (Double Conciousness) कहा है। इसके अनेक प्रकार होते हैं और उनमें अंश भेद भी होता है।

ऐसे लक्षण जिनसे वातिक विक्षोभ प्रकट होता है वह हिस्टीरिया के ही समान होते हैं। इसके अनेक प्रकार होते हैं। कभी-कभी यह साधारण क्रिया-दोष होते हैं या अचानक होने वाली कष्टदायक प्रतीति। कभी-कभी यह एक अनैच्छिक चेष्टा होती है क्योंकि कभी-कभी मांसपेशीगत आघात, पक्षाघात और शरीर में ऐंठन होने से भी अपस्मार हो जाता है।

संक्षेप में, इन अवस्थाओं में मानसिक अस्तव्यस्तता हो जाती है, जो कभी कभी इतनी क्षीण होती है कि रोगी उसके द्वारा होने वाली प्रतीति को बिना किसी कष्ट के स्पष्ट वर्णन कर देते हैं। दूसरी ओर प्रायः मानसिक तत्त्व का प्राधान्य होता है और उस समय रोग के ऐसे आक्रमण होते हैं जिनसे रोगी उन्माद की सी अवस्था में हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मानसिक पागलपन या उन्माद से इसमें कोई भेद नहीं है। परिध्यात्मक उत्तेजना (Peripharal Stimulus) के प्रभाव से कुछ मस्तिष्कीय भाग दौरे की प्रारम्भावस्था में होते हैं। इस स्थिति में हम कभी-कभी हिस्टीरिया की सी अवस्था देखते हैं और हमें ऐसा विश्वास भी हो जाता है। शरीर में बाह्य आघातों

के प्रति सहिष्णुता की शक्ति (Inhibitive influences) जाती रहती हैं और लुब्ध होने की प्रवृत्ति (Excito motor influences) बढ़ जाती है ऐसी अवस्था में रोग का आक्रमण कभी-कभी खोपड़ी पर दबाव पड़ने से होता है। जिस स्थान पर प्रतीति का प्रारम्भ हो, उस स्थान पर हाथ को बांध देने से या पेट में प्रतीति होने के साथ-साथ यदि रोग का आक्रमण हो तो नमक खाने से उसे रोका जा सकता है। इसके विपरीत हिस्टीरिया एक विचार-जन्य रोग है जिसमें लक्षण मानसिक होते हैं। बीजकोष (Ovary) में दर्द हो तो उस पर दबाव देने से इसे रोकने में सफलता मिल सकती है। इसमें शारीरिक लक्षण नहीं पाये जाते। यह केवल पूर्वरूप है। इसे इसी प्रकार अथवा रोगी का विश्वास उत्पन्न किया जा सके तो अन्य उपायों से भी दबाया जा सकता है।

अपस्मार रोग की चिकित्सा 'पत्रिका' के आगामी अंक में पढ़िए।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

मतदाता-सूची

प्रकाशित हो चुकी है जिसमें १५०० से भी अधिक वैद्यों के नाम पते सहित संग्रहीत हैं। औषध-विक्रेताओं के विशेष काम की चीज़ है। १) रु० भेजकर शीघ्र प्राप्त कर लें।

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)

गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे० के० शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४० वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। १५० पृष्ठ के बड़े सूचीपत्र का मूल्य आठ आना। छोटा सूचीपत्र मुफ्त। सब भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों तथा ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपर्युक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

‡ब्लड प्रेशर क्या है ?

लेखक—श्री पं० नानकचन्द्र वैद्य शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य फतहपुरी, दिल्ली

गत अगस्त मास की 'आयुर्वेद सम्मेलन पत्रिका' में उक्त लेख को प्रकाशित कर यथामति मूलभूत व्याधि का दर्शन करा दिया था, जिसमें प्रायः सभी प्राचीन तथा अर्वाचीन पद्धतियों का अनुसरण किया गया था । परञ्च गत दिसम्बर मास की पत्रिका में महाशय सत्यधीर ने अगस्त मास की पत्रिका में प्रकाशित हमारे लेख के विरोध में केवल एक साधारण "रक्तगत वात" को ही रोग का स्वरूप देते हुए वर्णन किया है कि "यह केवल रक्तवाहि धमनियों की विकृति से उत्पन्न होने वाली व्याधि है।" और लिखते हैं कि "उक्तरोग में हृदय का हाथ प्राथमिक कारण रूप में बहुत कम है इत्यादि ।"

आयुर्वेद में रोग ज्ञानार्थ निदानादि पञ्चक का वैद्य के लिए परिज्ञान होना परमावश्यक होता है । यतः उक्त रीति से जाना हुआ रोग भ्रममूलक नहीं होता, अतः हम ने जो कुछ उक्तरोग के लिए गत लेख में वर्णन किया था वह पञ्च ज्ञानोंपायों को सम्मुख रख कर किया था ।

लेखक महोदय ने केवल दोष की एक साधारण गति या विकृति को ही वर्णन कर विरोध किया है । जो वास्तव में नितान्त असङ्गत प्रतीत होता है । आप लिखते हैं कि "असृगत वात" होने से इसे "रक्तवात" कहना चाहिए मेरे विचार में आपने आयुर्वेद की पद्धति को न समझ कर ही ऐसा नाम निर्धारित किया है ।

आप को यह ज्ञात होना चाहिए कि "रक्तेन आवृतः वातः रक्तवातः" यदि ऐसा मानें तो उससे रक्तवाहि धमनियों की विकृति के कारण हृद्रोग ही हो सकता है, यतः

---

‡ चरक के मतानुसार यह प्रधानतः रक्तगत दोष है और इसमें रक्त दूषित करने वाले बहुत से कारण दिये हैं ।

तद्विशुद्धं रुधिरं बलवर्णसुखायुषा । युनक्ति प्राणिनं प्राणाः शोणितं ह्यनुवर्तते ॥

इसकी चिकित्सा के लिए लिखा है—

कुर्याच्छोणित रोगेषु रक्त पित्त हरीं क्रियाम् । विरेकमुपवासं वा स्रावणं शोणितस्य च ॥

पाश्चात्य चिकित्सक भी इस रोग की चिकित्सा में इन्हीं तीनों बातों का विशेष ध्यान रखते हैं, जिनका उल्लेख हमारे शास्त्रों में बहुत पहिले से है । —प्र० सं०

रक्तवाहि धमनियों का हृदय से विशेष सम्पर्क होता है। अतः रक्तवाहिधमनियें सर्वदेह में परिभ्रमण करती हुई अन्त में हृदय में ही प्राप्त हो कर अशुद्ध रक्त का वहाँ त्याग कर शुद्ध रक्त को ग्रहण कर पुनः सर्वदेह में व्याप्त हो कर देह का पोषण करती हैं। इस कथन से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि दोष सर्वदेहचर होते हुए जिस स्थान पर रुक जाते हैं वहीं रोग को उत्पन्न कर देते हैं। यथाचोक्त संग्रहे—

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्।
यत्रसङ्गः स्ववैगुण्याव्याधिस्तत्रोपजायते, इति स्पष्टम्॥

इस उक्त वाक्य से आप का सन्देह दूर हो गया होगा, यतः रक्तवाहिधमनियों का काठिन्य वा संकोच केवल वात के दूषित प्रभाव से ही होता है। यदि रक्तवाहिधमनियों की विकृति को ही कारण स्वीकार किया जाये तो सर्वदेह व्यापी रक्त प्रवाहित करने से सर्वदेह को ही रुग्ण होना जाहिए। मैंने पूर्व लेख में रोगोत्पत्यर्थ अनेक हेतुओं का वर्णन किया हुआ था जिन से आमाशय की विकृति, वृक्कों की विकृति शीताद्यतिनिषेवणात तथा संचिन्तनादि अनेक हेतु उक्तरोग को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं यह सत्यभी है यतश्चोक्तम् चरके—

एको हेतुरनेकस्य तथैकस्यैक एव हि।
व्याधेरेकस्य बहवो बहूनां बहव स्तथा।"

इससे ज्ञात होता है कि उक्तरोग अनेक कारणों से होता है न कि केवल रक्तवात ही इसका हेतु है। आप ने जो "दुष्टो वायुः रक्तेन आवृतः कुप्यति", ऐसा कहा तो आप को इस बात का तो ज्ञान होना चाहिए कि यह किस अवस्था विशेष का वर्णन है, यतः वातव्याधि वर्णन करते हुए माधव ने मधुकोष की व्याख्या में केवल "वातरक्त से उक्त लक्षण का भेद दर्शाते हुए उक्त पंक्ति का निर्देश किया है न कि किसी रोग विशेष का नाम निर्धारित किया है। यहां स्पष्ट वर्णित है कि "अन्ये त्वसृग्गत, वातलक्षणं न पठन्ति, वातरक्तेन सहाभेदात्; तन्न "अत्रदुष्टो वायुः रक्तेन आवृतः कुप्यतिः वातरक्ते तु स्वकारणात्" इति। टीकाकार ने अन्य मत का भाव व्यक्त करते हुए यह दर्शाया है कि कई आचार्य असृग्गतवात के लक्षणों को पढ़ते ही नहीं, क्योंकि वातरक्त में तथा असृग्गतवात में भोई भेद न होने से, परञ्च मधुकोष ने उसे वातरक्त से भिन्न प्रतिपादन किया है यतः वातरक्त के हस्त्याश्वादि गमन रूप विशेष हेतु होने से परस्पर भेद है। असृग्गतवात के लक्षण निदान में किये गये हैं वह आप ने अवश्य अवगत किये

(शेष पृष्ठ ७७ पर)

दन्तरोग विज्ञान

पायरिया की सफल चिकित्सा

(लेखक—दन्तवैद्य श्री किशोरदास भागीरथ गुप्त, १०२, फणसवाड़ी स्ट्रीट, बम्बई २)

निदान-ग्रन्थों में मुख रोगों के सामान्य कारणों में "क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः" ऐसा लिखा है। अनुभव में यह बात कितनी उपयुक्त है, इस पर एक संशोधक की दृष्टि से विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। अतएव पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा की गई उन दो शोधों पर यहाँ प्रकाश डाला जाता है कि जो दो प्रकार के पृथक्-पृथक् दन्त-रोगों से संबन्धित हैं। एक दूसरे से विपरीत होते हुए भी, वे आयुर्वेद के उसी सिद्धांत की समर्थक हैं, कि जिसको आचार्यों ने आज से हजारहा वर्ष पहिले प्रतिपादित कर दिया है।

इस प्रकार पाश्चात्य शोधकों की खोज पर विचार करने से प्रथम कफ के प्राकृत स्वरूप का, उसमें रहने वाले रसानुरस की दृष्टि से, विचार करना भी आवश्यक मालूम होता है जिससे पायरिया जैसे रोग की सफल चिकित्सा करते समय कफ का वही प्राकृत स्वरूप पुनः निर्माण करने की ओर, हम अपने लक्ष्य को कायम रख सकें। कफ धातु के वर्णन में उसका "स्वादु" होना बतलाया गया है किन्तु विदग्धावस्था में उसके दोष रूप बनने पर वह लवण रस युक्त बन जाता है "विदग्धो लवणो भवेत्"। साथ साथ ही हमारे लिये इस बात पर भी विचार करना आकश्यक है कि "दन्त शर्करा" की उत्पत्ति ही आयुर्वेदीय रोग निदान ग्रन्थानुसार, दन्तगत आठ प्रकार के रोगों में से एक है। फिर भी पाश्चात्य संशोधकों ने दन्त शर्करा (Tartar) की उक्त उत्पत्ति को, अपने देशव्यापी परिस्थिति के अनुसार एक सर्व सामान्यावस्था कहा है।

दन्त शर्करा की उत्पत्ति के कारणों की खोज करने पर उन्हें यह भी प्रतीत हो चुका है कि लाला में रही हुई लवणप्रधान क्षार (alkalinity) उससे पृथक् होकर दन्तगत मल (अहार के रजकणों) के साथ, जब दांत पर जमा होती है, तब दन्त शर्करा की जमावट (Tartar formation) हुआ करती है। इस प्रकार दांत पर जमा होने वाली दन्त शर्करा के प्रमाण की वृद्धि और कमी भी उसी लाला में रहने वाली Carbon-di-Oxide के न्यून और अधिक प्रमाण पर क्रमशः निर्भर रहा करती है। सारांश यह है कि दन्त शर्करा की उत्पत्ति और वृद्धि के लिये लाला की रचना में ही रहने वाले उसके दो घटक (alkalinity and Carbon-di-oxide) जवाबदार है। अर्थात् लाला

जो कि कफ के पाँच प्रकारों में से एक है, वही दन्तशर्करा रोग की उत्पत्ति के लिये जवाबदार ठहरती है।

उसी प्रकार "कृमिदन्त" रोग की उत्पत्ति से छः मास पूर्व लाला में अम्लत्व (acidity) की उत्पत्ति होती है। किन्तु यदि अम्लत्व की उत्पत्ति को उत्पन्न होने से ही रोका जा सके, अथवा उत्पन्न हुई हुई को यदि नष्ट किया जा सके, तो 'कृमिदन्त रोग' उत्पन्न ही नहीं होगा।

इस प्रकार उक्त दोनों ही रोगों की उत्पत्ति का मूलभूत कारण लाला-कफ-में निर्माण होने वाली वे न्यूनाधिकता ही हैं। विज्ञान के सिद्धान्तानुसार यद्यपि alkalinity और acidity दोनों परस्पर विपरीत गुण धराने वाले तत्त्व हैं और उसमें से किसी एक की उपस्थिति दूसरे की उत्पत्ति में बाधक ठहरती है। तथापि ये दोनों ही प्रकार की विकृतियाँ उसी एक लाला-कफ में और एक ही समयावच्छेद करके निर्माण हो सकती हैं। आयुर्वेद में कफ के प्राकृतिक स्वरूप को इस प्रकार के दोनों ही तत्त्वों से विरहित बतलाया है। उसका सरल अर्थ तो इस प्रकार का हो सकता है कि लाला की रचना में होने वाले प्रथम के दो तत्त्व alkalinity और Carbon-di-Oxide या कि Carbonic Acid Gas दोनों बिलकुल समप्रमाण धराने वाले होने चाहियें क्योंकि इस अवस्था में ही दोनों तत्त्व Neutrality के निर्माता बन सकते हैं। अर्थात् लवण और अम्ल रसादि का बिलकुल ही त्याग कर सकते हैं और इसी अवस्था में दन्तशर्करा की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है।

इस प्रकार आयुर्वेदानुसार अथवा एलोपैथी के मतानुसार "दंतशर्करा" और "कृमिदंत" रोगों की उत्पत्ति का व्यक्तिशः कारण (निदान) एक दूसरे से बिलकुल स्वतन्त्र और विपरीत होने पर भी सामान्य निदान तो कफ-लाला की दुष्टि का ही स्पष्ट द्योतक है।

दूसरे, दाह प्राधान्य छाले जैसे मुखगत रोग में कफ के विपरीत गुण धराने वाले पित्त दोष के लक्षणों का ही प्रादुर्भाव होता है। फिर भी उसकी चिकित्सा में जिस किसी औषधि का सफल प्रयोग यदि हो सकता है तो, उसमें भी लाला कफ के प्रसेक कराने के गुणों की प्रधानता रहा करती है। अथवा तो, वह औषधि कफ की शोधनकर्त्ता और पित्त की शामक ही हुआ करती है। इसलिये पायरिया आदि किसी भी कष्ट साध्य मुख-रोग की सफल चिकित्सा करने के लिये प्रथम तो उसके सामान्य निदान को ध्यान में रखना जरूरी है और फिर कफ प्रकृतिस्थ रोगी के कफ का शोधन या शमन

जिस प्रकार परमावश्यक हुवा करता है, वही किया जाना चाहिये । महर्षि चरकाचार्य जी ने भी मुख रोगों की सामान्य चिकित्सा के बारे में सूचना देते हुये अधिकतर कफ के शोधक और कुछ शामक उपायों की ही आज्ञा दी है ;

> "धूमः प्रधमनं शुद्धिरधश्छर्दनलङ्घनम् ।
> भोज्यं च मुखरोगेषु यथास्वं दोषानुद्धितम् ॥"

पायोरिया आदि मुख रोगों की सफल चिकित्सा के लिये उसके सामान्य निदान और सामान्य चिकित्साक्रम का ध्यान में रखना, जिस प्रकार परम आवश्यक है ठीक उसी प्रकार कफोत्पादक आहार (मधुर, अम्ल, लवणादि रस सेवन) विहार का सूक्ष्म दृष्टि से विचार करना भी अत्यन्त आवश्यक है । इतना ही नहीं, अपितु, प्रकुपित दोष के बलाबल के विचार सहित, पथ्यापथ्य और चिकित्सा की योजना करने से ही उसके शमन करने में शीघ्र और सम्पूर्ण सफलता की आशा की जा सकती है ।

प्रकुपित दोष की न्यूनता से ही पथ्य विरहित स्थानिक चिकित्सा में सफलता

प्रायः यह देखा जाता है कि दंतोद्भव वेदनाओं में कई समय प्रकुपित दोष स्वस्थ होने के कारण नमक, फिटकरी आदि के गरम पानी के साथ बारम्बार गंडूष मात्र के करने से वेदना का शमन हो जाता है । इसका अर्थ है कि उक्त वेदना के कार्य-कारण कफ इत्यादि दोष की वृद्धि अत्यन्त ही अल्प थी । अतएव कुल्लियों के द्वारा होने वाले स्थानिक कफ-दोष-लाला के बारम्बार के स्रावजन्य संशोधन (कमी) के कारण वह नष्टप्रायः हो चुकी और वात का शमन होकर वेदना शान्त हो गई यथा "लवणैरुष्णैः संशोधनः कफे" (गण्डूष भेदाः) किन्तु जब कुल्लियों के जरिये या अन्य औषधि के प्रयोग से निर्माण होने वाली कफ दोष की कमी, उसकी प्रबल वृद्धि के प्रमाण में अत्यन्त ही अल्प ठहरती है, तब वह वेदना किसी भी प्रकार के (स्थानिक या आभ्यंतरिक डॉक्टरी) उपचारों से शांत नहीं होती है । ऐसी अवस्था में कफ कारक आहार विहार को बिल्कुल बन्द करके केन्द्र स्थानीय-आमाशयस्थ-कफ की उत्पत्ति को अटकाना भी परमावश्यक हो जाता है और फिर बढ़े हुवे कफ की कमी करने के लिये उसके शोधक या शामक उपायों का आश्रय ग्रहण करना होता है*। तब ही रोग व रोग कारणों पर जबरदस्त

---

* एक सगर्भा युवती, जिसे बारम्बार गर्भपात हो जाता था, उसकी दाढ़ में असह्य वेदना होने से उसके फेमिली डाक्टर्स उस वेदना का शमन करने के लिये आकाश-पाताल एक कर चुके थे और गर्भावस्था के कारण दंतोत्पाटन करने में भी असमर्थ ठहरे थे । यह कहने की आवश्यकता

प्रहार होता है और ऐसी अवस्था में ही वेदना जैसे दारुण रोग को शान्त किया जा सकता है।

पायरिया का निदान व चिकित्सा

इस प्रकार मुख रोग के सामान्य निदान और पथ्यापथ्य सहित चिकित्सा के महत्व को ध्यान में रखते हुवे शीघ्रोत्पत्ति, मंदगति, चिरस्थिति और दीर्घकालीन चिकित्सा धरानेवाले पायरिया जैसे स्वतन्त्र रोग की शास्त्रीय सफल चिकित्सा की ओर जब हम अपने लक्ष्य को केन्द्रित करते हैं तब प्रकुपित दोषों के अतिरिक्त दूष्य, देश, काल, बलादि का साधक बाधक दृष्टि पूर्ण विचार करना भी परमावश्यक होता है। शीताद और दंतवेष्ठ, जो कि आधुनिक पायरिया के ही स्वरूप हैं, वे दोनों ही कफ और रक्त (पित्त) इन दो दोष के प्रकोप जनित होते हुये मांस और रक्त इन दो धातुओं से सम्बन्धित हैं।

सामान्य निदान और स्वतन्त्र (व्यक्तिगत) निदान दोनों की दृष्टि से प्रकुपित उक्त दो दोषों में कफ का प्रकोप ही विशेष रूप से होता है। सम्बन्धित धातुओं में मांस धातु, चल रक्त धातु की अपेक्षा, स्थिर और बलवती है। इतना ही नहीं, अपितु मांस धातु यदि सारवान् हो तो वह मांसगत रोगोत्पत्ति में, शरीर द्वारा उनके प्रतिकार के लिये, परमोपयोगी होती है। जब कि सारवान् होते हुए भी रक्त धातु तो स्वगत रोगों की उत्पत्ति के प्रतिकार के लिये सिर्फ असमर्थ ही नहीं होती बल्कि वह तो उनका शीघ्रातिशीघ्र भोग बनने वाली नाजुक धातु है। इस लिए कफ प्रकोप का प्रबल कारण उसके आश्रय स्थान मांस धातु में जितनी पुष्टि निर्माण कर विलोप सहित अनिष्ट परिणाम निपजा सकता है, उतनी ही पुष्टि, पित्त के आश्रय स्थान रक्त धातु में, निर्माण करने वाले पित्त के प्रकोप का जो कारण हो सकेगा वह, कफ प्रकोप के कारण की अपेक्षा

नहीं कि डाक्टरी अन्योपचारों के साथ साथ पेनीसिलीन का कोर्स भी समाप्त कर चुके थे। ऐसी अवस्था में २४ घन्टे की लङ्घन चिकित्सा के साथ-साथ स्थानिक चिकित्सा में चरकोक्त "खदिरादि तैल" के सिर्फ एक फाये का और गण्डूषादि चूर्ण सहित वेदनाहारी लेप का उपयोग करने से आधा आराम मिला और दूसरे दो दिन मूंग के यूष पर रख चिकित्सा करने से सम्पूर्ण लाभ की प्राप्ति हुई। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे पास हैं जहाँ केन्द्र स्थानीय कफ दोष के शोधन या शमन बिना, वेदना के शमन करने में डाक्टर लोग, दंतोत्पाटन करके भी, बिलकुल असमर्थ सिद्ध हुवे हैं और इसका कारण है आहार बिहार जनित दोषों व पथ्यापथ्य के सम्बन्ध में उनकी अज्ञानता।

कितने ही अंशों में निर्बल होते हुए भी शीघ्र कार्यकारी होगा। सारांश कि कफ प्रकोप के साथ होने वाला पित्त का अल्प प्रकोप भी इस रोग की संप्राप्ति का कारण बन जाता है और यही एक मात्र कारण है कि अल्प पित्त प्रकोप जनित दुष्ट रक्त की स्वस्थ एवं प्रारंभिक प्रवृत्ति बलवान् मांसधातु के, उन नाजुक से नाजुक भागों में से ही हुआ करती है, जो कि दांतों के बीच-बीच वाली संधियों पर स्थित और शारीरिक अन्य सब मांस भागों से बिलकुल ही नाजुक हैं।

मुख प्रदेश की रचना का वैशिष्ठ्य

कफ-रक्त (पित्त) जनित रोग की इस प्रकार से मुख में उत्पत्ति होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि नाभि और हृदय के ऊपरी भाग में शारीरिक अन्य भागों की अपेक्षा यद्यपि कफ दोष की प्रधानता है, फिर भी कफ-व्यापी इन अवयवों में के मुख प्रदेश में अन्यों की अपेक्षा कफ की विपुलता प्राधान्यता से सविशेष होती है। अतः कफ का थोड़ा सा प्रकोप भी इस अवयव में अपना अनिष्ट परिणाम शीघ्रता से निर्माण कर सकता है।

दूसरा एक कारण जो कि आधुनिक विज्ञान की शोधों से संबंधित है, उस पर विचार करना भी परमावश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि आयुर्वेद के प्राचीन सिद्धान्तों का ही वह अपरोक्ष में समर्थक मालूम देता है। "दांत के नीचे की केश वाहिनियों में रक्त का संचार मंद गति से हुआ करता है इसलिए वह पायरिया की उत्पत्ति में सहायक होता है। क्योंकि रक्त की गति बढ़ाने के लिये मसूड़ों की मर्दन क्रिया (massage) जरूरी है।"

इस प्रकार रक्ताभिसरण में मंदता का होना शायद वहां के कफ दोष की प्रबलता जनित अति शीत का ही परिणाम होवे व इसी हेतु से मुखगत ऊष्मा का प्रमाण शरीर गत अन्य ऊष्मा की अपेक्षा, निसर्गतः अधिकतर रहना स्वाभाविक है। जिसमें वहां का रक्ताभिसरण मंदगति रहते हुए भी अपना कार्य व्यवस्थित रीति से करता रहे। दांत के नीचेवाली शिराधमन्यादिगत रक्ताभिसरण की यह नैसर्गिक स्थिति संभव है कि पित्त के स्वस्थ प्रकोप जनित दुष्ट रक्त का वही स्थान संश्रय निर्माण करने में सहायक बन जाती हो। इसी कारण से शास्त्रकारों को शीताद रोग की सफल चिकित्सा के लिए उसमें स्थान संश्रयीभूत होकर रहने वाले व रोग के सहायक दुष्ट रक्त की अल्प शुद्धि के लिये भी "रक्त स्रुति"* करने की स्पष्ट आज्ञा देना भाव हुआ हो।

---

*मुखगत रोगों में रक्त स्रुति के लिये जीभ की निचली सीवन के दोनों ओर जलौका कर्म करना होता है। इस प्रकार हमने अनेक रोगियों की रक्त स्रुति की है। निर्भीक होकर जलौका लगाने के बाद दांतों के बीच में कोई कड़ी वस्तु दबवा देनी चाहिये जिससे रक्त का शोषण करती हुई जलौकें होठों से बाहर बिना बाधा के लटकती रहें।

"शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् ।
निष्क्वाथ्य त्रिफलां मुस्तगण्डूषः सरसाञ्जनः ॥"
प्रियङ्गवश्च मुस्तं त्रिफला च प्रलेपनम् ।
नस्यं च त्रिफलासिद्धं मधुकत्पलोपद्मकैः ॥

(सुश्रुत चि० अ० २२-११-१२)

उपरोक्त चिकित्सा में दुष्ट रक्त की शुद्धि के लिये रक्त स्रुति की आज्ञा उपरांत सुंठ, सरसों जैसे तीक्ष्ण कटु रस पदार्थों से युक्त कषाय के गण्डूष धारण करने की भी आज्ञा दी गई है। जिससे शिराधमन्यादिगत रक्त की मंदगति को (क्षणिक) तीव्र बनाकर उसके द्वारा व्रणादि के रोपण कर्म में सहायता पहुँचाई जा सके । सोंठ, सरसों जैसे तीक्ष्ण ऊष्ण द्रव्यों का रक्त शोधक त्रिफला के साथ होने वाला उपयोग और गण्डूष धारण विधि जैसी शिराधमन्यादि में तनाव (विकास) और रक्त में ऊष्णता निर्माण करने वाली क्रिया का उपयोग, यह दोनों ही, वहां के रक्त की सहज मंद गति में तीव्रता निर्माण करने हेतु स्वाभाविक तौर पर उपयोगी ठहर सकते हैं। क्योंकि इस विधि में "कफपूर्णास्यता, यावच्छेदो दोषस्य[*], नेत्रघ्राणश्रुति, कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः" आदि जो शब्द उसकी व्यवस्थित क्रिया को दर्शाने के लिये दिये गये हैं वे वहां उनमें तनाव (विकास) और ऊष्णतादि निर्माण करने के ही सूचक हैं । अतएव पायरिया की चिकित्सा के समय गण्डूष-क्रिया यथाविधि होती है या नहीं, इस ओर भी ध्यान रखना परमावश्यक बात है। इतना ही नहीं, अपितु स्वस्थवृत में दी गई तैल गण्डूष धारण विधि—दांतों की स्वास्थ्य रक्षा का ही परम श्रेष्ठ उपाय है । (क्रमशः)

---

[*] "यावच्छेदो दोषस्य" इस परिस्थिति का वेदना सहित—रुग्णावस्था में और वेदना रहित—स्वस्थावस्था में जो अनुभव होता है वह इस प्रकार है किः—

(१) प्रथम परिस्थिति में औषधि सिद्ध (प्रायः इरिमेंदादि) तैल आधा तोला प्रमाण में सुखोष्ण मुंह में ले कर तब तक रखें जब तक मुंह, तैल कण और कफ लाला से पूरा भर जाय व बिलम्ब होने पर मुंह से बाहर भी निकलने लगे । ऐसी अवस्था में प्रत्येक गण्डूष का परिणाम "वेदना शामक" ही प्रतीत होगा ।

(२) द्वितीय अवस्था में तिल तैल का प्रयोग भी उक्त प्रकारेण किया जाना चाहिये । जिससे श्वास नलिका तक उसका प्रभाव होकर उसमें रहा हुआ कफ बाहिर निकल आवे ।

बालामृतरूपम्मण्डूरम्

(लेखक—श्री आचार्य नित्यानन्द सारस्वतः, पिलानी)

सन्तप्तलोहस्य घनाघातच्युतं पृथिव्युत्तापेन कालेन च पिण्डतां यातम्मलं किट्टापरपर्यायम्मण्डूरमुच्यते । पुरा भारतवर्षस्य समग्रप्रदेशे लोहनिष्कासनप्रणाल्यासीत्प्रचलिता, अतः साम्प्रतम्विजनत्वमाप्तेषु प्राचीननगरेषु ग्रामेषु वा सर्वत्र सुलभमेतत् । पुरातनमेवायसम्मलं सर्वथा ग्राह्यम्, अल्पवर्षीयस्य विषप्रभावोत्पादकत्वात्, तत्रापक्वलोहसन्देहत्वाच्च । अपक्वलोहसंशये संचूर्णितं लोहकिट्टम्विधाय कान्तलोहम्चुम्बकम्वा तत्र सञ्चालनीयम् । एवमपक्वलोहकणाः स्वयमेव कान्तलोहलिप्ताः भविष्यन्ति । एतद्विधस्य प्राचीनत्वे सन्दिग्धस्य च मण्डूरस्य लोहभस्मप्रकारेणैव भस्म निष्पाद्यम् । तस्माच्चिरोज्झितस्थानसंस्थितमेव सर्वत्र पूजितम् । उक्तमप्यायुर्वेदप्रकाशे :—

शतोत्थमुत्तमं किट्टम्मध्यञ्चाशीतिवार्षिकम् ।
अधमं षष्टिवर्षीयन्ततो हीनम्विषोपमम् ॥

तस्माद् विभीतकांगारेषु प्राचीनमण्डूरखण्डान् सन्ताप्य गोमूत्रे त्रिफलाक्वाथे चैकविंशतिवारन्निर्वापयेत् । सुसूक्ष्मञ्च विधायोपयोज्यम् । तथा हि रससंकेतकलिकायाम्:—

गोमूत्रे त्रिफलाक्वाथे तप्तं शोध्यं त्रिसप्तधा ।
स्वर्णादिसर्वलोहानां किट्टं तत्तद्गुणावहम् ॥

केचित्तु गोमूत्रक्वथिते अक्षपात्रान्तःस्थे त्रिफलाक्वाथे किट्टन्निर्वापणीयमिति वदन्ति रसरत्नसमुच्चयसम्वादात् :—

गोमूत्रैस्त्रिफला क्वथ्या तत्क्वाथे सेचयेच्छनैः ।
लोहकिट्टं सुसन्तप्तं यावज्जीर्यति तत्स्वयम् ॥

निर्वाप्य संचूर्णितस्य द्विगुणेन दर्व्या घर्षयन् द्विप्रहरावधि वह्नौ भर्जयेदिति रसमंजरीकारः ।

विशुद्धमण्डूरस्य पुटप्रदानमपि दृश्यते ग्रन्थान्तरे :—

अर्धं गन्धस्य पादांशं रसस्यायोमलस्य च ।
चूर्णं पुटाश्च प्रत्येकं लशुनद्रवभावितम् ॥

तच्चोपेक्ष्यम्, गन्धकादिपुटम्विनाऽपि गुणोत्कर्षदर्शनादद्यत्वेऽव्यवहृतत्वाच्च ।

गुरुचरणास्तु विभीतकाङ्गाराभावे खदिराङ्गाराणि सामान्यकोकिलेषु विभीतक-

त्वचमेव वा प्रक्षिप्य, प्रथमवारमङ्गारस्थानेव सन्ताप्य गोमूत्रे निर्वापयन्ति, तदनन्तरन्तु लोहदर्व्यां संस्थाप्य सन्तापयन्ति । एवं सप्तधा निर्वापितस्य रसमञ्जरीकारोक्तविधिना भर्जनम्विधाय, वस्त्रगालितञ्च कृत्वा त्रिफलाजलेन विमर्द्य सकृद् गजपुटपाकेन अत्युत्तमम्भस्म निष्पादयन्ति । बालकानां कृते त्वमृतमेवैतत् । अस्य मात्रानिर्देशं यथा रसतरंगिण्याम् :—

आरभ्य गुञ्जापादांशाल्लोहमात्राविधानवित् ।
गुञ्जाद्वितयपर्यन्तं मण्डूरं विनियोजयेत् ॥

किट्टं स्वर्णरजतादिकानामपि तत्तद्धातुगुणापादकञ्च भवति । परमधुना लोहकिट्टस्यैव व्यवहारो दरीदृश्यते । उक्तञ्चाप्युपाध्यायमाधवेन :—

यस्य लोहस्य ये प्रोक्ताः (गुणाः) तत्किट्टमपि तद्गुणम् ।

किट्टं कषायं शिशिरं पाण्डुश्वयथुशोफजित् ।
हरते कामलां कुम्भकामलाञ्च हलीमकम् ॥

यद्यपि चामुण्डादिभिः संक्षिप्तनिर्देशेन विभीतकाङ्गारेष्वेव सन्तापप्रकारं न सूचितं स्वतन्त्रेषु, परम्विभीतके किट्टदोषापकर्षणसामर्थ्यभूयस्त्वेन प्रायशः सर्वत्रैव तद्विधानमुपदिष्टम् । तथा हि रसरत्नप्रदीपिकायामपि :—

दग्धाक्षकाष्ठैर्मलमायसन्तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ।
विचूर्ण्य लीढम्मधुना चिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदन्निहन्ति ॥

औषधव्यवसायिभिराढ्यवैद्यैश्चास्य स्वल्पमूल्ये आयुर्वेदमहत्त्वख्यापकस्य निःशुल्क वितरणम्विधेयम् राष्ट्रबालानां नैरुज्याय पुनर्नवादिमिश्रितममिश्रितम्वा ।

वैद्य समाज के लिये स्वर्ण-अवसर
हमारे यहाँ के विशुद्ध आयुर्वेदिक वैज्ञानिक ढंग से बने हुए आयुर्वेदिक इंजेक्शनों को खरीद, दुःसाध्य एवं कठिन रोगों की चिकित्सा कर यश तथा धनोपार्जन कीजिए।
भारत में आयुर्वेदिक इंजेक्शनों की एकमात्र अनुसंधान-शाला—
श्री लक्ष्मी आयुर्वेदिक अनुसंधान भवन, बरुवा सागर (झांसी)।

वंशलोचन

[लेखक—श्री ओ० एन० पेट्री, एम० एस-सी०, सागर यूनिवर्सिटी, सागर]

(अनुवादक—कविराज ओंप्रकाश वैद्यवाचस्पति, २३, दरियागंज, देहली)

(जनवरी अंक से आगे)

वंशलोचन के विश्लेषण का प्राचीनतम रिकार्ड श्रीयुत जे० एल० मेसी (Phil. Trans, 1791. 81, 368) का प्रतीत होता है, जिसने सब से पहले यह जाना कि बांस खोल में यह पाषाणमय ठोस पदार्थ पाया जाता है। एफ़० जे० कोन ने भी अपनी "Ueber Tabaschir" नामी पुस्तक में इस पदार्थ की विवेचना की है। जी० ए० स्ट्रूव महोदय ने अपनी पुस्तक "De Silicia in plantis nonnullis-1825" में इस पदार्थ की श्वेत पाषाणमय प्रकृति का वर्णन किया है। वॉट के अनुसार (Dictionary of Economic Products of India. Vol. I, PP. 386) इस पदार्थ का पूर्ण विश्लेषण सन् 1836 ई० में ग्लासगो के प्रो० टी० थॉम्सन ने किया। यह विश्लेषण निम्नलिखित रूप में है :—

इस पदार्थ के १०० भागों में से—

पाषाणमय श्वेत पदार्थ	90·50%	प्रतिशत
पोटाश	1·10%	,,
लौह	0·90%	,,
अलूमिना	0·40%	,,
जलीयांश	4·87%	,,
नाशवान अंश	2·23%	,,

(Records of Gen, Sci., Feb., 1836)

वैहमार (Wehmar) ने अपनी पुस्तक "Die Pflanezenstoffe" के 1929-31 में प्रकाशित संस्करण में, इस पदार्थ पर किए गए सभी विश्लेषणों की

व्याख्या की है। उस के मतानुसार इस पदार्थ का निर्माण मुख्यतया सिलिसिक एसिड (Sio_3, up to 96·9%) से हुआ है, जिस में केवल १ प्रतिशत भाग ऐन्द्रियिक द्रव्य का है। आंच पर भूनने के पश्चात् जो अवशेष बचता है, उस में 99% प्रतिशत सिलिका (पाषाणमय श्वेत पदार्थ) प्राप्त होता है, जिस में कुछ-कुछ अंश लौह, कैल्शियम, फिटकरी और क्षारीय तत्त्व का भी पाया जाता है। वाल्टर० एच० इन्स (Pharm. J. Trans 1896 (iv), 2, 141) के पेपर का भी यहां वर्णन कर देना अनुपयुक्त न होगा, जिस में इन्होंने तवाशीर के तीन सैम्पल ले कर उन का औसतन विश्लेषण इस प्रकार दिया है :—

$\mathrm{Sio.}_2$ 89.77–91·69%, $\mathrm{FE}_2\ \mathrm{O}_3$ Traces, 0.665%, Cao O.725–3.81%, K. 2. O_1 524-4-332% ऐन्द्रियिक द्रव्य 0.0.3.122.% (British Chemical Abstracts, 1897, A.ii, 278)

उपर्युक्त विस्तृत विवरण को देखते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वंशलोचन के लक्षण वृक्ष की उपज की अपेक्षा खनिज द्रव्य से अधिक मिलते हैं। नवम्बर के अंक में यह दर्शाया जा चुका है कि इसे शुद्ध करने के लिए अर्थात् इस पर से प्राणिज द्रव्य को पूर्णरूपेण उतारने के लिए इसे आंच पर भली प्रकार भूना जाता है। ऊपर लिखे हुए विश्लेषण के आधार पर यह आशा की जाती थी कि यह पदार्थ—स्फटिक विहीन श्वेत पाषाणमय घोल के सदृश होगा। जिसे कि ओपल (Opal) कहा जाता है, और जिस का रंग पीलाहट, रक्तिमा, भूरापन, अथवा नीलिमा लिए हुए श्वेत होता है। इस पदार्थ के विश्लेषण करने में जिन उपायों का अवलम्बन किया गया है, वह प्रायः खनिज द्रव्यों के विश्लेषण में काम आते हैं, और उनका परिणाम तालिका नं० १ में दिया गया है। तालिका नं० १ में भिन्न-भिन्न विश्लेषणों का परिणाम दिया है अर्थात्—(i) पौधे से सीधा लिया हुआ वंशलोचन (ii) मण्डी से लिया हुआ वंशलोचन और (iii) कृत्रिम वंशलोचन जोकि सिलिसिक एसिड के नाम से विख्यात है। प्रत्येक अवस्था में इस पदार्थ के औसतन सैम्पल लिए गए थे और प्राणिज द्रव्य का ज्ञान करने के लिए तथा इसे वास्तविक पदार्थ से अलग करने के लिए अच्छी तरह भून लिया गया था। तालिका नं० १—क में प्राणिज द्रव्य का दिग्दर्शन कराया गया है और तालिका नं० १—ख में इन सैम्पल्ज़ का रासायनिक विश्लेषण दिखाया गया है।

तालिका नं० १—क

सैम्पल का नाम	भूनने के पश्चात् कम हुआ प्रतिशत वज़न व भार
१. पौधे से सीधा लिया हुआ वंशलोचन	10%
२. बाज़ार से लिया हुआ वंशलोचन	1·1%
३. कृत्रिम वंशलोचन	0·4%

तालिका नं० १—ख

१. पौधे से लिया हुआ वंशलोचन	२. बाज़ार से लिया हुआ वंशलोचन	३. कृत्रिम वंशलोचन
सिलिका SiO_2—99% (पाषाणमय श्वेत पदार्थ)	सिलिका SiO_2.98 2%	सिलिका SiO_2.99.4%
अन्य आंशिक तत्त्व :— कैल्शियम, बेरियम, एलूमिनियम, पोटैशियम, लौह, मैगनेशियम, तथा सोडियम	अन्य आंशिक तत्त्व :— कैल्शियम, बेरियम एलुमिनियम, पोटैशियम लौह, मैगनेशियम तथा सोडियम	अन्य आंशिक तत्त्व :— केवल लौह

नोट—भिन्न-भिन्न सैम्पल्ज़ का जलीयांश भिन्न-भिन्न है। इस का कारण इस पदार्थ का छिद्रमय होना है, अर्थात् किसी भाग में छिद्र कम होते हैं और किसी में अधिक। उपर्युक्त विश्लेषण में प्रयोग हुए सभी सैम्पल प्रयोग से पूर्व।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होगया है कि वंशलोचन सिलिका की हाइड्रोफ़ेन जाति के साथ अधिक मिलता जुलता है। (देखिये—J. W. Mellor's A. Comprehensive Treatise on Inorganic and Theoratical chemistry Vol VI P.P. 141) इस पदार्थ का प्रधानतः रासायनिक भाग सिलिका है। कृत्रिम पदार्थ में जो लौह का अंश पाया जाता है वह इस की अशुद्धता अथवा अपवित्रता का द्योतक है, जो कि लौहपात्र में इस पदार्थ का निर्माण करते समय मिल जाता है।

उपरिलिखित सैम्पल्ज़ का विश्लेषण करने से पूर्व उन्हें भली प्रकार डैस्सिकेटर में डाल कर सुखा लिया गया था।

वंशलोचन के रासायनिक विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि सभी सम्भावित अनुमानों के द्वारा इस का प्रभाव सिलिका की उत्तम जाति (Variety) पर निर्भर है, जिस से कि यह प्रधानतः बना हुआ है। यहां यह बतला देना भी अनुचित न होगा कि सिलिका उन प्रपातों के जल में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है, जिन का उद्गम ज्वालामुखी पर्वतों से है। इस जल का मानव शरीर पर बहुत ही उत्तम प्रभाव कई केसों में देखा गया है। सिलिका भी बहुत से पौधों की राख का मौलिक अंश प्रतीत होता है, विशेषतया कई प्रकार के घास और एक्विज़िटेशिया (Equisitaceae).

वोल्फ़ और वोगल के मतानुसार जौ की राख में 17.27—36.73%, जई की राख में 33.46—55.95% जुवार की राख में 0–5.54%, मटर की राख में 0–3.02%, आलु के छिलके की राख में 1.93—9.40%, आलु के अन्दर के गूदे की राख में 0—8.11%, कुकुरमुत्ता की राख में—0.09—15.37% प्रतिशत सिलिका पाया जाता है। सिलिका प्राणिज शरीर का भी एक अंग है। द्विपरमाणुयुक्त कहलाने वाली पृथ्वी (Diatomaclous earth) Diatomite or Kieselguhr यह सब मृत द्विपरमाणुओं के सिलिकामय ढांचा मात्र हैं। मानव शरीर में भी सिलिका का बहुत थोड़ा अंश पाया जाता है। एच० शुल्ज़ के अनुसार मनुष्य शरीर के मांस की राख में 0.0826% तथा त्वचा की राख में 0.1484% सिलिका पाया जाता है। यहां यह भी बता देना उपयुक्त होगा कि वृद्धावस्था की अपेक्षा युवावस्था में उन्हीं टिश्युओं (सौत्रिक तन्तु) में अधिक सिलिका पाया जाता है (J. W. Mellor, A comprehensive Treatise on Inorganic and Theoratical Chemistry, Vol VI. PP. 142).

इस बारे में J. E. Reynolds की कृति से (Pro. Roy. Ins., 1909, 19 642; Proc, Roy. Soc. 1913, 81, A. 37) निम्नलिखित उद्धरण अत्यंत ही विचारणीय है :—

"जीवन सम्बन्धी सभी सिद्धान्त यह बतलाते हैं कि दृश्य शरीर कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सिजन तत्त्वों के ऐसे मिश्रित मेल से बना है, कि जिन्हें हम अटूट कह सकते हैं, कभी-कभी उपर्युक्त तत्त्वों को गन्धक और फास्फोरस तत्त्वों की भी—सहायता लेनी पड़ती है। यह तत्त्व उस प्रोटोप्लाज़्म के तत्त्व हैं, जो कि भौतिक

शरीरी जीवन की बुनियाद है। और इन के परस्पर सम्पर्क और क्रिया द्वारा अस्थिर और संकीर्ण कोष समुदाय उत्पन्न होता है, जिसका कि यह विलक्षण पदार्थ बना हुआ है। सभी पदार्थ जिन्हें कि हम जीव-सम्बन्धी कहते हैं, किसी न किसी प्रोटोप्लाज्म के परिवर्त्तन और कार्बन तथा हाइड्रोजन के प्राणवायु के साथ सम्मिलित होने पर सम्बन्धित हैं। किन्तु यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या इन तत्त्वों के साथ जीव का सम्बन्ध जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, अवश्यम्भावी है। इस से हम अन्दाज़ा लगा सकते हैं, कि तत्सदृश तत्त्वों से वैसे ही समुदायों का निर्माण हो सकता है और वह प्राणी अथवा पौधे इस से अधिक तापमान वाली स्थिति में भी रह सकते हैं। यथा—हम कल्पना कर सकते हैं कि अधिक तापमानयुक्त प्रोटोप्लाज्म में सिलिका कार्बन का गन्धक ऑक्सीजन का और फास्फोरस नाइट्रोजन का पूर्णरूपेण अथवा आंशिक रूप से स्थान ले लेता है। वस्तुतः प्रोटोप्लाज्म में, (जैसा कि हम इसे शुद्धावस्था में जानते हैं) आंशिक रूप से गन्धक और फास्फोरस विद्यमान हैं।

बांस में से प्राप्त होने वाले वंशलोचन के साथ जो ऐन्द्रियिक द्रव्य पाया गया है उस पर अभी अनुसन्धान हो रहा है।

ब्लड प्रेशर क्या है ?

(पृष्ठ ६४ का शेष)

होंगे, क्या उससे 'ब्लड प्रेशर' रोग के किसी भी लक्षण का सम्मिलन होता है ? आप ने जो रक्तवात को उक्तरोग स्वीकार किया है यह कोई भी आयुर्वेदाभिमानी स्वीकार करेगा ? जब कि "रक्तवात" का एक भी चिह्न उक्तरोग से सम्मिलित नहीं हो सका। माधवनिदानोक्तऽसृग्गवात लक्षणं यथा—

"रुजास्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशता ऽरुचिः।
गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चा सृग्गते ऽनिले। इति

अर्थात्—तीव्र पीडा सन्ताप सहिता, त्वचि वैवर्ण्य, कृषता, अरुचि, गात्रे अरुंषि प्रादुर्भावा, भुक्तवतो गात्रस्तम्भः, इत्यर्थः।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह रोग प्रायः गात्रों में ही होता है अर्थात् जिस गात्र में रक्तवाहिधमनियों में वात कुपित हो कर ठहरता है उसीमें पीड़ा आदि लक्षण वा पीड़का आदि हो जाते हैं, न कि हृदय में व सिर में ही।

त्रिदोष का वैज्ञानिक विवेचन

(लेखक—डा० लक्ष्मीनारायण पचौरी, गोविन्द गंज, जबलपुर)

(गतांक से आगे)

: ४ :

धातुओं की दृष्टि से दोषों के स्थान—

तत्राऽस्थ्नि स्थितो वायुः पित्तं तु स्वेदरक्तयोः ।
श्लेष्मा शेषेषु तेनैषामाश्रयाश्रयिणां मिथः ॥ अ० हृ० सू० ११/२६

जिस धातु में जो दोष अधिक रहता है वह उस दोष का स्थान मान लिया गया है क्योंकि 'बाहुल्येन व्ययदेशा भवन्ति' यह सिद्धांत है। यथार्थ में दोष सब धातुओं में व्याप्त और सर्वशरीरव्यापक हैं—'पंच भूतानीव च ते शरीरे व्यापिनः। च० सू० २०।

यद्यपि लसीका और रस* कफ प्रधान धातुएं हैं तथापि चरक ने सूत्रस्थान बीस में (जैसा कि ऊपर उद्धृत किया है) रक्त के साथ इनका भी पित्त स्थानों में समावेश कर दिया है। इसका कारण इन धातुओं का तथा पित्त का द्रवत्व गुण सामान्य है (पित्त के गुण देखिये)। इसके सिवा पाँच भौतिक आहार से द्रवरूप रस धातु का निर्माण पाचक पित्त के द्वारा होता है तथा इनके द्रवस्वरूप में स्थायित्व पित्त के कारण है। ऊष्मा अर्थात् पित्तहीन अवस्था में वे द्रवत्वहीन होकर रक्त के समान जम जाती हैं जैसा कि जीवित शरीर से बाहिर निष्कासित होने पर तथा मृत शरीर के अन्दर रहने पर उनमें प्रत्यक्ष देखा जाता है। मृत्यूत्तर संकोच (Rigor mortis) में मांसपेशियों के साथ इनका सहयोग भी रहता है। इस तरह इनके द्रवत्व का कारण भले ही पित्त हो किन्तु द्रवत्व जल तत्त्व का गुण होने से इनके घटकों में कफ का स्थान मानना उचित है, तथा वाग्भट के उपर्युक्त श्लोक से लसीका और रस का कफाधिष्ठान होना ही सिद्ध होता है। रस के सम्बन्ध में सुश्रुत में लिखा है—

---

*रस—रस धातु के दो प्रकार हैं—(१) पोषक रस और (२) पोष्य या स्थायी रस। यहाँ पर रस शब्द पोषक रस के लिये और लसीका पोष्य या स्थायी रस के लिये आया है। शास्त्रोक्त केदारकुल्यान्याय द्वारा स्थायी रस से सप्त धातुओं का (रस वर्ज्य) क्रमशः उत्तरोत्तर निर्माण होता हैं तथा खलेकपोतन्याय द्वारा पोषक रस से युगपद् सप्त धातुओं का पोषण होता है।

स……कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्धयति धारयति यापयति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा।…
अत्रोच्यते-स खलु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैः सौम्य इत्यवगम्यते ॥

सु० सू० १४/३

इस प्रकार सौम्यगुण एवं वृद्धि गुणयुक्त होने के कारण रस को कफ का स्थान मानना ही उचित है। रस वृद्धि और श्लेष्मवृद्धिजन्य रोगों में समानता होने का कारण भी रस का कफ भूयिष्ठ होना सिद्ध होता है—

श्लेष्मा (वृद्धो)ऽग्निसदन प्रसेकालस्यगौरवम् ।
श्वैत्यशैत्यश्लथाङ्गत्वं श्वासकासाति निद्रता ॥
रसोऽपि श्लेष्मवत्— ॥ अ० हृ० सू० ११/७,८.

यद्यपि रस शरीरवर्धक प्रधान एवं आद्य धातु है तथापि उसकी वृद्धि से रोगोत्पत्ति होने का कारण उसकी आमावस्था अर्थात् पित्तहीनावस्था है। यदि रस धात्वग्निसंज्ञक पाचक पित्त समन्वित हो तो उसकी वृद्धि से रोगोत्पत्ति न होकर अन्य धातुओं का पोषण होकर शरीर की पुष्टि एवं वृद्धि होगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रस के साथ पित्त का सहयोगी के रूप में रहना आवश्यक है। इस लिये भी शायद चरक ने रस और लसीका की गणना पित्तस्थानों में कर दी है। वैसे तो प्रत्येक धातु में तीनों दोष हैं ही किन्तु रस और लसीका में कफ प्रधान तथा अन्य दोष गौण हैं।

(आ) दोषों के पाँच-पाँच भेदों के स्थान :—

तीनों दोषों के जो पाँच-पाँच भेद व उनके स्थान प्रदर्शित किये हैं ये उनके प्राकृत क्रियाधिक्य के कारण हैं।

पंच वायु के स्थान—

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभि संस्थितः ।
उदानः कण्ठदेशे च व्यानः सर्वशरीरगः ॥

पंच पित्त के स्थान—

आलोचकं नेत्रयोः, रञ्जकं यकृतप्लीह्नोः,साधकं हृदि,
पाचकं पक्वामाशययोर्मध्ये, भ्राजकं त्वचि ।

रञ्जक पित्त का स्थान वाग्भट ने आमाशय माना है—

आमाशयाश्रं पित्तं रञ्जकं रसरञ्जनात् । अ० हृ० सू० १२/१३

शार्ङ्गधर ने हृदय को रञ्जक पित्त का स्थान कहा है—

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ।
रञ्जितः पाचितस्तत्र पित्तेनायातिरक्तताम् ॥ शा० प्र० ६।८

पंच कफ के स्थान--

हृदयामाशय जिह्वा शिरः सन्धिषु क्रमेणावलम्बकक्लेदकबोधकतर्पकश्लेष्मकभेदात् ।

(५) गर्भ विज्ञान सहित प्राकृत दोषों के कर्म या त्रिदोष-क्रिया-विज्ञान Tridosh Physiology with Embryology—

इस प्रकरण के दो विभाग किये जा सकते हैं—

(१) गर्भ कालीन क्रिया विज्ञान (Embryological Physiology)

(२) जन्मोत्तर क्रिया विज्ञान (Postnatal Physiology)

(१) गर्भ कालीन क्रिया विज्ञान--

वात, पित्त और कफ शुक्र कीट और डिम्ब में उपस्थित रहते हुए अपने गति, उष्णता और श्लेषण गुणों द्वारा भ्रूण या गर्भ का निर्माण करते हैं। इस अवस्था में इनके भिन्न-भिन्न मुख्य कार्यों का दिग्दर्शन नीचे करते हैं—

वायु के कार्य--

मैथुन क्रिया तथा शुक्रस्खलन में तीनों दोषों की उपस्थिति रहते हुए भी वायु का प्राधान्य रहता है--"तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः शरीरात् वायुरुदीरयति, ततस्तेजोऽनिल-सन्निपाताच्छुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते आर्तवेण । ततोऽग्निसोमसंयोगात् संसृज्यमानो गर्भो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते । क्षेत्रज्ञो·······वायुनाभिप्रेर्यमाणः गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ।

सु० शा० ३।४

शुक्रकीट का चल कर डिम्ब से मिलना, पक्व डिम्ब को Epiderm, Mesoderm और Hypoderm नामक भागों में विभिक्त करना तथा गर्भ में विभन्न आकार, स्वरूप और इन्द्रियों का निर्माण करना. उसमें हलचल या गति पैदा करना—इत्यादि कार्य वायु द्वारा होते हैं। उपर्युक्त तीन भागों में से Epiderm या Ectoderm संज्ञक बाह्य भाग वायु का मुख्य स्थान है और उसके द्वारा त्वचा तथा नाड़ी संस्थान का निर्माण होता है।

जन-स्वास्थ्य

सबल व स्वस्थ होने के उपाय

(लेखक—कविराज प्रतापसिंह रसायनाचार्य, डायरेक्टर आयुर्वेद विभाग, उदयपुर)

मनुष्य दीर्घायु होना चाहता है । स्वस्थ रहना चाहता है । पर आज भोजन सामग्री के उपयुक्त द्रव्यों के अभाव से वह बरबस क्षीण और अल्पायु होता जारहा है । यह दशा हमारे पौराणिक समय में उपस्थित रही होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।

हमारा देश सदा देवासुर संग्राम में प्रवृत्त रहा है इस वीर भूमि में युद्धकला प्रत्येक नागरिक की जीवन कला का अङ्ग रहा है, यहां की क्षत्रिय मातायें बालक को पैदा ही करती थीं मातृभूमि की रक्षा के लिये, महाभारत के एक प्रसङ्ग में देवी कुन्ती ने एक स्थान पर विदुर से कहा है कि मेरे पुत्र अर्जुन और भीम से कहो कि जिस लिये क्षत्राणियें सन्तान पैदा करती हैं वह समय आगया है अर्थात् युद्ध के लिये तय्यार हो जावें ।

"गत्वा धनञ्जयं ब्रूहि भीमसेनं वृकोदरम् ।
यदर्थं क्षत्रिया सूत, सैष कालोऽयमागतः ॥

ऐसे भारत में युद्ध के पश्चाद्भावि सङ्कट उपस्थित होना सदा सम्भव रहा है यहां ऐसी दशा में आर्य वैद्यों ने चिन्ता करके अल्प व्यय साध्य अनेक योग तय्यार किये जिसके सेवन से मनुष्य शतायु सुखपूर्वक पूर्ण कर सकता है ।

आज भी पाश्चात्य चिकित्सक विटामिन ईस्ट विटा और कैल्सियम की टिकिया बनाकर हमारे देश के बालकों को सबल बनाने के लिये भेज रहे हैं और बम्बई की सरकार इस की विद्यार्थियों में प्रचार भी कर रही है पर क्या हमारी देशी सरकार इस देश की आर्य विद्या द्वारा खोज कराने का यत्न कर रही है ? क्या यह पारतंत्र्य को मिटाने की मनोवृत्ति है ? पर क्या कहा जाय गुलामी चली गई पर गुलाम अभी गुम राह बना हुआ इस देश का संचालन कर रहा है ।

मैं आप के सन्मुख वे योग उपस्थित करना चाहता हूँ कि जिस के सेवन से मनुष्य शरीर को सबल रखकर स्वस्थ रह सकता है ।

आर्य वैद्यक के प्रवर्त्तकों ने मनुष्य को प्रधान चार प्रकृति में विभक्त किया है

(१) वात प्रकृति (२) पित्त प्रकृति और (३) श्लेष्म प्रकृति, इनके मिश्रित लक्षणों से (४) सम प्रकृति। मनुष्य अपना निर्णय करले या किसी विज्ञ वैद्य से अपनी प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करले। साधारण प्रकृति वाला पुरुष —

मुलेठी १० तोला, घृत १० तोला, मधु १० तोला, मिलाकर ३० मात्रा। ऐसी मात्रा एक वर्ष तक एक तोला के हिसाब से प्रातः सेवन करें, देखें कि शक्ति का कितना संचार होता है और जीवन शक्ति की कितनी वृद्धि होती है।

इसी प्रकार पित्त प्रकृति वाला गुडुची, आमलकी, गोखुरु छोटा, समान भाग ले चूर्ण बना घृत और मधु के साथ में ३ माशा की मात्रा सेवन करे।

वात प्रकृति वाला—उष्ण दुग्धऽ=, शक्कर १ तोला, पिप्पली चूर्ण २ रत्ती, मधु ६ माशा, घृत ३ माशा, मिला कर सेवन करे।

श्लेष्मा प्रकृति वाला पुरुष—चित्रक का चूर्ण १ माशा, आमलकी का चूर्ण २माशा, हरीतकी का चूर्ण ३ माशा, सैंधानमक यथा रुचि मिलाकर जल से रात्रि में सेवन करे, और अनुभव करे कि शरीर शक्ति की अभिवृद्धि किस प्रकार होती है। ऐसा वार्षिक कल्प करने से मनुष्य स्वस्थ और सबल रह सकता है।

क्या हमारे चिकित्सक इन कल्पों का प्रचार कर इस संकटावस्था में जनसमुदाय की सेवा करने का प्रयत्न करेंगे। ऐसे अनेक रसायनों के कल्प आयुर्वेद ग्रन्थों में सुरक्षित लिखे पड़े हैं पर राज्याश्रय के अभाव से इनका प्रचार करने की शक्ति दुर्बल वैद्य समाज में नहीं है। आशा है फूड मिनिस्ट्री इस तरफ ध्यान देगी।

३८ वें अ. भा. हिन्दी साहित्य सम्मेलन कोटा के अवसर पर 'विज्ञान परिषद' के अध्यक्षपद से दिये गए भाषण का एक अंश।

प्र० का० फोन नं० ५६३ स्थापित १८९२ तार—'इन्जेकशन' झांसी

देशमान्य—मिश्रा—आयुर्वेदिक इन्जेक्शन—भारतीय

द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेक्शन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेदिक इन्जेक्सन विज्ञान पुस्तक, षष्ठम् संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ॥=) नियमादि मुफ्त मंगायें।

सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २॥) पो० ।=)।

सर्वप्रथम आविष्कर्ता एवं एक मात्र निर्माता—

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू० पी०

क्या कभी द्वार बन्द थे ?

(ले—पं० नागेशदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, ऋषि चिकित्सालय, जालना)

सम्मेलन पत्रिका के दिसम्बर के अंक में, पं० ब्रह्मानंद जी त्रिपाठी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य का 'द्वार खोल दिया जावे' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। त्रिपाठीजी ने एलोपैथी के प्रमुख औषधों को आयुर्वेद में आत्मसात करने के लिये विचार व्यक्त किये हैं। इस उदारभावना को पुष्ट करने के लिये 'नानौषधिभूतं जगति किंचिद्द्रव्यमुपलभ्यते' चरक वाक्य को उद्धृत किया है। ऋषि हृदय सदैव समुदार रहा है भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने विमान स्थान में कहा है—

"न चैवं ह्यस्त्यायुर्वेदस्य पारं, तस्मादप्रमत्तः शश्वदभियोगमस्मिन् गच्छेत्, एतच्च कार्यम्, एवं भूयश्च वृत्त सौष्ठवमन सूयना परेभ्योऽप्यागमयितव्यं, कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चाबुद्धिमतामतश्चाभि समीक्ष्य। बुद्धिमताऽमित्रस्यापि धन्यं यशस्यमायुष्यं पौष्टिकं लौक्यमभ्युपदिशतो बचः श्रोतव्य मनुविधातव्यंचेति।" विज्ञान किसी की बपौति नहीं है, वह सर्वत्र से संग्रहणीय है। हम पहिले आटा हाथ से पीसते थे, कपड़ों के लिये हाथ से चर्खा चलाते थे, हाथ से सीते थे, बैलगाड़ी से यात्रा करते थे, आज हम गिरनी से आटा, मिल से कपड़े, मशीन से सीना, और साईकल, मोटर, रेल, हवाई जहाज़ से यात्रा करते हैं।

हम वैज्ञानिक यांत्रिक साधनों को अपनाएँ हैं, पर साध्य हमारे प्राचीन हैं। भारतवर्ष के उच्चकोटि के विद्वानों ने पचास वर्ष पूर्व से स्वातन्त्र्य आन्दोलन का प्रारंभ किया था, जिस युद्ध को जनता ने अपने बलिदानों से पवित्र बनाया, समय और परिस्थिति ने हमारा साथ दिया, तब कहीं हमें स्वतंत्रता प्राप्त हुई है। अभी केवल देश स्वतंत्र हुआ है, हमारी संस्कृति नहीं। भारत स्वतंत्र हुआ है भारतीयता नहीं। यदि वैद्य विद्वानों को सच्चे हृदय से आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप में स्वास्थ्य-स्वातंत्र्य देखने की अभिलाषा है तो कर्म क्षेत्र में आना पड़ेगा, त्याग और बलिदान करना होगा, तब कहीं कालान्तर में सिद्धि हस्तगत होगी। आयुर्वेद शास्त्र के सङ्ग स्वाध्याय करने की आवश्यकता है, सूत्रों को विस्तृत भाष्य रूप में समझने-समझाने की आवश्यकता है। आयुर्वेद अपूर्ण है, शारीर भ्रष्ट है आदि आत्म-क्रोशन मात्र से क्या होना है।

जितना आयुर्वेद साहित्य आज प्राप्त है क्या उसके सुयोजन की कोई व्यवस्था अभी तक हो सकी है ? आयुर्वेद शैली से संहिताओं के समस्त विषयों की सविधि शिक्षा देने की कहीं व्यवस्था है क्या ? आयुर्वेद वर्णित विविध प्रभाव शाली औषधों के पता लगाने का कोई प्रयत्न हो रहा है ? रोग चिकित्सा के एक२ अधिकारों में सैंकड़ों योगों का संग्रह है, क्या उन समस्त योगों की परीक्षा का कोई प्रयत्न हो रहा है ? जब ये क्रियाक्षेत्र सूने पड़े हैं, तब सबसे पहिले इन क्षेत्रों में कर्मठ विद्वानों के उतरने की आवश्यकता है। उसके बाद दिग्विजय कर रत्नों का संग्रह करना चाहिये। एलोपैथी में १७ एलीमेन्ट माने जाते हैं। आयुर्वेद में ६३ रस कल्पना आचार्यों ने मानी है। वैद्यों को इसका क्रियात्मक ज्ञान होना चाहिये । भेदश्चैषां त्रिषष्टिविध विकल्पो द्रव्य देश काल प्रभावाद्भवति।'

संयोगा सप्तपंचाशत, कल्पना तु त्रिषष्टिधा।
रसानां तत्र योग्यत्वात् कल्पिता रसचिन्तकैः ॥

शास्त्र में वर्णित सहस्रों योग हैं, पर उनके रस भेद तिरेसठ ही हैं, इस ज्ञान के सरल परिचय बनाने की आवश्यकता है। व्याधियाँ सैंकड़ों हैं, उनके नाम भी अत्यधिक हैं, पर दोषमान भेद से व्याधियाँ ६ २ ही हैं, और उतनी ही रहेंगी। इन आयुर्वेद के निश्चित सिद्धान्तों के प्रत्यक्ष करने की आवश्यकता है। यदि हम स्वशास्त्रीय अनुसंधान को पूर्ण कर लेते हैं, और हमें अर्वाचीन अनुसंधान से, अभाव में सहायता मिलती है, ऐसी स्थिति में ही हम आयुर्वेद साहित्य में एलोपैथी के कतिपय पदार्थों को संभव है, अनुकूल समझ सकें ? एलोपैथी ही नहीं विश्व की औषधियों का समावेश तत् तत् वर्गों में संग्रह करना ठीक समझें। आयुर्वेद शरीर की वृद्धि सजातीय सात्म्य द्रव्यों से ही हो सकती है। आयुर्वेद का तो सिद्धान्त है कि 'यस्मिन् देशे यदुत्पन्नः तज्जं तस्य औषधम्।' हमें आयुर्वेद सिद्धान्त के अनुकूल ही किसी वस्तु को अपनाना होगा। एलोपैथी की औषधियों के प्रति लोभ प्रकट करना आलस्य का चिन्ह है। एलोपैथी औषधियों में किनाइन अच्छी है, ६९३ एम० एण्ड बी० और सिबाजोल, पेन्सिलिन, और स्ट्रेप्टोमायोसिन अच्छी औषधियाँ हैं, इसलिये आयुर्वेद में अपना लिया जाय तो आयुर्वेद का समूल नाश हो जायेगा। आयुर्वेद प्राणज्ञ है, औषधियाँ प्राण विज्ञान के आधार पर प्रयुक्त होती हैं। एलोपैथी शरीरज्ञ है, केवल शरीर विज्ञान के आधार पर चिकित्सा कर्म होता है, एलोपैथी के सिद्धांत अस्थिर हैं, जिन औषधियों को एक बार उत्तम माना-जाता है, उन्हीं को कालान्तर में हानिकारक माना जाता है।

एलोपैथी में कुछ काल तक मलेरिया ज्वर में केलोमल का ३० ग्रेन तक प्रयोग होता था, जिस प्रमाण को आज हानिकारक माना जाता है। अब केलोमल का प्रयोग नहीं किया जाता, किनाइन का प्रयोग होता है। एक काल था सिबाज़ोल सिफलिस के के लिये उत्तम औषध माना जाता था, आज अमेरिकी मेडीकल कौंसिल उसे मानव शरीर के लिये महाविष घोषित करती है। अभी तक पेन्सिलिन के महागुण गाये जाते थे, अब स्ट्रेप्टोमायोसिन के पुल बांधे जाते हैं। इस प्रकार एलोपैथी विज्ञान के विद्वान् ही यथोत्तर स्वपूर्व विद्वानों का खण्डन करते हैं। एलोपैथी औषधि साहित्य नित्य परिवर्तनशील और अस्थिर है। यदि वैद्यगण इसे आपात-रमणीय और परिणाम दुःखद कहते हैं, तो क्या आश्चर्य है। आयुर्वेद में इन औषधों के समावेश करने में भारी कठिनाई है, उन औषधों के शोध का एक इतिहास है, उस अन्वेषण में कीटाणुवाद की मूलभूमि है। औषधों के अपनाने के साथ सारा वाद अपनाना होगा। त्रिदोषवाद धरा रह जायेगा। ऐसी स्थिति में आयुर्वेद एक स्वतन्त्र शास्त्र न रह कर विदेशी और एलोपैथी की पूँछ हो जायेगा।

एलोपैथी चिकित्सा में एक दोष यह है कि एक औषधि से रोग नष्ट होता है, उसी औषधि से उस बीमार के शरीर में एक विष पैदा होता है, जिस विषनाश का भी उपचार करना पड़ता है। आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति की यह विशेषता है कि—

या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिमुदीरयेत् ।
सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥

जो वैज्ञानिक साधन हमें चिकित्सा कर्म में सहायता पहुँचाते हैं, थर्मामीटर स्टेथिस्कोप तथा एक्सरे आदि को निःसंकोच व्यवहार करना चाहिये। इस दिशा में सोच समझ कर ही अग्रसर होना चाहिए। अनुकरण से कोई पनप नहीं सकता। स्वतन्त्र मौलिक प्रवृत्ति होनी चाहिये। उत्साही विद्वानों को क्रियात्मक शास्त्रीय अनुसंधान में संलग्न होना चाहिये। नहीं तो—

विषमप्यमृतं क्वचित् भवेदमृतं वा विषमीश्वनरेच्छया ।

नवीन औषध साहित्य का अपनाना, आयुर्वेद को मूर्छित करने के लिये विष का कार्य कर सकता है।

ज्ञान-विज्ञान

मृत व्यक्ति के हृदय के पुनः संचालन का प्रयत्न

फिलडेल्फिया के आपरेशन हाल में मृत व्यक्ति की हृदय गति पुनः संचालन करने के लिए सम्भवतः एक नवीन यांत्रिक हृदय का प्रयोग किया जाएगा। इस यन्त्र ने ७१ मिनट तक एक कुत्ते में रक्त-संचार किया। इससे कुत्ते का हृदय पुनः कार्य करने लगा और वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया। यदि इस यन्त्र का प्रयोग मनुष्य पर भी सफल रहा तो वक्षस् और फेफड़े की शल्य-चिकित्सा में एक नवीन युग का प्रारम्भ होगा।

एक आँख बन्द करने पर ही दिखाई देता है

लन्दन के एक गेरी फिटजराल्ड नामक व्यक्ति को दोनों आंख खुली रहने पर बिल्कुल दिखाई नहीं देता। देखने के लिए उसे अपनी एक आँख अवश्य बन्द करनी पड़ती है।

यह आश्चर्यजनक विकृति ४ वर्ष पूर्व की एक वायुयान दुर्घटना का परिणाम है। फिटजराल्ड का कथन है कि इस दुर्घटना में उसकी प्रत्येक अस्थि टूट गई थी। वह अब तक ३२ आपरेशन करा चुका है। अब वह ३३वाँ आपरेशन कराने वाला है जिससे वह आशा करता है कि उसका दृष्टि-दोष ठीक हो जायगा।

अपराधियों के सुधार के लिये मस्तिष्क का आपरेशन

न्यूयार्क के एक २५ वर्षीय अपराधी चारलस हिंकले के मस्तिष्क का एक विशेष आपरेशन इस आशा से किया गया है कि वह अपराधी न रह कर एक सच्चरित्र नागरिक बन जायेगा।

डाक्टरों ने उसकी खोपड़ी के दोनों ओर छेद कर मस्तिष्क के आगे के भाग को (Frontal Lobe) को शेष मस्तिष्क से पृथक् कर दिया।

इस सम्बन्ध में सिद्धांत यह है कि मस्तिष्क का अगला भाग (Frontal Lobe) उन भावनाओं का संचालन करता है जो साधारणतया अपराध कराने के लिये उत्तरदायी हैं। मस्तिष्क से इसके पृथक् कर दिये जाने पर सिद्धांतरूप से इन भावनाओं का मार्ग बन्द हो जायेगा।

पाठकों के पत्र

महासम्मेलन के लिये रचनात्मक सुझाव

श्रीमान् सम्पादक जी,

(१) सम्मेलन की कार्यसमिति एक उपसमिति साहित्य पारायण और प्रकाशन के लिये अविलम्ब नियुक्त करे; जो इस कार्य के लिये एक सुनिश्चित योजना निर्माण कर प्रकाशित करे और विद्वान् वैद्य लेखकों को उचित पुरस्कार पर साहित्य निर्माण के लिए आमन्त्रित करे तथा साहित्य प्रकाशन के लिए एक लिमिटेड कम्पनी की आयोजना निर्माण कर, वैद्यों को उसके हिस्से खरीदने को आमन्त्रित करे।

(२) एक उपसमिति सारे देश का भ्रमण कर आयुर्वेद विद्यालयों, उनके पाठ्य-क्रम, निर्माण शालाओं, चिकित्सालयों, पुस्तकालयों, अनुसन्धान शालाओं आदि का अवलोकन कर उनके उपादेयता और अनुपादेयता आदि की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करे तथा किस प्रकार वे सुसम्पन्न व उपादेय बन सकती हैं, इसके लिये अपने सुझाव व आयोजना प्रस्तुत करे।

(३) एक उपसमिति सारे देश में चिकित्सा व्यवसाय में प्रवृत्त वैद्यों, औषध निर्माण व विक्रय करने वाले छोटे-बड़े कारखानों, वनस्पति संग्रहकर्त्ता व विक्रेताओं और पेटेन्ट औषधि बिक्रेताओं के कार्य-कलाप का निरीक्षण कर, उनके उत्कृष्ठ निकृष्ठता की सूची तैयार करे, नकली द्रव्यों का प्रचलन कहाँ से किस रूप में होता है इसका अनुसन्धान करे तथा उनमें जो न्यूनतायें हैं उनके निवारण के उपायों सहित एक रिपोर्ट प्रस्तुत करे।

(४) सम्मेलन की कार्यसमिति देश की शिक्षा संस्थाओं तथा अनुसंधान शालाओं के संचालकों से सम्बन्ध स्थापित कर उनसे मद्रास की शिक्षा-संस्था का अनुसरण करने का आग्रह करे, कि वे भी अपने अन्तर्गत "आयुर्वेद-शिक्षा-पीठ" की स्थापना करें।

(५) सम्मेलन की कार्यसमिति देश में बेकार फिर रहे आयुर्वेद-शिक्षा प्राप्त वैद्यों की सूची तैयार करे और उनको काम पर लगाने के लिये ग्राम-पंचायतों को उत्साहित करे।

मेरे विचार में देशभक्त राज्य-मन्त्रियों पर अविश्वास करना व उनको बुरा भला कहना एक अशोभनीय कार्य है। यह रोका जाना चाहिए और स्वयं कुछ कार्य करके दिखाना ही अपने उपयुक्त आदरणीय स्थान प्राप्त करना सर्वोत्तम विधि है।

देहरादून। **सत्येश्वरानन्द**

शरणार्थी कविराजों का पुनर्वास

श्रीमान् सम्पादक जी,

पूर्वी बङ्गाल के शरणार्थी कविराज जो कलकत्ता या उसके समीप के क्षेत्रों में रह रहे हैं, उनकी दशा अत्यन्त दयनीय है। उनमें से अधिकतर काम काज के अभाव में अपनी आजीविका उत्पादन भी नहीं कर सकते। दूसरी ओर देश के अनेक भागों में चिकित्सा सम्बन्धी सहायता के अभाव में रोग-शोक का आतंक छाया हुआ है।

यदि इन विस्थापित कविराजों को उचित प्रकार से फिर बसाया जाए तो वह समाज के लिए लाभदायक सिद्ध होने के साथ-साथ अपनी आजीविका उत्पादन भी कर सकेंगे। कविराजों को पुनःसंस्थापन विभाग से कर्ज लेने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। क्योंकि उनमें से अधिकांश को यह विभाग चिकित्सक के रूप में स्वीकार ही नहीं करता।

ऐसे कठिन समय में यदि इन कविराजों की सहायता न की जा सकी और ये अपने सम-व्यवसाइयों की सहायता से वंचित रहे तो भविष्य में कोई बुद्धिमान् व्यक्ति आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने को प्रस्तुत नहीं होगा।

प्रान्तों में सहकारी आयुर्वेदिक धर्मार्थ संस्थाओं की स्थापना कर इन विस्थापितों को कार्य पर लगाया जा सकता है। इन संस्थाओं के कार्य जनता में स्वस्थवृत्त का प्रचार, कविराजों की प्रशिक्षा, ग्रामीण धमार्थ औषधालयों के लिए द्रव्यगुणशास्त्र तथा औषधियों का निर्माण, आयुर्वेद के योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति, धर्मार्थ औषधालयों तथा अनुसंधान शालाओं के लिए सहायता का अयोजन, द्रव्य संग्रहालयों की स्थापना आदि होंगे।

संस्था के कोष का निर्माण शेयर बिक्री, सदस्यता शुल्क, तथा जनता, स्थानिक संस्थाओं और सरकार से प्राप्त सहायता तथा दान से होगा।

इस प्रकार की संस्थाओं की स्थापना द्वारा जहां विस्थापित कविराजों को कार्य पर लगाया जा सकेगा वहाँ इनसे आयुर्वेद का प्रचार भी हो सकेगा।

आशा है आयुर्वेद प्रेमी जनता, सरकार तथा आयुर्वेद संस्थाएँ इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगी।

बागेरहाट (पू० पाकिस्तान)। कालीदास चटोपाध्याय

प्रान्तीय समाचार

दिल्ली में आयुर्वेदिक व यूनानी बोर्ड का निर्माण

चीफ कमिश्नर दिल्ली ने निम्न सज्जनों को बोर्ड का सदस्य २ वर्ष के लिए नियुक्त किया है। श्री बरकतनारायण, डाइरेक्टर हैल्थ सर्विसिज़ दिल्ली (प्रधान), डा० बी० एम० शर्मा, प्रिंसिपल तिब्बिया कालेज दिल्ली, श्री वैद्य वैद्यनाथ सरकार, श्री वैद्यरत्न परमानन्द, इन्सपैक्टर म्युनिसिपल आयुर्वेदिक डिस्पैन्सरीज़, हकीम बी० एन० शर्मा, श्री रतनलाल शारदा, श्री धर्मपाल सेठ, हकीम अब्दुलहमीद, मालिक हमदर्द दवाखाना, हकीम खलिलुल रहमान, म्युनिसिपल कमिश्नर और डा० खूबराम जाजोरिया।

कविराज आशुतोष मजुमदार चार वर्ष के लिए बोर्ड के रजिस्ट्रार नियुक्त हुए हैं।

इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा दिल्ली के वार्षिक चुनाव में श्री उपेन्द्रनाथ दास प्रधान, श्री ओंकारप्रसाद, श्री केशवप्रसाद आत्रेय, श्री नारायणदत्त—उपप्रधान, श्री जगदीश प्रसाद, श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, श्री श्रीपति – मन्त्री चुने गये हैं। चुनाव से पूर्व श्री रामगोपाल शास्त्री का यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ कि इस वर्ष सभा के नवीन अधिकारी आयुर्वेद विश्वविद्यालय के लिये ५००००) (पचास हज़ार) रु० एकत्रित करने के लिए भरसक प्रयत्न करेंगे।

विद्यापीठ के स्नातकों को मान्यता—पंजाब आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी बोर्ड ने निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ नई दिल्ली के स्नातकों को रजिस्ट्रेशन के लिए मान्यता प्रदान की है। बोर्ड ने यह भी निर्णय किया है कि पंजाब से बाहर प्रेक्टिस करने वाले वैद्य-हकीम भी रजिस्टर किये जा सकेंगे। इस सम्बन्ध में प्रार्थना-पत्र भेजने की अन्तिम तिथि १५ मार्च १९५१ है।

आसाम आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थापना—आसाम प्रान्त के वैद्यों की एक सभा श्री धर्नेनाथ तर्कतीर्थ के सभापतित्व में हुई। इसमें नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की शाखारूप आसाम आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थापना का निश्चय किया गया।

❀ पंजाब प्रान्तीय वैद्य मण्डल के वार्षिक चुनाव में श्री पं० हरिदत्त शास्त्री प्रधान, पं० प्रकाशनाथ तिवारी, प्रधान मन्त्री, पं० अमरनाथ, मंत्री तथा श्री कुन्दनलाल, प्रचार मन्त्री चुने गये।

महाकोशल आयुर्वेद कांग्रेस का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन नरसिंहपुर में पं० शिवनाथ जी शास्त्री भिषगाचार्य धन्वन्तरि के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ हुआ। इसका उद्घाटन मध्यप्रदेशीय आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा बोर्ड के सभापति प्राणाचार्य पं० सुन्दरलाल जी शुक्ल ने किया। प्रांत के विभिन्न जिलों से करीब छै सौ प्रतिनिधि उपस्थित थे। अध्यक्ष महोदय ने अपने भाषण में कहा कि योग्यता, बल और संगठन को ही अपनी आशाओं का आधार बनाना चाहिये न कि राजनैतिक परिवर्तनों को। अधिकार तो पानी के किनारे की शैवाल (काई) है। न जाने उस पर से मनुष्य कब फिसल पड़े। सरकार की ओर टकटकी लगाने की अपेक्षा अपनी संस्था को दृढ बनाने में ही कल्याण है। पारस्परिक विवादों का अन्त कीजिये। अपने प्रति और वैद्य समाज के प्रति सच्चा व्यवहार रखिये और संम्मेलन की, तन मन धन से सहायता करके इसे इतनी बड़ी शक्ति बनाइये कि यह विनाशकारी भावों को स्वयं ही कुचल डाले।

पं० रमेशचन्द्र मिश्र शास्त्री ए० एम० एस० के सभापतित्व में समन्वय-परिषद् की बैठक हुई, जिसमें श्री मिश्र ने बताया कि भारतीय संस्कृति का इतिहास ही समन्वय का इतिहास है। हमने शिल्प, संगीत कला आदि में अपनी संस्कृति के मूलाधार पर समन्वय किया है इसी प्रकार हमें आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त त्रिदोष के आधार पर ही चिकित्सा-प्रणालियों का समन्वय करना है। परन्तु यह काम आयुर्वेदज्ञों का ही है कि वे आयुर्वेद को वैज्ञानिक सिद्ध कर जगत को त्रिदोष सिद्धान्त समझावें। और संसार की सबसे प्राचीन चिकित्सा-प्रणाली का मानव जाति के कल्याणार्थ प्रचार करें। समन्वय परिषद् में आगे अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद कांग्रेस के महामन्त्री श्री गुरुदत्तजी ने कहा कि सरकार ने आयुर्वेद के लिये एक शिक्षा की प्रणाली निर्धारित कर दी है वह समन्वय को दृष्टिकोण में रखकर की है; परन्तु हम यदि संगठित हैं तो मिलकर यह कर सकते हैं कि उस शिक्षा प्रणाली का पाठ्य-क्रम कैसा हो? जिससे आयुर्वेद के आधार पर समन्वय हो सके। सम्मेलन के खुले अधिवेशन में प्रान्तीय सरकार से अनुरोध किया गया कि वह रजिस्ट्रेशन की अवधि और बढ़ाये तथा चिकित्सा अभ्यास का कार्यकाल दस वर्ष से घटाकर पाँच वर्ष करदे, क्योंकि प्रान्त के कई योग्य चिकित्सक इस कारण अभी तक रजिस्टर्ड नहीं हो सके हैं। दूसरे प्रस्ताव में नि० भा० आ० महासम्मेलन से संबद्ध होने का निश्चय किया गया एवं इस विषय में समस्त कार्य करने का अधिकार भी रामसेवक जी शुक्ल को दिया। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल व डा० बारलिंगे के सन्देश पढ़कर सुनाए गए।

निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, नई देहली।

महासम्मेलन कार्यकारिणी एवं स्थायीसमिति तथा विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के सम्मिलिताधिवेशन का कार्यविवरण

स्थानः—आर्य समाज मन्दिर, बाज़ार सीता राम, देहली।

समयः—ता० २८ जनवरी १९५१, दिन रविवार, २ बजे अपराह्न से।

उपस्थितिः—सर्वश्री वैद्य ओङ्कार प्रसाद शर्मा (देहली), हरिदत्त शास्त्री (जालन्धर), शिवशर्मा द्विवेदी (अजमेर), दयानिधि (मेरठ), सरोजनी देवी (मेरठ), रामप्यारे अवस्थी (कानपुर), मुन्शीराम शर्मा (भटिण्डा), चन्द्र मणिप्रसाद पाण्डे (रीवां), रामस्वरूप (पटियाला), केशोराम वैद्यशास्त्री (पटियाला), बन्तराम शर्मा (पटियाला), धनानन्द पन्त (देहली), मनोहर लाल (देहली), कृष्ण गोपाल भारद्वाज (कोटा), आशुतोष मजुमदार (देहली), स्वामी चेतनानन्द (देहली), कविराज खज़ान चन्द (देहली), बाबूराम मिश्र (हापुड़), वद्री विशाल त्रिपाठी (कानपुर), धमेन्द्र नाथ (देहली), वैद्य चन्द्रकान्त दीक्षित (देहली), सत्यपाल (नई देहली), राम गोपाल शास्त्री (देहली), पुरुषोत्तम देव मुलतानी (नई देहली), दयानन्द राजपाल (नई देहली), गणेशदत्त वैद्य (मेरठ), यदुगोपाल गोस्वामी (देहली), कान्तिनारायण मिश्र (पटियाला), कुन्दनलाल खेतल (फरीदकोट), जगदीश प्रसाद शर्मा (देहली), बन्सरीलाल साहनी (देहली), रामजीदास शर्मा (पटियाला), ब्रह्मानन्द शर्मा (भटिण्डा), मस्तराम शर्मा कौशल (पटियाला), रामस्वरूप शर्मा (पटियाला), राधाकृष्ण (पटियाला), साधुराम वैद्य (पटियाला), रामस्वरूप शास्त्री (पटियाला), मामचन्द वत्स रामरूप (जीन्द), किशोरी लाल शर्मा (बरनाला), बाबूराम शर्मा (बरनाला), राम गोपाल (पटियाला), भुवन चन्द्र (देहली), श्रीपति शर्मा (देहली), प्रेमचन्द शास्त्री (देहली), रामचन्द्र शर्मा (देहली), नारायण सिंह (भटिण्डा), राजाराम वैद्य (मौड़ मंडी), मोहन लाल शास्त्री (देहली), रामप्रताप अग्रवाल (देहली), वैद्य हरबंश लाल (पटियाला), साधुराम शर्मा (पटियाला), ब्रह्मस्वरूप (देहली), महेशदत्त शर्मा (सरहिन्द), हरिदास वैद्य (धनौला), हरिकृष्ण वत्स (देहली), हरिश्चन्द्र (देहली), भारत भूषण (हिसार), कविराज देशराज (देहली), केशव प्रसाद आत्रेय (देहली), जयरामदास स्वामी (जयपुर), परमानन्द वैद्य (देहली), सुरेन्द्र

मोहन (देहली), शान्ति प्रसाद जैन (देहली), रामलाल (नई देहली), लक्ष्मीनारायण मिश्र (मेरठ), रामदयालु शर्मा (जयपुर), ओंमप्रकाश (देहली), योगिरामनाथ (देहली), मखन सिंह (देहली), भौरीलाल चानना (देहली), नित्यानन्द (देहली), नाथूराम बलराम वैद्य (देहली), ठाकुरदत्त शर्मा (देहरादून), नानक चन्द (देहली), मेलाराम (देहली), गोविन्द सहाय दत्त वैद्य (देहली),

१—गताधिवेशन का कार्य विवरण पढ़ा गया और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

२—माननीय श्री सरदार बल्लभ भाई पटेल तथा वैद्यराज श्री पं० काली चरण जी, भूतपूर्व उप सभापति, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, के असामयिक देहावसान पर शोक सहानुभूति का प्रस्ताव सब ने खड़े होकर स्वीकार किया तथा २ मिनट के लिए दिवंगत आत्माओं की पुण्य स्मृति में मौन धारण किया।

३—सदस्यता एवं सम्बद्धता निम्न प्रकार स्वीकार हुई:—

(क) प्रान्तीय सम्मेलन सम्बद्धता

१. सौराष्ट्र वैद्य सभा, राजकोट। २. आसाम आयुर्वेद महासम्मेलन, गोहाटी। ३. पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन, जालन्धर। ४ विन्ध्य प्रदेश आयुर्वेद प्रचारिणी सभा, रीवां। ५. पटियाला राज्य संघ वैद्य मण्डल, सरहिन्द। ६. बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, पटना।

(ख) साधारण सम्बद्धता

१. जिला वैद्य सभा, बरेली। २. जिला वैद्य सभा, विलासपुर। ३. वैद्य सभा, जम्मू। वैद्य परिषद्, चांपा। ५. ज़िला वैद्य सभा, मथुरा। ६. वैद्यमण्डल, बड़ौदा। ७. धन्वन्तरि आयुर्वेद सभा, अजमेर। ८. बम्बई वैद्य सभा, बम्बई।

(ग) आजीवन सदस्य

सर्व श्री वैद्य पं० रामचन्द्र शर्मा अलीगढ़, स्वामी कृष्णानन्द कालेड़ा-बोगला, युगल किशोर त्रिपाठी तिमरनी, जनार्दन शर्मा रायगढ़, चिरंजी लाल संगरूर, हुकम चन्द सुनाम, सन्त सेवादास सुनाम, चानन राम लहरा गागामण्डी, जगत सिंह केशरी धुरी, किशोरी लाल शर्मा बरनाला, बाबूराम शर्मा बरनाला, पं० हरिकृष्ण सिंह ऊगो तपामण्डी, गोवर्धन दास शर्मा तपा, पं० साधु राम शर्मा तपा, महन्त बूटीदास वैद्य निरंकारी महल कलां, बिहारी लाल शर्मा मलूका (भटिण्डा), सन्त राम शर्मा बरनाला, पं० राधाकृष्ण शर्मा मौढ़िल कुरुड़ (बरनाला), पं० शालिग राम शर्मा उप्पली (बरनाला), सरदार हरनामसिंह बरनाला, गुरमुख सिंह बरनाला, महन्त जयसिंह शास्त्री कट्टू (बरनाला), ठाकुर नाथूसिंह कैसर हिन्द कालेड़ा-बोगला, पं० ब्रह्मानन्द शर्मा भटिण्डा, सरदार नारायण सिंह भाटी मण्डी·डबवाली

(हिसार), राम दयाल मंडी डबवाली (हिसार), हंसराज जैतो (पैप्सु), विश्वेश्वर नाथ सुनाम, प्रकाश चन्द्र शर्मा लहरा गागा मण्डी, राम स्वरूप शर्मा लोंगोवाल (संगरूर), बनारसी दास शर्मा लहरा गागा मण्डी, बिहारी लाल शर्मा बडुखां (संगरूर), मित्रसिंह महन्त चीमां (सुनाम), रामजी दास मूलोवाल (बरनाला), स्वामी ईश्वरानन्द बटालिया, राम स्वरूप मीमंसा, पं० लक्ष्मण दास धनौरी कलां (बरनाला), बचन राम धुरी, पं० चेतराम जी मूलोवाल (बरनाला), पं० मोती राम कामी खुर्द (पटियाला), हरी दास धनौला (बरनाला), पंचम दास उदासीन खुड्डी-कलां (अम्बाला), पं० शान्ती स्वरूप मिश्र कुन्डा (म० प्रा०), दुर्गादत्त शर्मा जालन्धर, केशवानन्द दुग्गा धनौला, चिरंजीलाल दुग्गा संगरूर, नवीनचन्द्र भारद्वाज जगराओं, विरंचीलाल शर्मा इस्लामपुर, राम प्यारे अवस्थी कानपुर, पं० देवराज शर्मा तपा (बरनाला), पं० आनन्द कुमार शर्मा तपा, बाबा जयराम दास बड़ागांव (राज), आचार्य नित्यानन्द सारस्वत पिलानी, प्रकाश नाथ तिवाड़ी जालन्धर, बाबूराम सरहिन्द, दिलीप चन्द आयुर्वेदालंकार सरहिन्द, विष्णु दत्त शर्मा मेरठ, शंकरदत्त शर्मा मेरठ, कुसुदेश कुमार मेरठ, महाराव बृजेन्द्र विक्रमसिंह मेरठ, जगदीश लाल हिसार, बनारसी दत्त शर्मा हिसार, पशुपतिनाथ मेरठ, सत्य नारयण मिश्र कानपुर, कृष्णानन्द सुद्गल मेरठ, आचार्य ओंकारनाथ शर्मा सरदार शहर, वैद्या सरोजनी देवी मेरठ, हरनाथ त्रिपाठी कानपुर, शिरोमणि सिंह गौतम निरहना रोड, श्री लाल जैन हिसार, रामप्रताप सरहिन्द, प्रभाकर मिश्र हापुड़, हरचरण सिंह संघोल ।

(घ) पुरुषार्थी आजीवन सदस्य

सर्व श्री वैद्य जोगेन्द्र सिंह फगवारा, वैद्या कृष्णाकुमारी झांसी, मदन लाल संगरूर, मनोहर लाल संगरूर, हरिश्चन्द्र संगरूर, रत्नचन्द बुडरवां (संगरूर), मामचन्द वत्स रामराय (जींद), हरिप्रकाश धुरी, माधवराम आहूजा बम्बई, रामदास देहली, भुवनचन्द्र संगरूर, हरगोविन्द शर्मा देहली, सन्तसिंह जालन्धर, प्राणनाथ पुष्करना अमृतसर, रन्नगराम लखनपाल जालन्धर, हरवंश लाल चोपड़ा जालन्धर, मखनसिंह देहली, नानकचन्द शर्मा देहली, शम्भूनाथ देहली, गौरीलाल चानना देहली, रामनाथ योगी देहली, नरदेव ओझा अमृतसर, बंसीलाल साहनी देहली, बलदेव सहाय जालन्धर, भीमसैन कानपुर कैन्ट, ब्रह्मस्वरूप चावला देहली, श्रीमती भगवती देवी जालन्धर, रामस्वरूप पटियाला ।

(ङ) मान्य सदस्य

सदस्य जिनका शुल्क ता० २८. १. ५१ तक प्राप्त हो गया है।

(च) अजमेर राज्य वैद्य सम्मेलन की सम्बद्धता के विषय में निर्णय करने का अधिकार

निम्नलिखित महानुभावों द्वारा निर्मित समिति को दिया गया:—

१. वैद्य श्री ओङ्कार प्रसाद शर्मा (देहली), २. वैद्य श्री स्वामी चेतनानन्द जी (देहली), ३. वैद्य श्री हरिदत्त जी (जालन्धर), ४. श्री स्वामी मंगल दास जी (जयपुर), ५. श्री गुरुदत्त जी प्रधानमन्त्री ।

४—निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ के स्थानिक संघों के ता० १ अक्तूबर १९५० के सम्मिलिताधिवेशन का निम्नलिखित कार्यविवरण पढ़ा गया तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ ।

उपस्थितिः—सर्वश्री घनानन्द पंत, नानक चन्द, शान्ति प्रसाद जैन, रामचन्द्र शर्मा, स्वामी चेतनानन्द, आशुतोष मजुमदार, राम गोपाल शास्त्री (विद्यापीठ मंत्री), गुरुदत्त (प्रधानमंत्री) ।

अन्य सदस्य महानुभावों की प्रतीक्षा करके साढ़े आठ बजे सायं वैद्य श्री घनानंद पंत की अध्यक्षता में कार्य प्रारम्भ हुआ ।

१. श्री शंकरदा जी शास्त्री पदे स्मारक कोष के १०,०००) रु० फिक्स्ड डिपाजिट अथवा कैश सार्टिफिकेट्स में जमा करवाने के विषय में श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल के पत्र पर विचार हुआ । निश्चय हुआ कि ५०००) रु० युनाईटेड कमर्शल बैंक लि० तथा ५०००) रु० सैन्ट्रल बैंक आफ इंडिया लि० में फिक्स्ड डिपाजिट अथवा कैश सार्टिफिकेट्स जिसमें व्याज अधिक मिले, में जमा करवा दिये जायँ ।

निश्चय हुआ कि उक्त एकाउन्ट्स को खोलने तथा चालू रखने का अधिकार श्री शंकरदाजी शास्त्री पदे स्मारक कोष के वर्तमान बैंक खाते के आप्रेटर्ज़, श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, श्री गुरुदत्त (प्रधानमंत्री) तथा श्री पं० रामगोपाल शास्त्री (विद्यापीठ मंत्री), को रहे तथा उनमें से कोई दो महानुभाव एक साथ हस्ताक्षर करके एकाउन्ट्स चालू रख सकेंगे ।

२. नेशनल मेडिकल ग्रेजुयेट्स् एसोशियेशन की ओर महासम्मेलन की नीति का विषय उपस्थित हुआ । श्री प्रधान मंत्री जी ने अपने वक्तव्य द्वारा इस पर प्रकाश डाला, निश्चय हुआ कि अभी इस विषय को स्थगित रखा जाय ।

३. श्री मोद प्रकाश शर्मा की कार्यालय में अस्थाई नियुक्ति स्वीकृत हुई तथा भत्ते आदि मिलाकर उनका कुल वेतन १००) मासिक निश्चित हुआ ।

४. श्री पं घनानन्द जी पंत के प्रस्ताव पर तथा वैद्य श्री शान्ति प्रसाद जैन के अनुमोदन पर कार्यालय मंत्री श्री तिलक राम शर्मा का मूलवेतन १ नवंबर १९५० से २४०) रु० मासिक सर्वसम्मति से निश्चित हुआ ।

४. श्री पं रामगोपाल जी शास्त्री के प्रस्ताव पर तथा श्री पं नानक चंद जी के अनुमोदन पर सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि श्री भवानी शंकर शर्मा को १ नवंबर १९५० से विशेष रूप में १०) रु० मासिक वेतन वृद्धि दी जावे।

५. निम्नलिखित महानुभावों की ओर से सम्मतिपत्र प्राप्त हुए:—

वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य (बंबई), सर्व श्री वैद्य हरिश्चन्द्र जी (संगरूर), वेद व्यास शर्मा (जालन्धर), युगल किशोर (टिमरनी), स्वामी हरिप्रकाश (पटियाला), ईलम सिंह (अमृतसर), खण्ड परशु छत्र सिंह (बड़ौदा), दीन दयालु तिवारी (नागपुर), वामन राव दीनानाथ (बंबई), राम स्वरूप चक्रवर्ती (बरगढ़, सम्मसपुर), सुखराम प्रसाद (कदमकुआं पटना), कालिदास चट्टोपाध्याय (कलकत्ता), सोमदेव शर्मा (लखनऊ), शम्भू नाथ पाण्डेय (कानपुर), राम दयालु त्रिपाठी (हरदा), सूर्यकान्त शर्मा (भगवतगढ़), बिहारी लाल (संगरूर), त्रिकम लाल जे० रावल (बम्बई), विद्या विलास शुक्ल (नागपुर), शिवजी जेठा भाई शाह (माण्डवी कच्छ), वंशीधर मोहन लाल (सरवाड़), अमर दत्त (केकड़ी, अजमेर), लाल मणि मिश्र शास्त्री (हमीरपुर), विश्व नाथ द्विवेदी (पीलीभीत), माधव प्रसाद (रतलाम), चुन्नी लाल (बड़ौदा), महाशंकर जी (कच्छ भुज), डी. के. भारद्वाज (बसवन गुडी), नारायण लाल तिवारी (मथुरा), प्रभुदत्त (सीकर), रामवीर सिंह (जालन्धर), किशोरी मोहन दास (कलकत्ता), भुवन चन्द (संगरूर), स्वामी मंगलदास (जयपुर), राधा वल्लभ (सतना), शिव शंकर पाण्डेय (सागर), बालकृष्ण (बुरहानपुर), नाथु राम किशन दास (बुरहानपुर), मनोहर लाल (संगरूर), घासी राम गणपत राम (देवास)।

६. तृतीय स्वास्थ्य-सचिव सम्मेलन के प्रस्तावों पर महासम्मेलन की नीति-निर्धारण का विषय उपस्थित हुआ तथा निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ :—

“निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायीसमिति का यह अधिवेशन ता० २ सितम्बर, १९५० के गत स्वास्थ्य-सचिव सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों का सन्तोष एवं सन्देह के संयुक्त भावों से स्वागत करता है। सन्तोष इस बात पर है कि स्वास्थ्य-सचिवों ने केन्द्रीय तथा राज्यों की सरकारों से आयुर्वेदीय शिक्षा एवं अनुसन्धान को प्रोत्साहित करने तथा इसका जन-स्वास्थ्य सेवा में उपयोग करने की सिफारिश की है। खेद इस लिये है कि स्वास्थ्य-सचिवों ने अपने विचार्य-विषयों की मर्यादा का उलंघन करके आयुर्वेदीय शिक्षा पाठ्य-क्रम के विवरण पर कुछ विचार प्रकट किये हैं। आयुर्वेद महासम्मेलन का दृढ़ मत है कि उक्त सम्मेलन आयुर्वेद शिक्षा सम्बन्धी विषयों के ब्योरा पर सम्मति देने में समर्थ नहीं था। ऐसे वैज्ञानिक विषयों की

शिक्षण-पद्धति पर सम्मति देना आयुर्वेदीय विज्ञान के प्रौढ़ विद्वानों का कार्य है न कि एक सम्मेलन में एकत्रित हुए स्वाथ्य-सचिवों का।"

"उक्त सम्मेलन ने सरकारों को जो आयुर्वेदीय विद्यार्थियों की मौलिक शिक्षा के सम्बन्ध में विचार-विमर्श दिया है यह भी अपने अधिकार एवं समर्थता की सीमा का उलंघन किया है।"

"नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन केन्द्रीय तथा राज्यों की सरकारों से अनुरोध करता है कि वह अविलम्ब ही अपने आधीन आयुर्वेदीय विद्वानों की अध्यक्षता में पृथक् आयुर्वेदीय विभाग (डाइरेक्टरेट) स्थापित करें। उक्त आयुर्वेदीय विभागों का यह कर्त्तव्य होगा कि वे आयुर्वेदीय शिक्षण, आयुर्वेदानुसन्धान एवं इसकी जन-स्वास्थ्य सेवा में पूर्ण उपयोगिता के विषयों पर नीति का निर्धारण करें तथा तत्सम्बन्धी योजनायें बनायें ताकि आयुर्वेद का वास्तविक उत्थान ठीक शास्त्रीय ढंग से हो सके तथा इसका अधिकाधिक उपयोग जनता की सेवा के लिये हो सके।"

७. निखिल भारतीय आयुर्वेद शास्त्रचर्चा परिषद् के आयोजन के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ :—

"निखल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति का यह अधिवेशन वैद्यराज श्री पं० रामनारायण जी शर्मा, अध्यक्ष श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, लिमिटिड, को उनके आयुर्वेद शास्त्रचर्चा परिषद्, जो कि ता० २४ से ३१ दिसम्बर १९५० तक पटना में सम्पन्न हुई, के सम्पूर्ण कार्यभार को वहन करने के लिए हार्दिक धन्यवाद देता है तथा आयुर्वेद की ठीक प्रकार उन्नति के लिए उनकी सेवाओं की सराहना करता है।"

८. सन् १९४९–५० के महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के आय-व्यय तथा सन्तुलन-पत्र विचारार्थ उपस्थित हुए तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। उक्त पत्र पत्रिका के अंत में संलग्न हैं।

३१वें नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, लखनऊ, की स्वागतसमिति से प्राप्त ६१) के विषय में निश्चय हुआ कि उक्त रुपये की प्राप्ति के लिये उक्त स्वागतसमिति के अधिकारियों को तथा उत्तर प्रदेशीय वैद्यसम्मेलन को पत्र लिखे जावें और यदि रुपया प्राप्त न हो तो इसे बट्टे खाते में डाल दिया जावे।

९. (क) सन् १९५०–५१ के लिए महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के प्रस्तावित आनुमानिक आय-व्यय पत्र मद वार पढ़े गए तथा सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

(देखिये पत्रिका के अन्तिम दो पृष्ठ)

(ख) आयुर्वेद महासम्मेलन प्रकाशन लिमिटिड की स्थापना के लिए मूल व्यय १०,२०००) रुपये स्वीकार हुए।

(ग) कार्यालय के लिए स्थायी सामग्री खरीदने के लिए १३२०) रु० का आनुमानिक व्यय स्वीकार हुआ।

१० ३८वें निखल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का विषय उपस्थित हुआ तथा निश्चय हुआ कि इसे अभी स्थगित रक्खा जाय।

११ निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की नियमावली में उपस्थित किए गए संशोधनों पर क्रमशः विचार हुआ। विशेष-विशेष संशोधन इसी कार्यवाही के अन्त में पृथक् प्रकाशित हैं। यह भी निश्चय हुआ कि इन संशोधनों से सुसंस्कृत नियमावली आज की तिथि से २ मास पश्चात् लागू हो जावे तथा इसके अनुसार प्रथम निर्वाचन आगामी वार्षिक अधिवेशन के पश्चात् होने वाली स्थायी समिति की पहली बैठक में हो।

१२. निश्चय हुआ कि सन् १९५१ वर्षीय परीक्षाओं के लिए बरनाला तथा रीवां केन्द्र स्थापित किये जायें।

१३. निश्चय हुआ कि विद्यापीठ सम्बद्ध संस्थाओं की सम्बद्धता शुल्क १५) रु० वार्षिक कर दिया जावे।

१४. निश्चय हुआ कि महासम्मेलन-विद्यापीठ के कर्मचारियों के लाभार्थ निखिल भारतीय आयुर्वेदीय महासम्मेलन विद्यापीठ कर्मचारी रक्षा कोष (Provident Fund) स्थापित किया जाय तथा उसके लिये आनुमानिक व्यय पत्र में आवश्यक व्यय का समावेश कर लिया जाय।

१५. निश्चय हुआ कि श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय ट्रस्ट को महासम्मेलन के तत्वावधान में लेने के लिए महासम्मेलन की ओर से श्री गुरुदत्त जी प्रधान मन्त्री तथा श्री रामगोपाल जी शास्त्री विद्यापीठ मन्त्री एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर करेंगे।

सभापति का धन्यवाद करके रात्रि को ९-४५ बजे सभा विसर्जित हुई।

वैद्य ओंकारप्रसाद
प्रधान

गुरुदत्त
प्रधान मन्त्री

नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठनवीननियमावलि संशोधनम्

नि० भा० आयुर्वेदविद्यापीठस्य नवीननियमावलिषष्ठमे पृष्ठे मुद्रितासु सम्मानित-संस्थासु श्री बनवारीलाल आयुर्वेदविद्यालय, इत्यस्य नाम मुद्रितं न जातम्। अतः तस्य स्पष्टीकरणार्थं-संशोधनं प्रदीयते यदुक्त विद्यालयोऽपि तासु सम्मानितसंस्थास्वेव ज्ञेयः।

रामगोपाल शास्त्री
विद्यापीठ मन्त्री,

महासम्मेलन की नियमावली में आवश्यक संशोधन

१. प्रतिनिधि शुल्क ७) रु० वार्षिक, मान्य सदस्यता शुल्क १०) रु० वार्षिक, आजीवन सदस्यता शुल्क १००) रु० एक कालिक, आश्रयदाता सदस्यता शुल्क २००) रु० एक कालिक, संरक्षक सदस्यता शुल्क ५००) एक कालिक।

२. सम्बद्ध संस्थायें केवल राज्य-सम्मेलन ही हो सकेंगे।

३. वार्षिक अधिवेशन में कोई भी वैद्य ५) रु० प्रतिनिधि शुल्क देकर प्रतिनिधि सदस्य बन सकते हैं। परन्तु उन्हें अपने वैद्य होने का प्रमाण-पत्र अपनी वैद्य-सभा से लाना होगा।

४. महासम्मेलन के पदाधिकारियों का निर्वाचन माघ मास की स्थायी समिति में हुआ करेगा।

५. महासम्मेलन ने सभापति का चुनाव राज्य-सम्मेलन की कार्य-कारिणी से ५ नाम प्रस्तावित कराने के पश्चात् मत पत्रों द्वारा होगा।

६. संशोधित नियमावली २ मास पश्चात् (२८ मार्च १९५१) से लागू होगी। संशोधित नियमावली छपने पर सूचना दी जावेगी।

विशेष सूचना

संशोधित नियमावली २८ मार्च १९५१ से लागू होगी। उक्त तारीख से पूर्व जो महानुभाव सदस्य बन जायंगे उनसे ५) रु० ही सदस्यता शुल्क लिया जाएगा। इसके बाद सदस्य बनने वाले महानुभावों को १० रु०) सदस्यता शुल्क देना होगा।

प्रधानमन्त्री

साहित्य सत्कार

[समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी आवश्यक हैं]

रसतन्त्र सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (प्रथम खण्ड षष्ठ संस्करण)—प्रकाशक—ठा० नाथूसिंह वर्मा, कालेड़ा बोगला (अजमेर)। मूल्य अजिल्द ७), पृष्ठ संख्या ७५८।

प्रस्तुत पुस्तक का षष्ठ संस्करण प्रकाशित होना ही इसकी उपयोगिता का सूचक है। श्री स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज पिछले कई वर्षों से एक ग्राम को केन्द्र बना कर आयुर्वेद की जो ठोस सेवा कर रहे हैं, वैद्य समाज उससे सुपरिचित ही है। इस पुस्तक का सम्पादन श्री स्वामीजी ने ही किया है। इस सम्बन्ध में भूमिका में श्री गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी लिखते हैं कि,

"आज तक कई छोटे बड़े संग्रह देखने में आए हैं। वैद्यक विषय की कई बातें ऐसी हैं कि जिनका एक ग्रंथ में संग्रहीत रहना नितांत आवश्यक है। परन्तु ऐसा देखने में नहीं आया। यदि सच कहा जाए तो इस बड़ी भारी कमी की पूर्ति इस संग्रह ग्रंथ ने की है। यह वस्तुतः परम्परा प्राप्त दीर्घकाल तक अनुभव की वैद्यक विद्या का निचोड़ है।"

औषध निर्माण, धातु शोधन, भस्म विधि, तथा उनका गुण विवेचन, कूपीपक्व-रसायन बनाने की सरल अनुभूत विधिएं, रस, गुटिका, चूर्ण, क्वाथ, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, अंजन, लेप, मरहम आदि सभी विषयों का तथा प्रत्येक प्रयोग का उपयोग एवं शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रभाव विस्तार से एवं सुन्दर व सरल ढंग से लिखा गया है।

आयुर्वेद के हिन्दी परीक्षार्थियों के लिये एवं नवीन वैद्यों के लिए विशेष काम की चीज है।

प्राप्ति स्वीकार——

(१) **सरल चिकित्सा-विज्ञान**——(आयुर्वेदीय, यूनानी और डाक्टरी चिकित्सा संग्रह) लेखक—श्री रामजीतसिंह वैद्य। प्रकाशक—अध्यक्ष आयुर्वेदीय अनुसंधान भवन, लोअर लाइन, चुनार (रायपुरी) मिर्जापुर। पृष्ठ संख्या २६४, मूल्य ७) रु०।

शास्त्र-चर्चा परिषद् की कार्यवाही

(५६ पृष्ठ का शेष)

के बिना अपना विषप्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकते। इस लिये हमारे आचार्यों ने दोषों को प्रधान कारण और जीवाणुओं को गौण कारण माना है।

इसके बाद श्री गोडबोले जी ने अपना लिखित वक्तव्य पढ़ा। डा० प्रसादीलाल झा ने कहा कि जीवाणुओं का वर्णन वेदों में भी आता है। अतः हमको चाहिये कि उनके वर्णनों का संकलन कर दोषानुसार वर्गीकरण कर लें।

इसके बाद डा० बनर्जी ने कहा कि प्राचीन भारतीय साहित्य के देखने से जीवाणु के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर वर्णन वेद तथा पुराणों में रूपक के रूप में प्राप्त होता है। तक्मन नामक जीवाणु से ज्वर की उत्पत्ति हमारा ध्यान मलेरिया पैरासाइट पर आकृष्ट करता है। इसी प्रकार कर्कटी नाम की राक्षसी का वर्णन तथा उससे उत्पन्न होने वाले रोग भी हमें जीवाणुवाद की ओर ले जाता है। सुश्रुत ने शल्यतन्त्र में यह बताया है कि व्रणों में पूय (पस) व्रण राक्षस नामक कीटाणु (Pyogen) से उत्पन्न होता है। इस प्रकार के अनेक जीवाणुवाद का वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में प्राप्त होता है।

श्री डा० वलीराम जी येरकुंठवार ने कहा कि हमें इस विषय पर विचार करने के लिए तीन दृष्टिकोणों को अपने सामने रखना होगा—

(१) आयुर्वेद में कृमि को रोग का कारण माना है या नहीं। (२) आयुर्वेद में कृमि को किस प्रकार रोगोत्पादक माना है। (३) रोगोत्पत्ति में कृमि प्रधान है या दोषवैषम्य। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपना प्रकाशित वक्तव्य पढ़ कर सुनाया। देखें पृष्ठ ३२।

इन वादविवादों के बाद आचार्य जी ने कहा कि इस तरह का विचार अर्थात् रोग की उत्पत्ति में क्षेत्र प्रधान है या बीज, पाश्चात्य देशों में भी चल रहा है। सम्प्रति तो हमें यह देखना है कि आधुनिक विज्ञानोक्त जीवाणु के कारणत्व को किस रूप में स्वीकार करें।

इस पर डा० बनर्जी ने कहा कि सम्प्रति सभी को बैक्टीरिया फोबिया हो गया है। यह मान लेना कि सृष्टि में जितने जीवाणु है, सब शत्रु ही हैं महान् भूल है, क्योंकि सृष्टि के शेष बहुसंख्यक जीवाणु हैं जो हमारे जीवन के साधक हैं। यदि संसार के सभी जीवाणुओं का हम नाश कर दें, तो संसार से जीव का ही लोप हो जायेगा। संसार के वनस्पति जो हमारे जीवन के साधन हैं वे भी जीवाणुओं की अनुपस्थिति में उत्पन्न नहीं हो सकते। बहुत अल्प ऐसे जीवाणु हैं जो हमारा अनिष्ट करते हैं। अतः इन जीवाणुओं को हमें दो भागों में विभक्त करना होगा।

(१) जीवसाधक (२) रोगोत्पादक। रोगोत्पादक जीवाणु हमारे शरीर के अन्दर सदा बाहर से आते हैं। हमारे शरीर के अन्दर कभी उत्पन्न नहीं होते। शरीर में उनके आने मात्र से रोग की उत्पत्ति नहीं हो जाती। शरीर में आ कर वे अनेक अंडे-बच्चे देकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अतः जब तक उन्हें अनुकूल परिस्थिति नहीं प्राप्त हो और उचित खाने को न मिले तब तक ये उक्त कार्य को नहीं कर सकते। इस कार्य में बाधक शरीर की immunity होती है। इस immunity के कमज़ोर होने पर उन्हें अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होती है। अतः इन रोगोत्पादक जीवाणुओं को जब अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होती है और जब वे रोगस्थल पर पहुँचते हैं तब वे विष उत्पन्न करते हैं जिससे रोग उत्पन्न होता है।

अन्त में सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि आधुनिक चिकित्साशास्त्र में जीवाणुओं को भी रोग का कारण माना गया है। आयुर्वेद संहिताओं में भी जीवाणुओं को रोग का बाह्य कारण माना गया है। अतः आधुनिक रोगोत्पादक जीवाणुओं को उनके गुण कर्मों के अनुसार वातप्रकोपक, पित्तप्रकोपक और कफप्रकोपक ऐसा वर्गीकरण कर लिया जावे जिससे निदान एवं चिकित्सा में सुविधा उत्पन्न हो जाये।

ता० ३० दिसम्बर १९५०

विषय संख्या १०—को उपस्थित किया गया और इस पर सर्वप्रथम श्री डेग्वेकर जी ने अपना विचार प्रकट किया।

तत्पश्चात् श्री गोडबोले शास्त्री ने लेखबद्ध अपना वक्तव्य पढ़ कर सुनाया।

अन्त में सभापति जी ने रस, गुण, विपाक और वीर्य आदि का स्पष्टीकरण करते हुए यह कहा कि आधुनिक द्रव्यों की शरीर के अवयवों पर होने वाली क्रियाओं को अपने वर्गीकरण के अनुसार ले लेना चाहिये जिससे उनका आयुर्वेदीय द्रव्यगुणविज्ञान में समावेश हो जाये।

इस पर डा० परांजपे ने कहा कि रस, वीर्य, विपाक का क्रम ठीक नहीं है। इसका क्रम रस, विपाक, वीर्य ऐसा होना चाहिये।

आचार्य जी ने इसका समर्थन किया। तत्पश्चात् यह मत सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

अन्त में श्री आचार्य जी ने यह कह कर कि ये सम्पूर्ण विषय पुनः आगामी निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के अवसर पर सम्मेलन के एक रोज पूर्व सभी विद्वानों के समक्ष उपस्थित किया जायगा और उन पर विचार-विमर्श कर अन्तिम निर्णय होगा जो समस्त वैद्य-समाज में प्रचारित किया जायगा, परिषद् का विसर्जन किया।

'पत्रिका' का आगामी अङ्क

त्रिदोषाङ्क

होगा। इसमें 'त्रिदोष के स्वरूप' के सम्बन्ध में शास्त्र चर्चा-परिषद् के अन्तिम निर्णय के अतिरिक्त निम्न विद्वानों के विचार विस्तार में प्रकाशित होंगे। इसका मूल्य १) रु० होगा।

१. श्री यादवजी त्रिकमजी महाराज (बम्बई), २. डा० डी० एन० बनर्जी (कलकत्ता), ३. श्री भि० वि० डिग्वेकर (जबलपुर), ४. डा० वलीराम येरकुंठवार, ५. श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी (लखनऊ), ६. श्री गोडबोले शास्त्री (झाँसी), ७. श्री प्रसादीलाल झा आदि आदि।

आयुर्वेद के विद्यार्थियों व अध्यापकों के लिये अवश्य संग्रहणीय है। अभी से अपनी प्रति सुरक्षित करालें।

प्रधान सम्पादक

पत्रिका कार्यालय—९०।८, कनाट सर्कस नई देहली।

Cood News For English Knowing Vaidyas.

"The Journal of Ayurveda" has been taken over by the All India Ayurvedic Congress as its mouth-piece. The English-knowing Vaidya-samaj is, therefore, requested to subscribe to this paper in order to know the policy of the Mahasammelan and to help the Mahasammelan in propagating Ayurveda and the point of view of the Mahasammelan.

The new year begins with the January issue and the subscription from Vaidyas is Rs. 7/8 per annum and from students Rs. 5/- per annum. Intending subscribers are requested to write for it to :—

The General Secretary, **All India Ayurvedic Congress,**
90/8, Connaught Circus, New Delhi.

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

आयुर्वेदीय-यन्त्र-शस्त्र परिचय

(सुश्रुतवाग्भटाद्याश्रितः सचित्रश्च)

रचयिता :—आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेन्द्रमोहन बी० ए०

(भूतपूर्व प्रिंसिपल, दयानन्दायुर्वेदिक कालेज, लाहौर)

इस अपूर्व ग्रन्थ में न केवल यन्त्रों और शस्त्रों की विधिवत् व्याख्या की गई है, प्रत्युत लगभग १०० चित्र (Diagrams) दे कर उनकी आकृति का पूर्ण परिचय दिया गया है। वर्णन अति रोचक और पठनीय है। यह पुस्तक आयुर्वेद विद्यापीठ के परीक्षार्थियों तथा आयुर्वेदीय संस्थाओं के छात्रों के लिये अत्युपयोगी है। इस में शल्य-सम्बन्धी प्रश्न तथा अन्य अनेक उपयोगी बातें योगादि दिये गये हैं। चिकित्सक भी इससे लाभ उठा सकते हैं। मूल्य १॥) प्रति, डाक व्यय पृथक्।

मिलने का पता :—**श्री सत्येन्द्रनाथ बी० ए० (आनर्स),**

प्रबन्धक—इन्द्रायुर्वेद भवन, हरध्यानसिंह रोड, करोल बाग, नई देहली।

अत्यन्त सस्ती ! अत्यन्त सस्ती !!

शीघ्रता कीजिए, ऐसा अवसर फिर न मिलेगा।

हमारा कार्यालय भारत-पाक की सीमा पर होने से हम अपनी कुछ औषधियों का अधिक स्टाक शीघ्र विक्रय करना चाहते हैं। इस आशय से, अपनी लागत मात्र पर, इन औषधियों को दे रहे हैं।

नोट : इन भावों पर २० तोला से कम कोई औषधि न भेजी जावेगी। कम मंगाने पर सूची-पत्र के भाव लिए जावेंगे। स्टाक कम होते ही इन भावों पर बिक्री बन्द कर दी जावेगी। हमारा १ सेर ८० तोला का है। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त।

गन्धक शुद्ध आंवलासार	१०) सेर	कान्त लोह भस्म	२८) सेर	योगराज गुग्गल	१५) सेर
		कसीस भस्म	१०) „	रस सिन्दूर	६०) „
अभ्रक बज्र भस्म (६० पुटी)	६०) सेर	गोदन्ती „	३॥।) „	लोह भस्म	२४) „
		चन्द्र प्रभा वटी	३०) „	शंख „	७) „
३० पुटी	४६) „	प्रवाल भस्म	४८) „	शृङ्गराज भस्म	१४) „
कपर्दिका भस्म	८) „	प्रवाल चन्द्रपुटी	४८) „	स्वर्ण माक्षिक भस्म	२८) सेर
कुक्कटाण्डत्वक	१८) „	वंग भस्म श्वेत	३६) „		
त्रिवंग भस्म	४८) „	मण्डूर „	२०) „	स्वर्ण वंग नं० १	६०) „
अभ्रक श्वेत भस्म	१४) „	मुक्ता शुक्ती भस्म	१०) „	स्वर्ण सिन्दूर	३) „

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स नं० १, जी० टी० रोड, अमृतसर।

आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा

जनता में पर्याप्त है परन्तु हमारा कार्य तथा रोगी की चिकित्सा में सफलता ही उस श्रद्धा को बनाए रख सकती है।

वैद्यों की सफलता में द्वितीय पाद (औषधियाँ) एक महत्त्व रखता है और केवल व्यापार की दृष्टि से कार्य करने वाली अप्रमाणिक फार्मेसियों से अशास्त्रीय औषधियाँ लेने से आयुर्वेदीय विज्ञान की क्षति, चिकित्सक का अपयश तथा रोगियों को भयंकर हानि पहुँचती है।

प्रमाणिक निर्माणशाला को चुनते समय या विशुद्ध नवीन, बनौषधियों की आवश्यकता के समय आप **दून फार्मेस्युटिकल कम्पनी लिमिटेड देहरादून** (हिमालय पर्वत) को अवश्य स्मरण रक्खें क्योंकि :—

(१) यह चिकित्सक वैद्यों द्वारा आयोजित तथा संचालित है जो निजी चिकित्सा में भी ये ही औषधियाँ प्रयोग करते हैं।

(२) हिमालय की सौम्य नवीन वनस्पतियों के उपलब्ध होने से उनके गुणों में वृद्धि विशेष हो जाती है।

(३) निर्माणकर्त्ता तथा संग्रहकर्त्ता आयुर्वेद के अटल सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले परिष्कृत तथा अनुभवि वैद्य ही हैं।

(४) सब कार्य भारत प्रसिद्ध प्राणाचार्य कविराज पं० धर्मस्वरूप रतूड़ी वैद्य वाचस्पति की ही देखरेख में होता है। सूची-पत्र के लिए लिखें।

नया आविष्कार

स्त्री पुरुष, बालक सब के लिये अत्युत्तम महौषधि

* नव रत्न रस *

यह हीरा, माणक, मोती आदि नवरत्नों और स्वर्ण के संयोजन से तैयार की हुई प्रक्रिया है। शरीरस्थ रस, रक्त आदि सप्त धातुओं की शुद्धि, वृद्धि और पोषण, शुक्र-वीर्य धातु की शुद्धि और पुष्टि इस महौषधि के विशिष्ट कार्य हैं तथा नपुँसकत्व, वीर्य-स्राव, स्वप्नदोष आदि को निर्मूल कर नव यौवन प्रदान करता है। स्त्रियों के गर्भाशय के शोथ, प्रदर, बार-बार गर्भपात, गर्भवती स्त्री के हाथ पैरों, पेडू में शोथ तथा पांडुता आदि नष्ट करता है। बंध्यत्व निवारणार्थ यह अपूर्व औषधि है। बालकों की अशक्त अस्थियों को बलवान् बना कर केलशियम और विटामिन की न्यूनता, दुग्धपान स्तनपान का अपचन आदि नष्ट करके बालकों को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। क्षय, जीर्ण ज्वर, कास, श्वास, मधुमेह, मानसिक निर्बलता आदि में अत्युपयोगी है।

नवरत्न रस—निरोगी के लिये रसायन और रोगी के लिये पूर्ण स्वास्थ्य प्रदायक महौषधि है।

उँझा फार्मेसी लि०, (गुजरात) उँझा

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हज़ारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के निरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हज़ार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसी उत्तम पुस्तक दूसरी नहीं है; यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १॥।), डाक खर्च ॥=), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० एजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

विज्ञान और भारत

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. बर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०

पोस्ट—बक्स ५५४, कलकत्ता।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—[illegible], नई दिल्ली।

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी
१५०.
११-२८

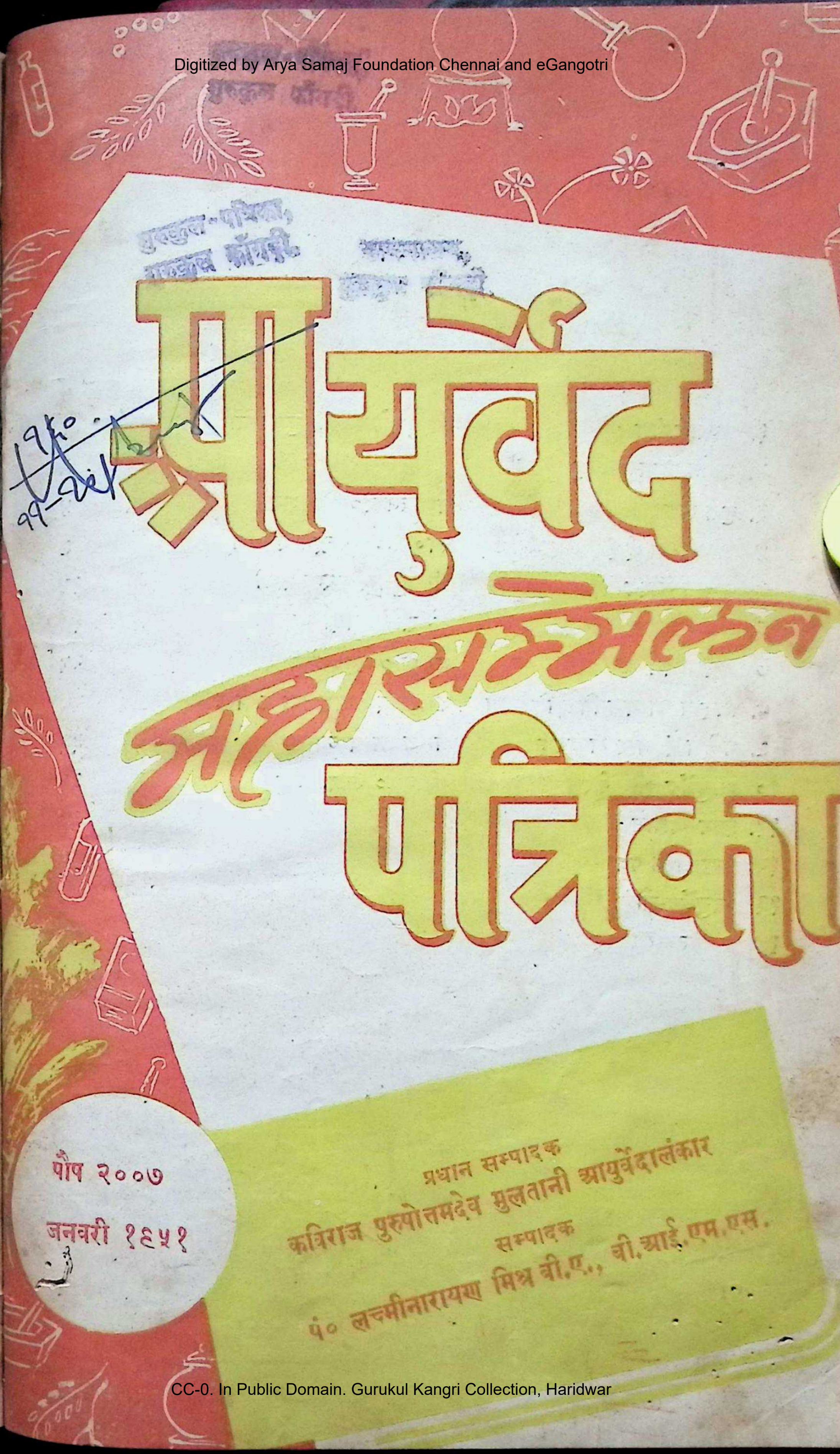

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

पौष २००७
जनवरी १९५१

प्रधान सम्पादक
कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक
पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी.ए., बी.आई.एम.एस.

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१. सम्पादकीय	श्री पुरुषोत्तमदेव मुलतानी	१
२. शास्त्र चर्चा-परिषद्		२
३. वृक्क रोग	वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा	४
४. ओज क्या है ?	स्व० क० नरेन्द्रनाथ मित्र	६
५. अतीत गौरव	श्री रघुवीर शरण शर्मा	१४
६. लाल मिरच	श्री रामेश बेदी	१७
७. वंशलोचन	श्री ओ० एन० प्रेट्री	२५
८. त्रिदोष का वैज्ञानिक विवेचन	डा० लक्ष्मीनारायण पचौरी	२८
९. महिलाएं और आयुर्वेद	श्री जगन्नाथ व्यास	३३
१०. आयुर्वेद और केरल	श्री एम० आर० भट्ट	३५
११. ज्ञान-विज्ञान		३७
१२. पाठकों के पत्र		३८
१३. आयुर्वेद-लोक		४०
१४. साहित्य सत्कार		४५

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज पुरुषोत्तमदेव मुलतानी आयुर्वेदालंकार
सम्पादक—पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र बी. ए., बी. आई. एम. एस.
पत्रिका कार्यालय—९०/८, कनाट सर्कस, नई देहली ।

वर्ष ३७
अङ्क १

नई दिल्ली, पौष २००७, जनवरी १९५१

एक प्रति ।।)
वार्षिक ५)

छपते-छपते—

‘आयुर्वेद प्राचीन भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूति है’

शास्त्र चर्चा-परिषद् में माननीय श्री अणे का उद्‌घाटन भाषण

पटना में आयुर्वेद महारथियों का सम्मेलन

पटना २४ दिसम्बर—श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य के सभापतित्व में शास्त्र चर्चा-परिषद् का अधिवेशन आज प्रारम्भ हो गया। इसका उद्‌घाटन बिहार प्रान्त के गवर्नर श्री माधव श्री हरि अणे ने किया। प्रान्त के प्रतिष्ठित महानुभाव एवं आयुर्वेद के विद्वान् बड़ी संख्या में उपस्थित थे। उपस्थित विद्वानों में श्री गिरधर शर्मा दर्शनाचार्य, डा० डी० एन० बनर्जी कलकत्ता, श्री दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी, डैप्युटि डायरेक्टर (आयुर्वेद) स्वास्थ्य-सेवा, उत्तर प्रदेश, श्री भी० वि० डेग्वेकर M. Sc. जबलपुर, श्री रामरक्ष पाठक बेगूसराय, श्री गोडबोले, डा० प्रसादीलाल झा कानपुर, प्रोफेसर सोमदेव शर्मा सारस्वत लखनऊ तथा श्री गुरुदत्त M. Sc. प्रधानमन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यह उत्सव वैद्यनाथ भवन लि०, चिरया टाँड में मनाया गया।

माननीय श्री अणे ने अपने प्रभावशाली उद्‌घाटन भाषण में कहा, “आयुर्वेदिक

चिकित्सा-पद्धति भारतीय इतिहास के आदि-काल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। यह एक ऐसी चिकित्सा-पद्धति है जो सुदृढ़ स्वास्थ्य-भोग के साथ-साथ मनुष्य को दीर्घायुष्य प्राप्त करना भी सिखाती है। प्राचीन भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में से यह एक है। यह सर्वदा विकसित होने वाला चिकित्सा-विज्ञान है और प्रत्येक युग में अनुसंधान द्वारा अनेक बार इसको उन्नत किया गया है। आयुर्वेद का जन्म यद्यपि भारत वर्ष में ही हुआ तथापि अपनी मातृ-भूमि में ही इसकी उपेक्षा की जा रही है। एशिया के अन्य देश मानवीय दुःख निवारण में इसका विस्तृत उपयोग करते हैं। अपने व्यक्तिगत अनुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि आयुर्वेद लंका में बहुत अधिक प्रचलित था तथा आम जनता द्वारा इसको संरक्षण प्राप्त था। यह अरब देश में भी फैला।

यह बहुत दुःख की बात है कि स्वयं भारतीयों ने ही आयुर्वेद की उपेक्षा की। शिक्षित जन-वर्ग द्वारा इसे तनिक भी संरक्षण प्राप्त नहीं है। लगभग ४० वर्ष पूर्व स्वदेशी आन्दोलन के समय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को ऊपर उठाने के तो प्रयत्न किये गये किन्तु आयुर्वेद को जो कि राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली है, कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया। अब समय आ गया है कि आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति की और अधिक उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। मुझे प्रसन्नता है कि देश वासियों का ध्यान अब इसकी उन्नति की ओर आकृष्ट होने लगा है। शिक्षित वर्ग से मेरा अनुरोध है कि वह इसे आश्रय प्रदान करें क्योंकि उनके ऐसा करने से जनता भी इसे अपना लेगी। आयुर्वेदिक चिकित्सकों से मेरी प्रार्थना यह है कि वह रूढ़िवादी विचारों को त्याग दें। आधुनिक चिकित्सा विज्ञानों के समान इसके विकास की भी आवश्यकता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि दूसरी चिकित्सा प्रणालियों की समस्त अच्छाइयों को आयुर्वेद में सम्मिलित कर लिया जावे। आयुर्वेद को समस्त चिकित्सा प्रणालियों का समन्वय बना दिया जाना चाहिये।

अन्त में आप से मेरी प्रार्थना है कि आयुर्वेद को समृद्ध बनाने के उपायों की खोज करें जिससे मानवीय दुःखों के निराकरण में यह सहायक हो सके।"

परिषद् का अधिवेशन ३१ दिसम्बर तक होता रहा और पंच महाभूत, त्रिदोष तथा रस, गुण, वीर्य विपाक आदि विषयों पर गवेषणापूर्ण चर्चा होती रही। इस परिषद् के निर्णय तथा विचार बाद में प्रकाशित किये जावेंगे।

सम्पादकीय—

अतीत की झाँकी

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के साथ ही पत्रिका का भी ३७वाँ वष प्रारम्भ होता है। पिछले ३६ वर्ष पर यदि हम दृष्टिपात करें तो हम उस अतीत भूतकाल में जा पहुँचेंगे, जब स्वनाम धन्य स्व० शंकर दा शास्त्री पदे एवं अन्य आयुर्वेद के महारथियों के शुभ प्रयत्न से महासम्मेलन एवं पत्रिका का सूत्रपात हुआ था—उस समय त्रैमासिक पत्र के रूप में उसका प्रकाशन होता था। संक्षेप में पिछले ३६ वर्ष में भारत के वैद्यों के संगठन एवं आयुर्वेद संबन्धी आन्दोलन का इतिहास ही पत्रिका का इतिवृत्त है। पत्रिका की जो कुछ विशिष्टता है उसका श्रेय महासम्मेलन के सदस्यों को है, इसमें जो कुछ त्रुटियाँ हैं वह हमारी ही न्यूनता की सूचक हैं। हमें पूर्ण आशा है कि आयुर्वेद के विद्वानों के सहयोग एवं आशीर्वाद से हम पत्रिका को अधिकाधिक उपयोगी एवं आकर्षक बना सकेंगे।

बीमा कम्पनियाँ और वैद्य

विभिन्न प्रान्तीय सरकारों द्वारा आयुर्वेद को मान्यता देने के बावजूद भी भारतीय बीमा कम्पनियों के द्वारा वैद्यों को मान्यता दिया जाना अभी बाकी है। पिछले दिनों महासम्मेलन कार्यालय ने इस सम्बन्ध में भारत भर की बीमा कम्पनियों से जो पत्र-व्यवहार किया है, इसके परिणामस्वरूप कुछ कम्पनियों ने तो वैद्यों को भी उनके पालिसी होल्डरों की शारीरिक परीक्षा की इजाजत दे दी है लेकिन बहुत सी कम्पनियों के संचालकों ने हमारी मांग को तो न्यायोचित ठहराया है किन्तु इस पर अमल करने में किन्हीं कारणों से असमर्थता प्रकट की है। "एम्पायर आफ इण्डिया बीमा कम्पनी" के कार्यवाहक सेठ दामोदर स्वरूप ने अपने पत्र में लिखा है "यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मैं इस बात से सहमत हूँ कि आयुर्वेद ही भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति होनी चाहिए और वैद्यों को भी डाक्टरों के समान बीमा कम्पनियों में उचित स्थान मिलना चाहिये, किन्तु जब तक भारत सरकार आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति घोषित नहीं करती (जैसा कि हिन्दी को १५ वर्ष में राष्ट्र भाषा स्वीकार कर लिया गया है) तब तक बीमा कम्पनियों के लिये इस सम्बन्ध में कदम उठाना कठिन होगा।" इसका अर्थ यह है कि

(शेष पृष्ठ ८ पर)

वृक्क रोग

(ले०—वद्यरत्न पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य, बम्बई)

यद्यपि 'वृक्क रोग' इस नाम से किसी व्याधि का वर्णन आर्षग्रन्थों में नहीं मिलता तथापि इस रोग की सामान्य लाक्षणिक अर्थात् केवल आधार पर की गई चिकित्सा (General Symptomatic Treatment) में आयुर्वेदिक शास्त्र ने अकाट्य उपदेश दिये हुए हैं। उदाहरणार्थं वृक्क के एक प्रधान लक्षण शोथरोग को ले लीजिए। आयुर्वेदानुसार शोथ में लवण का प्रयोग वर्जित है परन्तु पाश्चात्य चिकित्सक पिछली शताब्दी के अन्त तक लवण को शोथ में उपयोगी समझ कर रोगियों को मृत्यु के घाट उतारते रहे। इस विषय में डाक्टर नलिनीरंजन सेन गुप्ता के मनोरंजक वाक्य उद्धृत करता हूँ*:—

"कलकत्ता मेडिकल कालिज के पुराने विद्यार्थियों को वहाँ के अध्यापकों का शोथ रोगियों के पथ्य में लवण निकाल देने पर आयुर्वेद की हंसी उड़ाना याद होगा। डाक्टर लवण के मूत्रल गुण की प्रशंसा के गीत गाते हुए रोगी को अधिक मूत्र लाकर शोथ को कम करने के लिए उचित से भी

---

*Old students of calcutta Medical College will remember the cheap sneer at Ayurveda, of some of the distinguished clinical teachers there, for advising the withdrawal of common salt, from the dietary in dropsy cases. The doctors extolled the diuretic virtues of salt,and advised giving salt in more than normal quantities,to promote diuresis and lessen the anasarcat in sublime oblivion of the fact that their colossal ignorance and conceit could not but hasten the unhappy patients to their grave.The professors laughed at the absurdity of Ayurveda. The students laughed with them. Everyone was happy to have such an easy target of attack and ridicule the Ayurveda. Unfortunately for the scientific medicine, the discovery of Widal a Javal about effects of retaind chlorides filtered into India in the late nineties. The exponents of scientfic medicine has to make a volt face and this they did with the same easy self-complacency as before. Nothing daunted, the professors then began to teach that Oedema was due to sodium chlioride retention and advised the withdrawal of salt from the dietary, in the anasarcal conditions.The past was quickly forgotton, and the Western system was still looked upon as exclusive repository of scientific wisdom and poor Ayurveda still continued to be damned light-heartedly as nothing but unscientific". Journal of Ayurveda. October, 1926.

अधिक मात्रा में लवण खिलाया करते थे। और इस बात का उन्हें गुमान भी नहीं था कि उनकी महती जड़ता और मिथ्याभिमान अभागे रोगियों को शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास बना देते थे। आयुर्वेद की मूर्खता पर सब प्रोफेसर हंसते थे। विद्यार्थी भी उनके साथ हंसते थे। प्रत्येक पुरुष प्रसन्न था कि आक्षेप तथा उपहास करने के लिए आयुर्वेद जैसा लक्ष्य विद्यमान था परन्तु इन वैज्ञानिक चिकित्सकों के दुर्भाग्य से शरीर में संचित लवणों से शोथ रोग में होने वाली हानियों के सम्बन्ध में (पैरिस के) विडाल और जवाल की खोज का ज्ञान पिछली शताब्दी के अन्त में भारतवर्ष में भी पहुँच गया। डाक्टरों को अपना मत बिल्कुल उलटना पड़ा और वह उन्होंने पहिले जैसी ही सरल आत्मश्लाघा से उलट लिया। प्रोफेसर ने कोई लज्जा न अनुभव करते हुए लवण के शरीर में रहने से शोथ के बढ़ने तथा शोथ में पथ्य से लवण निकाल देने का औचित्य प्रतिपादन करना आरम्भ कर दिया। पाश्चात्य चिकित्सा फिर भी विज्ञान की एक मात्र राशि समझी जाती रही और आयुर्वेद को अवैज्ञानिक ही कह कर उसी हल्के हृदय से इसका अनादर होता रहा।"

आयुर्वेदीय लाक्षणिक चिकित्सा—ऐसे ही अनेक उदाहरण हैं जो आयुर्वेदिक चिकित्सा का महत्व और निश्चलत्व प्रतिपादन करते हैं। यह पहिले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि यह चिकित्सा यदि केवल लवणों को लक्ष्य रख कर ही की जाये तो भी कभी हानिकर नहीं। शोथ चाहे वृक्क रोग के कारण हो चाहे हृदय की या यकृत की किसी व्याधि के कारण, उसमें लवण छोड़ देना❀सदा ही लाभकारी है। इसी प्रकार आज प्रमेह (Albuminuria) रक्त प्रमेह (Haematuria) आदि वृक्क रोग के अन्य प्रधान लक्षणों की चिकित्सा लक्षणानुसार करने से ही वृक्क को कोई हानि न हो कर लाभ होता है।

विशेष वक्तव्य—वृक्क रोग वस्तुतः एक नहीं। वृक्कों का सुकड़ जाना, स्थानभ्रष्ट होना, वृक्कों के भीतर के या बाहर के भाग में शोथ या प्रदाह या दोनों का होना इत्यादि वृक्कों की अनेक व्याधियां हैं। परन्तु समयाभाव के कारण यहाँ पर उसी व्याधि का वर्णन करेंगे जिस का प्रधान रोग होने से यह नाम सर्वथा उचित न होते हुए भी डाक्टरी में भी रीनल डिज़ीज़ या किडनी डिज़ीज़ अर्थात् वृक्क रोग ही नाम पड़ा।

❀ ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टं दधितिलकृतं विज्जलं मद्यमम्लम्। धानावल्लूरमशनमथो गुर्व्यसात्म्यं विदाहि स्वप्नं रात्रौ श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मैथुनञ्च॥ चरक चिकित्सा अ० १७.।

वृक्कों की स्थिति—दोनों वृक्क पृष्ठ वंश की दोनों ओर तीन-तीन इंच की दूरी पर स्थित होते हैं। क्योंकि दक्षिण वृक्क के ऊपर ही यकृत् होता है इसलिए यह वाम वृक्क की अपेक्षा कुछ नीचे होता है। दक्षिण वृक्क का ऊपर का सिरा ग्यारहवीं पसली के नीचे के किनारे तक पहुँचता है। वाम वृक्क का शिखर इसी पसली के ऊपर के किनारे तक पहुँचता है। वृक्कों की गहरी स्थिति होने के कारण यकृत्, हृदय, फुफ्फुस आदि की भांति वृक्कों का स्पर्श द्वारा ज्ञान कठिन है, परन्तु अनुभवी चिकित्सक स्पर्श द्वारा 'अस्थिर वृक्क' आदि को जान सकता है।

वृक्कों का कार्य—वृक्कों का कार्य रक्त में से मूत्र द्वारा दूषित मल निकाल कर रक्त को स्वच्छ रखना है। परन्तु यह कार्य करने की शक्ति वृक्क रक्त से ही ग्रहण करते हैं। इस कारण वृक्कों की क्रिया-शक्ति रक्त की स्वच्छता तथा स्वस्थता पर निर्भर है।*

वृक्क रोग के लक्षण—आयुर्वेद में वृक्क रोग के लक्षण प्रमेह, शोथ रोग, जलोदर आदि रोगों में बंटे पड़े हैं। मूत्र का कम आना, ओजः प्रमेह (Albuminuria), रक्त प्रमेह (Haematuria), पाण्डुता, शोथ, अनवस्थित-चित्तता आदि का एक काल में होना वृक्कों की अस्वस्थता प्रगट करता है। यद्यपि यह रोग जीर्णावस्था में सान्निपातिक हो जाता है परन्तु आरम्भ में रक्त में आए हुए बाहिर के विषों द्वारा स्थानिक दोष के कोप से वृक्क प्रदाह (Nephrites) शूलयुक्त वृक्क प्रदाह (Acute nephritis) तथा वृक्क क्षय (Nephrosis) आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इन सब के मिश्रित लक्षण ही वृक्क रोग कहलाते हैं।

रोग परीक्षा—मूत्र का कम आना, उसमें ओजः प्रमेह और रक्त प्रमेह के लक्षण होना, यह वृक्क रोग के आरम्भ के लक्षण हैं। इस के साथ ही शरीर का पाण्डु पड़ना, पहिले मुख पर—विशेषतया आंखों के नीचे—और फिर टकनों के आस-पास दबाने से गढ़ा पड़ने वाले शोथ † की उत्पत्ति होना, तदनन्तर शोथ का सारे शरीर पर

---

* An efficient circulation of blood is the first condition necessary to a healthy Kidney—Halliburton.

† प्रायः हृदय की व्याधियों से होने वाला शोथ रोगों से और यकृद्रोगों से होने वाला शोथ उदर से आरम्भ होता है। वृक्क-रोगों का शोथ प्रायः शीघ्र ही सर्वांग शोथ बन जाता है, विशेषतया मुख, शाखाएँ, अण्डकोष, स्फिच, यह बहुत सूज जाते हैं, और उरस्तोय (Hydrothorax) तथा जलोदर (Ascites) भी हो जाते हैं।

हो जाना, रक्तभार में आधिक्य होना, इन लक्षणों द्वारा बिना कठिनाई वृक्क रोग की पहिचान हो जाती है। जब वृक्क बहुत दुर्बल हो जाते हैं तो मूत्र को पूर्ण रूप से बाहिर नहीं फेंक सकते। इससे रोगी के शरीर में बहुत से दूषित द्रव्य मिल जाते हैं तथा जलवृद्धि भी हो जाती है। यह लक्षण रक्त में इतना बढ़ जाता है कि रोगी के शरीर से रोम कूपों द्वारा मूत्र की गन्ध लिए हुए जल बाहर आने लगता है। यह रोग की असाध्यावस्था होती है।

वृक्क रोग में पाश्चात्य चिकित्सकों की कठिनाइयाँ—पाश्चात्य चिकित्सक अभी तक यह निर्णय नहीं कर सके कि वृक्क रोग स्वयं स्वतंत्र रोग है या हृदौर्बल्य अथवा रक्त की अस्वस्थता या किसी अन्य व्याधि के उपद्रवस्वरूप यह उत्पन्न होता है। इसी कारण इसका कारणज्ञान (Etiology) भी स्पष्ट नहीं हुआ । जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर स्ट्रम्पल तथा सेफार्थ पिछले ही वर्ष की छपी हुई पुस्तक "ए प्रेक्टिस आफ मैडीसिन" में लिखते हैं *:—

"प्रायः बहुत से वृक्क रोगों में यह अनिश्चित रहता है कि हम वृक्कों के प्रधान रोग से निपट रहे हैं या रक्तवाही धमनियों के किसी प्रधान रोग से उत्पन्न हुए अप्रधान वृक्कोपद्रव से। वस्तुतः नवीन से नवीन खोज को सम्मिलित करके भी वृक्क रोग सम्बन्धी सम्पूर्ण (पाश्चात्य) विज्ञान एक सर्वमान्य स्थिति को प्राप्त नहीं हुआ—Affections of the Kidney are for the most part not independent forms of disease, वृक्क रोग प्रायः स्वतंत्र व्याधियाँ नहीं होतीं।

वृक्क रोग चिकित्सा—उपर्युक्त वाक्यों से स्पष्ट होगा कि वृक्क रोग में सामान्य (general treatment) चिकित्सा अधिक लाभप्रद होनी चाहिए। इस व्याधि में इस विचार से पाश्चात्य चिकित्सक भी सहमत हैं। इसी कारण औषधि भिन्न होते हुऐ भी विहार आदि का अंश दोनों चिकित्साओं में किसी सीमा तक मिलता जुलता है। लवण, पिष्ट, मद्य, गुरु तथा विदाही भोजन, रात्रि जागरण, व्यायाम, परिश्रम, आदि सर्वथा त्याग देना चाहिए। रोगी को लघु तथा सात्म्य भोजन देना चाहिए।

---

* In many affections of the kidney it is often uncertain whether we have to deal with a primary disease of the kidney or a secondary renal disturbance resulting from primary disease of the blood-vessels. In fact the whole teaching of the renal disease, in spite of the most recent clinical and anatomical investigations have not yet arrived at a generally accepted conclusion.—Strumpell and Sayfarth,

आयुर्वेदीय भेषज चिकित्सा—प्रकृति से ही सामान्य चिकित्सा पद्धति होने के कारण आयुर्वेदिक चिकित्सा इस रोग में विशेष लाभप्रद है। कुलत्थ, गोत्तुरी आदि मूत्रल पदार्थ वृक्क की मूत्र बाहिर निकालने की क्रिया में सहायता देकर वृक्कों को विश्राम देते हैं, यह लवण से होने वाली कोई हानि नहीं करते। मूत्र अधिक निकाल कर हानिकारक जलीय अंश शरीर में बढ़ने से रोकते हैं। शिलाजतु, हरिद्रापाक, चन्द्र प्रभावटी आदि प्रमेहों में लाभ करने वाले औषध ओजःप्रमेह तथा रक्तप्रमेह को रोक कर शारीरिक बल की रक्षा करते हैं। यद्यपि पाश्चात्य चिकित्सक वृक्क रोगों में पारद के योगों को सफलता पूर्वक नहीं दे सके हैं और पारद को वृक्क रोग में हानिकारक समझते है तथापि कुछ आयुर्वेदीय पारद-योग जैसे कि बसन्तकुसुमाकर रस, बृहद्वंगेश्वर, मकरध्वज, आदि इस व्याधि में बहुत लाभदायक हैं। इनके प्रयोग करते समय यदि वरुणत्वक्, गोत्तुरी, कुलत्थ आदि मूत्रल पदार्थों का साथ-साथ सेवन होता रहे तो विशेष लाभ होता है। नारायण, प्रसारणी, बलातैलादि का अभ्यङ्ग यदि रोगी में बल हो, शोथ और रक्त में जल बहुत न बढ़ गया हो तो लाभप्रद है। यदि रक्तभार बढ़े तो सर्पगन्धा का प्रयोग कराना चाहिये। अभी तक तो जो कुछ गुण इस व्याधि के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा में विद्यमान हैं, वह अन्य किसी चिकित्सा प्रणाली में मैं नहीं देखता। जो आयुर्वेद आज से सहस्रों वर्ष पूर्व सूर्य की प्रकार प्रकाशमान था वह काय-चिकित्सा में आज भी किसी अन्य प्रणाली से पीछे नहीं, प्रत्युत उत्कृष्ट ही है।

(पृष्ठ ३ का शेष)

पिछले स्वास्थ्य-मन्त्री सम्मेलन के लम्बे-लम्बे प्रस्तावों के बावजूद भी वैद्यों का मान दण्ड (Status) वही है जो पहिले था। हम आशा करेंगे कि बीमा कम्पनियाँ, जो जनता की ही पूंजी से पनप रही हैं, जनता के ही सेवक वैद्यों को भी उचित अधिकार देने में अपनी ओर से कोई रुकावट पैदा नहीं करेंगी, बल्कि भारत सरकार पर ऐसा दबाव डालेंगी कि जिससे महासम्मेलन की न्यायोचित माँग को बल मिले और वैद्यों को भी बीमा कम्पनियों के द्वारा जनता की अधिक सेवा करने का अवसर मिल सके।

—पुरुषोत्तमदेव मुलतानी

ओज क्या है ?

[मूल लेखक—स्व० कविराज नरेन्द्रनाथ मित्र (लाहौर वाले)]

अनुवादक—श्री पं० धर्मवीर वेदालंकार, देहली।

आ आयुर्वेद की पुस्तकों में अधिकांश स्थानों में ऐसा वर्णन स्पष्ट रूप से मिलता है। प्राचीन वैदिक साहित्य में भी यह शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त किया जाता था। वेदों में भी "ओजो मे देहि" "तेजो मे देहि" "बलं मे-देहि" इत्यादि वाक्य मिलते हैं। ऐसी स्थिति में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि यह ओज क्या वस्तु है। बहुत से वैद्य ओज तेज बल तीनों को एक ही पदार्थ मानते हैं। यदि यही बात हो तो एक ही श्रुति में, एक ही स्थान पर तीनों का पृथक्-पृथक् प्रयोग करने का कारण समझ में नहीं आता। पढ़ने वाले विद्यार्थी ग्रन्थों का अध्ययन करते समय इन बातों की ओर अधिक ध्यान नहीं देते। आँख मीच कर पढ़ लेते हैं परन्तु तनिक भी विचारने का प्रयत्न नहीं करते। इसी कारण आयुर्वेद के ग्रन्थों में विदेशी विद्वानों को कुछ भी वैज्ञानिकता नहीं प्रतीत होती। यदि वैद्यों को अपने शास्त्रों का मार्मिक ज्ञान हो तो वे आक्षेप कर्ताओं के मुखों को बन्द कर सकते हैं।

अब हम यह विचार करना चाहते हैं कि आखिरकार ओज क्या वस्तु है, ओज के सम्बन्ध में सुश्रुताचार्य ने निम्न वचन कहे हैं:—

"तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजः तत्खलु ओजस्तदेव बल मित्युच्यते"

अर्थात् रस से लेकर रक्त इत्यादि की अवस्थाओं का परिणाम स्वरूप जो सारभूत पदार्थ है वही ओज है और वही बल है। जिस प्रकार दूधादि का सारभूत पदार्थ घी है उसी प्रकार रसादि धातुओं का सार ओज है। तो यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या (i) ओज और बल एक ही पदार्थ हैं (ii) क्या इन दोनों में कार्य कारण का भेद है अथवा iii) बल का कारण ओज है ? क्योंकि जहाँ ओज होता है वहीं बल होता है, जिस शरीर में कम ओज होता है उसमें बल भी कम होता है। चिकित्सा कार्य की सुगमता की दृष्टि से इन दोनों में कार्य कारण के भेद को स्वीकार करते हुए ही हम कहते हैं कि बल का कारण ओज है। वैदिक साहित्य में भी यह सूक्ति पाई जाती है तथा वेदों का अध्ययन करने वाले भी इन तीनों वाक्यों को अच्छी प्रकार समझते हैं।

उदाहरणार्थ "ओजो मे देहि" अर्थात् हे भगवान् मुझे ओज दो। ओज शब्द के अस्पष्ट होने के कारण प्रार्थना करने वाला और अधिक स्पष्ट करता हुआ कहता है कि "तेजो मे देहि" अर्थात् मुझे तेज दो। रस आदि धातुओं का परिणाम जो तेज है वह मुझे दो। तृतीय वाक्य में और अधिक स्पष्ट करता है! "बलं मे देहि" अर्थात बल के कारणभूत ओज को मुझे देकर मुझे बलवान बनाओ।

इन्हीं वैदिक वाक्यों को सुश्रुताचार्य ने एक तागे में पिरोई हुई मणियों के समान यूं वर्णन किया है। ओज के स्वरूप और गुणों के बारे में उनके निम्नस्थ वाक्य ध्यान देने योग्य हैं :—

"ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदुमृत्स्नञ्च प्राणायतनमुत्तमम्॥
देह सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।
तदभावाच्च शीर्य्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम्॥"

"ओज स्निग्ध, शुक्ल, शीतल, स्थिर, द्रव (बहने वाला), चमकदार, कोमल तथा शरीर को धारण करने वाला है। ओज के द्वारा पुरुषों का प्रत्येक अंग व सम्पूर्ण शरीर व्याप्त है। ओज के बिना शरीर जीर्ण शीर्ण हो जाता है।

अब सुश्रुत के वर्णन की पाश्चात्य विद्वानों के साथ तुलना कीजिये :—

"ओज ही शरीर का सर्व प्रथम उपादान कारण है। शरीर के अंगों का समवायी कारण है, इसकी रचना असाधारण है। शरीर के प्रत्येक अवयव में तथा शरीर की रस आदि धातुओं में भी ओज है। एलब्यूमिन शब्द की समानता अंडे की सफेदी से की जाती है जो एक अद्भुत ही वस्तु है।"*

वीर्य के एक विशेष भाग को भी ओज कहते हैं।

डब्ल्यू० डी० हालिबटन एम० डी० ने भी मिश्रित शुक्र कीटों को ही वीर्य कहा है।† वाग्भट्ट ने भी सुश्रुत के वचन की व्याख्या करते हुए लिखा है। "ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।" अर्थात वीर्य आदियों का सारभूत पदार्थ तेज व ओज एक ही पदार्थ है। पाश्चात्य चिकित्सकों का ओज के बारे में निम्न विचार है :—

---

* Albumin—a protied substance, is the chief contituent of the animal tissues. Its molecule is highly complex. The albuminous bodies or protieds occur in almost all the tissues and fluids of the body. They derive their name from the white of egg, which is taken as a type of the group.

† "The spermatozoa. suspended in a richly albuminous fluid, constitute the semen." (W. D. Hallibuton M. D)

"आज कल हम जानते हैं कि प्रोटीन पदार्थ जीवित वस्तुओं में कभी अविद्यमान नहीं रहते और यह वस्तु जीवित अथवा जीवित कोषों के द्वारा निर्मित वस्तु के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ में नहीं होते। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रोटीनों के द्वारा ही जीविनी शक्ति का निर्माण होता है।"‡

ओज ही मनुष्यों का जीवन है—सुश्रुत में इसके सम्बन्ध में लिखा है "यदष्ट मासे जातो बालो न जीवति, एतत्कारणमपि प्रकाश्यते अष्टमेऽस्थिरो भवति ओजः तत्र जातश्चेत् न जीवेत्" अर्थात् आठवें मास में गर्भस्थ भ्रूण तथा माता में ओज की स्थिति अनिश्चित व अस्थिर होती है। इस कारण बालक में ओज व बल की अस्थिरता के कारण आठवें मास में उत्पन्न हुआ बच्चा प्रायः जीवित नहीं रहता, क्योंकि ओज ही प्राणों का आधार है, वह बच्चे में स्थिर नहीं हो पाता। ओज के नाश के बारे में सुश्रुताचार्य लिखते हैं, "चोट से, क्षय से, क्रोध से, शोक से ओज का क्षय होता है, अथवा ओज शरीर से निकल जाता है।"

विकृत ओज के बारे में सुश्रुताचार्य के विचार में ओज के तीन दोष हैं—विनाश विकार तथा क्षीणता। ओज के नाश हो जाने पर मस्तिष्क सम्बन्धी दुर्बलता, मूत्र के साथ धातु का गिरना तथा प्रत्येक कार्य में अनिच्छा इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ओज के विकृत हो जाने पर शरीर का भारीपन, कार्यों में अनिच्छा, उदासीनता, निद्रा तथा आलस्य आदि विकार उत्पन्न हो हो जाते हैं। ओज के क्षीण अर्थात् कम हो जाने पर मूर्छा, मांस की कमी तथा अन्त में मृत्यु इत्यादि लक्षण भी हो जाते हैं।*

---

‡ "So far as is at present known, protean matter is never absent from living substance and is never present on anything else but that which is alive or has been formed by the agency of living cells. It may therefore be stated that protean metabolism is the most characterestic of vitality."

*त्रयो दोषा बलस्योक्ता व्यापद्विस्रंसनक्षयाः ।
विश्लेषसादौ गात्राणां दोषविस्रंसनं श्रमः ॥
अप्राचुर्यं क्रियाणां च बलविस्रंसलक्षणम् ।
गुरुत्वं स्तब्धतांगेषु ग्लानिर्वर्णस्य भेदनम् ॥
तन्द्रा निन्द्रा वात शोधौ बलव्यापादि लक्षणम् ।
मूर्छा मांसक्षयो मोहः प्रलापोऽज्ञानमेव च ॥
पूर्योक्तानि च लिङ्गानि मरणां च बलक्षये ।

ओज के गुण

ओज के द्वारा स्थिर रूप से शारीरिक वृद्धि, कार्य करने की इच्छा, आकृति तथा वचनों में प्रसन्नता तथा बाह्य व आन्तरिक इन्द्रियों की अपने कार्यों के प्रति सन्तुष्टि इत्यादि लक्षण होते हैं। (सु० सू० अ० १५)

ओज के सम्बन्ध में महर्षि चरक ने लिखा है कि "हृदयस्थ धमनियाँ (Arteries) ओज को सारे शरीर में पहुँचाती हैं जिस कारण ओज से तृप्त हुए-हुए प्राणी समूह जीते हैं, ओज के अभाव में प्राणी शीघ्र ही मर जाते हैं।

ओज गर्भस्थ भ्रूण का जीवन है। बढ़ता हुआ ओज सर्वप्रथम गर्भस्थ जीव के हृदय में प्रविष्ट होता है। उसके पश्चात् शरीर के सभी अवयवों में प्रविष्ट हो जाता है। ओज ही जीवन है, ओज ही शरीर का बल है जिसके द्वारा शरीर केवल स्थिर रहते हैं। ओज को ही धमनियाँ सारे शरीर में पहुँचाती हैं, तथा सभी अवयव कार्य करते हैं।"*

ओज का नाश

पाश्चात्य विद्वानों ने ओज के नाश होने के लक्षण बताते हुए कहा है कि यदि रोग अत्यधिक बढ़ी अवस्था में न हो तो धीरे-धीरे शोथ (Dropsy) होना शुरू होता है। पाण्डु, श्वास कष्ट तथा दुर्बलता आदि लक्षण प्रगट होने लगते हैं। ओज के नाश (ओजश्च्युति) रोग का निर्णय मूत्र परीक्षा के द्वारा अच्छी प्रकार से हो सकता है। शोथ का प्रारम्भ आंखों के नीचे व गालों पर से होता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण शरीर में हो जाता है। मूत्र में मूर्त्त रूप में दिखाई देने वाले दोष जिस समय सम्पूर्ण अंगों में व्याप्त हो जाते हैं तब सिर दर्द सिर चकराना, वमन, मूर्छा आदि लक्षण प्रकट होते हैं।†

---

*तेन मूलेन महता महमूलामता दशा। ओजोवहाः शरीरेऽस्मिम् विधम्यन्ते समन्ततः॥
येनौजसा वर्त्तयन्ति प्रीणिताः सर्वदेहिनः। यद्दते सर्व भूतानां जीवितं नावतिष्ठते॥
यत्सारमादौ गर्भस्य योऽसौ गर्भं रसाद्रसः। सम्बर्द्धमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा॥
यस्य नाशान्न नाशोऽस्ति धारि यद्धृदयाश्रितम्। यः शरीररसः स्नेहः प्राणा यत्र प्रतिष्ठिताः॥
तत्फला विविधा वाताः फलयन्तीति महाफला॥ (च० सू० अ० ३०)

† In mild slowly cases, developing dropsy with anemia, shortness of breath or dyspnea and weakness are the only symptoms, the diagnosis being confirmed by the results of Urinary examination........dropsy soon appears begining first in the eyelids and face but later becoming generalized......
Urenic symptoms may develop at any time during the attack.

मधुमेह रोग में ओज नाश प्रायः देखा जाता है। इस सम्बन्ध में महर्षि चरक के निम्न शब्द उल्लेख योग्य हैं—

तैरावृतगतिर्वायुरोज आदाय गच्छति ।
यदा वस्ति तदा कृच्छ्रो मधुमेह प्रवर्त्तते ॥

मांस, मेदा तथा श्लेष्मा की वृद्धि होने पर वायु का मार्ग रुक जाता है, रुका हुआ वायु उलटे मार्ग से जाता हुआ ओज धातु को साथ लेकर मूत्राशय व वस्ति में चला जाता है, ऐसी स्थिति में मधुमेह रोग कष्टसाध्य हो जाता है। मधुमेह रोग में ओज-च्युति व ओज का नाश प्रायः होता है, इस विषय में एक प्रसिद्ध पाश्चात्य चिकित्सक ने लिखा है :—[1]मधुमेह में प्रायः ओज का नाश होता ही रहता है। एक अन्य पाश्चात्य चिकित्सक ने भी लिखा है[2]—मूत्र में लवण (क्षार ?) या अम्ल (acidity) जब बढ़ते हैं, तब ओज के नाश की सम्भावना भी प्रायः रहती है । अब यह सन्देह होता है कि ओज के वर्णन में चरक ने ऐसी बात क्यों लिख दी।

हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत् सपीतकम् ।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति ॥

हृदय में विद्यमान रक्त से युक्त ओज कुछ-कुछ पीले रंग का होता है। उसका आपेक्षिक गुरुत्व प्रायः १०२६ से १०२९ तक होता है। उसके नाश होने से मनुष्य का नाश हो जाता है।

एक अन्य पाश्चात्य लेखक ने ओज के बारे में निम्न विचार लिखे हैं—"रक्त मिश्रित ओज क्षार गुणयुक्त होता है। रंग कुछ-कुछ पीला होता है। आपेक्षिक गुरुत्व प्रायः १०२६ से१०२९ तक होता है। प्रति सैंकड़ा में दस भाग मूर्त्त पदार्थ होते हैं, तथा सैंकड़े पीछे आठ भाग ओज होता है।"*

इससे यह भी प्रगट है कि महर्षि चरक ने हृदय में विद्यमान पीत वर्ण वाले जिस रक्त मिश्रित ओज का वर्णन किया है वह यही ओज है। हमने भी लेख के प्रारम्भ में लिखा है कि ओज स्वतन्त्र रूप में शरीर में नहीं मिलता, बल्कि अन्यान्य पदार्थों के साथ मिला हुआ ही शरीर में दृष्टिगोचर होता है। अतः स्वभावतः उन पदार्थों के गुण व वर्ण इत्यादि भी ओज में पाये जाते हैं।

---

[1] Slight albuminuria is frequent.

[2] The urea and uric acid are increased. Albumin may be present.

* "The plasma is alkaline, yellowish in tint and its specific gravity 1026 to 1029. In round numbers plasma contains 10 p.c. of solids of which 8 are protieds in nature."

अतीत गौरव

लेखक—श्री रघुवीरशरण शर्मा वैद्य, रसायनशाला, बुलन्दशहर

श्रीमती राजकुमारीजी ने गत स्वास्थमंत्री सम्मेलन में आयुर्वेद चिकित्सा को तीन हजार वर्ष पुरानी बताया है। मैं जानना चाहता हूँ कि इसका आधार क्या है जबकि इतिहास इसको वैदिक काल अर्थात् आद्य त्रेता युग बताता है। इतिहास तथा ज्योतिष के अनुसार कलियुग को ५ हजार वर्ष व्यतीत हो गये हैं । वर्तमान पंचांगों में कलि संवत् ५०५१ लिखा हुआ है। कलि के प्रारम्भ से ३६ वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध हुआ था और उसके कुछ मास बाद पांडव युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ था। भारत युद्ध में सैनिकों के साथ शल्यचिकित्सक भी युद्ध क्षेत्र में गये थे। "उपतिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः। सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधुशिक्षिताः" (भीष्मपर्व)। और भारत युद्ध से लगभग ७५ वर्ष पूर्व काश्यप संहिता अग्निवेश संहिता, जो आज चरक संहिता कहलाती है, का निर्माण हो चुका था। उस युग में निमि वैदेह,कराल वैदेह शालाक्य शास्त्र के विशेषज्ञ थे। इनके उद्धरण टीका ग्रन्थों में आज भी उपलब्ध हैं। राजर्षि वार्योविद, राजर्षि काशीराज वामक, राजर्षि गान्धार राज नग्नजित् आदि आयुर्वेद के उच्चकोटि के विद्वान् थे।

महाभारत काल में राजा द्रुपद की पुत्री शिखंडी को पुरुष बनाने वाले स्थूलश्रवा जैसे वैद्य मौजूद थे। मगधराज का पुत्र जो कि दो भागों में उत्पन्न हुआ था उसको सन्धित करने वाली जरानाम स्त्री भी मौजूद थी। यही राजकुमार जरासन्धनाम से प्रसिद्ध हुआ है। इससे हजारों वर्ष पूर्व त्रेतायुग में राजा दशरथ का जन्म हुआ है। राजा दशरथ के समकालीन काशिराज दिवोदास या धन्वन्तरि थे । वे भारत के ऊंचे वैद्य माने गये हैं। सुश्रुत इन्हीं के शिष्य थे, इनके ही नाम पर सुश्रुत संहिता है जिसमें शल्य चिकित्सा या सर्जरी पर पर्याप्त प्रकाश आज भी मिलता है । सुश्रुत के साथी औपधेनव, पौष्कलावत आदि सैकड़ों विद्यार्थी और भी थे जो कि धन्वन्तरि के ही शिष्य थे।※ इन्होंने भी अपने-अपने नाम से शल्यतंत्र प्रधान ग्रन्थ बनाये थे। "शेषाणां शल्यतंत्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत्" (सुश्रुत)। दौर्भाग्य से आज वे सभी लुप्त हैं।

※ तेन सार्धं समध्येतुं मुनिसूनुशतं ययौ । भावप्रकाश

इसी प्रकार आत्रेय पुनर्वसु के क्षारपाणि, जतूकर्ण आदि शिष्यों की भी समस्त संहितायें आज लुप्त ही हैं।

इन्हीं दशरथ के परम मित्र अंग देश (भागलपुर) के राजा रोमपाद अश्व तथा गज आयुर्वेद के पंडित थे। उसी समय उत्तर भारत का तो कहना ही क्या दक्षिण भारत के मनुष्य जो कि गरुड़ वानर रीछ और नाग आदि नामों से कहे जाते थे उनमें भी आयुर्वेद के पूर्ण पंडित थे। राम रावण युद्ध में गरुड़ जाम्बवन्त, सुषेण, पनम, संपाति आदि अनेक वानर थे जिन्होंने समय-समय पर श्रीराम तथा लक्ष्मण के जीवन की रक्षा की थी (वाल्मीकि)। धन्वन्तरि से चार पीढ़ी पूर्व एक धन्वन्तरि और भी हुए हैं। उन्होंने ऋषि भारद्वाज से शिक्षा प्राप्त करके सैकड़ों शिष्य प्रशिष्य बनाये थे। राजा दशरथ से २० पीढ़ी पूर्व राजा दिलीप ने अपनी स्त्री के गर्भवती होने पर प्रसव विज्ञान के जानने वाले वैद्यों को नियुक्त किया था।❀

वैदिक—वेद के जानने वालों के लिये औषधि विज्ञान, त्रिदोष वर्णन, मलेरिया आदि विषम ज्वरों का वर्णन, चिकित्सा विज्ञान, शारीर रचना (एनाटामी) सूर्य चिकित्सा, जल चिकित्सा, वात चिकित्सा, जीवाणु विज्ञान तथा जीवाणुओं की चिकित्सा नई चीज नहीं है † वेदों में जीवाणुओं के श्वेत, कृष्ण, शितिकंठ, गृध्राकार आदि भेद से वर्णन मिलते हैं, तथा उनके निवासस्थान का भी उल्लेख हैं। तो क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि हमारे पूर्वज ऋषियों ने जीवाणुदर्शक (माइक्रोस्कोप) या तत्समान कोई यंत्र का भी आविष्कार अवश्य किया होगा।

और जो वेदों को ५ हजार वर्ष तक का ही पुराना मानते हैं उनको जानना चाहिये कि—वानर हनुमान चारों वेदों का ज्ञाता था।‡ आद्यत्रेता युग का राजा ययाति कहता है कि:—

"ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नं श्रुतिपथं गतः।
राजाऽहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः॥ (महाभारत)

अब तनिक विचारिये ५ हजार वर्ष कलियुग को बीत गये, इससे पूर्व द्वापर समाप्त हुआ और इससे भी पूर्व त्रेतायुग वह भी आद्यत्रेता फिर वेदों का निर्माण काल ५ हजार

❀ कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथ गर्भमर्मणि। (रघुवंश सर्ग ३)

† देखो लेखक का "भारतीय जीवाणु विज्ञान"

‡ नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्। (वाल्मीकि)

वर्ष कैसे माना जा सकता है।

भारत की पतनावस्था में बौद्धकाल में भी जीवक जैसे हजारों वैद्य थे। जीवक तक्षशिला विश्वविद्यालय का स्नातक था। तक्षशिला में न केवल भारत के अपितु भारतेतर ईराक, ईरान, कुस्तन (ख्वुतन) आदि अनेक देशों के विद्यार्थी शिक्षा पाने आया करते थे। उस युग में तक्षशिला के अतिरिक्त नालन्दा विद्यालय (विहार) तथा उज्जैन में भी एक विद्यालय था। जीवक वैद्य के सम्बन्ध में अनेक चामत्कारिक घटनाओं का वर्णन है उनमें से कुछ ये हैं—जीवक ने राजगृह के श्रेष्ठी के मस्तक तथा काशी के श्रेष्ठी के आंतों का आपरेशन किया था। और साकेत (अयोध्या) की एक महिला का सात वर्ष पुराना शिर दर्द केवल औषध द्वारा निर्मित घृत का नस्य देकर समूल नष्ट कर दिया था। उसके कुछ ही शताब्दी बाद चन्द्रगुप्त मौर्यकाल में युद्ध क्षेत्र में जाने वाले, सैनिकों के साथ चीर फाड़ के शस्त्र, यंत्र, विषनाशक औषधि; व्रणपूरक घृत तैल, मल्हम तथा ड्रेसिंग के लिये वस्त्र लेकर वैद्य भी साथ रहते थे। तथा अन्नपान की रक्षा के निमित्त स्त्रियां भी युद्धक्षेत्र में जाती थीं। "चिकित्सकाः शस्त्रयंत्रअगदस्नेहवस्त्रहस्ताः स्त्रियश्चान्नपानरक्षिण्यः उद्धर्षणीयाः पृष्ठतोऽनुगच्छेयुः।" (कौटिलीय अर्थशास्त्र संग्रामाधिकरण) इसके कुछ काल बाद चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने अपने आधीन राज्यों में पशुचिकित्सक और मनुष्य चिकित्सक वैद्यों को नियुक्त किया था। "प्रिय दर्शिनो राज्ञो द्वे चिकित्सिते कृते मनुष्य चिकित्सा च पशुचिकित्सा च।" (अशोक शिलालेख)

प्र० का० फोन नं० ५६३ स्थापित १८६२ तार—'इन्जेक्शन' झांसी

देशमान्य-भारतीय—मिश्रा—आयुर्वेदिक इन्जेक्शन

द्वारा थोड़े समय और मामूली खर्च में रोगों से छुटकारा पाइये। चिकित्सकों को इन्जेक्शन लगाने की शिक्षा दी जाती है। स्वर्णपदक प्राप्त भारत की सर्वप्रथम सचित्र आयुर्वेदिक इन्जेक्सन विज्ञान पुस्तक, षष्ठम् संस्करण मूल्य ५) पोस्ट ।।≈) नियमादि मुफ्त मंगायें।

सचित्र 'विद्युत विज्ञान' पुस्तक जिसमें बिजली की मशीनों द्वारा रोगों की चिकित्सा बताई है। मूल्य २।।) पो० ।≈)।

सर्वप्रथम आविष्कर्ता एवं एक मात्र निर्माता—

जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी, (रजि०) झाँसी यू० पी०

वनस्पति विज्ञान

लाल मिरच

ले० श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार,
अध्यक्ष, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट गु० कु० कांगड़ी, हरिद्वार

जिन पौदों के फलों से फली की मिरचें प्राप्त होती हैं वे गरम देशों में बहुत देर से बोये जा रहे हैं और अब उनके इतने अधिक भेद बन गये हैं कि यह ठीक कहना कठिन है कि शुरू-शुरू में ये कौन सी जातियाँ थीं। फली वाली मिरचों के लिए हिन्दी में सामान्य शब्द लाल मिरच है और लैटिन में कैप्सिकम। उत्तर लैटिन में कैप्सा (Capsa) का अर्थ बक्स होता है। फली रूपी बक्से में बन्द होने से इन का कैप्सिकम नाम पड़ गया है। लाल मिरच शीर्षक के नीचे हम इन सब का सामान्य रूप से इकट्ठा वर्णन कर रहे हैं। जहां किसी विशेष जाति को ग्रहण करना अभीष्ट है वहाँ उस जाति का विशिष्ट नाम लिख दिया गया है। लाल मिरचों के इकट्ठे वर्णन के बाद हम मुख्य जातियों का अलग-अलग वर्णन दे रहे हैं।

विविध भाषाओं में नाम

हिन्दी—लाल मिर्च।
बंगाली—लङ्का मरिच, गाछ मरिच।
गुजराती—मर्चु।
तामिल—मिल गाय।
मलयालम—कप्पल-मेलक।
फ़ारसी—फ़िलफ़िल-ए-सुर्ख़।
ब्राहमी—नापोय।
लैटिन—कैप्सिकम।

संस्कृत—रक्त मरिच।
काश्मीरी—मिर्च-वाङ्गुम।
मराठी—मैर सिंगा।
तेलगु—मिरच-सिंगा।
अरबी—अहमूर।
सिंहाली—मिरिस।
अंग्रेज़ी—रेड पेपर (Red pepper),
कैप्सिकम (Capsicum),
चिली (Chilli)।

अंग्रेज़ी नाम के सम्बन्ध में कुछ गड़बड़ ज़रूर मालूम देती है। परन्तु, व्यापार में प्रायः छोटी फलियों को चिली और बड़ी को कैप्सिकम कहते हैं।

वर्णन

लाल मिरच की कई जातियाँ और उनके कई भेद हैं। कुछ लम्बी-पतली और कुछ वेंगन जैसी गोल होती हैं। कुछ में बाहर के छिलके और अन्दर के बीजों के अलावा गूदा बिलकुल नहीं होता। कइयों में गूदा काफ़ी रहता है। लाल मिरच की बहुत सी जातियों की फलियों में तेज़ी भिन्न-भिन्न अंशों में होती है। साधारणतया फली जितनी बड़ी होती है उसमें चरपराहट उतनी ही कम होती है। छोटी फली अक्सर बहुत तेज़ होती है।

वैज्ञानिक तरीके से बाग़बानी करने वालों ने मिर्च के अनेक भेद पैदा कर लिये हैं जो रूप, रंग, आकार और चरपराहट में बहुत अधिक भिन्न-भिन्न हैं। कुछ क़िस्में ऐसी हैं जिन में मिर्च की न चरपराहट है और न ही मिर्च का रूप रंग। यदि आप को बताया न जाय तो ढाई इञ्च चौड़े और करीब इतने ही लम्बे सारे फल को कच्चा खा जाने पर भी आप उसे मिर्च मानने को तय्यार न होंगे। सब से छोटी मिरचें लम्बाई में आधे इञ्च से कम और बड़ी मिरचें करीब छः इञ्च लम्बी और चार इञ्च तक मोटी हो जाती हैं।

प्राप्ति स्थान

यद्यपि शुरू में यह भारत में स्वतः उगने वाला पौदा नहीं था परन्तु अब भारत के मैदानों में सब जगह और पहाड़ों पर भी बहुत से ज़िलों में बोया जा रहा है। पश्चिम की ओर यह मुख्यतया गोआ में बोया जाता है। बम्बई की मण्डियों में इस लाल मिरच को गोआ मिरच कहा जाता था।

जातियाँ

सौलेनेसी (Solanacee) नैसर्गिक वर्ग (Natural order) के अन्तर्गत मरिच गण (Capricum genus) की तीस जातियां (Species) मध्य और दक्षिणीय अमेरिका में मिलती हैं और एक जापान में।

खेती

श्रीयुत बी० एन० दत्त के अनुसार लाल मिरच की छोटी (चिली) और बड़ी (कैप्सिकम) बहुत सी किस्में भारत में कृषि की जा रही हैं। ये सब कैप्सिकम एनम (C. annum linn) और कैप्सिकम फ्रुटिसेन्स (C. frutesense linn) से निकली हैं। भारत में सबसे अधिक खेती की जाने वाली किस्में कैप्सिकम एक्यूमिनेटा, कैप्सिकम लौंगा और कैप्सिकम सिरेसिफ़ॉर्मिस हैं। ये सब कैप्सिकम एनम के भेद (Varieties) हैं।

बोने का समय

पौदे पर सारे साल भर फल लगते रहते हैं इस लिए किसी भी मौसम में बीज बोये जा सकते हैं। छोटी मिरचों के लिए पहाड़ों और मैदानों दोनों जगहों पर बोने का सब से अच्छा समय एप्रिल से लेकर जून के मध्य तक है। जो गोल बड़ी मिरचें सब्जी बनाने के काम आती हैं और जिन्हें शिमला की मिरच कहा जाता है उन्हें मैदानों में अगस्त से सितम्बर तक बोना चाहिए। जिन जगहों पर गरमी अधिक न पड़ती हो और बारिश भी बहुत जोर की न पड़ती हो वहाँ इसे ज़रा जल्दी (जून-जुलाई में) बोया जा सकता है। पहाड़ों पर इसे एप्रिल से मई के अन्त तक बोते हैं।

पौदे लगाना

नर्सरी में बीजों को छिटक कर बोया जाता है। जब पौदे दो-चार इञ्च लम्बे हो जाते हैं तो उन्हें खेत में एक फुट की दूरी पर पंक्तियों में इस तरह लगाते हैं कि हर एक पंक्ति के बीच में डेढ़-दो फ़ीट का फ़ासला छूट जाय। एक औंस बीज में प्रायः एक-डेढ़ हज़ार पौदे तय्यार हो जाते हैं। मिर्च की क़िस्म और ज़मीन की प्रकृति के अनुसार एक एकड़ के लिए चार से छः औंस तक बीजों की ज़रूरत पड़ती है।

बारिश न हो तो आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई करनी चाहिए। निलाई सदा की जाती रहे।

खाद

ज़मीन में खाद हो तो अच्छा है। यदि मिरच ऐसी ज़मीन में बोई गई है जहाँ पर दो-चार महीने पहिले किसी भी दूसरी फ़सल के लिए खाद दी गई हो तो फिर खाद की ज़रूरत नहीं रहती। अन्यथा, सड़ी खाद जब डालने की ज़रूरत हो तो मिर्चें बोने के कुछ सप्ताह पहले ही उसे ज़मीन में मिला देना चाहिए, तभी ज़मीन पूरी तरह ठीक बन सकेगी।

फ़सल

तीन-चार महीने तक फ़सल तय्यार हो जाती है। प्रति एकड़ में पैदावार करीब बत्तीस मन हरी या आठ मन सूखी हो जाया करती है।

व्यापार

१६२२-२३ में बाहर भेजी गई लाल मिर्चों का वास्तविक परिमाण १६१७४६

हण्डर-वेट था। इस का मूल्य ४६५२६६२ रुपये था। भिन्न,भिन्न ग्रेडों की फलियों की क़ीमतों में काफ़ी फर्क होता है और एक ही ग्रेड के मूल्य में अलग-अलग मण्डियों में काफ़ी अन्तर पड़ जाता है।

१८७२-७३ में बम्बई ने ५५६७ हण्डरवेट (६२३५०४ पौण्ड) सूखी मिरचें मुख्यतया मद्रास प्रेसिडेन्सी से ली थीं और इस में से उस ने ३३२३ हण्डरवेट निर्यात कर दी थीं।

१८७१ में सिंगापुर ने ११६६५२ पौण्ड लाल मिरचें बाहर के देशों से ली थीं। ये मुख्यतया पेनांग और पेगू से आई थीं। चीनी इस का बहुत प्रयोग करते थे।

सीरा लिकोनि ने १८७१ में ७२५८ पौण्ड मिरचें निर्यात की थीं। नेटाल के उपनिवेश ने उसी साल ६०७२ पौण्ड कामनी पेपर बाहर भेजी थी।

१८७४ तक ग्रेट ब्रिटेन में लाल मिरचें ज़ंजीबार, पश्चिमीय अफ्रीका और नेटाल से जाती थीं। इनके आंकड़े नहीं मिलते।

रासायनिक संघटन

लाल मिरच की एक छोटी क़िस्म (कैप्सिकम मिनिमम) की सूखी पकी फलियों में कैप्सेसीन (Capsaicin), स्फटिक बन जाने वाला एक अम्ल, एक उड्डनशील तेल रेज़िन, एक स्निग्ध पदार्थ, और एक उड्डनशील क्षारीयतत्व (Alkaloid) होते हैं।

लाल मिरचों में जो चरपराहट होती है वह कैप्सिसीन नामक तैलीय रेज़िन के कारण होती है। दूसरा स्फटिकाकार पदार्थ कैप्सायसीन (Capsiacin, $C_{18}H_{28}ND_{३}$ अथवा $C_{18}HND_{३}$) है जो छिलके (Pericarp) में रहता है। कैप्सायसीन के ०.००१ प्रतिशतक क्षारीय जलीय घोल की एक बूंद जीभ पर तेज़ जलन पैदा कर देती है। कैप्सायसीन युक्त सार (एकस्ट्रैक्ट) के वाष्प प्राप्त करने के लिए जब उसे गरम किया जाता है और वाष्प सांस द्वारा अन्दर जाते हैं तब गले के अन्दर एक विशेष प्रकार की अनुभूति होती है। फ़ार्माकोग्राफ़िया में इसके वाष्पों के लिए लिखा है 'बहुत भयङ्कर तिक्त होते हैं, और इस पदार्थ को साधारण रूप से पकड़ने में भी बड़ी सावधानी की ज़रूरत पड़ती है।'

पेट के रोग

सारे संसार में लाल मिरच मसालों में बरती जाती है। थोड़ी मात्राओं में यह आमाशयिक रस को उत्तेजित करती है परन्तु अधिक मात्रा में खा लेने पर आमाशय

की श्लैष्मिक झिल्लियों में शोथ पैदा कर देती है। चिकित्सा में लाल मिरच मुख्यतया क्षुधा उत्तेजक और दीपक के रूप में बरती जाती है। दूसरी दवाओं के साथ मिला कर यह अजीर्ण, अफ़ारा और हैज़े में दी जाती है। लालमिरच आधी रत्ती, रेबन्द चीनी ढाई रत्ती और सोंठ ढाई रत्ती ऐसी एक मात्रा दिन में दो बार दीपन पाचन के लिए देते हैं। लाल मिरच, सोंठ और रेबन्द चीनी को घोट कर मूंग के बराबर गोलियाँ बना ली जाती हैं। ये गोलियाँ बहुत अच्छी पाचक होती हैं और आमाशय की निर्बलता के कारण पैदा हुए अजीर्ण (Atonic dyspepsia) में लाभ के साथ दी जाती है। लाल मिरच आधी रत्ती और मुसब्बर आधी रत्ती की शहद के साथ गोलियाँ बना लें। बेअरिंग इसे कब्ज और अजीर्ण में देते हैं।

अजीर्ण और क्षुधानाश में लाल मिरच के चूर्ण को मुसव्वर के साथ मिला कर देना उपयोगी होता है। लाल मिरच के मद्यासव (Tinctura capsici) को ऐलोपेथी में दूसरी बलदायक और कड़वी दवाओं के साथ मिला कर भूख बढ़ाने और आमाशयिक रस को उत्तेजना देने के लिए बरता जाता है। बूढ़ों के अफ़ारे में जब कि आमाशय निर्बल हो जाता है भोजनों में लाल मिर्च का प्रयोग आरम्भ कर देने से लाभ नज़र आता है।

लाल मिरच, भुनी हुई हींग और कपूर प्रत्येक आधी रत्ती की एक मात्रा बहुत ज़ोर के दस्तों में दी जाती है।

मदात्यय

पुराने मदात्यय (Chronic alcohlism) के रोगियों के लिए यह सर्वोत्तम ओषधियों में से एक है।

गले के रोग

श्लैष्मिक आवरण (Mucous membrane) पर लाल मिरच का प्रबल कार्य होता है। कण्ठ व्रण और गला बैठ जाने में गरारों के रूप में इस का प्रयोग किया जाता है। तीन पाव उबलते हुए पानी में तीस रत्ती लाल मिरच और सवा तोला नमक मिला कर पाँच मिनिट पड़ा रहने दें। छान कर गला बैठने में और वाचिक तन्त्रियों के ढीला हो जाने (Relaxed throat) में गरारे करने चाहिएँ।

गुरदे के रोग

गुरदों का कार्य खराब होने से पेशाब ठीक तरह न आता हो तो यह उपयोगी औषध होती है। गुरदों की पुरानी शोथ के लिए यह सर्वोत्तम ओषधियों में से एक है।

इसे स्वल्प परिमाण में देने का ध्यान रखना चाहिए। बड़ी मात्राओं में देने से गुरदे की क्षोभ और शोथ पैदा कर देता है जिस से पेशाब रुक-रुक कर कष्ट से बूंद-बूंद आने लगता है।

छाला डालने के लिए

त्वचा पर लगाने से पहले यह उसे लाल कर देती है और फिर छाला डाल देती है। ताज़ी फलियों को राई के साथ घोट कर बनाये कल्क को इस प्रयोजन के लिए बरता जाता है।

गठिया

आमवात और कटिशूल में आक्रान्त मांसपेशियों पर इस का लेप किया जाता है। लाल मिरच के तैलीय रेज़िन (Oleoresin) को ईथर में घोल कर शोषक रूई पर छिड़क कर आमवात (गठिया) में जोड़ों पर लगाते हैं।

छोटी लाल मिरच

छोटी लाल मिरचों का व्यापार में अंग्रेज़ी नाम कायनी पेपर (Coynne Pepper) है। कायनी पेपर से अभिप्राय शायद फ्रेंच गायना की लाल मिरच से रहा है। कायनी पेपर मुख्यतया कैप्सिकम फ्रुटिसेन्स, कैप्सिकम बैक्केरम और कुछ अन्य छोटे फल वाली कैप्सिकम की जातियों से प्राप्त की जाती है। डि कैण्डोले लिखते हैं कि बाज़ारों में कायनी पेपर के नाम से जो चीज़ बिकती है उस का अधिक भाग कैप्सिकम फ्रुटिसेन्स पौदे से प्राप्त किया जाता है; परन्तु यह नाम दूसरी मिरचों के लिए भी प्रयुक्त होता है। छोटी लाल मिरच शीर्षक के नीचे हम कैप्सिकम फ्रुटिसेन्स (C. frutscens willd) का वर्णन कर रहे हैं। बंगाली में इसे लाल गाछ मरिच और लाल लङ्का मरिच कहते हैं। इस का अंग्रेज़ी नाम शबी कैप्सिकम है।

फलियाँ पतली, नारंगी लाल रंग की, आधे से पौन इञ्च लम्बी और कभी-कभी एक इञ्च तक भी लम्बी मिल जाती हैं। इस में एक किस्म ऐसी होती है जिस की फलियाँ नोकीली होती हैं और पकने पर जिनका रंग पीला या चमकीला नारंगी होता है। यही किस्म है जो भारत में बहुत इस्तेमाल की जाती है, ख़ासकर सुखाई हुई हालत में। बाज़ारों में सब जगह मिल जाती है।

यह पौदा बड़ी लाल मिरच (C. annum linn) के पौदे से अधिक ऊँचा और अधिक कठीले तने वाला होता है। दोनों गोलार्द्धों के गरम प्रदेशों में सामान्यतया

कृषि किया जाता है। कैण्डोले लिखते हैं कि रॉक्सवर्थ भारतीय पौदों का उद्भव देने में काफ़ी जागरूक रहा है, वह इसे भारत में जंगली नहीं समझता। रॉक्सवर्थ के फ़्लोरा इण्डिका के १८७४ वाले संस्करण में तो मुझे इस के प्राप्ति स्थान के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिला। ब्लूम (Blume) बताता है कि यह मलय द्वीप समूहों में झाड़ियों के अन्दर प्राकृतिक रूप से उगने लगा है। अमेरिका में इस की खेती अधिक पहले से हो रही है। वहां यह जंगलों में कई बार जंगली पाया गया है और प्रकट रूप में यह उस प्रदेश का मूल पौदा दीखता है। दे पार्टियस इसे अमेज़न के तट से लाया था, पीपिङ्ग (Peepping) पेरु के मेनस (Maynas) प्रान्त से और ब्लैंकेट (Blancket) बाहिआ (Bahia) प्रान्त से। इस से मालूम होता है कि इस के मिलने का क्षेत्र बाहिआ पूर्वीय पेरू तक फैल गया है जो बताता है कि सामान्यतया दक्षिण अमेरिका में भी यह मिल जाता है।

कैप्सिकम फैटीजिएटम

यह प्रकट रूप में दक्षिणीय भारत में जंगली होती है और गरम अफ्रीका तथा अमेरिका में बहुत बड़े पैमाने पर कृषि की जाती है।

इस के फल आधे से तीन-चौथाई इञ्च लम्बे, व्यास में $\frac{२}{१०}$ इञ्च, लम्बोतरे, सिरे की ओर क्रमशः पतले होते हुए खुण्डे सिरे पर समाप्त होते हैं। आधार की ओर जरा से सिकुड़े हुए। पुस्पछद (Calyx), जो सदा विद्यमान नहीं होता, प्यालेनुमा, पांच दांतों और पांच पार्श्वों वाला होता है जो एक पतले, सीधे, पौन से एक इञ्च लम्बे डण्ठल पर लगा रहता है। फल कुछ कुछ पिचके हुए और सूखने के कारण झुर्रीदार होते हैं। पुराने हो जाने पर ये भंगुर हो जाते हैं। चमड़े जैसे, चिकने, चमकदार, साफ़, अर्द्ध-पारदर्शक, पतले, मैले नारंगी-लाल रंग के सूखे छिलके के अन्दर प्रायः अठारह बीज होते हैं जो एक केन्द्रीय परदे पर दो खानों में लगे रहते हैं। बीजों की शक्ल प्रायः गोल या अण्डाकार चपटी थालियों जैसी। व्यास में ये करीव $\frac{१}{८}$ इञ्च और किनारों पर कुछ-कुछ मोटे होते हैं। भ्रूण (embryo) इतना मुड़ा हुआ होता है कि प्रायः एक छल्ला सा बना होता है। छिलके और बीज दोनों का स्वाद अत्यन्त चरपरा और आग लगाने वाला होता है।

फ़ार (Farre) ने निर्णीत किया है कि लीनियस के स्पिसीज़ प्लान्टेरम की

कैप्सिकम फ्रुटिसेन्स यही मिरच (C. fastigiatum blume) है, परन्तु इसी विद्वान के हॉर्टस क्लिफार्टिएनस की कैप्सिकम फ्रुटिसेन्स नहीं।

धान लङ्का मिरच

रॉक्सबर्थ ने लैटिन नाम कैप्सिकम मिनिमम (C. minimum roxli) के नीचे इस पौदे का वर्णन किया है। वह इसका बंगाली नाम धान लङ्का मरिच और अंग्रेजी नाम ईस्ट इण्डियन बर्ड चिली (पूर्वीय भारत की पक्षियों की लाल मिरच) या कायनी पेपर कैप्सिकम देता है। फ्लुकिजर और हैन्वरी की सम्मति में रॉक्सबर्थ ने कैप्सिकम फैस्टीजिएटम को ही कैप्सिकम मिनिमम नाम के नीचे वर्णन दिया है।

वाइट के अनुसार भारतीय इस का प्रयोग तो करते हैं परन्तु यह किस्म इतनी अधिक पसन्द नहीं की जाती। यह वही पौदा (species) है जिसे ब्रिटिश फार्माकोपिया के लेखकों ने औषध में प्रयोग किये जाने वाली लाल मिरच की फलियों (Fructus capsici) का स्रोत लिखा है। लण्डन के बाजारों में मिलने वाली लाल मिरचों का एक बड़ा भाग यही बनती है।

बड़ी लाल मिरच

बड़ी लाल मिरचों का व्यापारिक अंग्रेज़ी नाम पैप्रिका है। ये मुख्यतया कैप्सिकम एनम (C. annum linn) पौदे से प्राप्त की जाती है। कैप्सिकम एनम (अंग्रेज़ी नाम एनुअल कैप्सिकम) की साधारण किस्म के फल कैप्सिकम फैस्टीजिएटम के फल से मिलते हैं। इन में भेद यह है कि ये आकार में बड़े, दो से तीन इंच या अधिक लम्बे, और सिरे पर अधिक पतले होते हैं। बीजों का आकार कैप्सिकम फैस्टीजिएटम के बीजों से मुश्किल से ही कुछ बड़ा होता होगा।

कैप्सिकम एनम की फलियां, आकार-प्रकार तथा रूप-रंग में बहुत अधिक भिन्न भिन्न तरह की होती हैं। कुछ भेदों में फलियां बड़ी होती हैं और कभी कभी पांच इंच तक लम्बी हो जाती हैं। कुछ भेदों में फलियां सोधी, खड़ी तथा कुछ में पेण्डुलम की तरह लटकी होती हैं। नाडीन, फ्लुकिजर और हेन्वरी के अनुसार कैप्सिकम लौंगम (C. longum DC.) और कैप्सिकम ग्रौसम (C. grosum willd) इस पौदे से स्पष्टतया भिन्न नहीं हैं। ये दोनों कैप्सिकम एनम के ही भेद हैं। कैप्सिकम एनम और कैप्सिकम लौंगम में मुख्य भेद यह है कि पहली के फल सीधे खड़े और दूसरी के पैण्डुलम की तरह लटकते हुए होते हैं।

बंशलोचन

[लेखक— श्री ओ० एन० पेट्री० एम० एस० सी०, सागर यूनिवर्सिटी, सागर]

(अनुवादक—कविराज ओंप्रकाश वैद्यवाचस्पति, २३, दरियागंज देहली)

(नवम्बर अंक से आगे)

बंसलोचन की दोनों ही जातियाँ भंगुर तथा बिना किसी विशिष्ट आकृति के होती हैं। बहुत थोड़े दबाव से ही यह तुरन्त कूटी और पीसी जा सकती हैं। यह दोनों ही जातियाँ गन्ध और स्वाद रहित होती हैं।

यह पदार्थ अत्यन्त ही झरझरा अर्थात् छिद्रपूर्ण होता है। ब्यूरस्टर के मतानुसार इस में शोषण करने की शक्ति अन्य सभी खनिज पदार्थों से अधिक है। ब्यूरस्टर का यह दावा है कि इसमें छिद्रों की भरमार उस प्राकृतिक पदार्थ से २$\frac{१}{२}$ गुणा अधिक है, जिससे कि बंसलोचन की उत्पत्ति हुई है, तथा वह छिद्र इतने सूक्ष्म हैं कि अत्यन्त शक्ति वाले अणुवीक्षण यन्त्र से भी देखने में नहीं आते। किन्तु यह वक्तव्य भ्रान्तिमूलक है, क्योंकि लेखक इन छिद्रों का चित्र लेने में समर्थ हो सका है।

अणुवीक्षण यन्त्र के नीचे इस पदार्थ की एक जैसी बनावट दृष्टिगोचर नहीं होती। छिद्रों की बनावट विषम व अव्यवस्थित है, तथा भिन्न-भिन्न परतों में विभाजन भी भिन्न-भिन्न है। इसके एक पतले से परत को अणुवीक्षण यन्त्र के नीचे रखने से यह कैल्शियम युक्त अस्थि की तरह प्रतीत होता है।

तुरन्त पौधे से निकले हुए बंशलोचन की परत को अणुवीक्षण यन्त्र के नीचे रखने से, छिद्रों के स्थान में, उसके साथ ऐन्द्रियिक पदार्थ चिपटा हुआ दृष्टिगोचर होता है। यहाँ भी ऐन्द्रियिक पदार्थ का विभाजन एक विषम अथवा अव्यवस्थित रूप में है, जो कि किसी निश्चित आकार के अनुसार नहीं होता। ऐन्द्रियिक पदार्थ की विद्यमानता भिन्न-भिन्न परतों में भिन्न-भिन्न है। पौधे से निकलते हुए बंसलोचन को जब भूनते हैं, तो ऐन्द्रियिक पदार्थ तो जल जाता है और अपने पीछे रिक्तस्थान छोड़ जाता है। यही कारण है, कि बंसलोचन इतना छिद्रमय है।

इस द्रव्य का आपेक्षिक घनत्व २.१६–२.१९ पाया गया है (The wealth of India, Raw materials Vol. 1, PP. 148)। जंगल ब्राण्ड नं० १ के पैकट में

बिकने वाले वंसलोचन का आपेक्षिक घनत्व १.६३ से २.१८ तक २०° c (तापमान) पर देखा गया है।

वंसलोचन के किरण वक्रता सम्बन्धी प्रदर्शन सिद्धान्त के बारे में परस्पर विरोधी विचार पाए जाते हैं। ब्यूरस्टर के मतानुसार इसका किरण वक्रता सम्बन्धी प्रदर्शन सिद्धान्त सभी ठोस अथवा द्रव पदार्थों से कम है। इसकी किरण वक्रता शक्ति केवल जल से ही कम नहीं है, प्रत्युत इतनी कम है कि हम इसे तक़रीबन जल और वायु की मध्यवर्त्ती कह सकते हैं (Watts Dictionary of Economic products of India, Vol. I. PP. 383)। वैहिमेर (Wehmer) ने अपनी डाई फ्लैन्ज़ैन्स्टौफ़ी (Die Pflanzenstoffe) में इसकी किरण वक्रता सम्बन्धी शक्ति, डी. लाईन (D-line) के लिए, १. ११५—१.५०३ तक बतलाई है।

लेखक ने यह अनुभव किया है, कि मण्डी में बिकने वाले बंसलोचन में दृष्टि सम्बन्धी गुण पाए जाते हैं। यदि इस द्रव्य को क्लोरोफ़ार्म, बैन्ज़ीन, कार्बन टैटराक्लोराइड तथा तारपीन का तैल आदि द्रव्यों में डुबोया जावे तो यह पारदर्शक हो जाता है। छोटे-छोटे टुकड़े तो केवल जल में डालने से ही पारदर्शक हो जाते हैं। वस्तुतः यह विश्वस्तरूप से कहा जा सकता है, कि प्रत्येक "सफ़ाई करने का साधन", जो कि पशुओं के केशसूत्रों के शुद्ध करने के लिये प्रयुक्त होता है, वंसलोचन को भी साफ़ करता है।

वंसलोचन के टुकड़े को उपर्युक्त द्रवों में रखने से पारदर्शक बनने तक जो समय लगता है, वह साधारण गणना के अनुसार उतना ही होता है, जितना कि उस द्रव का ऊर्ध्वतलीय दबाव (Surface Tension) होता है। उदाहरणतया क्लोरोफ़ार्म, जिसका ऊर्ध्वतलीय दबाव २०° C. (सैण्टी ग्रेड) तापमान पर २७.१३ है, बंसलोचन को आध मिनट में पारदर्शक बनाता है, परन्तु साधारण जल, जिसका कि ऊर्ध्वतलीय दबाव २०° C. पर ७२.७५ है, बंसलोचन को १० मिनट में पारदर्शक बनाता है। यही भिन्न-भिन्न विधियाँ, शायद बंसलोचन के उपर्युक्त "किरण वक्रता प्रदर्शन सिद्धांत" के परस्पर विरोधी गुणों के लिये उत्तरदायी हैं।

जब इसे "शोधक द्रव" में रखा जाता है तो यह प्रायः उसी द्रव के अनुसार अपने में "किरण वक्रता प्रदर्शन सिद्धान्त" (Refrective Index) ग्रहण कर लेता है। इन्हीं भिन्न-भिन्न विधियों के कारण ही इसके लिये कोई निश्चित "किरण वक्रता सम्बन्धी प्रदर्शन सिद्धांत" निश्चित करना कठिन है।

यहाँ यह भी बता देना उचित है कि ब्यूरस्टर के मतानुसार यह पदार्थ ज्वलनशील भी है, किन्तु लेखक को इसमें यह गुण लेशमात्र भी नहीं मिला।

इस लेख के आरम्भ में ही यह बताया जा चुका है, कि मण्डी में बिकने वाले बंसलोचन की दो जातियाँ होती हैं। एक तो नीलाभ श्वेत दूसरी दुग्धमय श्वेत। पौधे से निकले हुए प्राकृतिक बंसलोचन को भूनने पर लेखक ने पाया कि उसमें से कुछ तो नीलाभ हो गया है, और कुछ दुग्धमय श्वेत और अधिक अग्नि देने पर उसमें कुछ और अन्तर नहीं पड़ा। इससे यह प्रतीत होता है कि प्रायः दोनों जातियों की वर्ण भिन्नता केवल घोल क्रिया के विविध तापांशों पर ही निर्भर नहीं है, प्रत्युत इस बिना किसी विशेष आकृति वाले ठोस पदार्थ के विषम सम्मिश्रण का परिणाम है।

बाज़ार में एक कृत्रिम बंसलोचन भी सिलिसिकएसिड अथवा बंसलोचन के नाम से बिकता है। प्रायः इसका रंग भूरा होता है। यह अत्यधिक मात्रा में बिकता है, और इसका स्वाद नमकीन-सा होता है। यदि बाह्य भूरे रंग की सतह को तोड़ें तो अन्दर से अधिक साफ सतह नजर आती है। यह जाति भी छिद्रमय है, किन्तु अपेक्षया इसके छिद्र बड़े होते हैं।

बंसलोचन की कृत्रिम जाति को इसके रंग और कुछ-कुछ नमकीन स्वाद से, आसानी से पहचाना जा सकता है।

क्रमशः

रसशाला औषधाश्रम (रजिस्टर्ड)

गोंडल–काठियावाड़–सौराष्ट्र

निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान राजवैद्य जे० के० शास्त्री की अध्यक्षता में चलते हुए ४० वर्ष के इस पुराने कारखाने में भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, रस, गोली, चूर्ण, घृत, तैल और अवलेह आदि शास्त्रीय विधि अनुसार निर्मित दो हजार प्रकार की सिद्ध औषधें तैयार रहती हैं। १५० पृष्ठ के बड़े सूचीपत्र का मूल्य आठ आना। छोटा सूचीपत्र मुफ्त। सब भाषाओं के सूचीपत्र मिलते हैं। बड़े नगरों तथा ग्रामों के लिए एजेन्ट नियत करने हैं। उपर्युक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

शास्त्र चर्चा

त्रिदोष का वैज्ञानिक विवेचन

(लेखक—डा० लक्ष्मीनारायण पचौरी, गोविन्द गंज, जबलपुर)

(गतांक से आगे)

: ४ :

कोषाणु विज्ञान (Cytology)—

दोष भेद का विवेचन करने के पश्चात् इसी स्तम्भ में संक्षेप से कोषाणु विज्ञान का वर्णन इस लिये करते हैं कि उसका सम्बन्ध इस प्रकरण में वर्णित शरीर व्यूह घटक त्रिदोष से है। त्रिदोष का यह विभाग सप्त धातुओं से समवाय सम्बन्ध के रूप में सम्पूर्ण शरीर में व्यापक है। धातुओं के सूक्ष्मतम अंश कोषाणु या सेल (Cell)में क्रमशः जलयित्व, ताप और चलत्व गुणों से कफ, पित्त और वात की प्रतीति होती है। इससे सिद्ध होता है कि प्रत्येक कोषाणु में वातादित्रय उपस्थित हैं। आधुनिक मतानुसार चेतन पदार्थों में निम्नोक्त आठ क्रियाएं हैं—

(१) आहार-ग्रहण और आत्मसादन
(२) श्वासोच्छ्वास
(३) गमन
(४) मल-विसर्जन
(५) प्रजनन
(६) आघात प्रतिक्रिया
(७) वातावरण के अनुसार परिवर्तन
(८) मरण

ये क्रियाएं कुछ न कुछ अंश में शरीर के प्रत्येक कोषाणु में पायी जाती हैं जिसकी पुष्टि प्रायोगिक परीक्षाओं द्वारा हो चुकी है । इनका सम्बन्ध त्रिदोष के भावाभाव तथा उसके विभिन्न अवयवों से है अतः इससे भी निश्चित होता है कि प्रत्येक कोषाणु में त्रिदोष अवस्थित हैं। कोषाणु का कौनसा भाग किस दोष का है इसका निर्देश दशम बिन्दु में किया है। ये कोषाणु शरीर निर्माण की इकाई (unit) हैं। इन ईंट रूपी इकाइयों के संयोग से अंग, संस्थान तथा धातुओं (organs, systems and tissues)

का निर्माण होकर शरीर रूपी भवन तैयार होता है। ये कोषाणु गतिहीन और गतिमान दो प्रकार के होते हैं। रक्त, लसीका, शुक्र आदि द्रव धातुओं में उपस्थित कोषाणु गतिमान तथा अस्थि-मांसादि ठोस धातुओं में गतिहीन हैं। गम्भीरता से देखा जावे तो इन गतिहीन सेलों में भी अपने स्थान पर कुछ न कुछ गति होती रहती है किन्तु वे गतियुक्त कोषाणु के समान भ्रमणशील नहीं हैं।

यहां पर एक शंका होती है कि गति वायु का धर्म है तथा वायु का स्थान इतर धातुओं की अपेक्षा अस्थि में विशेष है—(तत्राऽस्थ्नि स्थितो वायुः)। रस और शुक्र कफप्रधान तथा रक्त-पित्तप्रधान धातुएं हैं। ऐसी अवस्था में अस्थि के कोषाणुओं का स्थिर रहना और रस, रक्त तथा शुक्र के अणुओं का गतियुक्त होना कैसे सम्भव है ? इसका समाधान इस प्रकार है—

प्रत्येक कोष्ठ में अनेक गुण हैं (चौथे बिन्दु के 'ग' खण्ड में वर्णित)। उनमें से दोषों में सब गुणों का एक साथ तथा एक प्रमाण में होना आवश्यक नहीं है। गुणों के संख्या भेद और विकल्प याने उनकी अंशांश कल्पना से एक ही दोष में भिन्न-भिन्न स्थानों पर वैचित्र्य हो जाता है। यद्यपि रस, रक्त और शुक्र वातप्रधान धातुएं नहीं हैं तथापि तत्रस्थ वायु में उसके अन्य गुणों की अपेक्षा लघुत्व और चलत्व गुण सर्वाधिक रहते हैं इसलिये इन द्रव धातुओं के अणु गतिशील होते हैं। अस्थि में पित्त और कफ की अपेक्षा वायु का आधिक्य होने से वह वातप्रधान धातु है किन्तु तत्रस्थ वायु में चलत्व गुण बहुत कम तथा वायु के शेष गुण-रूक्षता, खरता आदि विशेष रहने से उसके अणु रस रक्तादि के समान गतिशील नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि अस्थि मांसादि ठोस धातुओं में त्रिदोष के अतिरिक्त पृथ्वी तत्त्व तथा रस रक्तादि द्रव धातुओं में आकाश तत्त्व अधिक रहने से, ठोस धातुएं गुरु और स्थिर तथा द्रव धातुएं लघु और चल हैं। गुरु धातुएं पृथ्वीतत्त्व के आधिक्य के कारण स्वभावतः स्थिर हैं तथा उन पर वायु के चलत्व गुण का प्रभाव भी कम होता है। द्रव धातुएं जल तत्त्व के कारण स्वभावतः गतिशील हैं तथा आकाश तत्त्व के आधिक्य के कारण उनके लघु होने से वायु के चलत्व गुण का प्रभाव गुरु धातुओं की अपेक्षा उन पर अधिक होता है।

(छ) स्थान (Sites)—

ऊपर किये गये विवेचन से सिद्ध होता है कि प्रत्येक कोषाणु या सेल त्रिदोष का स्थान है किन्तु यह बात व्यूह घटक त्रिदोष के लिये विशेष लागू होती है। व्यवहार और

उपयोग की दृष्टि से व्यापार घटक त्रिदोष अधिक महत्त्व के हैं अतः अब उसके प्रधान स्थानों का वर्णन किया जाता है—

(अ) तीन दोषों के स्थान—

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः। (अ० हृ० सू० १/७)

यद्यपि ये सम्पूर्ण शरीर में व्यापक अथवा सर्वशरीरचर हैं तथापि वात पित्त और कफ के विशिष्ट स्थान क्रमशः हृदय और नाभि के नीचे, मध्य और ऊपर हैं। स्थान के सम्बध में चरक-महारोगाध्याय में निम्नलिखित वर्णन दिया है—

तेषां त्रयाणामपि दोषाणां शरीरे स्थानविभागमनुव्याख्यास्यामः । तद्यथा-वस्तिः पुरीषाधानं कटि : सक्थिनी पादावस्थीनि च वातस्थानानि, तत्रापि पक्वाशयो विशेषेण वातस्थानम्। स्वेदोरसोलसीकारुधिरमामाशयश्चेति पित्तस्थानानि, तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्। उरः शिरो ग्रीवा पर्वाण्यामाशयो मेदश्च श्लेष्मणः स्थानानि, तत्रापि उरो विशेषेण श्लेष्मस्थानम्।

च० सू० २०/८

त्रिदोष सर्व शरीर व्यापक तथा सवशरीरचर होने पर भी वात, पित्त और कफ के उपर्युक्त मुख्य तीन स्थान बताने के कारण—

(१) पचन क्रिया के समय अन्न प्रणाली में इन्हीं तीन स्थानों में उनका उद्गम होता है।

(२) दोष जब वृद्ध एवं कुपित होते हैं तो इन्हीं स्थानों पर संचित होकर विभिन्न भागों में प्रसृत होते हैं।

(३) निदानार्थ, दोषों के व्यवहारोपयोगी मल परिणाम या विकृत स्वरूप का दर्शन यहीं से निकले हुए कफ, पित्त और वायु से होता है। पित्त ज्वर व अम्लपित्त में आमाशय एवं ग्रहणी में पित्त का संचय हो वमन में हरा नीला पीला कट्वम्ल रस युक्त द्रवरूप पित्त प्रत्यक्ष गिरता है। निमोनिया व कासश्वासादि में श्वेत पिच्छिल मल रूप कफ फुफ्फुस व श्वास मार्ग से गिरता है। आध्मान, ग्रहणी आदि में मलरूप अधोवायु पक्वाशय में कुपित हो गुदद्वार से सशब्द बाहिर आती है। प्रत्यक्ष शारीर में लिखा हैं—

यत्र यत्र कायांशे विशेषेण मलपरिणामो वैकृतलक्षणादर्शनं वा वातादीनां, तत्रैव तेषामवस्थानविशेषः कल्प्यते स्थूलबुद्धीनां बोधसौकर्य्याय।

त्रिदोषों के मल उनके कार्य अथवा परिणाम हैं, इसलिये यदि कारण रूप सूक्ष्म दोषों के स्थान न बता कर कार्यरूप स्थूल मलों के स्थान बता दिये गये तो यह अनुचित नहीं है।

(४) चिकित्सा में दोष शान्ति के लिये जो वमन, विरेचन व वस्ति का प्रयोग होता है उनके द्वारा तत्स्थानीय प्रकुपित कफ, पित्त व वायु निष्कासित होते हैं और प्रत्यक्ष रूप से तज्जन्य रोगों की शान्ति देखी जाती है।

(५) वात—संस्थान का केन्द्र शिरस्थ मस्तिष्क होने के कारण वायु का प्रधान स्थान मस्तिष्क बताना चाहिए था ऐसी एक शंका होती है। किन्तु उपरिनिर्दिष्ट कारणों से इसका समाधान हो जाता है। इसके सिवा शरीर के हृदय, फुफ्फुसादि आन्तरिक अंगों की क्रिया के लिये मस्तिष्क सौषुम्निक नाड़ीसंस्थान की अपेक्षा स्वतंत्र नाड़ीसंस्थान का विशेष महत्त्व है। इसका मस्तिष्क जिसे उदर्य मस्तिष्क (Abdominal brain) कहते हैं, वह, तथा सुषुम्नामूल पक्काशय के समीप हैं; इसलिये भी वात का प्रधान स्थान पक्काशय कहना अनुचित नहीं है। तथा चार पांचों वायुओं में प्राण और अपान प्रधान हैं जिनमें शेष तीन का अन्तर्भाव हो जाता है। इन दोनों में भी अपान प्रधान वायु है क्योंकि प्राण तो सिर्फ अन्न-जल और वायु का प्रवेश शरीर में करती है किन्तु अपान के द्वारा ही नूतन रसोत्पत्ति तथा रस मल विवेक और मलनिष्कासन की क्रिया सम्पादित होती है। अतः अपान प्रधान वायु तथा उसका स्थान पक्काशय प्रधान वातस्थान है।

आशयों की दृष्टि से दोषों के स्थान--

सुश्रुत शारीर पांचवे अध्याय में वाताशय, पित्ताशय और कफाशय के नाम से तीन दोषों के तीन आशय बताये गये हैं और इनसे उपर्युक्त तीन स्थान ही इंगित होते हैं। पचनसंस्थान की दृष्टि से आमाशय, पच्यमानाशय और पक्काशय क्रमशः कफाशय पित्ताशय और वाताशय हैं।

यहां पर दो शंकाएं होती हैं—(१) कफाशय और वाताशय के अतिरिक्त आमाशय और पक्काशय का निर्देश आशयों में अलग से किया है तब ये इनके समानार्थक कैसे हैं? इसका उत्तर यह है कि आशयों का जो निर्देश वहां पर है वह आशय संज्ञा सामान्य की दृष्टि से है, न कि आशय गणना की दृष्टि से। अर्थात् शरीर में आशय के नाम से

आठ नामों का उपयोग होता है जिनका भिन्न-भिन्न होना आवश्यक नहीं है। (२) दूसरी शंका यह होती है कि 'तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्' ऐसा निर्देश चरक सूत्रस्थान में है तब फिर उसे कफाशय क्यों माना है। इसका उत्तर यह है कि आमाशय (Stomach) में क्लेदक कफ तथा अमृत रस पाचक पित्त दोनों रहते हैं इसलिये वह कफस्थान तथा पित्तस्थान दोनों है जैसा चरक ने लिखा भी है। यथार्थ में आमाशय का अधोभाग पित्तस्थान तथा ऊर्ध्व भाग कफस्थान है। शाब्दिक दृष्ट्या मुंह से लेकर आमाशय (Stomach) के ऊर्ध्वार्ध तक शुद्ध आम का स्थान है जो सम्पूर्ण आमाशय या कफाशय कहा जा सकता है, तथा चरक द्वारा 'उरो-विशेषेण श्लेष्मस्थानम्' ऐसा कहने से यही निष्कर्ष निकलता है। सुश्रुत ने सूत्रस्थान २१ के ६, १२ और १३ वें श्लोक से स्पष्ट रूप से आमाशय को श्लेष्मा का स्थान लिखा है। पित्ताशय में आमाशय (Stomach) का अधो भाग, ग्रहणी (Duoclenum) तथा क्षुद्र आन्त्र हैं जहां पर आहार पच्यमानावस्था में रहता है। यह भी संभव है कि चूंकि यहां पर आहार अर्ध आमावस्था में रहता है इसलिये चरक ने इसे भी आम का स्थान मानकर 'तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्' ऐसा लिख दिया हो। शास्त्र में पच्यमानाशय का अलग निर्देश न होने से तथा वहां पर आहार के अर्ध आमावस्था में रहने के कारण उसका अन्तर्भाव चरक ने आमाशय में कर दिया है। मैंने जो कफाशय को आमाशय माना उस से आमाशय का पूर्वनिर्दिष्ट अर्थ ही अभिप्रेत है जो सुश्रुत द्वारा मान्य है, पच्यमानाशय के लिए प्रयुक्त चरकोक्त अर्थ नहीं।

वाताशय के सम्बन्ध में कोई शंका नहीं हो सकती क्योंकि 'पक्वाशयो विशेषेण वातस्थानम्' ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। कुछ विद्वानों के मत से महास्रोत के उपर्युक्त भागों के अतिरिक्त कफाशय में फुफ्फुस का तथा पित्ताशय में पित्ताशय (Gallbladder) युक्त यकृत और अग्न्याशय (Pancreas) का भी अन्तर्भाव किया जाता है जो ठीक ही है।

क्रमशः

वैद्य समाज के लिये स्वर्ण-अवसर

हमारे यहाँ के विशुद्ध आयुर्वेदिक वैज्ञानिक ढंग से बने हुए आयुर्वेदिक इंजेक्शनों को खरीद, दुःसाध्य एवं कठिन रोगों की चिकित्सा कर यश तथा धनोपार्जन कीजिए।

भारत में आयुर्वेदिक इंजेक्शनों की एकमात्र अनुसंधान-शाला—

श्री लक्ष्मी आयुर्वेदिक अनुसंधान भवन, बरुवा सागर (झांसी)।

सामयिक विचार—

महिलायें और आयुर्वेद

श्री जगन्नाथ व्यास आयुर्वेदाचार्य, चिकित्सक राजकीय औषधालय, खेरोदा (मेवाड़)।

आज का हमारा महिला समाज अपनी पुरातन विकासावस्था से बहुत दूर है। प्राचीन काल में घरेलू विज्ञान में अटल विश्वास और दायित्वपूर्वक चलकर ही महिलाऐं अपने को गौरवान्वित मानती थीं, तथा उसके व्यावहारिक निर्देशों पर अशिक्षित महिलाओं का क्रियात्मक ज्ञान एक प्रकार से पूर्ण था। इसके अतिरिक्त शिक्षिताओं द्वारा वैज्ञानिक कर्त्तव्य-मार्ग का उपदेश भी सर्वसाधारण स्त्रियों को मिला करता था।

आज की शिक्षित महिला प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पूर्व ही अपनी जीवनधारा को मजिस्ट्रेट, वकील, राजनैतिक नेता, या ऐसे ही अन्य उच्चतर पदाधिष्ठित कलेवर में प्रवाहित करने का सुनहला स्वप्न देखती हुई, इसी आधार पर जीवन-निर्माण कर समाज में प्रभावशाली स्थान सुरक्षित बनाये रखने में सफल होने का सतत प्रयत्न करती है। परन्तु उसे ज्ञात नहीं कि व्यक्तिगत स्वार्थमय जीवननिर्माण की परिधि के अन्तर्गत समाज-निर्माण की विशिष्ट प्रेरणा जो उसे प्रकृतिप्रदत्त है, उससे वह कितनी दूर है ?

हमारे विचार में महिलाओं को इस दायित्व के निभाने के लिये शरीर-शास्त्र, शरीररचना-शास्त्र आदि अंगों से युक्त आयुर्वेद का गम्भीर अध्ययन करना अत्यधिक आवश्यक है तथा इसका व्यावहारिक ज्ञान भी। इसके लिये हमें देखना चाहिये कि आयुर्वेद की उच्च शिक्षा प्राप्त महिलायें हमारे समाज में आपेक्षिक अनुपात में हैं या नहीं, और कितनी ऐसे दायित्वनिर्वाह के लिये अपने कर्तव्य पर आरूढ़ हैं। वर्तमान में ऐसी योजना के, वास्तव में शिक्षाप्राप्त महिलाओं के अभाव के कारण, क्रियान्वित न हो सकने पर भी, निकट भविष्य में इसके लिये सुधार किया जा सकता है। यदि महिलायें अपनी प्रवृत्ति इस ओर बढ़ायें। परन्तु आयुर्वेद की विविध परीक्षाओं के परिणाम को देखने पर ज्ञात होता है, कि इस सफाई के लिये हमारे पास कोई उत्तर नहीं है। नि. भा. आ. विद्यापीठ की परीक्षाओं को ही लीजिये, आचार्य में कोई नहीं बैठती है, विशारद में कभी २ कोई साहस करती है, और भिषक में अवश्य ही कुछ बैठती हैं और रुक २ कर उत्तीर्ण होती हैं, सोचने पर यह ज्ञात होता है, और इस प्रकार की गतिविधि से स्पष्ट भी है, कि उच्चशिक्षा प्राप्त महिलाओं की मनोवृत्ति इस ओर सर्वथा नहीं। साधारण योग्यता लेकर जो भिषक् में बैठती हैं, वे विशारद में अधिकांश रुक

जाती हैं, और उनकी इच्छाएं एक प्रकार से कुचल जाती हैं। इसके लिये पिछले वर्षों से 'वैद्यविशारद' का विधान स्तुत्य है।

आवश्यकता इस बात की है, कि स्त्रियों में आयुर्वेद की परीक्षाओं की व्यापकता के लिये प्रचार कार्य और आकर्षण की अभिवृद्धि हो, इनकी रुचि आयुर्वेद की ओर बढ़े। शिक्षित महिलायें भी अपना परम कर्त्तव्य समझ कर आयुर्वेद की विशेषज्ञ बनें। अयुर्वेद वैज्ञानिक और व्यावसायिक विषय है, समाज में विशिष्ट स्थान रखता है, आत्मकल्याण और लोककल्याण इसमें अन्तर्हित है, और महिलायें सुन्दर समाज निर्माण और जन साधारण के स्वास्थ्य सुधार में सहयोग देकर राष्ट्र की अमूल्य सेवा कर रही होंगी।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

मतदाता-सूची

प्रकाशित हो चुकी है जिसमें १५०० से भी अधिक वैद्यों के नाम पते सहित संग्रहीत हैं। औषध-विक्रेताओं के विशेष काम की चीज़ है। १) रु० भेजकर शीघ्र प्राप्त कर लें।

छप गई! चतुर्थावृत्ति छप गई!

चारु चिकित्सा

भारत के सुप्रसिद्ध हकीम और अहमदाबाद कांग्रेस के प्रमुख स्वनामधन्य स्व० मसीह उल्मुल्क श्री हकीम हाफिज मुहम्मद अजमलखां साहब देहलवी के खानदानी अनुभूत और अकसीर चुने हुए सिद्ध प्रयोगों का संग्रह है। सम्पादक स्व० गोपीनाथ जी गुप्त हैं।

इस पुस्तक में करीब ५०० प्रयोगों का संग्रह रोगानुसार किया गया है। इन प्रयोगों का सौ-सौ रुपये खर्च करने पर भी मिलना कठिन है।

हरेक वैद्य हकीम के पास इसकी एक प्रति होना जरूरी है। आज ही मंगाइये। मूल्य २।-) पोस्ट खर्च अलग।

ऊंझा फार्मेसी लि०, ऊंझा (गुजरात)

आयुर्वेद और केरल

(लेखक—श्री वैद्यगुरु एम. आर. भट्ट, पी. एच डी., जैप्पू, मंगलोर)

आयुर्वेद-विज्ञान का इतिहास पाँच कालों में विभक्त किया जा सकता है। प्रत्येक काल के पदचिन्हों की छाप आगामी काल पर पड़ी है। प्रथम काल को हम 'स्थूल काल' कह सकते हैं जो भौतिकवाद पर स्थिर था। तदनन्तर अपनी गहन गम्भीरता को लिए हुए बौद्धमत का व्यापक प्रभाव देश पर पड़ा किन्तु इस समय एक प्रकार की संकुलता का प्रादुर्भाव हो गया था। इसी समय सूक्ष्म तत्वों पर विस्तार से चर्चा हुई, किन्तु शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म की पुनःस्थापना की और उसके सिद्धान्तों को दृढ़ और सूक्ष्म आधार देकर बौद्धिक तत्वों पर उसकी महानता को सिद्ध किया। यह सूक्ष्म और स्थूल का संयुक्त काल है। भारतीय विचारकों में सांख्य दर्शन सर्वप्रिय बना जिस का सम्बन्ध सामञ्जस्य और प्रदर्शन के रूप में आयुर्वेद से था। कुछ बाह्य संसार और कुछ शंकराचार्य के वेदान्त तथा उनके अनुयायियों के विचारों से प्रभावित हो कर हमने प्रदर्शन और सामंजस्य सम्बन्धी भाग का एकीकरण किया और इस प्रकार उसकी पूर्णता का प्रदर्शन कर भारत का नाम आयुर्वेद-विज्ञान में अमर कर दिया।

अब पश्चिम से प्रभावित हो कर मालाबार (केरल) ने एक महान शंकराचार्य और केरलाचार्य को जन्म दिया क्योंकि इतिहास यह सिद्ध करता है कि मालाबार ही ग्रीस और रोम से सर्वप्रथम प्रभावित हुआ था। अब इस बीसवीं शताब्दी में हम पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के सम्पर्क में आए जो भौतिकवाद पर आश्रित है, किन्तु पाश्चात्य लोग इससे सन्तुष्ट नहीं हैं। इस समय पश्चिम में एक धारणा प्रचलित है। वह वात-संस्थान को शारीरक्रिया का अन्तिम नहीं मानते। उन्होंने एक प्रकार की स्राव-रहित ग्रंथियों का पता चलाया है जिन से शरीर के कार्य प्रभावित होते हैं। उक्त ग्रंथियों के अभाव में प्राप्त परिणामों से वह उन के शरीर में होने की बात कहते हैं। अतः अब वे स्थूल से सूक्ष्म की ओर आ रहे हैं। यदि हम आयुर्वेदिक सिद्धान्तों का पाश्चात्य सिद्धान्तों से सामञ्जस्य करें और उन्हें ठीक प्रकार से समझ सकें तो हम धन्वन्तरि द्वारा प्राप्त प्राचीन गौरव के बहुत समीप पहुँच जाएँगे।

देव केरलाचार्य जो केरलाचार्य के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे, बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के समय के कहे जाते हैं। केरल देश के राजा राम वर्मा के वह प्रधान मंत्री थे।

उनकी देख-रेख में ही राजा राम वर्मा ने पाण्डया-राज्य की महानता को छिन्न-भिन्न किया और परतंत्र चेरा राज्य को एक स्वतंत्र केरल राज्य में परिवर्तित कर दिया। ऐतिहासिकों के अनुसार वह ११०८ से ११३२ तक प्रधान मंत्री रहे। वह एक समृद्ध, ज्ञानवान् और प्रसिद्ध व्यक्ति थे। आयुर्वेद, ज्योतिष, धर्म-शास्त्र और तंत्र-शास्त्र के वह पण्डित थे। केरलाचार्य 'अपस्मार' रोग के विशेषज्ञ कहे जाते हैं। अन्य कई ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने 'केरल वैद्य संहिता' और 'केरल प्रश्न मार्ग' नामक ग्रन्थों की रचना की है। 'केरल प्रश्न मार्ग, में उन्होंने बड़ी विद्वत्ता से अनेक विज्ञानों की विवेचना की है। पट्टाम्बिर संस्कृत कालेज द्वारा उसका एक संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुआ है। यह ग्रंथ पूर्ण वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण, मौलिक और विद्वानों के बहुत लाभ की वस्तु है। केरलाचार्य की आयुर्वेद में मौलिकता-विशेष कर 'अपस्मार' रोग के सम्बन्ध में हम 'पत्रिका' के आगामी अंक में प्रकाश डालेंगे।

स्वर्ण वंग और वैद्य

स्वर्णराज बंगेश्वर के शास्त्रोक्त गुण-मेहघ्न, कान्तिकारक, मेदोप्रद, मूत्रकृच्छ्र, मधुमेह, धातुक्षीणता का नाश करने वाली, स्वप्नदोष, यकृतरोग नाशक तथा अग्निबलवर्धक है। परन्तु वैद्य लोग शिकायत करते हैं कि बहुत सी फार्मेसियों का बनाया हुआ बंगेश्वर पूरा गुण नहीं करता। इसका कारण यह है कि बनाने वाले लोग सस्ता माल बेचने के लिए बंग में पड़ने वाली औषधियों की शुद्धि नहीं करते। परन्तु हमारे द्वारा प्रत्येक वस्तु बंगेश्वर में शुद्ध करके डाली जाती है। गुण के लिए गारण्टी दी जाती है।

मूल्य १ रतल ५०) रु०।

रतल से कम मंगाने वाले के लिए—१ तोला २) रु०।

दी आयुर्वेदिक केमिकल रिसर्च लेबोरेट्री, बोरीवली, बम्बई।

ज्ञान-विज्ञान

तक्मारि (मलेरिया की नई आयुर्वेदिक औषधि)

'तक्मा' मलेरिया का एक संस्कृत नाम है और 'तक्मारि' उसकी आयुर्वेदिक औषधि है। मलन्द के चिकित्सालयों में तथा मैसूर के अनेक क्षेत्रों में विस्तृत प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि प्रयोग के बाद इस औषधि का किसी प्रकार का बुरा प्रभाव रोगी पर नहीं पड़ता और यह मलेरिया को इतना शीघ्र एवं अच्छा लाभ करती है कि वह फिर नहीं होता। यह मलेरिया-निरोधक आयुर्वेदिक औषधि सस्ती और सर्वोत्तम होने के कारण मलेरिया से बचाव तथा चिकित्सा के रूप में मलन्द में बहुत अधिक प्रयोग की जाती है। इस सम्बन्ध में वैद्यबन्धु श्री भारती स्वामी, संयोजक-मलन्द मलेरिया एण्ड मेडिकल रिलीफ रिसर्च आयुर्वेदिक सेन्टर, चिकमेगलूर (Chickmagalur) मैसूर स्टेट से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।

कपूर बनाने की विधि

"जर्नल आफ साइंटिफिक ऐंड इन्डस्ट्रियल रिसर्च' (वैज्ञानिक और औद्योगिक गवेषणा-पत्रिका) के नवम्बर मास के अंक में 'औसिम किलिमेंड सचारिकम ग्वैर्की नामक पौधे से कपूर बनाने की विधि बताई गई है। यह पौधा पूर्वी अफ्रीका से भारत लाया गया है और बंबई के दक्षिणी भाग में खूब पनपता है। वैसे यह सब प्रकार की भूमि और जलवायु में उग आता है, और बोने से ६-७ महीने बाद कपूर देने लगता है। उसकी अधसूखी पत्तियों को पानी में उबाल कर अर्क खींचा जाता है और उससे कपूर बनाया जाता है। पत्तियों के भार का १.५६ प्रतिशत कपूर निकलता है।

गोखरू के तेल निकालने की विधि

गोखरू भारत के गर्म भागों में बहुत पैदा होता है। परन्तु आज तक यह अधिक उपयोग में नहीं लाया गया। अनुसन्धान से विदित हुआ है कि यदि गोखरू को २.५ प्रतिशत गन्धक के तेजाब में १२ घंटे भिगोकर १ या २ दिन धूप में सुखाया जाय तो बीज

आसानी से निकल आता है। इस बीज का भार सूखे फल का लगभग तिहाई होता है, और इससे ३२ प्रतिशत तेल निकलता है। यदि गोखरू की खेती की जाय तो एक एकड़ भूमि से १७५ पौंड तेल पैदा हो सकता है। अन्य तेलों की अपेक्षा इस तेल की पैदावार किसी प्रकार कम न होगी। इस तेल को यदि एक वर्ष तक हवा से बचाकर रखा जाय तो यह गाढा हो जाता है और ऊपर पीले रंग की झिल्ली पड़ जाती है। गर्म करने से यह गाढा हो जाता है और अन्य खनिज तेलों में मिलाया जाता है।

पाठकों के पत्र

राजस्थान में आयुर्वेद की प्रगति

श्रीमान् सम्पादक जी,

अक्तूबर ५० की पत्रिका में 'आशा में निराशा' नामक सुन्दर लेख के विपरीत राजस्थान के विषय में जो आलोचना पढ़ी उससे प्रभावित होकर यह लेख भेज रहा हूँ। आशा है आप अपनी सम्मति लिखते हुए पत्रिका में प्रकाशित करने की कृपा करेंगे।

राजकीय आयुर्वेद औषधालय,
भगवतगढ़।

वैद्य सूर्यकान्त शर्मा

[हमें खेद है कि विस्तारभय से हम उपयु क्त लेख प्रकाशित न कर सकेंगे। शर्मा जी के पत्र का आशय यह है कि हाल ही में राजस्थान सरकार द्वारा आयुर्वेद सम्बन्धी जिन सुधारों की घोषणा की गई है, उनसे वे सन्तुष्ट हैं एवं उनकी सराहना करते हैं। प्र० सं०]

अगले चुनाव में महासम्मेलन का कर्त्तव्य

श्रीमान् सम्पादक जी,

भारत की ८० फी सदी जनता की चिकित्सा वैद्य हकीम करते हैं, एवं आज भी कांग्रेस, समाजवादी दल, हिन्दूमहासभा और राम-राज्य परिषद् में देश के हजारों वैद्य हकीम कार्य कर रहे हैं। यदि आयुर्वेद महासम्मेलन वैद्य समाज को, आयुर्वेद की राष्ट्रीय मान्यता पर ही उनका भविष्य निर्भर है, यह समझा सके तो महासम्मेलन का कर्त्तव्य होगा कि अपना द्विसूत्री घोषणा-पत्र प्रकाशित करे :—

(१) वैद्य समाज के प्रति

(क) प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य होगा कि उस व्यक्ति या दल को वे स्वयं एवं अपने

रोगियों से वोट दिलावें जो आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-प्रणाली स्वीकार करता हो और धारा-सभाओं में पहुंच कर आयुर्वेद की राष्ट्रीय स्वीकृति के पक्ष में मत देवे।

(ख) महासम्मेलन एवं वैद्यसमाज स्वयं एवं देश की ८० प्रतिशत जनता को उस दल को वोट देने के लिये कहेगा जिसके एजेण्डा में स्पष्ट लिखा हुआ होगा कि आयुर्वेद भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली होगी।

(२) कांग्रेस, समाजवादी, हिन्दूमहासभा एवं अन्य संस्थाओं के प्रति

अगले आम चुनाव में आयुर्वेद महासम्मेलन उस दल से असहयोग करेगा जो दल आयुर्वेद के राष्ट्रीय-ध्येय की पूर्ति में बाधक होगा। जो दल अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा निर्धारित आयुर्वेद के पाठ्य-क्रम, गवेषणा और राष्ट्रीय चिकित्सा कार्य के लिये सबसे पहले आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा स्वीकृत वैद्य को प्रमुखता देने का वचन देगा, उसी दल का चुनाव में समर्थन करेगा।

अस्तु, यदि उपर्युक्त नीति के अनुसार वैद्यसमाज महासम्मेलन से संयुक्त होकर कार्य करे तो सम्भवतया आगामी चुनाव के बाद ही आयुर्वेद का भाग्य चमक उठे।

आयुर्वेद विश्वविद्यालय,
झांसी।

के० पी० भट्टाचार्य

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यसमितेः १९५० तमवर्षीयस्य तृतीयाधिवेशन कार्यविवरणस्य संशोधनम्।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका—

पृष्ठम्	पंक्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
६४५	८	हरिदत्त शास्त्री (देहली)	हरिदत्त शास्त्री (आगरा)
,,	९	रामदत्त शर्मा (देहली)	रामचन्द्र शर्मा (देहली)
६४६	७	महानुभावानामेकोपसमितिर्नियुक्ता	महानुभावानामेका परीक्षोपसमितिर्नियुक्ता
,,	९	जगदीशचन्द्रः।	जगदीशप्रसादः

रामगोपाल शास्त्री
विद्यापीठ मन्त्री

आयुर्वेद-लोक

पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन का १५वाँ अधिवेशन ता० ९-१० दिसम्बर को घरौण्डा (जि० करनाल) में बड़ी धूमधाम से श्री पं० हरिदत्त शास्त्री की अध्यक्षता में हुआ। श्री पं० ठाकुरदत्त (अमृतधारा) ने सम्मेलन का उद्घाटन किया।

श्री पं० हरिदत्त शास्त्री ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि आजकल आयुर्वेद पर अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों प्रकार के आक्रमण हो रहे हैं। अन्तरङ्ग आक्षेप संक्षेप में निम्नलिखित हैं :—

१. आयुर्वेद जहाँ का तहाँ खड़ा है। इसमें प्रगति-शीलता नहीं। प्रगति बिना उन्नति नहीं, अतः हम इसे अपनाकर दुनिया की दौड़ में अपने को तीन हज़ार साल पीछे नहीं फेंक सकते।

२. इस समय की समुन्नत साइन्स की कसौटी पर पंचमहाभूत तथा त्रिदोषवाद खरा नहीं उतरता, इसलिए इस पर आश्रित आयुर्वेद अवैज्ञानिक है।

३. आयुर्वेद में वर्तमान साइन्स के साधन ऐक्सरे आदि का समावेश नहीं, तथा सर्जरी आदि अन्य आवश्यक अंग भी नहीं। केवल काय-चिकित्सा के कुछ नुसखों को क्या करें ? इत्यादि।

पहिले आक्षेप का संक्षेप में समाधान यह है कि आयुर्वेद त्रिकालदर्शी महर्षि लोगों का दिया हुआ दिव्य प्रसाद है। इसका आप्त प्रमाण से ही ज्ञान होता है। अकेले प्रत्यक्ष और अनुमान का यहाँ काम नहीं। यह महर्षियों का ज्ञान आए दिन हमारे ज्ञान की तरह बदलता नहीं। यह तो उत्तरोत्तर सत्यं शिवं सुन्दरम् होता जा रहा है। इसे मूर्खतावश अप्रगतिशील और मिथ्या कहना ठीक नहीं।

दूसरे आक्षेप का उत्तर यह है कि पंचमहाभूत और त्रिदोषवाद को जानने के लिए उसका अपना प्रकार है। इसे उसी प्रकार से समझना चाहिए। यदि कोई यह हठ करे कि इन सब को पश्चिमी साइन्स के प्रकार से ही समझाइये तो उसे हम कहेंगे कि कृपया आप पहिले हमें हमारे दर्शन के प्रकार से पश्चिमी विज्ञान को समझा दें तो हम..

भी पश्चिमी विज्ञान के प्रकार से इस समस्या को हल करने की चेष्टा करेंगे। किन्तु वास्तव में बात यह है कि अपने-अपने सिद्धान्त को स्पष्ट समझने के लिए अपना-अपना निराला ढङ्ग होता है। उसे उसी प्रकार से समझना चाहिए। वृथा की हठधर्मी नहीं होनी चाहिए।

तीसरे आक्षेप के उत्तर में उन्होंने कहा कि ऐक्सरे आदि उपयोगी यन्त्र आयुर्वेद के विपरीत नहीं, प्रत्युत इनसे आयुर्वेद के विकास में भारी सहायता मिलेगी। उदाहरण के लिए थर्मामीटर से तापमान की अंशांश कल्पना, स्टेथस्कोप से वक्षःस्थित कफ का अनुमान, स्फिग्मो मेनेमीटर से व्यान वायु की अंशांश कल्पना करने में सहायता ली जा सकती है। इसी तरह मलमूत्र एवं रक्त परीक्षा आदि में भी इसी विज्ञान द्वारा लाभ उठाना चाहिए। परन्तु इनके मोह में हमें वैदिक त्रिधातुवाद वा पंचमहाभूतवाद जैसे दिव्य सिद्धान्तों को भूलना नहीं चाहिए। प्रत्युत आगे-आगे घोर प्रयत्न करके उत्तमोत्तम रिसर्च द्वारा अपने ज्ञान को बढ़ाना चाहिए। किन्तु यह ध्यान में रहे हमारा रिसर्च का प्रकार स्वतन्त्र होना चाहिए। क्योंकि आयुर्वेदिक दृष्टिकोण भूलकर रिसर्च करने से हम आयुर्वेद को समुन्नत नहीं कर सकते।

बहिरङ्ग प्रहारों पर वैद्यों का ध्यान आकर्षित करते हुए आपने कहा कि बहिरङ्ग प्रहार वह है जो आयुर्वेद को जनता की इच्छा के अनुसार उन्नत होने से रोकते हैं। जैसे यह कहा जाता है कि भारतवर्ष की ८० फी सदी जनता आयुर्वेद से लाभ उठाती है, किन्तु सरकार द्वारा इसकी उपेक्षा की जा रही है। इसमें कारण यह है कि सरकारी असेम्बलियों में वैद्यों की संख्या आटे में नमक के बराबर भी नहीं। इसलिए हमारे लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम इस वर्ष असेम्बलियों के चुनावों में तथा म्युनिसिपैलिटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा ग्राम पंचायतों आदि में वैद्यों तथा आयुर्वेद के भक्तों को ही भेजने का भारी प्रयत्न करें। इस बात के लिए हमें अभी से जी जान से लग जाना चाहिए। फिर समय चूकने पर पछताना पड़ेगा। अब यह साबित करके दिखाना होगा कि क्या सचमुच ८० प्रतिशत जनता आयुर्वेद का सहारा लेती है। हमारा कर्तव्य है कि हम आगामी चुनावों में तन, मन, धन से वैद्यों तथा आयुर्वेद के भक्तों को ही वोट देने-दिलाने का प्रयत्न करें।

फार्मेसियों का भी नियन्त्रण होना चाहिए। उन पर औषधरक्षा कानून लागू होने चाहिएं। भारतीय जङ्गलों से जड़ी बूटी निकालने के ठेके किसी भी विदेशी कम्पनी

को न दिये जावें। प्रत्युत कच्ची जड़ी-बूटियों की उत्तमोत्तम दवाइयां देश में ही तैयार हों।

जङ्गलों में दशमूलादि बूटियां खोजने का भी ध्यान रहे क्योंकि ये उत्तरोत्तर नष्ट हो रही हैं। चेतकी आदि उत्तम हरड़ें फिर से पैदा करने का यत्न हो। एक स्तर पर दवाएं तैयार होने के लिए फार्माकोपिया बनाया जाय। संदिग्ध जड़ी बूटियों का निर्णय किया जाय। नकली केसर आदि बनाना हटा दिया जाय। आयुर्वेद के आठों अङ्गों को समुन्नत करने के लिए कालेज, हस्पताल, फार्मेसी आदि का प्रबन्ध गवर्नमेन्ट करे।

आयुर्वेद दुनिया भर की सभी चिकित्सा-पद्धतियों को अन्तर्भुक्त कर सकता है; जबकि दूसरी पैथियां ऐसा नहीं कर सकतीं। इसलिए पहिले आयुर्वेद को मूलरूप से पढ़ाकर तब अन्य पैथियों के उपयोगी अंश पढ़ाए जावें तथा इसका पाठ्यक्रम भी आयुर्वेदानुसार ही बनाया जाय।

वैद्यों का भी जनता के प्रति विशेष कर्त्तव्य है कि वे अपनी योग्यता को बढ़ाते हुए जनता के स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रक्खें। अपने-अपने ग्राम व नगर में स्वास्थ्य-केन्द्र खोलें। वैद्यमण्डल की ओर से छोटे-छोटे ट्रेक्ट बनाकर देश की भाषा में छपवा कर बांटने चाहिएं।

पटियाला राज्य संघ वैद्यमण्डल का द्वितीय वार्षिक महासम्मेलन २-३ दिसम्बर को बड़ी धूमधाम से मनाया गया। स्वागताध्यक्ष पं० मुन्शीराम आयुर्वेदाचार्य, भटिण्डा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि "समय बड़ी तेजी से बदल रहा है। यह संघर्ष का युग है। यदि हम इस समय में अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघरूप से प्रयत्नशील न बनेंगे तो हम इतने पीछे रह जाएंगे कि फिर आगे बढ़ना असम्भव हो जाएगा। "संघे शक्ति कलौ युगे" के कथनानुसार प्रत्येक भारतीय वैद्यसमाज को सङ्गठित होकर अपने मुख्य ध्येय को कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।"

राजवैद्य पं० रामप्रसाद ने अध्यक्ष पद से अपने प्रभावशाली भाषण में वैद्य-समाज को चेतावनी देते हुए कहा, "यदि अब भी आप लोग अपना आलस्य और उदासीनता का परित्याग नहीं करेंगे, पूर्णरूप से शास्त्राध्ययन और क्रियाभ्यास न करके शास्त्र और रोगियों के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करेंगे तो सभी आयुर्वेद के शत्रु विदेशी-चिकित्सा पद्धतियों के प्रचार द्वारा देश की हानि होते हुए भी अपने आर्थिक और सामाजिक लाभ के लिए इस देश की महती सम्पत्ति आयुर्वेद को नष्ट करने में बिना कठिनाई के आगे बढ़ेंगे।

संक्षिप्त समाचार

कलकत्ते में आयुर्वेदिक प्रदर्शनी—इण्डियन फार्मेस्युटिकल कांग्रेस का तृतीय अधिवेशन गत २९ दिसम्बर १९५० को कलकत्ते में हुआ। इस अवसर पर कांग्रेस द्वारा प्रथमबार एक आयुर्वेदिक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। प्रदर्शनी में २६०० वर्ष पूर्व की फार्मेसियों तथा वर्तमान फार्मेसियों का स्वरूप दिखाया गया था। प्राचीन ग्रन्थानुसार आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रकार, वर्तमान स्वरूप सहित उसके क्रमिक विकास का भी प्रदर्शन किया गया था।

प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए माननीय डा० के० एन० काटजू ने कहा कि आयुर्वेदिक औषधियों का प्रचार न केवल बड़े नगरों में ही किया जाए बल्कि ग्रामों में भी इनका प्रचार किया जाना चाहिए।

श्री सी०सी०बिस्वास ने, जिन्होंने आयुर्वेद विभाग का उद्घाटन किया, कहा कि आयुर्वेद को राजकीय सहायता प्राप्त नहीं रही। उनके विचार में एक केन्द्रीय अनुसंधान शाला का निर्माण किया जाना चाहिए जहां आयुर्वेदिक एवं ऐलोपैथिक औषधियों में अनुसंधान किया जाया करे।

निर्वासित भारतीय देशी चिकित्सा सम्मेलन—सिन्धी चिकित्सक महामण्डल के तत्वावधान में ता० २१-१-५१ को वैद्य रत्न पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में उपर्युक्त सम्मेलन होना निश्चित हुआ है। इस सम्मेलन में निर्वासित देशी चिकित्सकों के दुख निवारण, संगठन आदि के उपायों पर विचार किया जावेगा।

अमृतसर जिला आयुर्वेदिक सम्मेलन—ता० २४-९-५० को स्वामी ब्रह्मानन्द आयुर्वेदिक फार्मेसी, ब्यास (जि० अमृतसर) में श्री पं० प्रकाशनाथ तिवारी की अध्यक्षता में समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। प्रारम्भ में स्वागताध्यक्ष राजवैद्य स्वामी ब्रह्मानन्द रसायनाचार्य का स्वागत-भाषण हुआ जिस में आयुर्वेद के विभिन्न पहलुओं पर विद्वत्ता पूर्वक प्रकाश डाला गया। इस के बाद प्रधान महोदय, पं० विप्रबन्धु एम० ए०, पं० हरिदयालु शास्त्री और श्री रामेश्वर सिंह आदि महानुभावों के उपयोगी भाषण हुए। सम्मेलन में पंजाब के विभिन्न भागों से लगभग ४०० वैद्यों ने भाग लिया। जनता भी हजारों की संख्या में उपस्थित थी। सम्मेलन की सफलता के लिए अनेक शुभ

कामनाओं के सन्देश प्राप्त हुए।

नैशनल प्लानिंग कमीशन—श्री पं० शिवशर्मा जी बम्बई, नैशनल प्लानिंग कमीशन के स्वास्थ्य-विभाग के सदस्य नियुक्त किए गए हैं।

जिला वैद्य सम्मेलन इटावा—ता० १६ नवम्बर १६५० को जिला वैद्य सम्मेलन औरैया में आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल की अध्यक्षता में हुआ जिस में आठ महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए।

एक प्रस्ताव में प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय सम्मेलनों से अनुरोध किया गया कि देश भर में आयुर्वेदान्दोलन एक साथ प्रारम्भ करने के लिए निश्चित दिन नियत करें। सम्मेलन की सम्मति में यह दिन धन्वन्तरि त्रयोदशी से लेकर कार्तिक शुक्ल ६ अर्थात् भारद्वाज जयन्ती तक और दूसरा दिन चैत्र सुदी १ से ६ अर्थात् शंकरदा जी की पुण्य तिथि तक इस कार्य के लिए उपयुक्त होंगे।

दूसरे प्रस्ताव में गत स्वाध्य मंत्री सम्मेलन के निश्चयों के सम्बन्ध में कहा गया कि वैद्यों की शिक्षा-नीति, पाठ्यक्रम निर्धारण आदि के सम्बन्ध में मेडिकल कौंसिल को अधिकार देना अपमानजनक है। यह कार्य वैद्यों द्वारा ही होना चाहिए। आधुनिक विज्ञान की ग्रहण योग्य बातें आयुर्वेद में सम्मिलित कर ली जाएँ और वैद्यों की शिक्षा का आधार आयुर्वेद ही हो।

फैकल्टी आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी तिब्बी सिस्टम आफ मेडिसन, बम्बई—आयुर्वेद तथा युनानी की पाठ्य पुस्तकों के लिए निम्न महानुभावों की एक समिति बनाई गई है :—

१. वैद्य बापा लाल जी शाह (गुजराती) २. हकीम रशीद अहमद खां (उर्दू) ३. वैद्य बी० एम० दीक्षित (हिन्दी) ४. वैद्य एन० वी० जोशी (मराठी) ५. वैद्य बी० एन० ग्रामोपाध्याय (कन्नड़)।

——

—श्री स्वामी चेतानन्द जी (दिल्ली) से सूचित करते हैं कि जिन भी वैद्य बन्धुओं को अजमेर जाने का अवसर मिले वे अपने कार्यक्रम में कालेड़ा—बोगला जाने का भी समय रक्खें ताकि वहाँ पर श्री स्वामी कृष्णानन्द महाराज जी की अध्यक्षता में किए जा रहे आयुर्वेदोन्नति के सराहनीय कार्य का वैद्य-बन्धु अपने-अपने क्षेत्र में अनुकरण कर सकें।

[शेष पृष्ठ ४७ पर]

साहित्य सत्कार

[समालोचनार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियाँ आनी आवश्यक हैं]

त्रिदोषतत्व-विमर्श—लेखक—श्री रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य । भूमिका लेखक—श्री आचार्य यादव जी त्रिकम जी । प्रकाशक—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद-भवन लि०, कलकत्ता । पृष्ठ संख्या २५२ मूल्य २॥=) ।

भूमिका में श्री आचार्य जी महाराज लिखते हैं कि "वात-पित्त-कफ में मनुष्य शरीरस्थ अनेक द्रव्यों के तीन वर्ग हैं—इस लक्ष्य को ध्यान में रख कर वात-पित्त-कफ का सामान्य स्वरूप, इनके प्राचीन ग्रन्थोक्त भेद, प्रत्येक भेद का प्रधान स्थान और उनकी क्रियाओं का सविस्तार वर्णन इस पुस्तक में है । विषय के स्पष्टीकरण के लिए आधुनिक शरीर क्रिया-विज्ञान के साथ-साथ तुलनात्मक विवेचन भी किया गया है ।"

पुस्तक के लेखक आयुर्वेद जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् पाठक जी की यह रचना उनकी योग्यता के ही अनुरूप है । विद्यार्थियों और विद्वानों के लिये विशेष उपयोगी है ।

स्वास्थ्य और सद्वृत्त—लेखक—कविराज अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार, भिषग्रत्न । भूमिका लेखक—श्री पं० शिवशर्मा, आयुर्वेदाचार्य । प्रकाशक-श्याम सुन्दर रसायनशाला, बनारस । मूल्य २) पृष्ठ संख्या १४२ ।

भूमिका में श्री पं० शिवशर्मा जी ने ठीक ही लिखा है कि, "प्राचीन भारत वर्ष के शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य का ज्ञान आजकल की जनता को हो सके, इस प्रयोजन को मुख्य रख कर ही श्री अत्रिदेव जी ने उपर्युक्त पुस्तक लिखी है । अपने प्रयास में विद्वान् लेखक सफल हुए हैं । विषय का प्रतिपादन और स्पष्टीकरण योग्यता से किया गया है और भाषा सरल और मनोरजंक है । स्वस्थवृत्त भाग में आयुर्वेद के दिनचर्या, ऋतुचर्या सम्बन्धी प्रायः सभी उपदेशों का वर्णन है ।"

सद्वृत्त का विषय विशेष महत्वपूर्ण है । यह भारतीय शील और आचार का

प्रतीक हैं। अति प्राचीन होते हुए भी अति सामयिक है। लेखक ने इस विषय को अत्यन्त आकर्षक और सजीव बना कर लिखा है। आज के मनुष्य को अपनी ही राक्षसी प्रवृत्तियों से अपनी रक्षा करने के लिए इस विषय के अध्ययन की विशेष आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि जन साधारण, वैद्य समाज और विद्यार्थी-वर्ग सभी इस पुस्तक को पढ़ कर सन्तुष्ट और प्रसन्न होंगे।

व्यायाम और शारीरिक विकास--लेखक—श्री अशोक कुमार सिंह, आयुर्वेद शास्त्री, वेदालंकार, एम० ए०। प्रकाशक—श्याम सुन्दर रसायन शाला, बनारस। पृष्ठ संख्या १६५ मूल्य २॥)।

शरीर का निर्माण राष्ट्र का निर्माण है। प्रतिवर्ष भारत के लाखों नर-नारी रोग-ग्रस्त हो कर काल के विकराल गाल में जाते हैं। ऐसे समय में उन के स्वास्थ्य-सुधार की नितान्त आवश्यकता है। विद्वान् लेखक ने भारतीय व्यायाम-पद्धति द्वारा शारीरिक विकास की योजना को सुन्दर रूप में प्रकाशित किया है। बालक, किशोर, युवक, प्रौढ़ और वृद्ध इस पद्धति के अनुकरण से स्वस्थ और बलवान रह सकते हैं। शारीर-क्रिया-विज्ञान तथा व्यायाम की पद्धतियों को समझाने के लिए चित्र भी दिए गए हैं। प्रत्येक गृहस्थी तथा जन साधारण के काम की चीज़ है।

इन्जैक्शन विज्ञान--लेखक—डा० प्यारे लाल गुप्त रसशास्त्री। सम्पादक—वैद्य कृष्ण गोपाल गुप्त आयुर्वेदाचार्य B. I. M. S. । प्रकाशक—वैद्य बांके लाल गुप्त, प्राणाचार्य भवन लि०, विजयगढ़ (अलीगढ़)। पृष्ठ संख्या ३०२ मूल्य ५)।

प्राणाचार्य ग्रन्थमाला की यह प्रथम पुस्तक है। इस में आयुर्वेदिक, एलोपैथिक, बायोकैमिक दवाइयों के इंजैक्शन के साथ थर्मामीटर, स्टेथिस्कोप, नाड़ी-विज्ञान एवं आयुर्वेदिक व एलोपैथिक परीक्षित प्रयोगों का संग्रह है। रोगियों को सूचीवेध देने के शौकीन वैद्यों के काम की चीज़ है।

थर्मामीटर विज्ञान—लेखक वैद्य कृष्णगोपाल गुप्त B. I. M. S. आयुर्वेदाचार्य। प्रकाशक-प्राणाचार्य भवन लि०, विजयगढ़ (अलीगढ़)। पृष्ठ संख्या २० मूल्य ।) थर्मामीटर-सम्बन्धी प्रत्येक जानकारी के लिए नवीन वैद्यों को इसके अध्ययन से लाभ होगा।

तमाखू से हानि--लेखक—स्व० वैद्यवर पं० हनुमत्प्रसाद जोशी। प्रकाशक—पं० गोवर्धन प्रसाद ज़ोशी वैद्यभूषण, श्री नन्द किशोर हनुमत् आयुर्वेदिक औषधालय

सीकर (राजपूताना)। पृष्ठ संख्या १३२ मूल्य १=)

स्वर्गीय जोशी जी ने विद्वत्तापूर्वक तमाखू के व्यसन से बचने के उपाय, इससे होने वाली शारीरिक एवं राष्ट्रीय क्षति का सुन्दर वर्णन किया है। वैद्यबन्धु इसका अध्ययन करके अपने सम्पर्क में आने वाले रोगियों को इस व्यसन से बचा सकेंगे।

धन्वन्तरि (सिद्ध चिकित्सांक)—सम्पादक श्री देवीशरण गर्ग, ज्वाला प्रसाद श्रीवास्तव। प्रकाशक धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)। पृष्ठ संख्या ३६४, मूल्य ४)।

धन्वन्तरि के विशेषांकों का आयुर्वेद के स्थायी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। प्रस्तुत विशेषांक में भारत के ख्याति प्राप्त चिकित्सकों ने नानाविध व्याधियों के सम्बन्ध में अपनी-अपनी सिद्ध चिकित्सा को प्रकाशित किया है। चिकित्सकों को इसका अवश्य पारायण करना चाहिए। हम चाहेंगे धन्वन्तरि के आगामी विशेषांक आयुर्वेद के पाठ्य ग्रन्थों का रूप धारण कर सकें। स्वाध्यायप्रेमी वैद्यों तथा विद्यार्थियों के लिए अतीव उपोयगी है।

प्राप्ति स्वीकार—

चरकमुनि-लेखक—श्री वैद्य सोमदेव शर्मा सारस्वत, प्रोफेसर मैडिकल कालेज, लखनऊ। पृष्ठ संख्या ३०, मूल्य ॥)

(४४ पृष्ठ का शेष)

आयुर्वेद संस्थाओं के अध्यक्षों से—पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान से आए हुए कुछ सुयोग्य वैद्य आयुर्वेद विद्यालयों आयुर्वेदिक फार्मेसियों तथा चिकित्सालयों में अपनी सेवाएँ देने को उद्यत हैं। संस्थाओं के अध्यक्षों से निवेदन है कि इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए हमारे साथ पत्र—व्यवहार करें।

प्रधान सम्पादक

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका।

दिल्ली से प्रकाशित 'अमर भारत' दैनिक के प्रबन्धकों ने एक आयुर्वेदिक स्तम्भ अपने दैनिक में खोल दिया है। इस स्तम्भ में आयुर्वेद सम्बन्धी लेख तथा तत्सम्बन्धी सूचनाएँ प्रकाशित होती रहेंगी। वैद्य-बन्धुओं को इसका पूर्ण लाभ उठाना चाहिए।

लाल मिरच— (पृष्ठ ४० का शेष)

हंगरी की पैदावार (कैप्सिकम एनम) बहुत पसन्द की जाती है। ऐस्कार्बिक एसिड का ये उत्तम स्रोत हैं। इन में यह करीब ०.२ प्रतिशतक होता है।

फ्लुकिजर और हैन्बरी का विश्वास है कि लण्डन में पिसी हुई शक्ल में कायनी पेपर के नाम से जो लाल मिरच आती है वे अधिकतर कैप्सिकम एनम, कैप्सिकम लौंगम और कैप्सिकम ग्रौसम से बनाई जाती हैं।

लाल मिरच की इस जाति (कैप्सिकम एनम) के युरोपियन भाषाओं में अनेक नाम हैं। नेम्निक ने जर्मन के आठ और फ्रेंच के बारह नाम दिये हैं। युरोपियन भाषाओं के सब नाम संकेत देते हैं कि इसका मूल स्थान विदेशी है और इसका स्वाद काली मिरच से मिलता है। फ्रेंच में इसे बहुधा पायव्रे दे गिनी (poivre de guinie, अंग्रेजी नाम गिनी पेपर) और पायव्रे डु ब्रेजील, द' इण्डे; (poivre du brezil d' Inde; अंग्रेज़ी नाम इण्डियन, ब्राजीलियन पेपर), इत्यादि कहते हैं। इन नामों में ऐसी कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है जो इस का इतिहास तलाश करने में सहायक हो।

युरोप में इस की खेती सोलहवीं सदी में शुरू हुई। यह उन मिरचों में से एक थी जिसे पाइसो (Piso) और मार्कग्राफ़ ने ब्राजील में क्रिजा या किया नाम से बोया जाते देखा था। वे उस के उद्भव के बारे में कुछ नहीं कहते। यह पौदा प्रतीत होता है कि वेस्ट इण्डीज़ में पहले से बोया जा रहा है जहाँ इस के बहुत से कैरिब नाम हैं। रॉक्सबर्थ (१८७८) के अनुसार 'यह भारत का मूल पौदा नहीं प्रतीत होता क्योंकि हिन्दुओं में इस का कोई नाम प्रचलित नहीं है और न ही यह उन के बगीचों में पाया जाता है।'

वनस्पति शास्त्र के जिन विद्वानों ने कैप्सिकम (लाल मिरच) गण को पूर्णतया अध्ययन किया है उन्होंने मालूम होता है कि वनस्पति संग्रहालयों में इस जाति (कैप्सिकम एनम) का एक भी नमूना ऐसा नहीं देखा जिसे जंगली कहा जा सकता हो। कैण्डोले की सम्मति में इस का उद्भव स्थान सम्भवतः ब्राज़ील है।

काफ़्री मिरच

इस की फलियाँ फूली हुई और कई शक्लों की होती हैं। फलियों का छिलका मोटा और स्वाद में बहुत कम चरपरा होता है। इस से एक स्वादु मसाला बनाया जाता है।

रॉक्सबर्थ के समय भारत में रहने वाले युरोपियनों के बीच में इस का नाम काफ़्री चिली प्रचलित था। उसने बंगाली नाम काफ़्री मरिच दिया है। इस का लैटिन नाम कैप्सिकम ग्रौसम (Capsicum grosum willd) है।

कैण्डोले को यह कैप्सिकम एनम (बड़ी लाल मिरच) का ही भेद प्रतीत होता है। रॉक्सबर्थ इस का मूल उत्पत्ति स्थान भारत नहीं समझते थे।

०२१५२५

जिस घर में

आरोग्य प्रकाश

नहीं, वहाँ सुख शान्ति कहाँ ?

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत-प्रसिद्ध श्रीवैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण जी वैद्यशास्त्री ने ५-६ वर्ष बड़ी मेहनत से स्वयं इस ग्रन्थ को लिखा है। ग्रन्थ का एक एक वाक्य हज़ारों रुपये का काम देता है। व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, सदाचार, उत्तम विचार आदि पूर्वार्ध विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहने वाला रोगी बिना दवा के निरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध में शरीर में पैदा होने वाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि बड़ी ही सरल भाषा में लिखे हैं जो पढ़कर विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे दोनों समान भाग से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे गये हैं वे बहुत बार परीक्षित, कभी भी फेल न होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में श्रेष्ठ है क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके सात संस्करणों में ५६००० प्रतियां छपकर बिक चुकी हैं। यह आठवां संस्करण १५ हज़ार का अभी छपा है। इससे इसकी लोक-प्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। हिन्दी में ऐसी उत्तम पुस्तक दूसरी नहीं है, यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ५१५ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १॥।), डाक खर्च ॥=), हमारी चार निर्माणशाला, ४० बिक्री केन्द्र, १४००० ऐजेन्सियों से प्रत्यक्ष खरीदने पर डाक खर्च नहीं लगेगा।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड,

कलकत्ता, पटना, झांसी, नागपुर।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

रजिस्टर्ड नं० ई० पी० ६२४

विज्ञान और भारत

0.79424

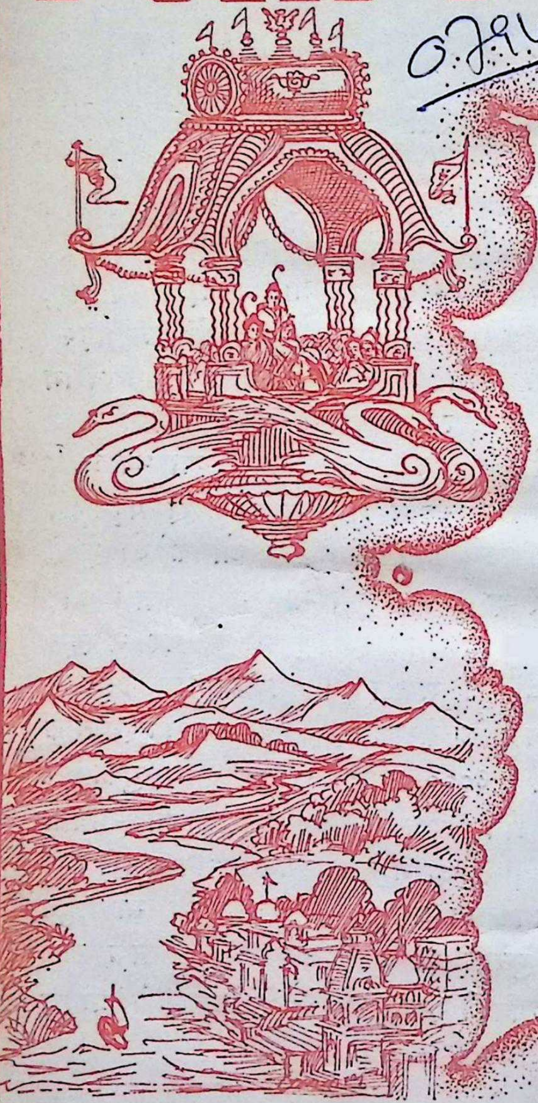

यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने उन्नति के शीर्षस्थान तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की है फिर भी इस क्षेत्र में भारत ने जो स्थान प्राप्त किया है वह अभी तक भी अप्रतिद्वन्दी ही सिद्ध हो रहा है। इन्हीं में आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी आयुर्वेद विज्ञान के आधार पर निर्मित डाबर (डा. एस. के. वर्म्मन) लि० कलकत्ता के रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, तेल, घृत, चूर्ण, वटी, प्रभृति व्यवहार कर पूर्ण लाभ उठावें।

डाबर (डा० एस० के० वर्म्मन) लि०

पोस्ट—बक्स ५५४, कलकत्ता।

नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी द्वारा प्रकाशित

Compiled
1999-2000